शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका
पियर रिब्यूड शोध पत्रिका

शोध अंक 49 | जून-सितंबर 2020 | 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए
यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह, कुलपति, महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज॰)
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰ विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
प्रो॰ पूरनचंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
प्रो॰ बाबूराम, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, चौ॰ बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ रामसजन पांडेय, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भौसले, अध्यक्ष हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
प्रो॰ श्यामधर तिवारी, हिंदी विभाग, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शहाबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)

 ISSN 0975-735X

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
ई-89, वेव ग्रीन कॉलोनी
मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाजियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ शशिप्रभा
अध्यक्ष हिंदी विभाग, वर्धमान कालेज
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरूनगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012

प्रो॰ धर्मेंद्रकुमार द्विवेदी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, पुँवारका, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ महेंद्रपाल सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिंदी
सेठ पी॰सी॰ बागला पी॰जी॰ कॉलेज, हाथरस

श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
सी 1702, जे एम अरोमा
सेक्टर 75, नोएडा (उ॰प्र॰) 201301
मो॰ 09313727493

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ॰ श्रीकांत अवस्थी
राजीव गांधी विद्यालय
कोटा बाग, नैनीताल (उत्तराखंड)

सुरेंद्रकुमार जैन
हिंदी विभाग
स॰ भगतसिंह राजकीय स्नातकोत्तर महा॰
रुद्रपुर (नैनीताल)

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
102 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत)
इंदौर 452018 मो॰ 09009566220

डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355

डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773

डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड,
इंदौर (म॰प्र॰) 452001, मो॰ 09926477787

डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदरनगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203

डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्रो॰ प्रहलाद तिवारी
111, वी॰आई॰पी॰, परस्पर नगर, स्कीम नं॰ 97
पार्ट 4, स्लाइस 4, इंदौर (म॰प्र॰) 452012
मो॰ 09406631688

डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदौर क्रिश्चियन कालेज
इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्राचार्य, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)

डॉ॰ प्रतिभा सोलंकी
ई डब्ल्यू 117, स्कीम 94, सेक्टर ई
रिंग रोड, निकट बंगाली चौराहा
इंदौर 452016 (म॰प्र॰)

डॉ॰ निशा तिवारी
650 नैपियर टाउन, भँवरताल वाटर टैंक के पीछे
जबलपुर 482001 (म॰प्र॰)
मो॰ 09425386234

डॉ॰ नीना उपाध्याय
प्रो॰ हिंदी विभाग
868, इंदिरा गांधी वार्ड, अंजनी बिल्डर्स के पास
गढ़ा, जबलपुर (म॰प्र॰) 482003
मो॰ 09424305641

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड
जबलपुर (म॰प्र॰)

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया
6 दीप्ति विहार, इंदौर रोड, उज्जैन (म॰प्र॰) 456010
मो॰ 9826214024

डॉ॰ गीता नायक
बी 11/9, महाकाल वाणिज्य केंद्र
उज्जैन (म॰प्र॰) 456010
मो॰ 9926834596

डॉ॰ श्रीकांता अवस्थी
1189 गली नं॰ 17 जे॰डी॰ए॰गार्डन
शांतिनगर दमोहनाका
जबलपुर (म॰प्र॰) 482002
मो॰ 9300598160

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

डॉ॰ कविता यादव
पुत्री श्री सुनिलकुमार, ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035

ISSN 0975-735X

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

डॉ॰ पुष्पा अंतिल
203, टॉवर-9, फ्रेस्को
निर्वाणा, सेक्टर 50, गुड़गाँव (हरि॰) 122018
मो॰ 096547444800

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सिधरावली (गुड़गाँव)

प्राचार्य
द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, न्यू रेलवे रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सेक्टर 14
गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
हरद्वारीलाल राजकीय महाविद्यालय,
तावडू (मेवात)

डॉ॰ ऋषिपाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी-विभाग, बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय, कौल, कैथल (हरियाणा)

प्राचार्य
बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

डॉ॰ कैलाशचंद्र शर्मा 'शंकी'
प्रोफेसर कॉलोनी, स्टेडियम रोड
चरखी दादरी (भिवानी) हरियाणा 127306
मो॰ 09812121233

महाराष्ट्र

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपुर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख़
(पूर्व प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰ औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको
अहमदनगर 414003, मो॰ 09850119687

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰) मो॰ 09423017017

प्रा॰ डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु॰पो॰ जुनवणे
तह॰ जि॰ धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दातेनगर, गंगापुर रोड, नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा॰)
मो॰ 09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टैंड के पास,
गंगापुर (औरंगाबाद) महा॰, मो॰ 09423933402

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेजी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा॰)

प्रा॰ दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, शिला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
शिला जालना (महा॰) 431212
मो॰ 09765944586

डॉ॰ भरत त्रयंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
शिला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा॰) 422006
मो॰ 09850760866

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

सुश्री शारदा बी॰ जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
मो॰ 08805616654

प्रा॰ डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु॰पो॰ मोराणे (प्र॰ल॰)
तह॰ जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
मो॰ 09011449636

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो॰ 09975773345

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह॰ साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री, जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं॰ 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपुर, धुले 424002

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा॰)

प्रा॰ करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही॰यू॰ पाटिल कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री, जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वतीनगर, प्लॉट नं॰ 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाईनगर, चालिसगाँव
शिला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा॰ डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं॰ आर-10, रूम नं॰ 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा॰ डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाईनगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058, मो॰ 08087612123

प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय
नवापुर, शिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
मो॰ 09822848464

प्राचार्य, विद्यावर्धिनी महाविद्यालय
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट)
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो॰ 09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लैट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा॰)

प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलापुर) 413307
मो॰ 09763602304

डॉ॰ मीनल प्रमोद बर्वे
7, गिरिजात्मक, अष्टविनायक रेजिडेंसी,
के॰जे॰ मेहता कालेज के पास, नासिक-पुणे हाईवे
नासिक रोड (महाराष्ट्र) 422001
मो॰ 09423968189

प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिंदपुर, तह॰ नेवासा
जिला अहमदनगर (महा॰)

प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर, तहसील यावल (जलगाँव)

डॉ॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम सौंदाणे, निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
पो॰ बडजाई (धुले) महा॰ 424002
मो॰ 099923811609

श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰), मो॰ 09011444059

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर एजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
मो॰ 09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
मो॰ 08888590156

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग,
फ्लैट नं॰ 303 रावेत निकट डी-मार्ट
पुणे 412101, मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे,
सिंघाड़ा तालाब, नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर
एप्लीकेशन महिला महाविद्यालय
डोंगर कठोरे, यावल,
जिला जलगाँव (महा॰)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
मो॰ 09850947267

प्रा॰ अमृता भरत पाटिल
प्लाट नं॰ 23, बालाप्पा कॉलोनी
अशोकनगर के पास, जमनागिरि रोड
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)

रूपाली नामदेवराव रिंगे
द्वारा बालाजी संभाजी कदम
फ्लैट नं॰ 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं॰ 78
सी॰डी॰सी॰ पूर्णनगर, चिंचवड,
पुणे 411019 महाराष्ट्र
मो॰ 09420848635, 07276268922

प्रो॰ मनोहर हिलाल पाटिल
प्लॉट नं॰ 1, परिजात कॉलोनी
निकट इंदिरा गार्डन, देवपुर धुले 424002 (महा॰)

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी,
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
मो॰ 09624501415

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Perumbakkam, Chennai-600100

संपादकीय

कोरोनाकाल और हम

जिंदगी कब कहाँ अपना रास्ता बदल दे, कौन कह सकता है। समय अपनी गति से चलता रहता है और हम अपनी गति से आगे बढ़ते रहते हैं। कभी रुक-रुककर कभी तेजी से और फिर ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं कि जिनकी हमने कल्पना नहीं की होती है। कोरोना उसी तरह की आपदा लेकर आया और दुर्भाग्य से पूरा विश्व इसकी जद में आ गया। किसने सोचा था कि विश्व के 215 देश इस वायरस से प्रभावित होंगे। भारत में इस महामारी का प्रथम शिकार 30 जनवरी को सामने आया, जो केरल का नागरिक था और जो वुहान (चीन) की यात्रा से वापस आया था, फरवरी की समाप्त होते-होते भारत ने भी समझ लिया कि इस महामारी से बचने का उपाय है एक-दूसरे से दूरी बनाए रखना। परिणामतः होली-मिलन के कार्यक्रम निरस्त कर दिए गए, नवरात्रि के सामूहिक कार्यक्रमों पर रोक लगा दी गई, लोगों को सार्वजनिक स्थानों पर न जाने की सलाह दी गई, कारखाने बंद किए जाने लगे। उसी समय 11 मार्च को मैंने अपनी कविता में इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखा था–

कोरोना ने हिला दिया है मन का कोना-कोना
देश-देश में फैल रहा है नालायक कोरोना
खाली-खाली मॉल, सिनेमा खाली पड़े हुए हैं
डर के कारण हाथ जोड़कर सारे खड़े हुए हैं
सपने में भी कोरोना से अवचेतन थर्राया
उड़ी हुई है नींद, समय पर ताले जड़े हुए हैं
    इसे न छू, खाने से पहले तू हाथों को धोना
    कोरोना ने हिला दिया है मन का कोना-कोना।

होली फीकी हुई, प्यार से रंग न उसने डाला
कैसा गड़बड़ घोटाला है तन-मन सारा हाला
लाला-लाली, साला-साली दूर-दूर से खुश हैं
चिपट न जाए रोग सभी ने मिलना-जुलना टाला
    लल्ली-लल्ला दुखी हो रहे, अब कब होगा गौना
    कोरोना ने हिला दिया है मन का कोना-कोना

बंद हुआ व्यापार कारखाने भी बंद पड़े हैं
लुढ़के शेयर, खिसकी चेयर, उतर गए कपड़े हैं
व्यथा बताऊँ किसको भाई, कैसे हो भरपाई
नींद उखाड़ी, शान बिगाड़ी नगर-नगर उजड़े हैं

छीन लिया है सब-कुछ सबका, क्या आधा क्या पौना
कोरोना ने हिला दिया है मन का कोना-कोना।

22 मार्च को मैंने अपनी डायरी में लिखा—'विश्व आजकल एक बड़ी महामारी से जूझ रहा है। इसका नाम है कोविड-19 कोरोना वायरस। हर टीवी चैनल पर, हर अखबार में केवल इसी की चर्चा है। यहाँ तक कि टीवी के कई कई सीरियल भी इस समस्या से जूझने के कारण बंद होने की स्थिति में हैं। यह वायरस परस्पर संसर्ग से फैलता है और अभी तक विश्व के किसी भी देश को इसकी वैक्सीन का पता नहीं है। केवल इसके फैलाव के चक्र को रोकना ही एक उपाय है।

2 दिन पहले हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने एक विशेष घोषणा की—जनता कर्फ्यू, यानी सभी नागरिक स्वेच्छा से घरों में रहें, बहुत जरूरी होने पर ही बाहर निकलें। रेल, हवाई या बस यातायात बंद कर दिया गया। सड़कों पर व्यापक सन्नाटा छा गया और वह भी स्वेच्छा से।

प्रधानमंत्री ने अपील की कि लोग शाम 5:00 बजे अपने घरों की बॉलकनी में आकर उन कोरोना वारियर्स को सलामी दें, जो अपनी जान पर खेलकर कोरोना-संक्रमित लोगों के लिए निरंतर लगे हुए हैं। डॉक्टर, नर्स, चिकित्साकर्मी, सुरक्षाकर्मी, पत्रकार आदि। इसके लिए वे अपनी-अपनी बॉलकनी में खड़े होकर ताली, थाली, शंख, घड़ियाल कुछ भी बजाएँ। पूरा देश एकजुट हो गया और देश के हर कोने से शंखनाद होने लगा, घड़ियाल बजे उठे। लोग 5 मिनट तक तालियाँ और थालियाँ बजाते रहे, घंटा-रव गूँज उठा। अद्‌भुत दृश्य था। टीवी ने साक्षात दर्शन कराए। तालियाँ बजाते हुए कई बार मन भावुक उठा। रात 9:00 बजे तक यही दृश्य रहा।

जैसे-जैसे शाम आई, देश के अनेक राज्यों से लॉकडाउन के समाचार आने लगे। दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, बिहार, बंगाल में पूर्ण लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। देश के अन्य क्षेत्रों में भी सब-कुछ बंद कर दिया गया, लेकिन एक वर्ग अभी भी जाग्रत नहीं है। शाहीनबाग गुलजार है। क्या होगा पता नहीं! इस तरह के शाहीनबाग बनाने में मीडिया की भूमिका पर भी सवाल खड़ा करने का मन है। अरे क्यों हीरो बना रहे हो बुद्धिहीनो को! दादियाँ-नानियाँ धाकड़ करार दी जा रही हैं। बंद करो यह जुगाली और जुगलबंदी।

सबसे बड़ी समस्या उन लोगों से है, जो सोशल मीडिया, विशेषकर फेसबुक पर अनर्गल प्रलाप करते रहते हैं, जिन्हें विश्वव्यापी इस संकट में भी राष्ट्रीय नेताओं की घोषणाओं में दाग-धब्बे दिखाई देते हैं। कई व्यंग्यकार समझते हैं कि उनका काम विरोध करना है और विरोध ही व्यंग्य है। बड़ी पीड़ा होती है ऐसे लोगों की टिप्पणियाँ पढ़कर, जिन्हें समाज और राष्ट्र के संकट में भी तीर चलाने की जरूरत महसूस होती है। भगवान उनकी बुद्धि पर तरस खाए!

24 मार्च को मैंने लिखा—यह बीमारी प्रायः छूने से फैलती है। एक से दूसरे पर और दूसरे से कई और पर। इसलिए सामाजिक दूरी यानी सोशल डिस्टेंसिंग ही इसका बचाव है। खेद है कि इस निर्णय में भी तथाकथित बुद्धिजीवियों को खोट खोजने की बीमारी ने घेर लिया है। क्यों नहीं समझते हैं लोग, क्यों भटकते हैं लोग, क्या वे चुप नहीं रह सकते, क्या चुप रहकर उनका खाना नहीं पचता! समय कितना बलवान है, क्या समय का इंतजार नहीं कर सकते लोग! ऐसे वातावरण में मन को सुकून देना बहुत आवश्यक है। अभी मेरी बड़ी बेटी गीतिका ने अपनी एक कविता

ISSN 0975-735X

भेजी है, उसे उद्धृत कर रहा हूँ। उसका शीर्षक है–मौका

बात कुछ अजीब सी है, पर सत्य है
सब-कुछ ठहर गया है, रुक-सा गया है।
कुछ ज्यादा ही दौड़ रहे थे हम
समय ने अचानक रोक दिए कदम
प्रकृति को हमने जो दिया
उसने लौटाना शुरू किया अलग-अलग तरीकों से
पहले समझाया पर अपनी ही धुन में थे हम।
समझा, पर कब अपनाया?
न दौड़ना बंद हुआ, न वाहनों की कतार
न प्रदूषण पर रोक लगी, न सुन पाए पक्षियों की पुकार
तब प्रकृति को मजबूरन यह कदम उठाना पड़ा
हमें हमारा बचपन याद दिलाना पड़ा।
जब चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई देती थी
सड़कें खाली थीं, हवा साफ थी
शोर था कम
परिवार के साथ समय बिताते थे हम।
समय के आगे दौड़ते नहीं थे कदम
मिलाकर चलते थे।
पौधों में पानी डालते थे, खाद देते थे
और डाली पर निकली पहली कली को देखकर
अपनी मेहनत की दाद देते थे।
यही सब हो रहा है अब पर कैसे...?
पर हमने तो यह चुना ही नहीं
जनाब, कुदरत ने ही यह हमारे लिए चुना
क्योंकि हमने उसका दर्द सुना ही नहीं।
तो अब जब कुदरत ने हमें सजा सुना दी है
चलिए, इस सजा को मौका बना लें
बदल दें खुद को
तो शायद कुदरत को एक बार फिर मना लें।

26 मार्च को मैंने भी एक छोटी कविता लिखी–

पिछले 6 दिन से घर के अंदर हैं
पार्क पुकारता है, पर उसकी पुकार बेमानी है
समय बिताने के लिए कभी टीवी देखते हैं
कभी पुस्तक पढ़ते हैं और कभी कंप्यूटर पर काम।
एक ही तरह के समाचार, एक ही तरह की चर्चाएँ

आखिर जाएँ तो कहाँ जाएँ
घर की चौखट नहीं लाँघनी है।

कभी-कभी समाचार डराते हैं
पर न डरने का विश्वास दिलाते हैं
विश्वपटल की घटनाएँ अंतर्मन में पैठती जाती हैं
कभी सीख देती हैं, कभी उन्हें सहने की शक्ति उपजाती हैं
कभी-कभी मन करता है
न देखें टेलीविजन समाचार
पर अगले ही क्षण बदल जाता है विचार
न देखेंगे कि तो कौनसा अर्थ बदल जाएगा
विचारों का अलावा किसी और शक्ल में ढल जाएगा।

जैसे-जैसे समय भाग रहा था, वैसे-वैसे लोगों में डर जाग रहा था। कारखाने बंद, दुकानें बंद, मॉल बंद, सब-कुछ बंद। मजदूर क्या करें, कहाँ से खाएँ, कहाँ से लाएँ, कहाँ जाएँ? और वे निकल पड़े अपने घरों की ओर, बहुत दूर, हजारों किलोमीटर दूर, जहाँ पर उनका बसेरा हो, जहाँ पर उनके अपने हों, जहाँ पर उनके मित्र हों, जहाँ पर उनके सगे हों, जहाँ पर उनके भाई हों। लेकिन मन में उपजे कुछ प्रश्न और मैंने लिखा–

वे क्यों भागे जा रहे हैं,
क्या दुविधा है उनको
क्या संकट है उनके सामने
किन परिस्थितियों से जूझ रहे हैं वे
और क्यों जूझ रहे हैं?
किसने कहा है उनसे यह शहर छोड़कर जाने के लिए
कोई तो बात है!

पीठ पर पिट्ठू थैला लटकाए युवक
सिर पर गठरी रखे महिलाएँ
और बच्चों का हाथ पकड़े पुरुष
किस दिशा की ओर जा रहे हैं
और क्यों जा रहे हैं?
वह भी तब, जब उनसे कहा गया है
वे जहाँ पर हैं वहीं पर रहें
न जाएँ दूसरी जगह
क्योंकि वे अपने साथ ले जाएँगे बर्बादी
अपनी और अपने परिवार की
अपने गाँव या शहर की
फिर भी वे चले जा रहे हैं।

 ISSN 0975-735X

सभी तरह का ट्रैफिक बंद है।
न बसे हैं, न रेलगाड़ियाँ
बस खाली सड़क है, जो उनके घर की ओर जाती है
जिसे वे रोजी-रोटी कमाने की खातिर छोड़ आए थे।

सरकार ने घोषणा की है
सब तरफ खतरा है और बहुत बड़ा है
हम किसी को भूखा सोने न देंगे
लेकिन सरकारी घोषणाओं से
उनका विश्वास उठ गया है।
वे सुनते आए थे अब तक कितनी ही घोषणाएँ
उन्हें लगता था, क्यों दिया उन्होंने उन्हें भूख, गरीबी, ताप, अभिशाप
शायद इसी कारण उन्हें विश्वास नहीं है
'उन्हें भूखा नहीं रहने दिया जाएगा' इस घोषणा पर भी।

कारखाने बंद हैं, दुकानें बंद हैं
वे मकान भी अब नहीं बन रहे हैं
जिनमें वे ईंट-गारा और सीमेंट ढोते थे
और वहीं पर रहते थे झुग्गी बनाकर।

ठेकेदार ने काम बंद किया तो पगार भी बंद हुई
कैसे जलेगा चूल्हा, कैसे पकेगी रोटी
कैसे भरेगा पेट उनका
और फिर बच्चे कैसे सो पाएँगे भूखे!
और वे चल पड़े अपने गंतव्य की ओर
उस गाँव की ओर, जो शायद उन्हें आसरा और रोटी दे पाए
नहीं भी दिया तो वे अपनों के बीच तो पहुँच ही जाएँगे
पर कैसे पहुँचेंगे!
सैकड़ों मील की सड़क पर
धूप और भूख तो रास्ते में भी मिलेगी
या निगलेगी उन्हें।

वे झुग्गियाँ, वे झोपड़ियाँ
बनते मकानों के अधबने कमरे
अँधेरी बंद कोठरियाँ
जिनमें देख रहे थे अपने जीवन के सपने
अब हमें रोक नहीं पा रहे हैं
और शायद इसीलिए वे

अपने घर की ओर दौड़ लगा रहे हैं।

कोरोनाकाल में कोरोना वारियर्स ने जितनी निष्ठा से अपने कर्तव्य का निर्वाह किया, उसकी मिसाल मिलना बहुत मुश्किल है, लेकिन हममें से कुछ व्यक्ति ऐसी भी निकलकर आए, जिन्होंने इन कोरोना-योद्धाओं का तिरस्कार किया, उनको चोट पहुँचाने की कोशिश की, चिकित्सा करने के लिए आए चिकित्साकर्मियों से दुर्व्यवहार किया। यदि चिकित्साकर्मियों को यह ज्ञात हुआ कि किसी परिवार में कोई व्यक्ति कोरोना वायरस से ग्रसित है तो उसके उपचार के लिए एंबुलेंस लेकर उसके द्वार तक पहुँचे, लेकिन कई स्थलों पर उनका स्वागत करने के स्थान पर उनके प्रति दुर्व्यवहार किया गया और उन्हें चोट पहुँचाने की कोशिश की गई। कई शहरों से इस तरह की घटनाओं की या दुर्घटनाओं की सूचनाएँ मिलती रहीं। ऐसी ही सूचना को लेकर मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखीं, जो यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ–

पत्थर उनको मारते जो करते उपचार,
ऐसे हीन विचार को बार-बार धिक्कार।
बार-बार धिक्कार, नर्क में वे जाएँगे,
अपने कर्मों का कड़वा फल वे पाएँगे।
किसने उन्हें बनाया इतना कंकर-बंजर,
क्यों मन में यूँ भरे हुए हैं उनके पत्थर।

भाग रहे हैं पुलिसजन, रक्षकदल के लोग,
उनका क्या अपराध है, करते वे सहयोग।
करते वे सहयोग, तुम्हारे लिए बने हैं,
घनी मूर्खता करते हो, वे भी अपने हैं।
बिना किए आराम रात-दिन जाग रहे हैं,
फेंको तुम पत्थर, वे रक्षक भाग रहे हैं।

कोरोनाकाल का एक दुखद और संवेदनशील पहलू और भी है। इस तरह के अनेक दृश्य देखने को मिले, जब घर-परिवार, मित्रमंडली या पड़ोस में होने वाली दुखद घटना पर भी हम सोशल डिस्टेंसिंग के कारण शोक व्यक्त करने, संवेदना प्रकट करने अथवा अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए नहीं जा सके। बड़े कष्टकारी होते हैं ऐसे क्षण। इस स्थिति पर मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं, जो यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ–

कोरोना के काल में त्यागे शिष्टाचार
दुख में भी जाएँ नहीं, करते रहे विचार।
करते रहे विचार, ग़मी में गर हम जाएँ
कोरोना का काँटा लेकर संग में आएँ।
संबंधों को हमने बना दिया है बौना
कैसा दुष्ट प्रहार किया तूने कोरोना?

कहा यही गया कि कोरोना वायरस चीन की किसी लैव में बनाया गया और वहीं से

 ISSN 0975-735X

इसका प्रसार सारी दुनिया में हुआ। चीन की इस करतूत पर विश्व के सभी देशों ने एकजुट होकर चीन का विरोध किया। अमेरिका ने तो स्पष्ट रूप से इसे चीनी वायरस कहकर संबोधित किया। उसी समय चीन को धिक्कारते हुए मैंने लिखा–

कोरोना की मार से चीख रहा संसार,
जिसने फैलाया उसे, बार-बार धिक्कार।
बार-बार धिक्कार, समय सब बदला लेगा,
अपने पापों की करनी से स्वयं गलेगा।
दुष्ट चीन की चालों को मन से समझो ना,
जिसने फैलाया है जग में यह कोरोना।

यह धारणा तो मन में बनी हुई है कि महामारी के इस वायरस को चीन की लैब में बनाया गया। लेकिन यह विश्वास भी प्रबल था कि जिस प्रकार चीनी माल स्थायी नहीं होता, जल्दी ही टूट-फूट जाता है, उसी तरह कोरोना भी शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा–

धरती से आकाश तक मचा हुआ है द्वंद्व
कोरोना की मार ने प्रकट किए छल-छंद
प्रकट किए छल-छंद, चीन ने इसे बनाया
और विश्व के हाथों पर इसको चिपकाया
जैसे चीनी माल टूट जाता फुर्ती से
मिट जाएगा कोरोना भी इस धरती से

हम जानते हैं कि ऐसा केवल अपने विश्वास को बल देने के लिए ही सोचा जा सकता है, वस्तुतः यह वायरस इतना प्रबल है कि इसे बिना किसी वैक्सीन के नष्ट करना संभव नहीं है।

हमने बार-बार कोशिश की है कि कोरोना की इस जंग को हम हिम्मत से और मिल-जुलकर जीतें। नाहक विरोध हमारी जंग में अवरोधक की भूमिका निभाएगा–

जीती जाती जंग भी हिम्मत से हर बार,
कोरोना को जीत लें मिलकर हम इस बार।
मिलकर हम इस बार, खोट को दूर करेंगे,
राष्ट्रवाद से साम्यवाद के पर कतरेंगे।
ऐसे पल में व्यर्थ विरोध की बात न भाती,
विपदाओं की जंग संग से जीती जाती।

किसी भी लड़ाई को लड़ते समय केवल जीत ही मिलती हो, ऐसा नहीं होता है। लेकिन हम हार मानकर न बैठ जाएँ, यह उचित नहीं है। विजयी वही होता है, जो हारकर भी हुंकार भरकर उठ खड़ा होता है–

गिरता है तो गिर मगर, उठकर कर हुंकार,
कुछ भी पाने के लिए सच को कर स्वीकार।
सच को कर स्वीकार, तुझे डटकर है रहना,
संघर्षों के बीच नहीं मन से है ढहना।

छूना है आकाश, जरूरी तन्मयता है,
अडिग और प्रतिबद्ध मनुज कब-कब गिरता है!

एक लंबी लड़ाई हमें लड़नी है। विश्वास है कि हम उसमें विजयी भी होंगे। इसी आशा और विश्वास को जगाती हुई अपनी यह गजल प्रस्तुत करते हुए यह संवाद समाप्त करता हूँ–

जिंदगी में डर बहुत हैं, पर उन्हें दमभर न देख,
रास्ते में गर निकल आया तो फिर पत्थर न देख।

दोस्ती हर पल बदलती है, नया कानून है,
देख ले किस किसको मिलती है, मगर अंदर न देख।

कब कहा था रास्ते आसान हैं, ए जिंदगी,
पर मिली है तो इसे जी, बारहा मुड़कर न देख।

आने वाली रुत डरायगी तुझे मालूम था,
पतझरों से डर नहीं, वीरानियाँ जीकर न देख।

जिसको चाहो वह मिले अक्सर जरूरी तो नहीं,
अवसरों को छीन ले, अलगाव में जीकर न देख।

एक पल संकल्प का सुलझा ही देगा गुत्थियाँ,
मंजिलें मिलकर रहेंगी, दोस्त तू रुककर न देख।

और अंत में डॉ॰ राजेंद्र मिश्र की सद्यःप्रकाशित पुस्तक 'कोरोना से जंग' की अंतिम कविता उद्‌धृत कर रहा हूँ, जो आपमें कोरोना से जंग लड़ने का विश्वास जगाएगी–

एक अदृश्य दुश्मन
सामने आकर खड़ा हो गया है
जिसे हमने कभी नहीं देखा
और जो अँधेरे की गुफा से निकला है
जो उतना मारता नहीं
जितना संक्रमित करता है
एक मनुष्य के भीतर बैठकर
यह हजारों में फैल जाता है
इसका मेडिकल साइंस के पास
कोई इलाज नहीं है
संसार-भर के वैज्ञानिक जुट गए हैं
इस एक वायरस को मारने
जो अनजाने में ही या फिर नियोजित होकर
चीन के वुहान से आया है
भारत में पहले कुछ लोग वुहान से आए

 ISSN 0975-735X

इसका संक्रमण फैलता जा रहा है
पहले कुछ लोगों में
फिर हजारों में
लाखों और करोड़ों में
फैलते हुए यह सारी मानव-जाति को
ग्रसित कर सकता हैं

इसके संक्रमण से बचने का
एक ही उपाय है
हम अपनों से भी दूर रहें
अगर जरा भी संक्रमण हो तो अपने ही घर में
क्वारेंटाइन हो जाएँ
आइसोलेट होकर कम से कम 14 दिन रहें
यह वायरस इतने दिनों तक
ज़िंदा रह सकता है
यह सीधे साँसों पर आक्रमण करता है
और आदमी मरने लगता है
यह उतना खतरनाक नहीं है
जितना खतरनाक हो जाता है
जब हर आदमी इससे डरने लगता है
उसे क्वारेंटाइन होना पड़ता है
वह अपनों से दूर हो जाता है
एक गहरे अवसाद के बीच
वह बिना मरे ही मरने लगता है।

सारी दुनिया में लॉकडाउन के
बीच यह वायरस तबाही
मचा रहा है और रोज हजारों लोग मर रहे हैं
इसने एक तरह से मनुष्यों
के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया है
सारी दुनिया में दहशत है
इसमें एक खामोश कैरियर होता है
पता ही नहीं लगता, यह कब भीतर घुसता है
इसकी दहशत से लोग खुदकुशी कर रहे हैं
करोड़ों लोग बेरोजगार हो रहे हैं, भूख से मर रहे हैं
सारी व्यवस्थाएँ ठप्प हो रही हैं
साधारण लोगों से बड़े राजनेताओं तक

यह वायरस फैल रहा है
कोई नहीं जानता यह कब तक चलेगा।

अब ज़िंदगी जीने का ढंग बदल रहा है
शादियाँ आनलाइन हो रही हैं
और हो सकता है लोग सेक्स भी न कर पाएँ
पुरुष के स्पर्म और स्त्री के एग्ज को
लैब में मिलाकर स्त्री के युटिरस में
प्लांट किया जाए
तब कहीं जाकर कोई बच्चा पैदा हो सके
पर क्या वायरस के डर से
लोग यह काम करना चाहेंगे
मनुष्य ने प्रकृति का
जितना खतरनाक दोहन किया
वह कम हो रहा है
नदियाँ अपने-आप साफ हो रही हैं
शहरों का प्रदूषण कम हो रहा है
इस वायरस ने यह भी दिखाया है
कि मनुष्य किस तरह रहे
वह किस तरह प्रकृति को साफ रखे
इस वायरस ने
धर्म की प्रासंगिकता भी खत्म कर दी है
ज़िंदगी के सच को सामने रखा है
कि पैदा होना और मरना ही सच है
अनेक बार एपीडेमिक आए हैं
पर यह पेंडेमिक है कहीं से भी फैला हो
पर इसने सैनिक युद्ध की जगह
जैविक युद्ध का रास्ता खोल दिया है
जिस तरह संसार में जनसंख्या बढ़ रही है
उसका बोझ धरती कब तक उठा सकती है
यह पेंडेमिक तो प्रलय की तरह है
जिससे विस्फोट हो सकता है
दुनिया के बहुत से लोग खत्म हो सकते हैं
या वैज्ञानिक वैक्सीन से हमें बचा भी सकते हैं
पर फिर कोई और वायरस भी आ सकता है
अब बड़े देश वायरस बैंक बना रहे हैं
मनुष्यता खत्म हो सकती है।

 ISSN 0975-735X

अब इस बात को मानना होगा
कि हम आइसोलेट होकर जिएँ
अधिकतर घर से काम करें
लोगों से खुद नहीं, केवल फोन पर मिलें
वीडिया पर देखें
अब सभाओं को इंटरनेट से जोड़ना होगा
अब डिजिटल अर्थव्यवस्था की ओर जाना होगा
अब बाहर ही नहीं
घर पर भी मास्क पहनकर रहना होगा
अब सौंदर्य का आधार भी बदल रहा है
हर आदमी अब अपारदर्शी हो रहा है
अब धन-संपत्ति जोड़ने की जरूरत नहीं है
वायरस इसे निरर्थक बना रहा है
अब माइग्रेशन बहुत कम हो जाएगा
संसार ग्लोबल नहीं रह पाएगा
लोगों के आने-जाने पर
कई प्रतिबंध हो सकते हैं
एप के जरिए उनका निजीपन खत्म हो सकता है
सरकारों का ज़िंदगी पर दखल इतना बढ़ सकता है
लोगों की हर लोकेशन एप में आ सकती है
उसका मैपिंग हो सकता है
अब लोगों को
एक एनीमल फॉर्म में बदला जा सकता है
अब आरवेल के 1984 को
2020 और उसके बाद पढ़ा जा सकता है
अब मनुष्य का अपना कुछ नहीं रहेगा
वह एक जानवर की तरह जिएगा।

हमें फिर भी कोरोना से जंग
लड़नी ही होगी इस उम्मीद में
कि हमारी ज़िंदगी बच जाएगी
पर हम जानते हैं
हमारे जीने का ढंग बदल जाएगा
दुनिया बदल रही है
एक दूसरा दृश्य यह भी है
कि जल्दी नहीं, पर एक लंबे समय बाद
सब-कुछ सामान्य हो जाएगा

वायरस का खतरा टल जाएगा
उसे साइंटिस्ट नियंत्रित करेंगे
पर यह तय है
अब ज़िंदगी पहले की तरह नहीं रहेगी
जीने के सारे प्रतिमान बदल ही जाएँगे
अब हम अधिक संवेदनशील हो सकते हैं
दमन और यातना के बीच
जीने वाले लोगों को अपना सकते हैं
संसार बेहतर भी हो सकता है
हमारे देश में जहाँ लोग राजनीति कर रहे हैं
हमारे प्रधानमंत्री जनता से सीधे जुड़ रहे हैं
भारत में वायरस बहुत अधिक थम रहा है
जबकि यहाँ जनसंख्या
और उसका घनत्व संसार में सबसे अधिक है
वे हर भारतीय की फिक्र कर रहे हैं
पर अगर हमें इस महामारी से बचना है
तो खुद की फिक्र करना है
क्वारेंटाइन से नहीं भागना है
अपने-आपको आइसोलेट करना है
इस वायरस के संक्रमण से लोगों को बचाना है
यह तो पैरासाइट है
जो खुद जीने के लिए हमें मार रहा है
हमें खुद जीने के लिए इसे मारना होगा।

अब एक जगह भीड़ इकट्ठी नहीं करनी है
ज़िंदगी को अपनी संस्कृति और सभ्यता के साथ
जीना सीखना होगा
अपनी आदतों में बदलाव लाना होगा
जनसंख्या पर नियंत्रण करना होगा
कम-से-कम हमारे देश में
नहीं तो हम वायरस के बिना ही मरने लगेंगे
अब हमारी प्राथमिकता बदल रही है
कोरोना से लड़ने के लिए
मिसाइल नहीं, हम वेंटिलेटर बना रहे हैं
हम शस्त्रागारों की जगह अस्पताल बना रहे हैं
अब सेना की भूमिका शस्त्रयुद्ध की नहीं
मनुष्य की सुरक्षा की होगी

जो देश वायरस फैलाकर
दुनिया को जीतना चाहते हैं
उन्हें नियंत्रित करने के लिए
सारी दुनिया को खड़ा होना होगा
उन पर प्रतिबंध लगाने होंगे
वे कितने ताकतवर क्यों न हों
जब सारी दुनिया ही उनके
खिलाफ खड़ी हो जाएगी
जब उनकी अपनी जनता भी
उनकी सत्ता के खिलाफ उठ खड़ी होगी
तभी हम इन खतरों से बच पाएँगे
अब धर्म की कट्टरताओं को छोड़ना होगा
एक बेहतर मनुष्य बनना होगा
पेंडेमिक को हराना है
तो मानवता को जिताना होगा
तभी हम कोरोना से यह जंग जीतेंगे।

वैसे भी बड़ी संख्या में लोग मर सकते हैं
पर मनुष्यता खत्म नहीं हो सकती
वह तो एक स्त्री और एक पुरुष ही बचे
तब भी फिर खड़ी हो सकती है
जलप्लावन हो सकता है
परमाणु-युद्ध हो सकता है
उसके बाद भी पूरी दुनिया
कभी खत्म नहीं हो सकती
अब तक का यही इतिहास है
इसके पहले भी कितने ही वायरस आए हैं
जिनका कोई इलाज नहीं था
पर पेंडेमिक पहली बार आया है
यह दूसरे विश्वयुद्ध से भी अधिक भयावह है।

इस कोविड-19 का सामना करना है
यह शरीर के भीतर आ जाता है
और आदमी डर जाता है
पता नहीं वह
कोरेंटीन से बाहर आएगा या नहीं
वह समाज से अलग कर दिया जाता है

कहीं वह संक्रमित ने कर दे
संसार का सच सामने आ रहा है
कहीं कोई अपना नहीं है
जब लगता है वे भी मर सकते हैं
तब वे अपने लोगों से भी अलग हो जाते हैं
तब कहीं कोई ईश्वर भी साथ नहीं आता
धर्म के मंत्र भी काम नहीं करते
यहाँ तक कि वह प्यार भी नहीं हो पाता
जिसके लिए सृष्टि में स्त्री-पुरुष की रचना हुई है।

इसका अंत कब होगा, कोई नहीं जानता
पर अब ज़िंदगी का अर्थ बदल रहा है
हर चीज अलग अंदाज में दिख रही है
अपना चेहरा भी हमें ढँकना पड़ रहा है
जीने के लिए हम सब-कुछ छोड़ रहे हैं
अपनों को अलविदा कहने से भी बच रहे हैं
अब मौत का सच सामने आ रहा है
ज़िंदगी में हम जो कुछ करते हैं
वह सब बेमानी हो रहा है
कोरोना से हमारी जंग जारी है
हम जानते हैं वायरस नहीं, मनुष्य ही जीतेगा
फिर भी अब मनुष्य को बदलना होगा
देशों को बदलना होगा
राज करने वालों को
अपनी प्राथकिताएँ बदलनी होंगी
सब-कुछ मनुष्य के लिए होता है
वह बाजार हो या संपति
अब नए ग्लोबल मानक बनाने होंगे
कहीं ऐसा न हो कि हम
वायरस से जीतकर भी हार जाएँ
तब फिर कोई और वायरस भी आ सकता है
हम कब तक इस तरह जंग करेंगे
हमें हर हालत में बदलना है
वुहान की लैब को नष्ट करना है
जैविक शस्त्र नहीं जीवन-शस्त्रों को रचना होगा
कोरोना की यह जंग जारी रहेगी
इसे जीतकर

हमें ज़िंदगी को नहीं हराना है
फिर हमें संवेदना से जुड़ना होगा
प्यार से जुड़ना होगा
संसार में सरहदों की प्रतिस्पर्धा से
दूर हटना होगा
युद्ध खत्म करना होगा
हम केवल सभी लोगों से जुड़कर
एक नई मनुष्यता को
संसार में नया रूप दें
तभी मानवता बची रहेगी।

हमारी यह जंग
केवल वायरस से नहीं
उस वायरस से भी है
जो मनुष्य के भीतर बन रहा है
जिसने उसे अपनी मानवता के खिलाफ ही
खड़ा कर दिया है
कुछ थोड़े से लोग
अपनी बड़ी जनशक्ति को नियंत्रित कर रहे हैं
उनके मुखौटों को उतारना होगा
तब थ्यानमन नहीं हारेगा
लोगों की शक्ति के सामने
सत्ताएँ हथियार डालेंगी
तब कोई परमाणु बम नहीं बनाएगा
वायरस बम नहीं बनाएगा
वे सब मनुष्य की हँसी में
उसके दर्द में एकसाथ रहेंगे
तब एक नया संसार रच सकता है
हम सितारों से बात कर सकते हैं
दूसरे ग्रहों पर साथ मिलकर रह सकते हैं
तब मौत देने की बजाय हम ज़िंदगी देंगे
ज़िंदगी का यह सफर ही
हमें सुंदरता दे सकता है
हम अपनी इस दुनिया को नए रंग में रँगेंगे
दुनिया बहुत सुंदर है इसे और सुंदर बनाएँ
खुशियाँ मनाएँ, गाएँ
तभी यह संसार आगे बढ़ेगा

अगर मनुष्य को ज़िंदा रहना है
इस वायरस को हराना ही होगा
हमारे भीतर विश्वास है
हम कोरोना को हराएँगे/ यह जंग हम जीतेंगे
अभी यह जंग जारी है/ हम अकेले नहीं हैं
फिर से हम उठ खड़े होंगे
अपनी ज़िंदगी के साथ
हम हर मौत से बड़े होंगे।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोशाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ रामसजन पांडेय, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला वि। ापीठ, पुणे (महा॰)

अनुक्रम

संस्कृत का महत्त्व : संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना/ **डॉ॰ रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 27

21वीं सदी के उपन्यासों का पर्यावरणी परिदृश्य एवं परिप्रेक्ष्य/ **प्रो॰ अर्जुन चव्हाण** 30

आओ हिंदी-हिंदी खेलें/ **डॉ॰ एम॰एल॰ गुप्ता 'आदित्य'** 41

प्रेमचंद का भाषा-चिंतन : सुझावों की नोटिस नहीं ली गई/ **प्रो॰ अमरनाथ** 46

हिंदी बालपत्रकारिता का सफरनामा/ **डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम** 51

गीतकार पुष्पेंद्र वर्णवाल की प्रेमकाव्य कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन/ **जयप्रकाश सिंह, डॉ॰ महेश 'दिवाकर'** 64

गुरु जंभेश्वर वाणी में रहस्यवाद : एक तथ्यात्मक दृष्टिकोण/ **परवीन कुमारी** 75

धूमिल की लंबी कविता 'पटकथा'/ **आर॰ रमेशकुमार, डॉ॰ ल॰ तिल्लै सेल्वी** 82

'शब्द-कलश' में संवेदना के विविध स्वर/ **संतोषकुमार, डॉ॰ महेश 'दिवाकर'** 92

अपने ही चरित्र के आईने में नारी का संघर्ष/ **देवी नागरानी** 101

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी-समस्याएँ/ **त॰ नागपलनीवेल, डॉ॰ त॰ तिल्लैचेल्वी** 106

काशीनाथ सिंह कविता की नई तारीख : एक मूल्यांकन/ **डॉ॰ ओमप्रकाश** 114

शमशेरबहादुर सिंह की कविताओं में ऐंद्रिक बोध/ **डॉ॰ रामस्वरूप कुमार** 121

शमशेरबहादुर सिंह की कविताओं में देशभक्ति का संदर्भ/ **डॉ॰ रामस्वरूप कुमार** 130

विषयवस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद : कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद/ **डॉ॰ रविकांत 'रवि'** 137

'कालिदास-दर्शन' का उत्कृष्ट निदर्शन-'राजा प्रकृतिरंजनात्'/ **डॉ॰ रजनीशकुमार पाठक** 145

दलित कहानी और कहानीकार : एक परख/ **डॉ॰ ओमप्रकाश** 149

मन्नू भंडारी और उनका साहित्य : एक परिचय/ **डॉ॰ मिनाक्षी** 155

कालिदास और वनस्पतिगत पर्यावरण/ **डॉ॰ अवधेशकुमार** 159

सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास परंपरा और आधुनिकता/ **रोहिणी सुरेश कुलकर्णी, डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सैयद** 165

कनुप्रिया : राधा की विह्वलता का दर्पण/ **रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'** 169

हमारी संस्कृति में पर्यावरण-संरक्षण की भूमिका/ **डॉ॰ नीतूसिंह** 177

डॉ॰ कैलाश वाजपेयी के काव्य में पर्यावरणीय चेतना/ **डॉ॰ भावना देवी** 182

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ वैशिष्ट्य और उपलब्धियाँ/
डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया 192
भारतीय रंगमंच : एक संक्षिप्त परिचय/ **डॉ॰ कुमार चैतन्यप्रकाश** 196
रीतिपरक औचित्य की दृष्टि से विक्रमांकदेवचरितम्/ **डॉ॰ नीतूसिंह** 200
महिलाओं की उच्चशिक्षा का समाज पर प्रभाव/ **कुँवर भीमसिंह** 205
प्रगतिशील कविता का विकास और हिंदी कविता में प्रगतिवाद/
अल्पना कुशवाहा 211
नासिरा शर्मा का धार्मिक चिंतन/ **मीनाक्षी उपाध्याय** 215
मालती जोशी का रचना-संसार/ **डॉ॰ कृष्णा शर्मा** 220
जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा संसाधनों का भौगोलिक विश्लेषण/
डॉ॰ मुकेशकुमार सिंह 226
समकालीन मनुष्य का दस्तावेज : रेहन पर रग्घू/ **डॉ॰ संजयभाऊसाहेब दवंगे** 234
वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संचार-माध्यम और हिंदी की भूमिका/
रामबिलास यादव 239
भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य/ **डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी** 243
तुलसी के काव्य में लोकपक्ष/ **डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी** 247
फोटोनिक्स में कैरियर/ **डॉ॰ दीपक कोहली** 252
आचार्य भिखारीदास के काव्य में श्रीराम के संदर्भ और भक्ति-भावना/
अशेष उपाध्याय 254
एक गुमनाम कहानीकार : रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'/ **रामभवन यादव** 261
वर्तमान भारतीय शिक्षा के परिपेक्ष्य में जयप्रकाश नारायण के शैक्षिक विचारों
की उपादेयता/ **डॉ॰ हरेन्द्र कुमार** 268
भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता
कुँवर डॉ॰ महाराणा प्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही' 271
सेवासदन उपन्यास के सौ वर्ष : प्रमुख स्त्री पात्र/ **ममता कुमारी** 275
अजीत कौर के उपन्यास पोस्टमार्टम में भारतीय नारी की मानसिक पीड़ा/
फारूक अहमद 281
राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'कटरा बी आर्ज़ू' का पुनर्पाठ/
चंदनकुमार 287
प्रेम का उदात्त रूप, 'तुम सर्दी की धूप'/ **स्मृति शुक्ला** 292
शचींद्र भटनागर के नवगीतों से गुजरते हुए/ **डॉ॰ रमेश तिवारी** 294
हमारा जीवन-संघर्ष और शचींद्र भटनागर के नवगीत/ **डॉ॰ रमेश तिवारी** 298
मुहब्बत भी बग़ावत है/ **राजदीप कुमार** 302

संसद में दिए गए भाषण के अंश

संस्कृत का महत्त्व : संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना

शिक्षामंत्री डॉ॰ रमेश पोखरियाल 'निशंक'

श्रीमन, संस्कृत की जो हमारी थाती है, उसका जो विशाल वैभव है, उसके बारे में न केवल विस्तारपूर्वक कहा गया, बल्कि इस बात की भी चिंता व्यक्त की गई कि दुनिया के देशों में अगर इसको लेकर संजीदगी, जिज्ञासा और जिजीविषा है तो वे लोग उसको लेना चाहते हैं और आगे अपनी पीढ़ी को देना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि शायद इसी के लिए सरकार ने यह कदम उठाया है। ये जो तीनों डीम्ड विश्वविद्यालय हैं, ये बहुत ही पहले से हैं। अब इनको विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया है, ताकि वे अपने पूरे गौरव के साथ अनुसंधान कर सकें, आगे बढ़ सकें, संस्कृत की स्टडी के लिए बाहर के बच्चों को यहाँ ला सकें और अपने बच्चों को बाहर भेज सकें।

श्रीमन, मैं एक बात बहुत विनम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि यह हमारा हिंदुस्तान है। हम विश्वगुरु रहे हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर न तो यहाँ भाषा का विवाद है, न क्षेत्र का विवाद है और न ही जाति, पंथ और धर्म का विवाद है।

मैंने पहले भी कहा कि 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' की बात करने वाला हिंदुस्तान 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात करने वाला हिंदुस्तान, यदि वह अपने घर में ही छोटी बातों में उलझेगा तो वह हिंदुस्तान नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान तो सारे विश्व के लिए वह हिंदुस्तान रहा है, जिसने 'असतो मा सद्गमय' की बात की है, जिसने 'असत्य से सत्य की ओर' चलने की बात की है, जिसने 'मृत्योर्मामृतं गमय' की बात की है, जिसने मौत से भी हटकर अमरत्व पाने की बात की है, जिसने तमसो मा ज्योतिर्गमय की बात की है, जिसने अंधकार को मिटाकर प्रकाश की ओर चलने की बात की है, हम छोटी बात नहीं कर सकते हैं।

यह जो संस्कृत की बात है, भाषा में लाकर इसको खड़ा करना, इससे ज्यादा दुखद कुछ नहीं हो सकता है। यह भाषा की बात नहीं है। यह उस संपदा की बात है, जो भारत विश्वगुरु रहा है।

मैंने शुरू में भी कहा कि 'एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:, स्वं स्वं चरित्रम् शिक्षरेन् पृथ्वियां सर्वमानव:', कोई तो बात रही होगी, जो सारी दुनिया के लोग यहाँ से आकर सीखकर जाते थे। मैं बहुत विनम्रता से अनुरोध करना चाहूँगा कि हम सभी भारतीय भाषाओं को हर कीमत पर सशक्त चाहते हैं। हमारी सारी भारतीय भाषाएँ तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, मराठी, बंगाली सहित जितनी भी भाषाएँ हैं, 22 भारतीय भाषाएँ हैं, इन 22 भारतीय भाषाओं में अँग्रेजी नहीं है। यह सबको समझ लेना चाहिए।

हमारे संविधान में बाबा साहेब ने जो लिखा, मैं इस सदन के सामने उसे जरूर पढ़ना चाहता हूँ। उन्होंने भाषा के संबंध में कहा कि हिंदी राजभाषा होनी चाहिए। मैं धारा 351 को पढ़ना

चाहता हूँ कि उनके मन में संविधान बनाते समय संस्कृत के प्रति और भारतीय भाषाओं के प्रति कितना आदर था और उन्होंने कितनी गंभीरता से इस बात को लिया। संविधान की धारा 351 में कहा है कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदीभाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और 8वीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: सस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

श्रीमन्, मैं यह कहना चाहता हूँ कि आज सभी भाषाओं में संस्कृत की जो शब्द-संपदा है, वह दुनिया में सर्वाधिक है। इसमें कहीं किसी को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह भाषा हमारी है। जो हमारी भारतीय भाषाएँ हैं, जब उन सभी भारतीय भाषाओं का विस्तार होगा, विकास होगा, तभी और भी भाषाएँ सशक्त हो सकती हैं। हम सभी भारतीय भाषाओं को सशक्त करने के पक्षधर हैं और हर कीमत पर उसको सशक्त करना चाहते हैं।

श्रीमन्, क्या यह सच नहीं है कि भाष्कराचार्य जी के अद्‌भुत ग्रंथ आज पूरी दुनिया लेकर जा रही है? उन ग्रंथों में ज्ञान और विज्ञान समाहित है, क्या उसको इस देश को नहीं पढ़ना चाहिए और क्या इस देश के लोगों को उस ज्ञान और विज्ञान को नहीं जानना चाहिए? क्या आर्यभट्‌ट को कोई नकार देगा? आर्यभट्‌ट ने जितना भी काम किया, उसके संस्कृत में ग्रंथ हैं। यदि गणित में शून्य को लेकर सारी दुनिया आर्यभट्‌ट को पढ़ा रही है, तो मेरी धरती पर आर्यभट्‌ट क्यों नहीं पढ़ना चाहिए। मुझसे जुड़ी हुई चीजों को, मेरी पीढ़ी को, मेरे देश की समृद्धि को बढ़ाने के लिए उसका उपयोग क्यों नहीं करना चाहिए?

मैं समझता हूँ कि जो भी ज्ञान हो, किसी भी भाषा में हो, जितनी भी मेरी भारतीय भाषाएँ होंगी, यदि उनमें ज्ञान का भंडार होगा, तो उसका उपयोग हमें हर हालत में करना है। केवल एक भाषा की बात नहीं है, संस्कृत विश्वविद्यालय बन रहा है इसलिए चर्चा हो रही है। इसे भाषा पर नहीं लाना चाहिए। मुझे इस बात की खुशी है, पाणिनि जैसा व्याकरण दुनिया में कहाँ है? हम चुनौतीपूर्वक कहते हैं, दुनिया के लोगों को बताओ, हम अपने को संशोधित कर देंगे। यदि आपके पास पाणिनि से बड़ा कोई संस्कृत का व्याकरण है तो बताएँ। जिस दिन आप हमको समझा देंगे, उस दिन हम अपनी बात को वापस ले लेंगे। लेकिन कोई बताने को तैयार नहीं कि पाणिनि व्याकरण से बड़ा कोई दूसरा व्याकरण है।

श्रीमन, चरकसंहिता को दुनिया पढ़ाए, आयुर्वेद के पीछे दुनिया के लोग आकर खड़े हैं। योग:कर्मसु कौशलम् योग के पीछे आखिर कुछ बात तो होगी, यह बात सही है। हमारे कुछ वक्ताओं ने भी कहा, यूनान, मिश्र और रोम सब मिट गए, लेकिन हम अब तक हैं, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, कुछ तो बात है। यह जो कुछ बात है, इसको बनाए रखने की जरूरत है।

हम सशक्त भारत की कल्पना करते हैं। जो सशक्त भारत हो, जो स्वच्छ भारत हो, जो समृद्ध भारत हो, एक भारत और श्रेष्ठ भारत हो। श्रेष्ठ भारत, जो पहले विश्वगुरु के रूप में विख्यात था, वही भारत फिर चाहिए।

हम इसलिए इन विश्वविद्यालयों को बना रहे हैं कि भाषा के जितने भी ग्रंथ हैं, उनमें ज्ञान और विज्ञान है, उसको यह पीढ़ी नए अनुसंधान के साथ पढ़े। यह लिखा हुआ है कि विज्ञान के साथ आगे बढ़ें, इनको पता नहीं है कि इन ग्रंथों में कौनसा विज्ञान नहीं छिपा है। दुनिया के जितने भी बड़े-बड़े वैज्ञानिक हुए हैं, उन्होंने उसका संदर्भ दिया है।

पाराशर मुनि से बड़ा कृषिविज्ञानी क्या होगा। भरतमुनि से बड़ा नाट्यशास्त्र क्या होगा। इन विश्वविद्यालयों में हम अपनी प्राचीन संपदा विकसित करके आगे बढ़ा सकें, उसे नवाचार के साथ ला सकें। जो उसमें ज्ञान-विज्ञान है, उसे नए परिप्रेक्ष्य में अनुसंधान करके हम आगे बढ़ सकें।

मैं भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण के लिए आश्वासन देता हूँ , चाहे तमिल हो, तेलुगु हो, मलयालम हो, कन्नड़ हो, गजुराती हो, मराठी हो, बंगाली हो सारी भाषाओं को हम सशक्त करेंगे।

मैं आपके माध्यम से कहना चाहता हूँ। एक और माननीय सदस्य ने बहुत अच्छा कहा कि इतने समय से तमिल परिषद् के निदेशक नहीं है। तमिल भाषा की जो परिषद् है, उसके अध्यक्ष माननीय मुख्यमंत्री होते हैं। मेरे से पहले मंत्रीजी ने और मैंने इस संबंध में तीन पत्र दिए हैं। पिछले तीन सालों से उस कमेटी का गठन नहीं हुआ है। चूँकि इसमें उनकी अध्यक्षता है, वह गठन करेंगे तभी यह काम आगे बढ़ेगा। आप उसका गठन कीजिए, तमिल भाषा के लिए जो संभव हो सकता है, वह हम करेंगे। हम भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण के पक्षधर हैं। हम भारत को महान बनाना चाहते हैं। भारत तभी महान बनेगा, जब हमारी ये भाषाएँ सशक्त होंगी और सबल होंगी। यह विश्वविद्यालय सभी वर्गों के लिए, सभी जातियों के लिए, सभी पंथों के लिए खुला होगा। यदि किसी के मन में थोड़ा भी संदेह होगा तो वह धुल जाएगा।

आज जब दादा बोल रहे थे तो गीता पर चले गए थे, आत्मा से परमात्मा पर चले गए थे। दादा ने कहा–

नैनं छिन्दंती शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।

उन्होंने यह भी कह दिया कि वासान्सि जीर्णानि यथा विहाय। गीता किसी धर्म और जाति का नहीं है, गीता तो दर्शन है। यह आत्मा का परमात्मा से जोड़ने का और 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' का है। इसलिए मैं उनको भी बहुत धन्यवाद देना चाहता हूँ।

12 दिसंबर 2019

21वीं सदी के उपन्यासों का पर्यावरणी परिदृश्य एवं परिप्रेक्ष्य

प्रो॰ (डॉ॰) अर्जुन चव्हाण
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

समाज तथा मानव-जीवन का अभिन्न अंग है समस्या। बिना समस्या के न समाज की कल्पना संभव है और न जीवन की। इक्कीसवीं सदी मूलता अवसर एवं सुविधा की सदी है और समस्या की भी। इस सदी की सर्वाधिक भयंकर, दुर्धर, उग्र, प्रखर एवं प्रलयंकर समस्याओं में से एक है पर्यावरण संकट की समस्या। कारण अनंत हैं, लेकिन उनमें से प्रमुख है पर्यावरण तथा स्वच्छता के प्रति समाज की अक्षम्य नजरअंदाजी और लापरवाही।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा सेवाभाव से चलाया गया स्वच्छता-अभियान धीरे-धीरे विस्मृति में कब चला गया, इसका कभी किसी को पता ही नहीं चला। 'सेवाग्राम' की स्थापना में उनकी जनसेवा-चेतना आधारभूत थी और पर्यावरण चेतना भी। लेकिन गांधीयुग के साथ गांधी के कई सेवाकार्य भी विस्मृति के गर्त में चले गए। देश की बढ़ती आबादी ने पर्यावरण की बलि दे दी। फलत: हमारा सामाजिक और राष्ट्रीय स्वास्थ्य खतरे में आया। इसे पहचानने और पर्यावरण को बचाने के लिए वर्तमान प्रधानमंत्री मोदी जी मसीहा बनाकर आए। 'एक कदम स्व्च्छता की ओर' जैसा आंदोलन चलाकर उन्होंने जनचेतना का संस्कार किया। जन-जन, मन-मन और स्थान-स्थान पर 'स्वच्छ भारत अभियान' के प्रति प्रेम पैदा हुआ। पर्यावरण-रक्षण के प्रति संवेदना का सैलाब दिख पड़ा। फिर चाहे किसी को इसमें राजनीतिक स्वार्थ दिखाई दे, चाहे पाखंडी पुरुषार्थ। चाहे जो हो लेकिन जैसे महात्मा गांधी के महात्मा होने में संदेह नहीं, वैसे मोदी जी के पर्यावरण-संवेदक एवं संरक्षक होने में संदेह नहीं। अत: स्वच्छ भारत अभियान को आज देश का सर्वाधिक संवेदनशील और प्रासंगिक आंदोलन कहना होगा। इससे पर्यावरण-रक्षण में अभिवृद्धि होती जा रही है और पर्यावरण-चेतना में भी।

यदि ऐसा न होता तो आज पर्यावरण-चेतना-संबंधी साहित्य का सैलाब नजर न आता। विगत कुछ वर्षों में हिंदी में, विशेषत: कविता, गजल, कहानी और उपन्यास साहित्य में पर्यावरण-चेतना की पुरजोर पहल प्रतिबिंबित है। हिंदी में दर्जनों नहीं बल्कि सैकड़ों साहित्यकारों ने अलग-अलग साहित्य-विधाओं में पर्यावरण की समस्या को चिंता का विषय बनाया है, साथ-साथ चिंतन, मनन और लेखन का भी। आज का हिंदी कहानीकार, उपन्यासकार, गजलकार पर्यावरण-रक्षण और प्रदूषण की चिंता के जरिए समसामयिक यथार्थ का इजहार भी बेबाकी से कर रहा है।

श्रेष्ठतम विश्वसाहित्य की प्रथम पंक्ति में रखने योग्य हिंदी साहित्य की सबसे सशक्त और समृद्ध विधा के रूप में उपन्यास को रखना पड़ेगा। इसका समसामयिक और सामाजिक सरोकार ही इसके मूल में मानना होगा। इक्कीसवीं सदी का हिंदी का उपन्यास साहित्य भी इसके लिए अपवाद नहीं। इसमें विषय-वैविध्य तो है ही, लेकिन इसका पर्यावरण-बोध भी वर्तमान परिवेश

 ISSN 0975-735X

तथा परिप्रेक्ष्य को संवेदना के साथ प्रस्तुत कर रहा है, इसे स्वीकारना होगा। प्रस्तुत आलेख इसी केंद्रबिंदु पर प्रकाश डालता है।

1. विकास के पड़ावों का पहला शिकार : पर्यावरण

हमारे यहाँ विकास का पहला शिकार पर्यावरण है। विकास की पहली कुर्बानी पर्यावरण है। सड़क-निर्माण में पेड़-पौधों की कुर्बानी साधारण-सी बात मानी जाती है। बाँध-निर्माण में पेड़ पौधे ही नहीं मानवी बस्तियाँ, अनेक गाँव, कुएँ, छोटे-मोटे झील-तालाब, खेत-खलिहान और जंगल की हानि कभी हानि नहीं मानी जाती। कारखानों का निर्माण होता है तो जल, जंगल और जमीन के पर्यावरण की जान लेकर ही। यदि ऐसा न होता तो हमारे यहाँ 'एक स्विच था भोपाल' जैसा उपन्यास न लिखा जाता।'[1] उपन्यासकार नरेंद्र नागदेव जिस गैस दुर्घटनाग्रस्त भोपाल शहर के पर्यावरण समस्या की चिंता को प्रस्तुत करते हैं, वह अनायास नहीं। इससे एक तथ्य सामने आता है कि विकास के प्रयोजन को केंद्र में रखकर जब बड़े-बड़े प्लांट की निर्मिति हुई, तब उसकी इति तथा दुर्गति भी रोकी नहीं जा सकी। यहाँ एक ओर नर्मदा नदी पर विशालकाय बाँध की निर्मिति हुई और दूसरी ओर विस्थापन की समस्या मुँहबाएँ खड़ी हुईं। मेधा पाटकर का नेतृत्व और 'नर्मदा बचाओ' आंदोलन का जन्म विकास के नाम बढ़ते जा रहे विनाश का प्रतिरोध कहना होगा। यदि यह सच न होता तो हमारे यहाँ न वीरेंद्र जैन का 'डूब' उपन्यास अस्तित्व में आता और न मराठी में विश्वास पाटील का 'झाड़ाझड़ती' उपन्यास। इन उपन्यासों के केंद्र में न केवल किसान जीवन तथा उसका विस्थापन बल्कि क्षत-विक्षतग्रस्त पर्यावरण भी है।

विकास के नाम पर विनाश को ओढ़ लेनेवाली नीति ने सबसे पहले पर्यावरण के साथ छेड़-छाड़ की। फलतः उसकी समय-समय पर कीमत भी चुकानी पड़ी। प्रेमचंद के 'रंगभूमि' के सूरदास ने अपनी जमीन अँग्रेज सरकार को इसलिए देने से कड़ा विरोध किया कि उस पर सिगरेट का कारखाना बननेवाला था। पर्यावरण खतरे में आनेवाला था। इसी जमीन पर गाँववालों के जानवर चरते और गाँव के बच्चों को उनसे दूध मिलता था। प्रेमचंद विकास-विरोधी नहीं, ह्रास विरोधी थे। यह ह्रास पर्यावरण और उदयोन्मुख नई पीढ़ी का था। 'रंगभूमि' का सूरदास अपनी जमीन सरकार को कारखाने के निर्माण के लिए देने के खिलाफ था। इसके मूल में व्यसनमुक्ति, सामाजिक दायित्व और पर्यावरण-रक्षण की चेतना माननी पड़ेगी। विकास के प्रतीक रूप में बनाए गए मार्केट से सुविधाएँ तो मिल गईं, लेकिन इससे पर्यावरण का कितना विनाश हुआ इसे 'सरोवर गाथा' उपन्यास में इन शब्दों में देख सकते हैं—'आज जहाँ अनाज का मार्केट बन गया है—ग्रेन मार्केट है। सारे पेड़ बेरहमी से काट डाले गए। लाखों पंछी बसेरे के अभाव में, मरकर सड़कों पर बिछ गए। उन्हें फावड़ों से साफ किया गया। क्या बिना पेड़ों को काटे काम चल नहीं सकता था?'[2] यह एक दुर्धर प्रश्न है। ऐसा नहीं कि इस प्रश्न का हमारे समाज के पास कोई उत्तर नहीं बल्कि यह सुविधाभोगी समाज जानते हुए भी उत्तर देना नहीं चाहता। हिंदी उपन्यासकारों ने पर्यावरण-संबंधी इस कटु यथार्थ को संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

2. सांप्रदायिकता, सत्ता और व्यवस्था से पर्यावरण संकट में

पर्यावरण के सम्मुख कहीं-कहीं सांप्रदायिकता, सत्ता और व्यवस्था के कारण भी संकट खड़ा होता है। इनकी वजह से पर्यावरण की दुर्दशा होती है। विद्यासागर नौटियाल ने 'झुंड से बिछुड़ा' उपन्यास'[3] में जहाँ एक ओर पर्वतीय जनजीवन की त्रासदी को रेखांकित किया है, वहीं

पर्यावरण की समस्या तथा उसकी दयनीय दशा को भी। इसमें गढ़वाल के ग्रामीणों का जीवन-संघर्ष है, सत्ता और नौकरशाही से आतंकित जनजीवन है और क्षतिग्रस्त पर्यावरण। अत: लेखक ने इसमें पहाड़ी ग्रामीण जनजीवन के समानांतर पर्यावरण के क्षरण को भी अनायास रेखांकित किया है। यह स्पष्ट होने में देर नहीं लगती कि यहाँ सामान्य जनजीवन तथा ग्रामीण जनजीवन के साथ-साथ पर्यावरण भी प्रताड़ित है, व्यवस्था, सत्ता और नौकरशाही से।

संजीव के 'धार' उपन्यास में चित्रित आदिवासी तथा श्रमिक भी कोयला माफिया, ठेकेदार और पुलिस द्वारा शोषण का शिकार हैं। ठेकेदार महेंद्रबाबू का आदिवासी की जमीन दान में पाकर उस पर तेजाब की फैक्टरी बनाना और उससे आसपास के कुएँ तथा तालाब का पानी जहरीला होना पर्यावरण के लिए विनाशकारी सिद्ध होता है। 'लेखक संजीव की यही सामाजिक और पर्यावरण-संवेदना आगे चलकर उनके उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में देखने को मिलती है।'[4] इसमें चंपारण की थारु जनजाति का जमीनदार, पुलिस तथा नेता द्वारा हुआ शोषण तो है ही, किंतु पश्चिमी चंपारण के संकटग्रस्त जंगल के प्राकृतिक सौंदर्य और पर्यावरण की चिंता भी है। हिंदी उपन्यासों में इसका यथार्थ अंकन देखने को मिलता है।

'काला पहाड़' उपन्यास में चित्रित मेवात की धरती पर एक ओर सांप्रदायिकता की समस्या है तो दूसरी ओर पर्यावरण की। प्रकृति के प्रकोप से पूरे मेवातवासियों की आँखें पानी के लिए तरस रही हैं। बरसात के न होने से होनेवाला नुकसान बरसात के अधिक होने से ज्यादा होता है। 'काला पहाड़' के मेवातवासी सब चाहते हैं कि 'काले पहाड़ से उतरा यह पानी हर बरस आए, क्योंकि विनाश की बजाय यह वरदान ही साबित होता है...पिछले आठ-नौ बरस से पूरे मेवात की आँखें जोहड़ों के किनारे हट मारते पानी के लिए तरसने लगी हैं।'[5] इन दिनों पर्यावरण के साथ किए गए छेड़-छाड़ के परिणामस्वरूप ही मौसम ने मिजाज बदला है। 'सारे मौसम एक जैसे हो गए हैं। अब न तो जाड़ों में जाड़ों जैसी ठंड पड़ती है और न ही गर्मियों में गर्मी।'[6] पर्यावरण को क्षति पहुँचाने का नतीजा दिनों-दिन तीव्रता से भुगतना पड़ रहा है। 'काला पहाड़' में इसकी उग्रता इन शब्दों में देख सकते हैं-'यह आठवाँ बरस है। पिछले सात बरसों की तरह इस बार भी साढ़-सावन में मेह झड़ के नहीं बरसा। बीच-बीच में पाँच-सात बार थोड़ी-बहुत बूँदें टपकाकर ऊपरवाला फिर कई दिनों तक चुप लगा जाता। उसके इस तरह चुप बैठ जाने का परिणाम यह होने लगा कि ज्वार, बाजरा और ग्वार की जो पौध जमीन को फोड़कर थोड़ी-बहुत बाहर निकल आती, वह भी चटक धूप से झुलसकर पीली पड़ जाती...खत्म हो जाती।'[7]

मेवात की धरती में सांप्रदायिकता के चलते गाँव के सामान्य लोगों में पुलिस का भय होता है और पकड़े जाने का डर। अत: वे काला पहाड़ में छिप जाते हैं। काला पहाड़ मानो उनके लिए सुरक्षा-कवच बन गया है। ऐसे काले पहाड़ को भी क्षति ही नहीं पहुँची बल्कि उसका अस्तित्व भी खतरे में आया, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण खतरे में आया। 'जब तक इसका हल नहीं किया जा सकता तब तक आम आदमी को आतंक से बचाने के लिए काले पहाड़ का ही आश्रय लेना पड़ेगा।'[8] कहना गलत नहीं कि हमारे समाज और राष्ट्र में व्याप्त सांप्रदायिकता से भी पर्यावरण संकट में आता है। इससे पर्यावरण का खतरा बढ़ता है।

3. पर्यावरण-रक्षण में श्रेयवादी प्रबंधन

इसमें दो राय नहीं कि विगत कुछ वर्षों में हमारे देश में पर्यावरण-रक्षण के प्रति चेतना

जागृति का अच्छा-खासा माहौल बाना। जनसामान्य, विशेषत: विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ने-पढ़ानेवाले अध्यापकों तथा छात्रों ने पर्यावरण-रक्षण के लिए उल्लेखनीय कार्य करने में अपनी जिंदगी का कीमती समय देकर विशेष योगदान करना शुरू किया। तब जाकर आज देशभर में पर्यावरणानुकूल माहौल मिलने लगा है। पर्यावरण-रक्षण के क्षेत्र में स्वस्थ माहौल दिखाई देने लगा है। लेकिन दुर्भाग्यवश इसका श्रेय नेता एवं बड़े पदासीन सरकारी अधिकारी हथिया रहे हैं। जहाँ कचरा नहीं होता या कम होता है, वहाँ झाड़ू हाथ में ले सफाई कराते नेताओं का अच्छा-खासा 'फोटो सेशन' होता है, टी॰वी॰ चैनलों पर दिखाने तथा अखबारों में छपाने के लिए। 'सरोवर गाथा' उपन्यास में डॉ॰ किशोरीलाल व्यास 'नीलकंठ' ने इसका सही-सही चित्रण किया है। इस उपन्यास के अध्यापक श्रीधर और प्रभाकर आदि प्रदूषित सरुनगर सरोवर को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाने के लिए जी-तोड़ मेहनत और संघर्ष करते हैं तथा उसमें कामयाब भी होते हैं। लेकिन जब सरोवर स्वच्छ होने की खुशी में उत्सव आयोजित किया जाता है, तब श्रेय लेनेवालों का एक विशिष्ट वर्ग सक्रिय हो जाता है। उपन्यास के प्रभाकर का अपने साथी श्रीधर के प्रति यह कथन देखिए—'प्रभाकर ने बताया कि इस मंच पर अभी स्थानीय नेता भाषण करेंगे। जिलाधीश, एम॰एल॰ए॰ आदि आएँगे। हुडा के अधिकारी बताएँगे कि किस तरह उन्होंने इस सरोवर को संरक्षित किया। किस तरह शहर के अन्य सरोवरों को संरक्षित करने जा रहे हैं आदि-आदि। हजारों करारपत्र (पेंपलेट) बाँटे गए, न उसमें कहीं आपका नाम है, न हमारा। न प्रकृति का उल्लेख है, न मछुआरों का।'[9] कहना होगा कि वर्तमानकाल में पर्यावरण-रक्षण के क्षेत्र में अब श्रेयवाद का प्रबंधन अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है। इसे पर्यावरण-क्षेत्र का सबसे बड़ा प्रदूषण कहना होगा।

4. **सुविधाभोगी मध्यवर्ग की संवेदनहीनता**

अब देश में एक ऐसा समाज विकसित हो रहा है, जिसे सुविधाएँ तो ढेर सारी चाहिए, लेकिन उसमें पर्यावरण के प्रति न दायित्व-बोध है और न संवेदनशीलता। यही वह समाज है, जिसे मध्यवर्ग, विशेषत: सुविधाभोगी मध्यवर्ग कहा जाता है। इसे अपने आसपास के परिवेश से ज्यादा अपने व्यक्तिगत साधन-सुविधाओं की चिंता होती है। अपना स्कूटर, अपनी कार, अपने बीवी-बच्चे, अपना घर परिवार, बस यही है उसकी दुनिया, यही है उसका संसार। पर्यावरण की चेतना उसकी जीवनशैली का कभी भी अंग नहीं बन सकी। अपने आसपास कोई कूड़ा कर्कट फेंके, पेड़ काटे, चाहे किसी की इज्जत लूटे, उसे इससे कोई लेना-देना नहीं होता। उसकी इस संवेदनहीनता को 'सरोवर गाथा' उपन्यास के श्रीधर ने इन शब्दों में रेखांकित किया है—'अब युनिवर्सिटी में ही देखो—हजारों लोग स्कूटर पर, कारों में निकलते हैं—कभी किसी ने अपना वाहन रोककर किसी पेड़ काटते आदमी को रोका है? लोग अपनी बकरियों के लिए पेड़ काटकर ले जाते हैं लेकिन किसी में इतना कंसर्न नहीं कि दो क्षण अपना वाहन रोके और पेड़ काटनेवाले से पूछे कि भला वह क्यों काट रहा है? उनको रोके, कितने हैं ऐसे...ऐसी संवेदना कितनों में विकसित हुई है?'[10] इस प्रकार की संवेदनहीनता विशेषत: सरकारी कर्मचारियों में बढ़ती जा रही है। 'सरोवर गाथा' के श्रीधर की उक्त मान्यता सोचने के लिए बाध्य करती है।

नागरिकों में भी संवेदनहीनता बढ़ती जा रही है। पर्यावरण-संबंधी संवेदनहीनता का एक और प्रमाण द्रष्टव्य है—'किसके बाप का है हिंदुस्तान? कोई रास्ते के बीचों बीच खड्डे करे, पेड़ काटे, पाइप के लिए रोड काटे, हमें क्या? ऐसी मनोवृत्ति है हमारे नागरिकों की...इस देश में एक

बात मैंने सामान्य देखी...हमें क्या? अधिकारी करेंगे। सरकारें भी करेंगी। घर के सामने पड़ा हुआ कचरा तक नहीं उठाते।'[11] सुविधाभोगी मध्यवर्गीय नागरिकों की यह संवेदनशून्य मनोदशा भी पर्यावरण को प्रदूषित करने में भूमिका निभा रही है।

5. बढ़ता बाजारवाद और वैश्वीकरण : मगर खतरे में पर्यावरण

यह सही है कि बाजरवाद एवं वैश्वीकरण ने सारी दुनिया को प्रभावित किया, किंतु इसके प्रभाव से पर्यावरण बच नहीं पाया। दिखावटी शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार व्यावसायिक संस्कृति का परिणाम है, जिसे बाजारवाद की देन कहना होगा। शिष्टाचार के नकाब के नीचे बाजारू मनोवृत्ति पनप रही है। भूमंडलीकरण के नाम पर भूमंडीकारण बढ़ता जा रहा है। 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास के जरिए कमलेश्वर ने इसी तथ्य को रेखांकित किया है। बाजारवाद और वैश्वीकरण के चलते पर्यावरण खतरे में आया है। 'वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप उस देश का सौदागर भी हिंसा, क्रूरता और बेरहमी का भक्त बना। जाहिर है कि हमारे यहाँ देश-विदेश से झीलों पर आनेवाले मुर्गाबी, पशु-पक्षी जयसिंह जैसों के प्लांट के कारण जिंदा रहनेवाले नहीं। जिस देश की सरकार ने प्राणियों के शिकार के लिए पाबंदी लगा दी, उस देश में ही पशु-पक्षी असुरक्षित हैं, गोलियों के शिकार बनने लिए अभिशप्त हैं।' इसके मूल में वैश्वीकरण का माहौल ही कहना पड़ेगा। उपन्यासकार ने समीरा के मुख से इस कटु सत्य का उदघाटन इन शब्दों में किया है–'इस ग्लोबलाइजेशन ने हमारा नजरिया ही बादल दिया है...अपनी खुशहाली और ऐशो-आराम के लिए दूसरे की मौत जरूरी है।'[12]

यह सच है कि जो मानवता की रक्षा नहीं कर सकता वह पर्यावरण की चिंता नहीं कर सकता। व्यापार एवं व्यवसाय ने आदमी को बाजारू बना दिया। इसी वजह से पर्यावरण खतरे में आया। 'अनबीता व्यतीत' में कमलेश्वर ने इस कड़वे सच को गौतम के माध्यम से स्पष्ट किया है। वह अपने चीफ रेड्डी साहब से कहता है–'लेकिन सर! बाजारवाद के अपने व्यापारिक नियम हैं। टूरिस्टों को आकर्षित करने और रिझाने के लिए ...हांगकांग के रेस्टोरेंट में ग्लास टेंक्स में तैरती जिंदा मछलियों, केकड़ों और लॉब्सटर्स को दिखाकर वे पूछते हैं कि इनमें से आप किस मछली, केकड़े या झींगे को पसंद करेंगे और चुनाव के बाद वहीं जिंदा मछली, केकड़ा या शाही झींगा आपकी प्लेट में पककर आ जाता है। सर! सोचिए...यह कितना अमानवीय है...?'[13] पर्यावरण के अभिन्न अंग पशु-पंछियों के साथ ऐसा निर्मम व्यवहार एक ओर पर्यावरण को क्षति पहुँचा देता है तो दूसरी ओर मानवता को।

कोई पर्यावरण-प्रेमी जब घिनौने, अमानवीय व्यवसाय का विरोध करता है, तब उसकी हत्या भी हो जाती है। कमलेश्वर के 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास की समीरा अपने पति युवराज के व्यवसाय का विरोध करती है, यह कहते हुए कि 'अगर आप चाहते हैं कि मैं यहीं रहूँ–जिंदगीभर आपके पास और साथ रहूँ तो यह टेनरी का धंधा बंद करना पड़ेगा, आपको। विदेशों को आप जो डिब्बाबंद गोश्त, तरह-तरह के जिंदा-मुर्दा पशु-पक्षियों का एक्सपोर्ट, साँपों की चरबी और उनकी खालों वगैरह की सप्लाई करते हैं, वह सब आपको बंद कर देना पड़ेगा...।'[14] तब पति का व्यवसाय तो बंद नहीं होता बल्कि पति उसकी हत्या जरूर कर देता है, यह कहते हुए कि 'हमारे देश में इन कामों पर उँगली उठाई जाती है। विदेशों में तो इसे सिर्फ एक व्यवसाय माना जाता है और व्यवसाय कोई भी हो, उससे नफरत नहीं की जाती। मैं यूरोप और अमरिका के ऐसे कई लोगों

ISSN 0975-735X

को जानता हूँ, जिन्होंने इसी कारोबार से करोड़ों-अरबों डॉलर कमाए हैं और कमा रहे हैं।'[15] स्पष्ट है कि जहाँ पर्यावरण-प्रेमी की जान ली जाती है, वहाँ पर्यावरण की रक्षा या चिंता की कौन सोचेगा। अत: आज बाजारवाद और वैश्वीकरण के चलते पर्यावरण खतरे में है, इसे स्वीकारना होगा।

6. **वस्तुवादी और उपभोक्तावादी मानसिकता से पर्यावरण खतरे में**

पर्यावरण के सबसे ज्यादा संकट मानवनिर्मित हैं। मानव केवल सुविधाभोगी ही नहीं अपितु वस्तुवादी तथा उपभोक्तावादी बना है। इसका यह रूप ही पर्यावरण के ह्रास का कारण है। उसकी वस्तुवादी मनोदशा ने पर्यावरण के सम्मुख खतरे खड़े किए हैं। चाहे विद्युत विभाग के कर्मचारी हों, चाहे वैद्यक क्षेत्र के, उनकी उपभोक्तावादी जीवनदृष्टि ने निर्ममता का परिचय दिया है। इस संदर्भ में पर्यावरण-प्रेमी श्रीधर का यह कथन देखिए–'ये विद्युत विभाग के कर्मचारी तो अक्सर बड़े-बड़े पेड़ काट देते हैं–दो-चार दिन बाद सूखी लकड़ियाँ ले जाते हैं। है कोई पूछनेवाला?'[16]

इंसान का स्वार्थी होना, वस्तुवादी होना ही पर्यावरण का सबसे बड़ा खतरा है। सारे जंगल, पहाड़, तालाब, सागर और बाग आदि वस्तुवादी और उपभोक्तावादी मानसिकता के शिकार बन गए हैं। डॉ॰ किशोरीलाल व्यास 'नीलकंठ' की मान्यता सही है कि 'आज हम घोर स्वार्थी हो गए हैं। वस्तुवादी हो गए हैं। उपभोक्तावाद के सागर में तैर रहे हैं। जो मिला उसे बटोर रहे हैं। सब-कुछ नष्ट किए जा रहे हैं। हाय-तौबा मचा है। जंगल, सरोवर, बावड़ियाँ, उद्यान सब-कुछ हड़पते जा रहे हैं। हमारी लालसाओं की सुरसा सारी जन-उपयोगी वस्तुएँ निगलती जा रही है।...सरोवर नष्ट हुए...ताल तलैय्या समाप्त हुए। उनकी जगह बड़ी-बड़ी बेहरम गगनचुंबी बिल्डिंगें बन गईं।'[17] इसे उपभोगक्तावादी सभ्यता की देन कहना होगा।

'पिघलेगी बर्फ' उपन्यास में मूलत: एक ऐसे कथानायक को प्रस्तुत किया है, जो नियति के हाथों मजबूर होकर देश-विदेश की जमीन पर दुर्दशा का शिकार हो जाता है। लेकिन इसमें प्रकृति और पर्यावरण का जो अनायास चित्रण आया है, उससे लेखक की पर्यावरण-संवेदना को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसमें लाहौर के खूबसूरत बाजार से लेकर बर्मा और मलाया के जंगलों से होते हुए तिब्बत के बर्फीले मैदानों तक का पर्यावरण प्रस्तुत है, जिसे कहीं बाजारवादी मानसिकता का शिकार होना पड़ा, तो कहीं उपभोक्तावादी मानसिकता का। प्रकृति-प्रदत्त एवं पोषित पर्यावरण को दूषित बनाने का काम दुनिया के हर देश में हो रहा है, जिसके मूल में वस्तुवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति एवं मनोवृत्ति ही है। 'कालकथा' के चर्चित उपन्यासकार कामतानाथ द्वारा लिखित 'पिघलेगी बर्फ' में पर्यावरण' का चित्रण अनायास आया है किंतु इससे उनकी पर्यावरण-चेतना का परिचय मिले बिना नहीं रहता।[18]

जिनके कपड़ों की क्रीज तक दिनभर में बिगड़ती नहीं, वे आज 'एयर कंडिशंड एक्टिविस्ट' बन बैठे हैं। सरकारी सुविधाभोगी ये लोग मूलत: 'आइस्क्रिमी संस्कृति के आई॰ए॰एस॰ अफसर हैं। ये थोड़ी-सी धूप लगेगी तो पिघल जाएँगे। पब्लिक स्कूलों के, इन स्कूल और कैंब्रिज स्कूल जैसे विद्यालयों के प्राडक्ट हैं ये। इन लोगों ने कभी मिट्टी को छूकर नहीं देखा होगा। गुलमोहर और आम के पेड़ में ये लोग भेद नहीं कर सकते। केंचुए नहीं देखे होंगे इन्होंने कभी...स्विमिंग पूल में तैरनेवाले भला नदियों-तालाबों की बातें क्या करेंगे?'[19] कहना आवश्यक नहीं कि वस्तुवादी,

उपभोक्तावादी तथा विलासी मनोवृत्तियों ने पर्यावरण के सम्मुख खतरे खड़े किए हैं। लेकिन ऐसी मानसिकता से पर्यावरण का विनाश होता जा रहा है।

7. चिकित्सा-क्षेत्र से पर्यावरण की हानि

वस्तुत: पर्यावरण-प्रदूषण का सबसे ज्यादा असर स्वास्थ्य पर होता है। स्वास्थ्य का ध्यान वैद्यकशास्त्र की प्राथमिकता होती है, होनी चाहिए। लेकिन विडंबना है कि हमारे यहाँ वैद्यक क्षेत्र के धुरीन ही पर्यावरण का ध्यान नहीं रखते। पर्यावरण को क्षति पहुँचाने में अब डॉक्टरी पेशा के लोग भी पीछे नहीं। सरूरनगर सरोवर की दीवार के किनारे जो डिस्पेंसरी है, उसके डॉक्टर को सिर्फ धन कमाने की पड़ी है। उसे सरोवर से कोई सरोकार नहीं होता। 'सरोवर गाथा' के डॉक्टर के बारे में पर्यावरणप्रेमी श्रीधर की मान्यता है—यह डॉक्टर निरा अर्थ पशु है। सुबह से शाम तक पैसे की हाय लगी रहती है। पैसा...पैसा और खिड़की से मेडिकल वेस्ट तालाब में इतनी मात्रा में डालता है कि वहाँ कचरे का एक बड़ा-सा ढेर हो गया है। उस कचरे से अजीब गंध चारों ओर व्याप्त हो रही है। मच्छर, मक्खियाँ और बीमारियों के कीटाणु चारों ओर फैल रहे हैं। रक्त और पीब सनी पट्टियाँ, सुइयाँ, दवा की बोतलें और न जाने क्या-क्या? वह डॉक्टर होकर सारे परिसर के पर्यावरण को बेतहाशा प्रदूषित कर रहा है।'[20]

विडंबना यह कि यह वही डॉक्टर है, जो अमरिका तथा सिंगापुर में रहकर आया है और जानता है कि वहाँ कचरा फेंकनेवाले को पाँच सौ डालर फाइन होता है, जेल तक होती है। फिर भी अपने डिस्पेंसरी की दीवार से लगे तालाब में ढेर सारा कूड़ा फेंक देता है। इसलिए कि लोग तालाब में कूड़ा डालते, गंदगी फैलाते हैं। पर्यावरण-संरक्षक और डॉक्टर के बीच का संवाद देखने लायक है। जैसे—

'मैं श्रीधर हूँ। हम लोग पर्यावरण-संरक्षण से संबंध रखते हैं।'

'वह तो मैं खिड़की से देख ही रहा था। यह फुर्सतवालों का काम है।'

'आपकी डिस्पेंसरी की दीवार से लगकर ही तालाब में कूड़े का ढेर लगा है।'

'तो मैं क्या करूँ? वह चिढ़कर बोला। मैं कोई सेनिटेशन इंस्पेक्टर तो नहीं। वाई शुड आई बादर?...'देखिए मिस्टर श्रीधर या जो भी हो...आप नए लगते हैं इस धंधे में...बहुत जल्द थक जाओगे। यहाँ कुछ भी होने का नहीं।...क्या करेंगे आप?'[21]

स्पष्ट है कि हमारे यहाँ अब पर्यावरण को हानि पहुँचाने में चिकित्सा-क्षेत्र ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी है। कोतवाल रखवाली करना छोड़ खुद डाका डालते हो तो हालत कैसे सुधरेगी?

8. निष्णात ग्लोबल देवता परंतु पर्यावरण के हंता

कौन नहीं जानता कि वर्तमानकाल 'ग्लोबलायजेशन' का काल है। अत: अब देवता भी ग्लोबल बनकर पहाड़ों, जंगलों के आदिम जनजातियों तथा पर्यावरण का हनन करते जा रहे हैं। इस कार्य में वे निष्णात होने का सबूत दे रहे हैं। 'ग्लोबल गाँव के देवता' रणेंद्र जी का वह उपन्यास है, जो मूलत: आदिवासी, वनवासी समाज की संस्कृति, प्रकृति और समस्या का उद्घाटन करता है, लेकिन इसमें स्पष्ट है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ पर्यावरण और प्रकृति के खिलाफ हैं। शासन एवं नेता आदिवासी समाज के हित की रक्षा करने की अपेक्षा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गोद में बैठे हैं। न मीडिया आदिवासियों का साथ देता है और न व्यवस्था। 'सरकार की हिंसा हिंसा न भवति'

 ISSN 0975-735X

जैसी उक्ति प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलती है। बॉक्साइट की खदाने खुदवाने से आदिवासी जीवन ही नहीं बल्कि पर्यावरण भी खतरे में आता है। कोयला खदानों से भी यही संकट गहराता है। गड्ढों से जंगल का पर्यावरण क्षत-विक्षत होता है। जब सामान्य जनता, आदिवासी विरोध में खड़े होते हैं तब 'ग्लोबल गाँव के देवता' के सामने अर्थात् बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सामने वे टिक नहीं पाते। क्योंकि न मीडिया उनका साथ देता है, न नेता और न ही व्यवस्था। ये सब ग्लोबल देवता के साथी बने हैं, जो सबसे ज्यादा ताकतवर है। यह नया देवता इतना ताकतवर है कि उसके सम्मुख सबके सब नतमस्तक हैं। शासकीय संस्था, नेता तथा व्यवस्था आदि की इस ग्लोबल देवता अर्थात बहुराष्ट्रीय कंपनियों से जो साँठ-गाँठ है, वह पर्यावरण और आदिवासी जीवन के संकट को बढ़ा देती है। झारखंड की भूमि पर घटित यह उपन्यास देश के विभिन्न प्रांतों के आदिवासी समाज और पहाड़ों, जंगलों आदि की पर्यावरण-विरूपता को प्रातिनिधिक रूप में प्रस्तुत करता है। बड़ी-बड़ी खुली खदानों के कारण विरूप और कुरूप होते जंगल और पहाड़ व्यवसाय के कारण पर्यावरण का दुर्दमनीय दोहन दिखा रहे हैं। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में 'जहाँ से बॉक्साइट निकाले जा चुके थे, वे भी मुँह-बाये पड़े थे। मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े धब्बे हों।'[22]

9. **कार्पोरेट सेक्टर और पर्यावरण बदतर**

कौन नहीं जानता कि कार्पोरेट कल्चर दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। कार्पोरेट सेक्टर की वजह से पर्यावरण बद से बदतर हो रहा है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास उस कार्पोरेट इंडिया को प्रस्तुत करता है, जो विडंबनाओं तथा धोखों से गुजर रहा है। उपन्यास के मूल में कार्पोरेट दुनिया का कटु यथार्थ प्रस्तुत है, जो यह दर्शाता है कि इंडिया के एकोनोमिक 'बूम' में देश की एक अरब जनता के पास खुशहाली के सपने हैं, लेकिन यहाँ तीस करोड़ लोग सड़क के कुत्तों जैसी जिंदगी जीते हैं।

के॰बी॰ शंकर अय्यर उस नस्ल के हैं, जिसके लिए कहावत बनी है 'साठा सो पाठा'। उम्र के साठ साल पार करने के बाद भी के॰वी॰ शंकर शहर में सबसे ज्यादा पैसा पानेवाले 'मार्केटिंग कंसल्टेंट' हैं। वे नौकरियों के लिए नहीं बल्कि नौकरियाँ उनके आस-पास चक्कर लगाती हैं। वे एक दिन भी बेरोजगार नहीं रहे। चेन्नई के पास के एक गाँव में पैदा हुए और तेरह वर्ष की उम्र में अपने बड़े भाई के पास दिल्ली आए। लेकिन एक दिन भी बेरोजगार नहीं रहे। आज उनकी मान्यता है कि 'अब नौकरी की दुनिया खरीददारों की मार्केट नहीं, बेचनेवालों की मार्केट है।'[23] उपन्यास के वी॰के॰ शंकर अय्यर मानते है कि 'दुनिया का शासन अब सरकारों के हाथ में नहीं कार्पोरेट कंपनियों के हाथ में है।'[24] लेकिन इन कार्पोरेट कंपनियों ने अपनी मार्केटिंग की खातिर पर्यावरण को क्षति पहुँचाई है और मूल्यों को भी। इससे प्रदूषण बढ़ता गया और धोखा-धड़ी का माहौल भी। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में कार्पोरेट इंडिया की हकीकतों, विडंबनाओं तथा धोखाधड़ी से युक्त सामाजिक और प्राकृतिक पर्यावरण प्रदूषण को बेबाकी से प्रस्तुत किया गया है।

10. **दोहरी चिंता और चेतना का उद्घाटन**

इक्कीसवीं सदी के अनेक उपन्यासों में दोहरी चिंता और चेतना का उद्घाटन मिलता है, जिनमें एक है—आदिवासी जनजातियों को लेकर और दूसरी है पर्यावरण को लेकर। इनमें विशेष उल्लेखनीय है—कामतानाथ का 'पिघलेगी बर्फ', डॉक्टर अरुणश्याम का 'मितवा', हरियश राय

का 'मुट्ठी में बादल', रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता', संजीव का 'रह गई दिशाएँ इसी पार', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' और अंजलि देशपांडे का 'महाअभियोग' आदि। इन सारे उपन्यासों में आदिवासी जीवन-संघर्ष के साथ-साथ पर्यावरण की समस्या को भी प्रस्तुत किया है। अनेक उपन्यासों में जनजातियों की और उतनी ही अधिक पर्यावरण की चिंता अंकित है, लेकिन अस्मिता और चेतना के साथ।

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में लेखिका महुआ माजी ने जिन तीन बातों को केंद्रीय कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया है, उनमें से एक है पर्यावरण प्रदूषण। शेष दो में है आदिवासियों का विकिरण और विस्थापन। लेकिन उपन्यास के केंद्र में है तो आदिवासी समाज ही। यही वह समाज है जो वर्तमान परिवेश से आए अपने जीवन-विस्थापन, बिखराव और पर्यावरण-प्रदूषण से जूझता हुआ दिखाई देता है। कृष्णा सोबती के अनुसार यह उपन्यास यानी 'हर चेतन नागरिक के लिए मानवीय चिंताओं की शैल्फ पर एक जरूरी टाइटल है।'[25] असल में जल, जंगल और जमीन आदिवासियों की असली अस्मिता के विषय हैं, यही चीजें उसकी साँस हैं। लेकिन बाजारवाद तथा वैश्वीकरण के चलते इन चीजों से आदिवासियों का निष्कासन उसकी दुर्दशा का कारण बनाता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में महुआ माजी ने आदिवासी जीवन-संघर्ष के अलावा यूरेनियम की खदानों से यूरेनियम पाने के लिए की गई प्रक्रिया का अंकन कर उसके जरिए पर्यावरण के संकट एवं प्रदूषण के प्रति संवेदना प्रकट की है। स्पष्ट है कि इसमें लेखिका की जन-चेतना के साथ-साथ पर्यावरण-चेतना दृष्टिगोचर होती है। इसमें एक ओर जनजातियों की दशा, दुर्दशा और संघर्ष प्रस्तुत है तो दूसरी ओर पर्यावरण की चिंता, चेतना एवं संवेदना। वशिष्ठ 'अनूप' के शब्दों में–

> बरस रहा है कई दिन से झमाझम पानी
> बढ़ा रहा है गरीबों के और गम पानी
> कहाँ गए वो मेरे गाँव, घर पड़ोसी अब
> तबाह कर गया हम सबको बेरहम पानी।[26]

उपर्युक्त सभी उपन्यासों में पर्यावरण की चिंता तथा चेतना का उद्घाटन हुआ है, फिर भले ही इनमें मात्रा कम-ज्यादा जरूर मिलती हो। कहना होगा कि इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यासकार पर्यावरण तथा प्रदूषण की समस्या को अपनी चिंता और चेतना का विषय बनाकर अपनी संवेदना का परिचय दे रहा है। इससे उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का बोध हो रहा है।

11. बढ़ती आबादी से पर्यावरण की बरबादी

पर्यावरण की बरबादी के अनेक कारणों में से एक है बढ़ती आबादी। हमारे देश में आबादी इतनी बढ़ गई कि मानव ने अपनी बस्ती के लिए जंगल, तालाब ही नहीं नदी और सागर पर भी आक्रमण शुरू किया। हर छोटा-मोटा शहर अब नगर-महानगर का रूप धारण करने लगा है। यहाँ मकान और मार्केट-निर्माण के लिए बागों की बलि दी जा रही है। तालाबों से तलाक लिया जा रहा है। नदी, नाले और सागर को सीमित किया जा रहा है। फलतः प्रकृति और पर्यावरण प्रदूषित हो रहे हैं। अब दिल्ली, मुंबई, कोलकत्ता और चेन्नई ही नहीं बल्कि आगरा, पुणे, लखनऊ, बनारस, कानपुर, नागरपुर, उज्जैन और अहमदाबाद जैसे अनेक शहर अब महानगर में तब्दील हुए और हो रहे हैं। मगर इसमें सबसे पहली कुर्बानी पर्यावरण की दी गई है। हैदराबाद इनमें एक है।

बागों-तालाबों के लिए मशहूर इस शहर की हालत बकौल डॉ॰ किशोरीलाल व्यास 'नीलकंठ'– 'हैदराबाद शहर अपनी खुशनुमा हवाओं के लिए इतिहास प्रसिद्ध है। यह शहर 'बागों का शहर', 'सरोवर का शहर' कहलाता है। इस शहर की परिधि में 200 उद्यान थे, 532 सरोवर थे। नीले-जल से पूरित-खुशनुमा सरोवर चारों ओर फैले हुए। धीरे-धीरे शहरीकरण की बेरहम प्रक्रिया प्रारंभ हुई। जमीन की कमी पड़ गई। गैरकानूनी रूप से बाग-बगीचे नष्ट किए गए, सरोवर पाट दिए गए। नीले खूबसूरत सरोवरों की जगह कंक्रीट की कालोनियों और गगनचुंबी भवनों ने ले ली। शहर में प्रदूषण बढ़ा, गर्मी बढ़ी और वातावरण में परिवर्तन आया।'[27]

यह तो एक मिसाल है, ऐसे अनेक शहर इस देश में हैं, जो पर्यावरण को निगल रहे हैं–नदियों, तालाबों, जंगलों आदि के जरिए। इन्हें बचाने और पर्यावरण की रक्षा के लिए हैदराबाद में कार्यरत 'प्रकृति' जैसी स्वयंसेवी संस्थाएँ आज हर गाँव-गली-मुहल्ले की जरूरत है, केवल नगर-महानगर की नहीं। बढ़ती आबादी से पर्यावरण की बरबादी को रोकना तभी संभव होगा।

21 वीं सदी के उपन्यासों का विवेचन करने के पश्चात् यह कहने में संकोच नहीं होता कि वर्तमान हिंदी उपन्यासकार पर्यावरण का प्रश्न पीड़ित परिदृश्य प्रस्तुत कर रहे हैं। उनके द्वारा पर्यावरण की क्षति का अंकन उनमें निहित सामयिक एवं सामाजिक बोध को दर्शाता है। इन उपन्यासों का परिप्रेक्ष्य चिंता ही नहीं बल्कि चेतना की भी पहल करता है। उसके प्रयोजन में एक ओर विकास के नाम पर हो रहे विनाश को रोकना है; जल, जंगल और जमीन के दोहन को रोकना है, प्रदूषण के संकट को रोकना है और स्वच्छ भारत अभियान में तहेदिल से झाँकना है तो दूसरी ओर उसमें झोंकना भी। इन उपन्यासों के अध्ययन से यह पहचानना अधिक आसान होता है कि पर्यावरण प्रदूषित क्यों है? यह जानना संभव होता है कि पर्यावरण के असली दुश्मन कौन हैं? पर्यावरण को अगर सबसे खूँखार खतरा है तो बढ़ती आबादी, चिकित्सा-क्षेत्र की लापरवाही, विकास की प्यास, संवेदनहीनता, सांप्रदायिकता, बाजारवाद, वैश्वीकरण और अधकचरा प्रबंधन आदि से वर्तमान उपन्यास साहित्य इस दयनीय दशा में परिवर्तन चाहता है। यहाँ का मीडिया और सत्तासीन भेड़िया अगर चाहे तो सब-कुछ बदल सकता है। सुविधाभोगी, वस्तुवादी और उपभोक्तावादी मानसिकता को तिलांजलि देना और तत्संबंधी प्रबोधन को आदरांजलि देना ही पर्यावरण की रक्षा का सही समाधान कहना होगा। यदि ऐसा होगा तो इसे इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की उपलब्धि मानना पड़ेगा।

संदर्भ

1. नरेंद्र नगदेव, एक स्विच था भोपाल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2012
2. डॉ॰ किशोरीलाल व्यास, 'नीलकंठ' सरोवर गाथा, माहेश्वरी प्रकाशन, हैदराबाद, सं॰ 2012, पृ॰ 132
3. विद्यासागर नौटियाल, झुंड से बिछुड़ा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2005
4. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2000
5. भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 1999, पृ॰ 50
6. वही, पृ॰ 50
7. वही, पृ॰ 48
8. डॉ॰ अर्जुन चव्हाण, समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2008, पृ॰ 163

9. किशोरीलाल व्यास, 'नीलकंठ' सरोवर गाथा, माहेश्वरी प्रकाशन, हैदराबाद, सं॰ 2012, पृ॰ 140
10. वही, पृ॰ 17
11. वही, पृ॰ 17
12. कमलेश्वर, अनबीता व्यतीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पंचम संस्करण 2008, पृ॰ 130
13. वही, पृ॰ 130-31
14. वही, पृ॰ 111
15. वही, पृ॰ 111
16. किशोरीलाल व्यास, 'नीलकंठ' सरोवर गाथा, माहेश्वरी प्रकाशन, हैदराबाद, सं॰ 2012, पृ॰ 17
17. वही, पृ॰ 17
18. कामतानाथ, पिघलेगी बर्फ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2006
19. किशोरीलाल व्यास, 'नीलकंठ' सरोवर गाथा, माहेश्वरी प्रकाशन, हैदराबाद, सं॰ 2012, पृ॰ 16
20. वही, पृ॰ 13
21. वही, पृ॰ 12
22. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, googlesearchengine http://pustak.org/index.php/books/bookdetails/7493
23. अलका सारावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 2010 googlesearchengine http://pustak.org/index.php/books/bookdetails/6092
24. वही
25. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2012, मुखपृष्ठ से उद्धृत
26. वशिष्ठ 'अनूप', बंजारे नयन, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं॰ 2000, पृ॰ 92
27. किशोरीलाल व्यास, 'नीलकंठ' सरोवर गाथा, माहेश्वरी प्रकाशन, हैदराबाद, सं॰ 2012, भूमिका पृ॰ 07

आओ हिंदी-हिंदी खेलें

डॉ॰ एम॰एल॰ गुप्ता 'आदित्य'

विश्व में जितनी संस्थाएँ हिंदी की सेवा के लिए बनी हुई हैं, उतनी संस्थाएँ किसी अन्य भाषा के लिए नहीं हैं। जितने संवैधानिक प्रावधान, अधिनियम, नियम आदि और संसदीय समिति सहित तरह-तरह की समितियाँ, संगठन और हिंदी के विकास व प्रसार के लिए संघ सरकार और विभिन्न राज्यों में भाषा के लिए पूरे विभाग, देश के विभिन्न राज्यों में हिंदी की अकादमियाँ, भाषा के लिए इतना बड़ा ढाँचा विश्व में शायद कहीं नहीं। संघ सरकार के स्तर पर, राज्य सरकारों और उनके विभिन्न संस्थानों आदि द्वारा जितने कार्यक्रम, प्रतियोगिताएँ, परिचर्चाएँ, संगोष्ठियाँ, सम्मेलन, बैठकें और नृत्य, गीत-संगीत के कार्यक्रम आदि हिंदी के लिए होते हैं, विश्व में कहीं नहीं।

लेकिन दूसरी तरफ इन सबके बावजूद आज भी देश में थोड़ा बहुत हिंदी का इस्तेमाल भले ही होता हो, लेकिन अधिकांश कार्य अँग्रेजी में ही होता है। स्वतंत्रता के समय देश के 99% से भी अधिक लोग मातृभाषा में ही पढ़ते थे। लेकिन अब छोटे-छोटे गाँवों तक अँग्रेजी माध्यम पसर चुका है। हिंदी को देश-विदेश में फैलाने वाली हिंदी फिल्में और धारावाहिक आदि भी अब हिंदी के चलते-फिरते जीवित शब्दों के स्थान पर जमकर अँग्रेजी के शब्दों को स्थापित कर रहे हैं। यही नहीं अब तो अनेक समाचारपत्र, पत्रिकाएँ और चैनल आदि भी देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि का प्रयोग भी करने लगे हैं। स्कूलों में हिंदी के विद्यार्थी तेजी से घटते जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश जैसे हिंदी राज्य में भी हिंदी में अनुत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत बड़ी है। विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की कमी के चलते हिंदी विभाग बंद हो रहे हैं या विद्यार्थी जुटाने का दायित्व भी प्राध्यापकों के सिर आ पड़ा है। विदेशों में भी अनेक विश्वविद्यालयों में अब हिंदी विभाग बंद किए जा रहे हैं।

हिंदी साहित्य के नाम पर अब अधिकांश विधाएँ अब लुप्त होती जा रही हैं। अगर मोटे तौर पर देखें तो हिंदी साहित्य के नाम पर अधिकांशत: कविता, कविता के नाम पर अधिकांशत: हास्य कविता और हास्य कविता के नाम पर अधिकांशत: सोशल मीडिया पर चलने वाले चुटकुले और हास-परिहास। हिंदी की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ बंद हो चुकी हैं या बंद होने के कगार पर हैं। अँग्रेजी माध्यम के चलते हिंदी समाचारपत्रों की दशा भी कोई बहुत अच्छी नहीं है। हिंदीभाषियों के घरों से हिंदी समाचारपत्र और पत्रिकाएँ लुप्त होती जा रही हैं। हर तरफ चल रहा है हिंदी का खेल और हर मोर्चे पर हिंदी हो रही है फेल।

इस संबंध में कुछ बिंदुओं पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

* भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को संघ की राजभाषा (संघ की अधिकृत भाषा) का स्थान दिए जाने के बावजूद क्या संविधान, अधिनियम, नियम आदि की दृष्टि से अँग्रेजी के पास भारत की राजभाषा यानी अधिकृत भाषा के रूप में हिंदी से कम अधिकार है या अधिक?

* वह कौनसी भाषा है जो संघ में भी मान्य है और सभी राज्यों में भी?

* वे कौन-कौनसे अधिकार हैं जो हिंदी के पास तो हैं, लेकिन अँग्रेजी के पास नहीं?

* उच्च शिक्षा, रोजगार और संपन्नता से जुड़े सभी संसाधनों की ढलान अँग्रेजी की तरफ है या हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की तरफ?

* देश के विभिन्न कानूनों के अंतर्गत में कौन-कौनसे कार्य हैं, जो केवल हिंदी में ही किए जा सकते हैं?

* भारत की वह कौनसी भाषा है, जो संघ सरकार और राज्य सरकारों कंपनियों, संगठनों व अन्य संस्थाओं आदि द्वारा पूरे देश की जनता के साथ पत्राचार सहित सभी उद्देश्यों के लिए अधिकृत पत्राचार के लिए प्रयोग में लाए जाने के लिए अधिकृत है?

* वह कौनसी भाषा है, जिसके माध्यम से न्यायपालिका के निचले स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक न्याय प्राप्त किया जा सकता है?

* क्या संघ की राजभाषा अथवा राज्यों में राज्यों की राजभाषा के माध्यम से न्यायपालिका के निचले स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक न्याय प्राप्त किया जा सकता है?

* आपके घर में प्रतिदिन जो सामान आता है, उसमें ग्राहक कानूनों के अंतर्गत जो जानकारी दी जाती है, वह प्रायः किस भाषा में होती है, क्या वह हमारी भाषा में देना आवश्यक है? क्या किसी को दिखता नहीं कि कानूनन हमें दी जानेवाली जानकारी भी हमें हमारी भाषाओं में नहीं मिलती?

* आपका सरकारी और निजी क्षेत्र के बैंकों और बीमा कंपनियों आदि में जाना होता ही होगा? वहाँ कौनसी ऐसी भाषा है, जो आपको हर जगह मिलेगी? और कौनसी वह भाषा है, जो कहीं मिलेगी, कहीं नहीं मिलेगी या ढूँढने और माँगने पर मिलेगी? कितने लोगों को आज तक अपनी पासबुक हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषाओं में मिली है?

* हिंदीभाषी क्षेत्रों में भी हिंदी माध्यम के और अन्य राज्यों में मातृभाषा के कितने प्रतिशत स्कूल खुले हैं? देश में जितने भी हिंदी या भारतीय भाषाप्रेमी हैं, वे वर्तमान परिस्थितियों को देखकर कितने लोग अपने बच्चों या नाती पोतों को हिंदी अथवा किसी भारतीय भाषा माध्यम में पढ़ाने की सोच पाते हैं?

किसी को मिला ताज, किसी को मिला राज

मैंने तो केवल कुछ बिंदुओं की तरह ही ध्यान आकर्षित किया है। ऐसे अनेक बिंदु गिनवाए जा सकते हैं, लेकिन अब आप पलटकर देखिए कि हिंदी को लेकर प्रतिवर्ष होनेवाली हजारों वार्ताओं, सम्मेलनों, संगोष्ठियों, बैठकों, संवादों आदि से क्या उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन आ रहा है? संविधान लागू होने से अब तक जो परिवर्तन आया है या आ रहा है, वह हिंदी के पक्ष में जा रहा है या अँग्रेजी के पक्ष में जा रहा है?

जितने कथित प्रयास अब तक किए गए हैं, इससे तो अब तक देश में हिंदी का समुद्र भर गया होता। कहीं कोई दूसरी भाषा दिखती ही नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे प्रयास कुछ ऐसे हैं जैसे कि हम छलनी में पानी भर रहे हों। देश में हिंदी के नाम पर जो कानूनी ढाँचा है, उसमें इतने छेद हैं कि आप पानी भरते जाइए, लगे रहिए और थोड़ी देर बाद छलनी जैसी थी, वैसी ही खाली की खाली।

यदि आपके घर के बाहर सड़क बनवाई गई, उसका ढलान इंजीनियर ने मिस्त्री से उधर नहीं करवाया जहाँ सब चाहते थे, समझा दिया सब ठीक हो जाएगा। तो क्या होगा? आप कितना भी परिश्रम करें, पानी को दूसरी तरफ ले जाएँ, पानी पलक झपकते ही वापस उधर की तरफ जाने लगेगा, जिस तरफ ढलान है।

कहीं ऐसा तो नहीं कि संसाधनों की ढलान हिंदी अथवा भारतीय भाषाओं के पक्ष में नहीं बल्कि अँग्रेजी की तरफ ही बनी या बनाई गई। शायद इंजीनियर या ठेकेदार ने अनजाने में नहीं जान-बूझकर ऐसा किया। अब पानी भरते ही आप लग जाते हैं उसे निकालने में। अगले दिन फिर वही हालत, वही कवायद। आप भी थक चुके हैं। अगर उस ढलान को ठीक नहीं करेंगे तो हम कितने भी प्रयास कर लें, प्रतिदिन लाखों संगोष्ठियाँ कर लें, लाखों लोगों को समझा लें, अंततः पानी ढलान की तरफ ही जाएगा। जहाँ उच्चशिक्षा, रोजगार, संपन्नता, सुविधा और न्याय आदि की सब व्यवस्थाएँ होंगी, सामाजिक प्रतिष्ठा मिलेगी। चाहे-अनचाहे सबको वहीं जाना पड़ेगा, सब वहीं जा रहे हैं। हो सकता है, कुछ लोग कुछ अपवाद बता दें, लेकिन अपवादों से तो सिद्धांत नहीं बदलते। एक बार एक ऐसे ही व्याख्यान के बाद एक बुजुर्ग खड़े हुए और उन्होंने छाती ठोककर कहा—मैंने तो अपने बच्चों को हिंदी माध्यम में पढ़वाया है। मैंने पूछा और अब आपके पोते-पोती किस माध्यम में पढ़ रहे हैं? तब अचानक उनका जोश ठंडा पड़ गया और वे मुस्कुराने लगे। गलती उनकी नहीं है, धीरे-धीरे ढलान और गहरी की गई है, अँग्रेजी की ओर।

मैं प्रतिदिन हिंदी के विकास व प्रचार-प्रसार और प्रयोग बढ़ाने को लेकर होनेवाले तमाम प्रयासों को देखता हूँ। अनेक संवादों में भाग लेता हूँ। इनमें से 90% संस्थाएँ तो केवल कहानी, कविता में ही लगी हुई हैं। हिंदी के नाम पर बनी तमाम अकादमियाँ भी कहानी-कविता में ही व्यस्त हैं। भाषा बचे न बचे, जब तक जितनी बची है अपना काम तो चल ही रहा है और जो लोग तथा संस्थाएँ हिंदीभाषा के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं, उनमें से कुछ विदेशों में हिंदी को बढ़ाने में लगे हैं। जो प्रयास हो रहे हैं उनमें भी अक्सर इस प्रकार के सुझाव और कार्य देखने में आते हैं जैसे कि कोई पत्तों पर पानी छिड़कने की कोशिश कर रहा हो। जब तक आप वृक्षों की जड़ों में लगे रोग को दूर करने के उपाय नहीं करेंगे, अगर पानी की कमी है तो आप जड़ों को नहीं सींचेंगे तो क्या होगा? क्या केवल पत्तों पर कुछ बूँदें छिड़कने से वृक्षों की रक्षा हो सकेगी? जिस प्रकार के हिंदीसेवा के कथित प्रयास होते हैं, उनमें से ज्यादातर से तो यह लगता है कि हम इन प्रयासों के नाम पर हम अपनी रोटियाँ सेक रहे हैं। कोई नाम कमा रहा है, कोई धन कमा रहा है, कोई प्रतिष्ठा पा रहा है, कोई बड़ा पद पा रहा है। हिंदी के खेल में सबको बड़ा मजा आ रहा है। उसमें भी कोई कठिनाई नहीं, पर यह तो देखें कि हिंदी का जहाज कहाँ जा रहा है!

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के वृक्षों की जड़ें तो भारत की भूमि में हैं। यहीं से फलीभूत होकर कुछ टहनियाँ विदेशों में भी पहुँच गई हैं। क्या यह संभव है कि भारत में भारतीय भाषाओं का वृक्ष सूखता रहे और विदेशों में उसकी टहनियाँ, पत्तियाँ और फूल खिले रहें। अनेक लोगों ने भारतीय भाषाओं के लिए बहुत कुछ किया है और आज भी कर रहे हैं, लेकिन अनेक लोग हिंदी और भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाने के लिए जिस प्रकार के प्रयास करते दिखाई देते हैं, उनमें प्रायः जड़ों के उपचार का कोई ठोस कार्य या विचार मुझे नहीं दिखता।

अगर हमें अपने प्रयासों का मूल्यांकन करना है तो किस रूप में करें कि हमारे प्रयासों से

वह कौनसा बड़ा परिवर्तन हुआ, जिससे कि अब अँग्रेजी के बजाय कोई काम हिंदी में होने लगेगा। छलनी के वे छेद, जिनसे परिश्रम का सारा पानी निकल जाता था, क्या वे भरे गए? आप मुझे निराशावादी कह सकते हैं? क्षमा कीजिए, मुझे तो नहीं दिखता। हमारी पीढ़ी और हमसे पहले वाली पीढ़ी में मातृभाषाओं और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदीप्रेमियों की बहुत बड़ी संख्या होती थी। एक बड़ा जनसमुदाय अपनी भाषा के लिए खड़ा होता था, अपनी भाषा की माँग करता था। लेकिन शिक्षा और रोजगार की नीति में जिस प्रकार के परिवर्तन हुए उसके चलते अब हिंदीप्रेमियों के घरों में भी अँग्रेजी के सेनानियों की फौज खड़ी हो चुकी है। अँग्रेजी माध्यम से निकली यह अँग्रेजी की इतनी बड़ी सेना व्यवस्था के हर हिस्से में अपनी गहरी पैठ बना चुकी है। अब आगे कौन लड़ेगा, कौन खड़ा होगा, अपनी भाषाओं के लिए!

आज किसी बैंक, कंपनी या कार्यालय में कोई सुविधा हिंदी या भारतीय भाषाओं में दे भी दें तो उससे क्या बदलेगा? कुछ दिनों बाद फिर केवल अँग्रेजी हो जाएगी। अँग्रेजी माध्यम की शिक्षा से माँग अँग्रेजी की पैदा होगी या हिंदी की? अगर आपने हिंदी की माँग की भी तो आप उपहास का पात्र बनकर रह जाएँगे। नक्कारखाने में आपकी आवाज तूती बनकर रह जाएगी।

याद कीजिए एक हिंदी विश्वविद्यालय बनाया गया। इसलिए बनाया गया कि वहाँ हिंदी के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा दी जाए। बिना किसी डोनेशन के अच्छे पाठ्यक्रमों में दाखिला मिलने पर भी उसे कितनी सफलता मिली, हम जानते हैं। वे लाखों विद्यालय जो कल तक हिंदी माध्यम के या मातृभाषा माध्यम के विद्यालय थे, अब वे भी अँग्रेजी माध्यम में बदल चुके हैं। आप तमाम नौकरियाँ देंगे अँग्रेजी से, उच्चशिक्षा देंगे अँग्रेजी से और बात करेंगे मातृभाषा की? क्या यह विरोधाभास नहीं ?

आपको याद है न कश्मीर में शांति लाने के लिए क्या-क्या नहीं किया गया। शांति के लिए कैसे-कैसे प्रयास नहीं किए गए। कश्मीरी युवाओं को देशभर में घुमाया जाता था। आतंकियों को भी नौकरी और धन देकर समझाया जाता था। मुख्यधारा में लाने के लिए तमाम नाटक-नौटंकी, सद्भाव के लिए अनेक धारावाहिक और फिल्में भी बनीं। लेकिन कुछ बदला क्या? उस सबके बावजूद लाखों हिंदुओं, सिक्खों आदि को कत्लेआम बलात्कार आदि के माध्यम से वहाँ से बाहर कर दिया गया।

लेकिन जब सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 370 और 35ए में परिवर्तन किया और इसके अतिरिक्त अन्य नीतिगत निर्णय लिए तो सब छिपी बीमारियाँ सामने आने लगीं, समाधान सामने आने लगे और हालात नियंत्रण में आने लगे। यहाँ भी व्यवस्था बदलने से ही कुछ बदलेगा। केवल चर्चाओं-परिचर्चाओं, संगोष्ठियों और सम्मेलनों और छिटपुट प्रयासों से नहीं। कब तक ढलान के प्रतिकूल पानी को लाएँगे। कुछ माँगें पूरी होने से हमें खुशी तो होती है, लेकिन जैसे पत्तों पर पानी डालने से कुछ नहीं बदलता, थोड़ी-सी धूप में पत्तों का पानी उड़ जाएगा। आखिर तो जड़ों का पानी ही काम आएगा।

मुझे ऐसा लगता है कि जब तक विधि व्यवस्था और इच्छाशक्ति के माध्यम से हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए मौजूद छिद्र बंद नहीं होंगे, सत्ता के मिस्त्री जब तक संसाधनों की ढलान ठीक नहीं करेंगे, भारतीय भाषाओं की जड़ों में लगे रोग का सही इलाज नहीं होगा, कुछ बदलेगा, मुझे तो नहीं लगता। अगर बदलेगा भी तो वह हिंदी या भारतीय भाषाओं के पक्ष में तो नहीं होगा।

ऐसे में भी हिंदी का यह खेल तो चलता रहेगा।

जिस प्रकार संविधान सभा से लेकर अब तक अंग धीरे-धीरे सावधानी से चतुराई से अँग्रेजी के लिए ढलान बनाई गई, वैसी ही हमें हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए प्रयास करने होंगे। नई शिक्षा नीति के अंतर्गत अब केवल प्राथमिक शिक्षा हिंदी में दिए जाने की नीति से कोई बड़ा परिवर्तन आएगा, ऐसा तो नहीं लगता, क्योंकि बाद में तो सबको अँग्रेजीदाँ बनना ही होगा। लेकिन अगर इतना भी हो तो भारतीय जनमानस रूपी महावृक्ष की जड़ों में कुछ बूँदें तो मातृभाषा की होंगी, कहीं बचपन के किसी कोने में कविताओं में मातृभाषा में कहीं कोयल तो कूकेगी। इससे हम कुछ तो भारतीय रह पाएँगे। क्षेत्रीय संस्कृति और देश-प्रेम को बचाने की आशा रख सकेंगे। लेकिन अब देखना यह है कि कितने राज्य अपनी मातृभाषा के माध्यम को स्वीकारेंगे और कितने ऐच्छिक बनाकर इसकी हवा निकाल देंगे। अगर यह चयन स्कूलों और अभिभावकों पर छोड़ दिया तो इसका हश्र क्या होगा, सबको पता है। देखिए क्या होता है। आइए तब तक हम सब मिलकर हिंदी-हिंदी खेलें।

ए-104, **चंद्रेश हाइट्स, जेसल पार्क**
भायंदर पूर्व, जिला ठाणे (महा॰) 401105
मो॰ 9869374603
vaishwikhindisammelan@gmail.com

प्रेमचंद का भाषा-चिंतन : सुझावों की नोटिस नहीं ली गई

प्रो॰ अमरनाथ
पूर्व प्रोफेसर और हिंदी विभागाध्यक्ष
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

आज भी प्रेमचंद सबसे ज्यादा पढ़े जानेवाले हिंदी के लेखकों में हैं। बड़े-बड़े विद्वानों के निजी पुस्तकालयों से लेकर रेलवे स्टेशनों के बुकस्टाल तक प्रेमचंद की किताबें मिल जाती हैं। प्रेमचंद की इस लोकप्रियता का एक कारण उनकी सहज-सरल भाषा है, किंतु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि जहाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों और शिक्षण-संस्थाओं की ओर से प्रेमचंद के साहित्य पर अनेक संगोष्ठियाँ आयोजित होती रहती हैं, वहीं उनके भाषा-चिंतन पर कहीं किसी संगोष्ठी के आयोजन की खबर सुनने में नहीं आती।

आज भी कहा जा सकता है कि इस देश की राष्ट्रभाषा के आदर्श रूप का सर्वोत्तम उदाहरण प्रेमचंद की भाषा है। प्रेमचंद का भाषा-चिंतन जितना तार्किक और पुष्ट है, उतना किसी भी भारतीय लेखक का नहीं है। 'साहित्य का उद्देश्य' नाम की उनकी पुस्तक में भाषा-केंद्रित उनके चार लेख संकलित हैं, जिनमें भाषा-संबंधी सारे सवालों के जवाब मिल जाते हैं। इन चारों लेखों के शीर्षक हैं–'राष्ट्रभाषा हिंदी और उसकी समस्याएँ', 'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार', 'हिंदी-उर्दू की एकता' तथा 'उर्दू, हिंदी और हिंदुस्तानी'।

'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार' शीर्षक निबंध वास्तव में बंबई में संपन्न राष्ट्रभाषा सम्मेलन में स्वगताध्यक्ष की हैसियत से 27 अक्टूबर 1934 को दिया गया उनका व्याख्यान है। इसमें वे लिखते हैं, 'समाज की बुनियाद भाषा है। भाषा के बगैर किसी समाज का खयाल भी नहीं किया जा सकता। किसी स्थान की जलवायु, उसके नदी और पहाड़, उसकी सर्दी और गर्मी और अन्य मौसमी हालातें, सब मिल-जुलकर वहाँ के जीवों में एक विशेष आत्मा का विकास करती हैं, जो प्राणियों की शक्ल-सूरत, व्यवहार, विचार और स्वभाव पर अपनी छाप लगा देती हैं और अपने को व्यक्त करने के लिए एक विशेष भाषा या बोली का निर्माण करती हैं। इस तरह हमारी भाषा का सीधा संबंध हमारी आत्मा से है...मनुष्य में मेल-मिलाप के जितने साधन हैं, उनमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का है। राजनीतिक, व्यापारिक या धार्मिक नाते जल्द या देर में कमजोर पड़ सकते हैं और अक्सर बदल जाते हैं। लेकिन भाषा का रिश्ता समय की, और दूसरी बिखरने वाली शक्तियों की परवाह नहीं करता और इस तरह से अमर हो जाता है।'[1]

पिछले कुछ वर्षों से बोली और भाषा के रिश्ते को लेकर बहुत वादविवाद चल रहा है। भोजपुरी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि कुछ हिंदी की बोलियाँ हिंदी-परिवार से अलग होकर संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने की माँग कर रही हैं। इस संबंध को लेकर प्रेमचंद लिखते हैं, 'जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जाता है, ये स्थानीय भाषाएँ किसी सूबे की भाषा में जा मिलती हैं और सूबे की भाषा एक सार्वदेशिक भाषा का अंग बन जाती है। हिंदी ही में

 ISSN 0975-735X

ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, अवधी, मैथिल, भोजपुरी आदि भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, लेकिन जैसे छोटी-छोटी धाराओं के मिल जाने से एक बड़ा दरिया बन जाता है, जिसमें मिलकर नदियाँ अपने को खो देती हैं, उसी तरह ये सभी प्रांतीय भाषाएँ हिंदी की मातहत हो गई हैं और आज उत्तर भारत का एक देहाती भी हिंदी समझता है और अवसर पड़ने पर बोलता है। लेकिन हमारे मुल्की फैलाव के साथ हमें एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ गई है, जो सारे हिंदुस्तान में समझी और बोली जाए, जिसे हम हिंदी या गुजराती या मराठी या उर्दू न कहकर हिंदुस्तानी भाषा कह सकें, जैसे हर एक अँग्रेज या जर्मन या फ्रांसीसी फ्रेंच या जर्मन या अँग्रेजी भाषा बोलता और समझता है। हम सूबे की भाषाओं के विरोधी नहीं हैं। आप उनमें जितनी उन्नति कर सकें, करें। लेकिन एक कौमी भाषा का मरकजी सहारा लिए बगैर एक राष्ट्र की जड़ कभी मजबूत नहीं हो सकती।'[2]

प्रेमचंद चिंता व्यक्त करते हैं, 'अँग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज्यादा अँग्रेजी भाषा का है। अँग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से तो आप बगावत करते हैं, लेकिन अँग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन में डाले हुए हैं। अँग्रेजी राज्य की जगह आप स्वराज्य चाहते हैं। उनके व्यापार की जगह अपना व्यापार चाहते हैं, लेकिन अँग्रेजी भाषा का सिक्का हमारे दिलों पर बैठ गया है। उसके बगैर हमारा पढ़ा-लिखा समाज अनाथ हो जाएगा।'[3]

प्रेमचंद अँग्रेजी जानने वालों और अँग्रेजी न जानने वालों के बीच स्तर-भेद का तार्किक विवेचन करते हुए कहते हैं, 'पुराने समय में आर्य और अनार्य का भेद था, आज अँग्रेजीदाँ और गैर-अँग्रेजीदाँ का भेद है। अँग्रेजीदाँ आर्य हैं। उसके हाथ में अपने स्वामियों की कृपादृष्टि की बदौलत कुछ अख्तियार हैं, रोब है, सम्मान है। गैर-अँग्रेजीदाँ अनार्य है और उसका काम केवल आर्यों की सेवा-टहल करना है और उसके भोग-विलास और भोजन के लिए सामग्री जुटाना है। यह आर्यवाद बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, दिन दूना रात चौगुना..। हिंदुस्तानी साहबों की अपनी विरादरी हो गई है, उनका रहन-सहन, चाल-ढाल, पहनावा, बर्ताव सब साधारण जनता से अलग है, साफ मालूम होता है कि यह कोई नई उपज है।'[4]

प्रेमचंद हमें आगाह करते हैं, 'जबान की गुलामी ही असली गुलामी है। ऐसे भी देश, संसार में हैं, जिन्होंने हुक्मराँ जाति की भाषा को अपना लिया। लेकिन उन जातियों के पास न अपनी तहजीब या सभ्यता थी और न अपना कोई इतिहास था, न अपनी कोई भाषा थी। वे उन बच्चों की तरह थे, जो थोड़े ही दिनों में अपनी मातृभाषा भूल जाते हैं और नई भाषा में बोलने लगते हैं। क्या हमारा शिक्षित भारत वैसा ही बालक है? ऐसा मानने की इच्छा नहीं होती, हालाँकि लक्षण सब वही हैं।'[5]

कौमी भाषा के स्वरूप पर प्रेमचंद ने बहुत गंभीरता के साथ और तर्क व उदाहरण देकर विचार किया है। वे कहते हैं, 'सवाल यह होता है कि जिस कौमी भाषा पर इतना जोर दिया जा रहा है, उसका रूप क्या है? हमें खेद है कि अभी तक उसकी कोई खास सूरत नहीं बना सके हैं, इसलिए कि जो लोग उसका रूप बना सकते थे, वे अँग्रेजी के पुजारी थे और हैं। मगर उसकी कसौटी यही है कि उसे ज्यादा से ज्यादा आदमी समझ सकें। हमारी कोई सूबेवाली भाषा इस कसौटी पर पूरी नहीं उतरती। सिर्फ हिंदुस्तानी उतरती है, क्योंकि मेरे ख्याल में हिंदी और उर्दू दोनों एक जबान हैं। क्रिया और कर्ता, फेल और फाइल जब एक हैं तो उनके एक होने में कोई संदेह

नहीं हो सकता। उर्दू वह हिंदुस्तानी जबान है, जिसमें फारसी-अरबी के लफ्ज ज्यादा हों, इसी तरह हिंदी वह हिंदुस्तानी है, जिसमें संस्कृत के शब्द ज्यादा हों। लेकिन जिस तरह अँग्रेजी में चाहे लैटिन या ग्रीक शब्द अधिक हों या ऐंग्लोसेक्सन, दोनों ही अँग्रेजी हैं, उसी भाँति हिंदुस्तानी भी अन्य भाषाओं के शब्दों में मिल जाने से कोई भिन्न भाषा नहीं हो जाती। साधारण बातचीत में तो हम हिंदुस्तानी का व्यवहार करते ही हैं।'[6]

प्रेमचंद ने उर्दू, हिंदी और हिंदुस्तानी, भाषा के तोनों रूपों का अलग-अलग उदाहरण दिया है। उनके द्वारा दिया गया हिंदुस्तानी का उदाहरण निम्न है–

'एक जमाना था, जब देहातों में चरखा और चक्की के बगैर कोई घर खाली न था। चक्की-चूल्हे से छुट्टी मिली, तो चरखे पर सूत कात लिया। औरतें चक्की पीसती थीं। इससे उनकी तंदुरुस्ती बहुत अच्छी रहती थी, उनके बच्चे मजबूत और जफाकश होते थे। मगर अब तो अँग्रेजी तहजीब और मुआशरत ने सिर्फ शहरों में ही नहीं, देहातों में भी काया पलट दी है। हाथ की चक्की के बजाय अब मशीन का पिसा हुआ आटा इस्तेमाल किया जाता है। गावों में चक्की न रही तो चक्की का गीत कौन गाए? जो बहुत गरीब हैं वे अब भी घर की चक्की का आटा इस्तेमाल करते हैं। चक्की पीसने का वक्त अमूमन रात का तीसरा पहर होता है। सरे-शाम ही से पीसने के लिए अनाज रख लिया जाता है और पिछले पहर से उठकर औरतें चक्की पीसने बैठ जाती हैं।'

उक्त उदाहरण देने के बाद प्रेमचंद लिखते हैं, 'इस पैराग्राफ को मैं हिंदुस्तानी का बहुत अच्छा नमूना समझता हूँ, जिसे समझने में किसी भी हिंदी समझने वाले आदमी को जरा भी मुश्किल न पड़ेगी।'[7]

किंतु प्रेमचंद अपने समय के यथार्थ को भली-भाँति समझते थे। उन्होंने लिखा है, 'एक तरफ हमारे मौलवी साहबान अरबी और फारसी के शब्द भरते जाते हैं, दूसरी ओर पंडितगण, संस्कृत और प्राकृत के शब्द ठूँस रहे हैं और दोनों भाषाएँ जनता से दूर होती जा रही हैं। हिंदुओं की खासी तादाद अभी तक उर्दू पढ़ती आ रही है, लेकिन उनकी तादाद दिन-प्रतिदिन घट रही है। मुसलमानों ने हिंदी से कोई सरोकार रखना छोड़ दिया। तो क्या यह तय समझ लिया जाय कि उत्तर भारत में उर्दू और हिंदी दो भाषाएँ अलग-अलग रहेंगी? उन्हें अपने-अपने ढंग पर, अपनी-अपनी संस्कृति के अनुसार बढ़ने दिया जाए। उनको मिलने की और इस तरह उन दोनों की प्रगति को रोकने की कोशिश न की जाए? या ऐसा संभव है कि दोनों भाषाओं को इतना समीप लाया जाए कि उनमें लिपि के सिवा कोई भेद न रहे। बहुमत पहले निश्चय की ओर है। हाँ, कुछ थोड़े से लोग ऐसे भी हैं, जिनका ख्याल है कि दोनों भाषाओं में एकता लाई जा सकती है और इस बढ़ते हुए फर्क को रोका जा सकता है। लेकिन उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज है। ये लोग हिंदी और उर्दू नामों का व्यवहार नहीं करते, क्योंकि दो नामों का व्यवहार उनके भेद को और मजबूत करता है। यह लोग दोनों को एक नाम से पुकारते हैं और वह हिंदुस्तानी है।'[8]

कहना न होगा, प्रेमचंद द्वारा प्रस्तावित हिंदुस्तानी को नकारकर और संस्कृतनिष्ठ हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाने के 70 साल बाद भी, प्रेमचंद द्वारा दिए गए उक्त उद्धरण में सिर्फ दो शब्द (जफाकश और मुआशरत) ऐसे हैं, जिनको लेकर हिंदी वालों की थोड़ी मुश्किल हो सकती है, किंतु भाषा की सरलता आज भी विमुग्ध करनेवाली है। प्रेमचंद और गांधीजी के सुझाव न मानकर हमने एक ही भाषा को हिंदी और उर्दू में बाँट दिया, उन्हें मजहब से जोड़ दिया और इस

 ISSN 0975-735X

तरह दुनिया की सबसे समृद्ध, बड़ी और ताकतवर हिंदी-जाति को धर्म के आधार पर दो हिस्सों में बाँटकर कमजोर कर दिया और उनके बीच सदा-सदा के लिए अलंघ्य और अटूट चौड़ी दीवार खड़ी कर दी।

हमने राजभाषा हिंदी और अपने साहित्य की भाषा को भी जिस संस्कृतनिष्ठता से बोझिल बना दिया है, उससे आगाह करते हुए प्रेमचंद ने उसी समय कहा था—

'हिंदी में एक फरीक ऐसा है, जो यह कहता है कि चूँकि हिंदुस्तान की सभी सूबेवाली भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं और उनमें संस्कृत के शब्द अधिक हैं इसलिए हिंदी में हमें अधिक से अधिक संस्कृत के शब्द लाने चाहिए, ताकि अन्य प्रांतों के लोग उसे आसानी से समझें। उर्दू की मिलावट करने से हिंदी का कोई फायदा नहीं। उन मित्रों को मैं यही जवाब देना चाहता हूँ कि ऐसा करने से दूसरे सूबों के लोग चाहे आपकी भाषा समझ लें, लेकिन खुद हिंदी बोलने वाले न समझेंगे। क्योंकि, साधारण हिंदी बोलने वाला आदमी शुद्ध संस्कृत शब्दों का जितना व्यवहार करता है, उससे कहीं ज्यादा फारसी शब्दों का। हम इस सत्य की ओर से आँखें नहीं बंद कर सकते और फिर इसकी जरूरत ही क्या है कि हम भाषा को पवित्रता की धुन में तोड़-मरोड़ डालें। यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ-न-कुछ अंतर होता है, लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा से मिलते-जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यही है कि वह बोलचाल की भाषा से मिले।'[9]

इस संबंध में महात्मा गांधी की प्रशंसा करते हुए प्रमचंद ने लिखा है, 'कितने खेद की बात है कि महात्मा गांधी के सिवा किसी भी दिमाग ने कौमी भाषा की जरूरत नहीं समझी और उस पर जोर नहीं दिया। यह काम कौमी सभाओं का है कि वह कौमी भाषा के प्रचार के लिए इनाम और तमगे दें, उसके लिए विद्यालय खोलें, पत्र निकालें और जनता में प्रोपेगैंडा करें। राष्ट्र के रूप में संघटित हुए बगैर हमारा दुनिया में ज़िंदा रहना मुश्किल है। यकीन के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता कि इस मंजिल पर पहुँचने की शाही सड़क कौन सी है। मगर दूसरी कौमों के साथ कौमी भाषा को देखकर सिद्ध होता है कि कौमियत के लिए लाजिमी चीजों में भाषा भी है और जिसे एक राष्ट्र बनना है उसे एक कौमी भाषा भी बनानी पड़ेगी।'[10]

प्रेमचंद ने लिपि के सवाल पर भी गंभीरता के साथ विचार किया है और साफ शब्दों में अपना मत व्यक्त किया है, 'प्रांतीय भाषाओं को हम प्रांतीय लिपियों में लिखते जाएँ, कोई एतराज नहीं, लेकिन हिंदुस्तानी भाषा के लिए एक लिपि रखना ही सुविधा की बात है, इसलिए नहीं कि हमें हिंदी लिपि से खास मोह है बल्कि इसलिए कि हिंदी लिपि का प्रचार बहुत ज्यादा है और उसके सीखने में भी किसी को दिक्कत नहीं हो सकती। लेकिन उर्दू लिपि हिंदी से बिलकुल जुदा है और जो लोग उर्दू लिपि के आदी हैं, उन्हें हिंदी लिपि का व्यवहार करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। अगर जबान एक हो जाए तो लिपि का भेद कोई महत्त्व नहीं रखता।'[11]

और अंत में निष्कर्ष देते हैं—'लिपि का फैसला समय करेगा। जो ज्यादा जानदार है वह आगे आएगी। दूसरी पीछे रह जाएगी। लिपि के भेद का विषय छेड़ना घोड़े के आगे गाड़ी को रखना होगा। हमें इस शर्त को मानकर चलना है कि हिंदी और उर्दू दोनों ही राष्ट्र-लिपियाँ हैं और हमें अख्तियार है, हम चाहे जिस लिपि में उसका (हिंदुस्तानी का) व्यवहार करें। हमारी सुविधा हमारी मनोवृत्ति और हमारे संस्कार इसका फैसला करेंगे।'[12]

किंतु प्रेमचंद को विश्वास है, 'हम तो केवल यही चाहते हैं कि हमारी एक कौमी लिपि हो जाए।' दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के चतुर्थ दीक्षांत समारोह में दीक्षांत भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि 'अगर सारा देश नागरी लिपि का हो जाएगा तो संभव है मुसलमान भी उस लिपि को कुबूल कर लें। राष्ट्रीय चेतना उन्हें बहुत दिन तक अलग न रहने देगी।'[13] प्रेमचंद के सुझावों पर अमल न करके हमने देश की भाषा-नीति को लेकर जो मार्ग चुना, उसके घातक परिणाम आज हमारे सामने हैं। अँग्रेजी के वर्चस्व के नाते हमारे देश की बहुसंख्यक आबादी और गाँवों की छुपी हुई प्रतिभाएँ अनुकूल अवसर के अभाव में दम तोड़ रही हैं। देश में मौलिक चिंतन चुक गया है और दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के बावजूद हम सिर्फ नकलची बनकर रह गए हैं।

संदर्भ

1. साहित्य का उद्देश्य, पृ॰ 118
2. वही, पृ॰ 121
3. वही, पृ॰ 121
4. वही, पृ॰ 122
5. वही, पृ॰ 124
6. वही, पृ॰ 124
7. वही, पृ॰ 125
8. वही, हिंदी-उर्दू एकता शीर्षक निबंध, पृ॰ 139
9. वही, पृ॰ 128
10. वही, पृ॰ 132
11. वही, पृ॰ 132
12. वही, पृ॰ 133
13. साहित्य का उद्देश्य, पृ॰ 117

ईई-164/402 **सेक्टर**-2
साल्ट लेक
कोलकाता 700091
amarnath.cu@gmail.com

हिंदी बालपत्रकारिता का सफरनामा

डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम
एसो॰ प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ (उ॰प्र॰)

बच्चों का बालसाहित्य से सीधा संबंध होता है। स्वस्थ बालसाहित्य जहाँ एक ओर बच्चों को ईमानदार नागरिक बनाने में मदद करता है वहीं दूसरी ओर उनमें अच्छे संस्कार डालकर उनके भावी जीवन की नींव मजबूत करता है। बच्चे स्वस्थ बालसाहित्य से अनायास ही जुड़ते चले जाते हैं। यह सच है कि आरंभिक दौर में हिंदी का बालसाहित्य केवल मनोरंजन के लिए लिखा गया। उस समय बच्चों को केंद्र में रखकर कोई विशेष लेखन भी नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी का पहला दशक इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि उस समय हिंदी बालपत्रिकाओं की शुरुआत हुई। भारतेंदुयुग हिंदी साहित्य का क्रांतिकारी युग रहा है। इस काल में कई साहित्यिक विधाओं का उद्भव-विकास हुआ। बालपत्रकारिता को गौरव प्रदान करने का श्रेय भी भारतेंदुयुग को ही जाता है।

यह सच है कि ढेर सारा बालसाहित्य बालपत्रकारिता की ही देन है। समय-समय पर प्रकाशित होनेवाला बालसाहित्य बालपत्रिकाओं के माध्यम से ही सबसे पहले बच्चों तक पहुँचा। बाद में यह पुस्तकाकार प्रकाशित होकर अनेक पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाने के काम आया। बालपत्रकारिता प्रारंभ से ही अनेक चुनौतियों का सामना करती रही है।

बालसाहित्य प्रकाशित करनेवाली पत्र-पत्रिकाओं के दो रूप हैं। प्रथम प्रकार की वे पत्रिकाएँ हैं जो प्रमुख रूप से बड़ों का साहित्य प्रकाशित करती हैं और साथ में चार या आठ पृष्ठों की सामग्री बच्चों के लिए भी प्रकाशित करती हैं। बड़ों के लिए लगातार छप रही कुछ पत्र-पत्रिकाएँ ऐसी भी हैं जो बीच-बीच में बालसाहित्य विशेषांक निकालकर बच्चों को जोड़ने का काम कर रही हैं। बालसाहित्य के लिए वे दिन गौरव और गरिमा के रहे हैं, जब साप्ताहिक धर्मयुग में बच्चों का स्तंभ 'बालजगत' तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान में 'फुलवारी' नियमित प्रकाशित होता था। धर्मयुग में रहकर लंबे समय तक लगातार छपने वाले बच्चों का स्तंभ बालजगत का संपादन करने वाले योगेंद्रकुमार लल्ला ने जिस मनोयोग से बालसाहित्य प्रकाशित किया वह विचारणीय, अनुकरणीय और प्रशंसनीय तीनों है। संपादक डॉ॰ धर्मवीर भारती ने लल्ला जी को बालसाहित्य चयन के लिए खुली छूट प्रदान कर रखी थी। लल्ला जी ने 'बालजगत' स्तंभ के लिए हिंदी के तत्कालीन बड़े साहित्यकारों से भी अनुरोध करके बालसाहित्य लिखवाया और ससम्मान प्रकाशित किया। उन दिनों को याद करते हुए योगेंद्रकुमार लल्ला जी ने राष्ट्रीय बालभवन नई दिल्ली की संगोष्ठी में कहा था–

'बालसाहित्य को स्थापित करने के लिए अनेक बालसाहित्यकारों के अतिरिक्त बड़े साहित्यकारों ने भी 'धर्मयुग' में नियमित रचनाएँ भेजकर महत्त्वपूर्ण पहल की। उस समय लगातार बच्चों का साहित्य लिखने की होड़ मची रहती थी। आज भी बालसाहित्य के अध्येता, समीक्षक

और स्वयं बालसाहित्यकार यह स्वीकार करते हैं कि बालसाहित्य के विकास में 'धर्मयुग' के बालपृष्ठों का योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता है।'

योगेंद्रकुमार लल्ला ने धर्मयुग के बालपृष्ठ बालजगत के बाद कलकत्ता से प्रकाशित 'मेला' नामक बालपत्रिका का भी संपादन किया। थोड़े समय में ही इस पत्रिका ने कामयाबी के झंडे गाड़ दिए, उस समय के श्रेष्ठ बालसाहित्यकारों के अतिरिक्त बड़े साहित्यकार भी इसमें नियमित लिखा करते थे।

इन महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं के अतिरिक्त नवनीत (मुंबई), समाज कल्याण (नई दिल्ली), पालिका समाचार (नई दिल्ली), हरियाणा संवाद (हरियाणा), राष्ट्रधर्म और अतएव (लखनऊ) तथा अवकाश (वाराणसी) आदि में भी लगातार बालसाहित्य प्रकाशित होता था। दुर्भाग्यवश इनमें से कुछ पत्रिकाएँ तो बंद हो गई हैं और अन्य पत्रिकाओं ने किन्हीं कारणों से बालसाहित्य छापना बंद कर दिया है। फिलहाल साहित्य समीर दस्तक (भोपाल), राष्ट्र समर्पण (नीमच, म॰प्र॰), सरस्वती सुमन (देहरादून), विश्वगाथा (सुरेंद्रनगर), संगिनी (बड़ौदा) शैलसूत्र (नैनीताल), साहित्य गुंजन (इंदौर), उजाला (लखनऊ), प्रेरणा अंशु (उधमसिंहनगर, उत्तराखंड), युवादृष्टि (नई दिल्ली), प्राची (जबलपुर), गुर्जर राष्ट्रवीणा (अहमदाबाद), जगमग दीपज्योति (अलवर, राजस्थान), किस्सा कोताह (ग्वालियर), पंजाब सौरभ (पटियाला), साहित्य अमृत (नई दिल्ली), नवकिरण (बस्ती), समकालीन स्पंदन (वाराणसी) शोध दिशा (बिजनौर) आदि पत्रिकाओं में कुछ ही पृष्ठों में सही मगर बालसाहित्य छप रहा है।

दूसरे प्रकार की वे पत्रिकाएँ हैं, जो संपूर्ण रूप से बच्चों के लिए ही प्रकाशित होती हैं। ऐसी बालपत्रिकाओं में–नंदन, बालहंस, सुमन-सौरभ, चंपक, बालभारती, लोटपोट, मधु मुस्कान, चकमक, देवपुत्र, नन्हे-सम्राट, बच्चों का देश, साइकिल,प्लूटो, बालवाटिका, पाठक मंच बुलेटिन, स्नेह, अभिनव बालमन, बालवाणी, बालप्रहरी, बालप्रभा, अनुराग, कोंपल, चिरैया, बच्चों की प्यारी बगिया, किल्लोल, बालविकास, दुलारा नन्हा आकाश तथा बालमंथन और बचपन (दोनों ई-पत्रिका) आदि उल्लेखनीय हैं। इन बालपत्रिकाओं के अतिरिक्त मेरठ से बच्चों का अखबार, भोपाल से अपना बचपन तथा राजस्थान से टाबर टोली नाम से बच्चों के अखबारों का भी प्रकाशन होता है। 'हरिभूमि' समाचारपत्र द्वारा हर सप्ताह बालभूमि के नाम से तथा 'भास्कर' अखबार बालभास्कर शीर्षक से बच्चों के लिए विशिष्ट परिशिष्ट का प्रकाशन करते हैं। 'जनसत्ता' भी प्रत्येक रविवार को नियमित बालसाहित्य प्रकाशित कर रहा है। दैनिक ट्रिब्यून, राजस्थान पत्रिका, पंजाब केसरी, नई दुनिया आदि समाचार-पत्रों में भी बच्चों के लिए रचनाएँ अवश्य प्रकाशित होती हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि हिंदी बालसाहित्य और बालपत्रकारिता दोनों की शुरुआत बहुत धीमी रही। भारतेंदु हरिश्चंद्र के विशेष प्रयत्नों से प्रकाशित बालदर्पण (1882) भाषा, विषय और विविधता की दृष्टि से बहुत स्तरीय नहीं थी, परंतु हिंदी बालपत्रकारिता को स्वतंत्र रूप से विकसित करने में आज भी बालदर्पण का ऐतिहासिक महत्त्व है।

वैसे तो बच्चों की प्रतिक्रियाओं को जानने का साधन वे हस्तलिखित छोटी-छोटी बालपत्रिकाएँ रही हैं, जिनमें उनका बचपन हिलोरें लेता दिखाई देता था। प्रारंभ में ऐसी लघु पत्रिकाएँ और समाचार-पत्र काफी संख्या में अलग-अलग स्थानों से निकलते थे। एक आँकड़े के अनुसार सन्

1940 के आसपास हिंदी में लगभग 30 मुद्रित और 20 हस्तलिखित बालपत्रिकाएँ निकलती थी। यह प्रयास इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है कि ऐसे ही बच्चों की लेखन प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

वस्तुत: बालसाहित्य के उत्थान में बाल पत्र-पत्रिकाओं ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन पत्र -पत्रिकाओं ने तमाम बिखरे हुए बालसाहित्य की शृंखलाओं को एक साथ जोड़ने का काम किया है। बालपत्रिकाएँ बच्चों के लिए एक कुशल उपदेशक, सफल अभिभावक, उचित मार्गदर्शक और सच्चे मित्र का कार्य करती हैं। अगर हम यह कहें कि आज जो भी बालसाहित्य उपलब्ध है वह पत्र-पत्रिकाओं की ही देन है तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पहली प्रकाशित पत्रिका बालदर्पण के बाद लोगों का ध्यान बच्चों की पत्रिकाओं को बढ़ाने की ओर नहीं गया, इसीलिए लंबे समय तक बच्चों की किसी प्रमुख पत्रिका का प्रकाशन नहीं हुआ। हाँ, छिटपुट कहीं-कहीं से कोई बालपत्रिका निकल जाती थी जिसकी आयु अत्यंत अल्प होती थी। ऐसी बालपत्रिकाओं में सन् 1891 में लखनऊ से प्रकाशित 'बालहितकर', 'विद्याप्रकाश', सन् 1906 में अलीगढ़ से प्रकाशित 'छात्र हितैषी' तथा बनारस से प्रकाशित 'बालप्रभाकर' आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त इन बालपत्रिकाओं में से कोई भी चिरस्थायी नहीं रह सकी, क्योंकि उस समय बालपत्रिकाएँ निकालना जोखिमभरा काम था। बालप्रभाकर के संपादक पं॰ किशोरीलाल गोस्वामी की दृष्टि आधुनिक थी इसलिए उनके संपादन में पत्रिका को थोड़ा स्थायित्व मिला। इसके अतिरिक्त और कोई भी बालपत्रिका न तो लोकप्रिय हुई और न ही बच्चों को कोई दृष्टि दे सकी। बालसाहित्य को सही दिशा और दृष्टि देने का काम मुख्य रूप से विद्यार्थी (1914), शिशु (1915) तथा बालसखा (1917) ने किया। विद्यार्थी सामान्य बाल पाठकों के साथ साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए भी अपने नाम के अनुरूप विशेष उपयोगी पत्रिका थी। इसके संपादक पं॰ रामजीलाल शर्मा बालसाहित्य के विशेषज्ञ थे। उनके संपादन में विद्यार्थी पत्रिका ने ख़ूब उन्नति की। इसमें तत्कालीन चर्चित रचनाकार-मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, कामताप्रसाद गुरु तथा छविनाथ पांडेय आदि की रचनाएँ प्रमुखता से प्रकाशित होती थीं।

शिशु पत्रिका को निकालने का श्रेय पं॰ सुदर्शनाचार्य को है। लंबे समय तक शिशु पत्रिका में संपादक के रूप में उनकी पत्नी का नाम छपता रहा, परंतु संपादन, मुद्रण से लेकर पत्रिका के प्रेषण तक का सारा काम सुदर्शनाचार्य खुद देखते थे। लगभग चार दशकों से भी अधिक समय तक यह पत्रिका बच्चों में ही नहीं अपितु अभिभावकों में भी काफी लोकप्रिय रही। इसका आखिरी अंक सन् 1957 में प्रकाशित हुआ।

शिशु में अधिकतर वही रचनाएँ प्रकाशित होती थीं, जिनके माध्यम से बालक-बालिकाओं में सदाचार, शक्ति, आदर्श और राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने की प्रेरणा मिले। पं॰ सुदर्शनाचार्य ने शिशु पत्रिका को जिन बुलंदियों तक पहुँचाया था उसे उनके सुयोग्य पुत्र ने आगे भी जारी रखा। अगर यह कहा जाए कि शिशु ने हिंदी बालसाहित्य को उँगली पकड़कर चलना सिखाया बालसाहित्य के सशक्त हस्ताक्षर विष्णुकांत पांडेय का कहना बिल्कुल सही है कि 'बालमन की जिन गहराइयों को पं॰ सुदर्शनाचार्य ने समझा था उनको अब तक कोई नहीं समझ सका था। यही कारण है कि 'शिशु' की ख्याति-पताका दूसरे हिंदी संसार में फहरती रही। लेकिन यह भी एक क्रूर विडंबना ही थी कि परतंत्र भारत में जिस पत्रिका ने युग-युगों तक संघर्षरत रहकर हिंदी

माध्यम से देश के अनगिनत बालगोपालों की सेवा की और बड़ी-बड़ी हस्तियाँ पैदा कीं वह पत्रिका देश की आजादी के बाद बंद होने को विवश हो गई।'

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में हिंदी बालसाहित्य के लिए बालसखा (1917) ने जो जमीन खोजी, उसी पर आज एक भव्य प्रासाद बना दिखाई दे रहा है। सन् 1917 से सन् 1968 ई० तक लगातार बालसखा का प्रकाशन अपने आप में एक रिकॉर्ड रहा है। दिसंबर 1968 में बालसखा का आखिरी अंक प्रकाशित हुआ था। वास्तव में बालसखा पत्रिका हिंदी बालपत्रकारिता के इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुई। इसके प्रथम संपादक पं० बदरीनाथ भट्ट थे, तदनंतर पं० लल्लीप्रसाद पांडेय, पं० देवीदत्त शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', पं० कामताप्रसाद गुरु, पं० सोहनलाल द्विवेदी, पं० गिरिजाशंकर शुक्ल 'गिरीश' तथा ठाकुर श्रीनाथसिंह ने इसका संपादन किया।

बालसखा को बच्चों तथा बालसाहित्यकारों में लोकप्रिय बनाने का श्रेय पं० लल्लीप्रसाद पांडेय को है। उन्होंने जिस लगन निष्ठा उत्साह और ऊर्जा के साथ बालसखा को सँवारा और सजाया उससे हिंदी बालसाहित्य के विकास के लिए एक खुला मार्ग मिल गया। तत्कालीन लगभग सभी प्रतिष्ठित लेखकों ने संपादक पं० लल्लीप्रसाद पांडेय के अनुरोध पर बच्चों के लिए बड़े मन से लिखा और उन्होंने उसी मन से उसे बालसखा में ससम्मान छापा। जिस प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से हिंदी साहित्य को ऊर्ध्वगामी रास्ता दिखाया उसी प्रकार लल्लीप्रसाद पांडेय ने बालसखा के माध्यम से हिंदी बालसाहित्य को एक नया आयाम दिया। बालसखा के मई 1945 में प्रकाशित उनका खरा-खरा संपादकीय आज भी बालसाहित्य लेखन के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है–'बालसखा कार्यालय में आनेवाली रचनाओं में–गर्मी आई, जाड़ा आया, वर्षा गई, शिशिर भी भागा इस ढंग की तुकबंदियों की भरमार रहती है। फिर उनमें ऐसी कोई बात भी नहीं रहती, जिससे वे छापी जा सकें। बिल्ली पूसी कुतिया मुन्ना भैया छोटा भाई भी बहुत आते हैं। चीज ऐसी होनी चाहिए, जिससे भेजने वाले के सिवा पढ़ने वालों को भी आनंद मिले। उक्त कारण से ऊपर लिखे शीर्षकों की रचनाओं को स्वीकार करने में बालसखा असमर्थ है। स्वयं बालसखा की प्रशंसा में आई हुई रचनाएँ भी छापी नहीं जा सकतीं। इसके बनिस्पत उपयोगी रचनाओं को बालसखा में सहर्ष स्थान दिया जाता है।'

लल्लीप्रसाद पांडेय जी बालसखा में प्रकाशित होनेवाली रचनाओं के प्रति इतने सतर्क रहते थे कि बार-बार बालसाहित्यकारों को आगाह करते रहते थे–'मैं 'बालसखा' के कवियों को बताना चाहता हूँ कि वे अपना स्वर बदलें। अब सूरज के उगने में, फूलों के खिलने में, कोयल के कूकने में कोई नई बात नहीं रही, यह बातें तो सैकड़ों वर्षों से लिखी जा रही हैं। आज तो आवश्यकता वह सब-कुछ लिखने की है जो हमारे सामने ने रूप में आया है और जो भविष्य में नई उपलब्धियों की आशा दे रहा है।'

उन्होंने बालसाहित्यकारों के साथ साथ-साथ बड़ों के लिए लिखने वाले साहित्यकारों में भी ऐसा जोश भरा कि वे सहज भाव से बच्चों के लिए लगातार लिखने लगे। यह लल्लीप्रसाद पांडेय की धुन और लगन का ही परिणाम है कि हिंदी बालपत्रकारिता का इतिहास बालसखा के उल्लेख के बिना अधूरा है।

बालसखा की भाँति पटना से प्रकाशित बालक(1926) को भी हिंदी बालपत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण दर्जा दिया जाता है। इसके संपादक आचार्य रामलोचनशरण बालमनोविज्ञान

के मर्मज्ञ तथा साहित्य के ज्ञाता थे। इसी कारण बालक पत्रिका में स्तरीय उच्चकोटि की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। बालक पत्रिका में समय के साथ साथ-साथ इसके आकार प्रकार में भी परिवर्तन होता रहा। रचनाधर्मिता की दृष्टि से इससे समकालीन बालसाहित्यकारों का बराबर जुड़ाव बना रहता था। लंबे समय तक यह पत्रिका न्यूजप्रिंट पेपर पर भी छपती रही। बाद में व्यावसायिकता की दौड़ में पीछे रहने के कारण इसका प्रकाशन बंद हो गया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व जो बालपत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं उनमें छात्र सहोदर (1920, जबलपुर), बीर बालक (1924, दिल्ली), खिलौना (1927, इलाहाबाद), चमचम (1930, इलाहाबाद), वानर (1931, इलाहाबाद), कुमार (1932, कालाकांकर), अक्षय भैया (1934, इलाहाबाद), बालविनोद (1936, मुरादाबाद), बालहित (1937, उदयपुर), किशोर (1938, पटना), बालसंदेश (1940, दिल्ली), हमारे बालक (1942, दिल्ली), होनहार (1944, लखनऊ), तितली (1946, इलाहाबाद), बालबोध (1947, इलाहाबाद) आदि ने बच्चों में चेतना जगाने का काम किया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व प्रकाशित होनेवाली बालपत्रिकाओं में देश को आजाद कराने का उद्‌घोष था। बच्चों में संस्कार भरने की भावना थी तथा देश के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने का संकल्प था। वस्तुत: हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में बालपत्रकारिता का प्रादुर्भाव भारतेंदुयुग में ही हो गया था परंतु उसका पुष्पित-पल्लवित रूप हमें द्विवेदीयुग में देखने को मिलता है। द्विवेदीयुग में पहले की अपेक्षा हिंदी बालपत्रकारिता की स्थिति संतोषजनक कही जा सकती है।

एक आँकड़े के अनुसार उस समय हिंदी में लगभग 30 मुद्रित और 16 हस्तलिखित बालपत्रिकाओं का उल्लेख मिलता है। डॉ॰ श्रीप्रसाद के अनुसार–वह बालपत्रिकाओं का स्वर्णयुग था। तब से बालपत्रकारिता में अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं, मगर इतना तय है कि इस युग का बालसाहित्य तत्कालीन बालपत्रिकाओं में समग्र रूप में देखने को मिलता है। प्रो॰ उषा यादव का मानना है कि 'स्वतंत्रतापूर्व की बालपत्रकारिता में हस्तलिखित पत्रिकाओं की गणना करना जरूरी है। ये पत्रिकाएँ काफी संख्या में छपती थीं। यद्यपि इनका प्रसार थोड़े क्षेत्र तक ही रहता था, पर बच्चों को पत्र-पत्रिकाओं की ओर आकृष्ट करने में इन हस्तलिखित पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।'

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिंदी बालपत्रकारिता के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव आया, फलत: कई नई बालपत्रिकाओं का पदार्पण हुआ। ऐसी बालपत्रिकाओं में कुछ तो अभी भी प्रकाशित हो रही हैं। परंतु कुछ आर्थिक बोझ तथा अन्य संपादकीय, व्यवस्थापकीय कठिनाइयों के कारण अधिक समय तक न चलकर बीच में ही काल के गाल में समा गईं।

इस समय स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व से प्रकाशित होनेवाली बालपत्रिकाओं में–शिशु, बालक और बालसखा अपनी पूरी दमखम के साथ बालसाहित्य को नई दिशा देने का कार्य करती रहीं। 'मनमोहन' अपनी साधारण साज-सज्जा के बावजूद बच्चों में बहुत लोकप्रिय पत्रिका थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से लेकर आज तक प्रकाशित होने वाली बालपत्रिकाओं का गौरवशाली इतिहास है। ये बालपत्रिकाएँ इस प्रकार हैं–लल्ला (1948, इलाहाबाद), प्रकाश (1948, जालंधर), बालभारती (1948, दिल्ली), बच्चों का खिलौना (1948, अंबाला), चंदामामा (1949, मद्रास), चुन्नी-मुन्नू (1950, पटना), नन्ही दुनिया (1951, देहरादून), कन्या (1952, मंदसौर), वानर (1955,

जयपुर), जीवन शिक्षा (1957, वाराणासी), स्वतंत्र बालक (1957, दिल्ली), पराग (1958, प्रारंभ बंबई बाद में नई दिल्ली), बालकल्याण (1958, हरिद्वार), राजा बेटा (1958, वाराणसी), बालबंधु (1958, मुरादाबाद), बालसुमन (1958, बंबई), राजा भैया (1958, नई दिल्ली), मीनू-टीनू (1959, चक्रधरपुर, बिहार), बाल फुलवारी (1959, अमृतसर), बेसिक शिक्षा (1959, सहारनपुर), राजा भैया (1959, दिल्ली), तितली (1959, दिल्ली), बालजीवन (1960, करनाल), बेसिक बालशिक्षा (1960, लखनऊ), फुलवारी (1961, वाराणसी), बालदुनिया (1962, दिल्ली), बालवाटिका (1962, लखनऊ), ज्ञानभारती (1962, लखनऊ), मनोरंजन (1962, दिल्ली), बालउपहार (1963, जालंधर), शेरसखा (1964, कलकत्ता), नंदन (1964, दिल्ली), शक्तिपुत्र (1965, दिल्ली), मिलिंद (1965, दिल्ली), दीवाना तेज (1965, दिल्ली), बालआश्रम (1966, हस्तिनापुर), चमकते सितारे (1966, पटना), बालजगत (1966, पटना), शिशु बंधु (1966, लखनऊ), मनमोहन (1967, इलाहाबाद), बच्चों का अखबार (1967, इंदौर), चंपक (1968, दिल्ली), बच्चों की पुकार (1968, लखीमपुर खीरी), पूत-सपूत (1968, दिल्ली), बालकुंज (1968, लुधियाना), बालजगत (1969, लखनऊ), चंद्रखिलौना (1969, मुजफ्फरपुर), लोटपोट (1969, दिल्ली), बालरंगभूमि (1970, दिल्ली), गोलगप्पा (1970, दिल्ली), मुन्ना (1970, दिल्ली), नन्हीं कलियाँ (1971, दिल्ली), हँसती दुनिया (1971, दिल्ली), चमाचम (1972, लखनऊ), बच्चे और हम (1972, दिल्ली), गुड़िया (1973, मद्रास), प्यारा बुलबुल (1974, जयपुर), शावक (1974, दिल्ली), लल्लू- पंजू (1975, लखनऊ), बालरुचि (1975, लखनऊ), बालदर्शन (1975, कानपुर), उभरते सितारे (1975, नालंदा, बिहार), आदर्श बालसखा (1977, वाराणसी), कलरव (1977, नई दिल्ली), बालसाहित्य समीक्षा (1977, कानपुर), बालपताका (1978, मथुरा), आदर्श चित्रकला (1979, दिल्ली), मेला (1979, कलकत्ता), बालकल्प (1979, जालंधर), मधु मुस्कान (1979, दिल्ली), देवपुत्र (1979, ग्वालियर), बालरत्न 1980, कानपुर), राकेट (1980, अकोला), बालमन (1980, दिल्ली), कुटकुट (1981, रतलाम), नन्हे तारे (1981, चंडीगढ़), नन्ही मुस्कान (1981, कानपुर), नन्हे मुन्नों का अखबार (1981, इलाहाबाद), दि चिल्ड्रेन टाइम्स (1981, लखनऊ), टिंकल (1981, बंबई), आनंददीप (1982, अहमदनगर), बालनगर (1982, इलाहाबाद), बालदुनिया (1982, मुजफ्फरनगर), लल्लू जगधर (1982, लखनऊ), चंदन (बहराइच), सुमन सौरभ (1983, दिल्ली), किलकारी (1984, दिल्ली), उपवन (1984, सीकर, राजस्थान), चकमक (1985, भोपाल), बालकविता (1985, लखनऊ), अच्छे भैया (1986, इलाहाबाद), ने फूल धरती के (1986, मथुरा), बालहंस (1986, जयपुर), बालमंच (1987, दिल्ली), नन्हे सम्राट (1988, दिल्ली), किशोर लेखनी (1988, कटिहार, बिहार), बालमेला (1989, दिल्ली), समझ झरोखा (1989, भोपाल), यू॰पी॰ नन्हा समाचार (1989, लखनऊ), पमपम (1992, दिल्ली), बच्चों की प्रिय पत्रिका बालवाणी (1994, लखनऊ), बालवाटिका (1995, भीलवाड़ा), पाठक मंच बुलेटिन (1996, नई दिल्ली), बालमितान (1998, दुर्ग), तितली (1998, बरेली), बच्चों का देश (1998, जयपुर अब राजसमंद, राजस्थान), स्नेह (1998, भोपाल), बालप्रहरी (2004, अल्मोड़ा, उत्तराखंड), अपना बचपन (2005, भोपाल), बाल अखबार (2005, भोपाल), बालमन (2008, अलीगढ़), गुप्तगंगा (2008, जयपुर), कल्लोल (2008, जयपुर), बालप्रभा (2012, शाहजहाँपुर), साइकिल (2018

भोपाल) प्लूटो (2019, भोपाल) आदि।

उपर्युक्त बालपत्रिकाओं में नंदन, पराग, बालभारती, चंपक, चंदामामा, मिलिंद, आदर्श, बालसखा लोटपोट, बारबंधु तथा हँसती दुनिया अपने आकर्षक आवरण रोचक सामग्री तथा रंगीन चित्रों के कारण बालपाठकों में अधिक लोकप्रिय रहीं। इनकी रचनाएँ बच्चों में जहाँ एक ओर पठनवृत्ति को बढ़ावा दे रही थीं, वहीं दूसरी ओर उन्हें संस्कारित कर एक नए समाज का निर्माण कर रही थीं। आजाद भारत में इस कार्य को इन बालपत्रिकाओं ने बड़े चुनौतीपूर्ण ढंग से स्वीकार किया। इस समय बालसाहित्य के सामने एक चुनौती यह थी कि बालपत्रिकाओं को घर-घर पहुँचाकर बच्चों को ऐसा रास्ता दिखाना था जिस पर चलकर वे आसानी से अपनी मंजिल प्राप्त कर सकें। यह खुशी की बात है कि इन बालपत्रिकाओं ने अपने-अपने ढंग से बच्चों के साथ-साथ अभिभावकों में भी अपनी जगह बनाई।

नंदन और पराग जहाँ बड़े बच्चों की पत्रिकाएँ रही हैं, वहीं चंपक छोटे बच्चों में बहुत लोकप्रिय है। जानवरों को आधार बनाकर लिखी गई कहानियाँ आज भी चंपक में प्रकाशित होकर बच्चों का मनोरंजन कर रही हैं। चंपक हिंदी के अतिरिक्त अन्य दूसरी भाषाओं में भी प्रकाशित होती है मगर इसमें यह उल्लेख नहीं होता है कि मूल रचना किस भाषा में लिखी गई है। प्राय: हिंदी के अनेक बालसाहित्यकारों की रचनाएँ चंपक के अँग्रेजी संस्करण में उनके नाम के साथ छपती हैं। इससे अनुमान लगाना कठिन होता है कि रचनाकार हिंदी भाषा का है या अँग्रेजी का। चूँकि दिल्ली प्रेस एकमुश्त धनराशि देकर कॉपीराइट खरीद लेता है इसलिए वहाँ रचनाओं का उपयोग अपनी मर्जी से अलग-अलग भाषाओं में करने में आसानी रहती है।

पराग पत्रिका अपनी ढेर सारी अच्छाइयों को समेटे हुए दुर्भाग्यवश बंद हो गई परंतु उसकी महक आज भी बरकरार है। आधुनिक भावबोध की कहानियों, किशोर मन के अंतर्गत चित्रों तथा रसबोध से परिपूर्ण बालकविताओं के कारण आज भी पराग बालसाहित्य के प्रेमियों के मन में साँसें ले रहा है। चींटीपुरम के भूरेलाल (मुद्राराक्षस), बहत्तर साल का बच्चा (आबिद सुरती), शाबाश श्यामू (डॉ॰ श्रीप्रसाद), पाँवों से पंखों तक तथा चंदामामा दूर के (हरिकृष्ण देवसरे), नेहरू चाचा का भतीजा (रजिया सज्जाद जहीर), हम सबका घर(नरेंद्र कोहली), वीर विक्रमादित्य (विनोद कुमार) तथा सोमबाला और सात बौने(आनंदप्रकाश जैन) जैसे रोचक बालउपन्यास सबसे पहले पराग में ही धारावाहिक प्रकाशित हुए थे। शिशु गीतों को मजबूत जमीन देने का भी श्रेय पराग को ही है।

पराग की दृष्टि जहाँ आधुनिक थी वहीं नंदन की दृष्टि परंपरावादी थी। राजा-रानी की कहानियाँ, लोककथाओं तथा दादी-नानी की परंपरागत कहानियों के बल पर नंदन ने कई वर्षों का सफर तय किया। परीकथाओं को लेकर नंदन का अपना अलग दृष्टिकोण था। नंदन के परीकथाओं के समर्थन में अनेक विशेषांक भी प्रकाशित हुए। एक दौर ऐसा भी आया जब परीकथाओं को लेकर धर्मयुग और साप्ताहिक हिंदुस्तान के पृष्ठों पर खूब जोरदार बहस हुई, बल्कि बहस धारावाहिक चलती रही इस बहस में नंदन को जहाँ परीकथाओं का समर्थक तथा राजा-रानी की कहानियों में सामंतवाद की झलक दिखाने वाली पत्रिका माना गया वहीं पराग को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विज्ञान फंतासी तथा आधुनिक भावबोध की पत्रिका का दर्जा दिया गया।

नंदन पत्रिका के संदर्भ में एक बात अवश्य उल्लेखनीय है कि उसमें प्रकाशित कहानियों

और कविताओं से ज्यादा स्थायी रूप से छपने वाले स्तंभ बच्चों में अधिक लोकप्रिय थे। चीटू-नीटू, आप कितने बुद्धिमान हैं, वर्ग पहेली तथा तेनालीराम जैसे स्तंभ बच्चे पत्रिका में पहले पढ़ते थे। 'विश्व की महान कृतियाँ' ऐसा स्तंभ था जिससे बच्चों में विदेशी बालकथाएँ पढ़ने की ललक जगी।

आज नंदन का स्वरूप पूरी तरह बदला हुआ है। उसमें आधुनिक भावबोध की बेहतरीन रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। संपादक जयंती रंगनाथन ने बच्चों की नब्ज पकड़ ली है। विज्ञान को भी लोकप्रिय बनाने की दिशा में नंदन के प्रयास की सराहना की जानी चाहिए।

इस समय की एक अन्य महत्त्वपूर्ण बालपत्रिका बालभारती ने अपने छह दशकों से अधिक के समय में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। अनेक हिचकोले खाया मगर सँभलती रही। सरकारी प्रकाशन होने के कारण विभिन्न आकार-प्रकार ग्रहण करती यह पत्रिका भारत सरकार की नीतियों और रीतियों के बावजूद अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

बालभारती में कविताओं और कहानियों के अतिरिक्त बालनाटकों और धारावाहिक उपन्यासों को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता रहा है। अमर चित्रकथा के सर्जक अनंत पै की धारावाहिक चित्रकथा कपीश लंबे समय तक बालपाठकों का मनोरंजन करती रही है। वैज्ञानिक तथ्यों से भरपूर रोचक आलेख भी बालभारती में निरंतर प्रकाशित होते रहे हैं। आज के बालभारती के पाठक इस तथ्य से अनभिज्ञ होंगे कि एक समय ऐसा भी आया था जब यह पत्रिका बंद होने के कगार पर आ गई थी परंतु पं० जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप के बाद ऐसा जीवनदान मिला कि यह पत्रिका आज भी खूबसूरत साज-सज्जा और मनोरंजक तथा उपयोगी रचनाओं के साथ प्रकाशित हो रही है।

चंदामामा अपने समय की ऐसी ही पत्रिका रही है जो बच्चों से कहीं ज्यादा अभिभावकों में लोकप्रिय रही है। इसमें अधिकतर लंबी-लंबी कथाओं को धारावाहिक रूप में प्रस्तुत किया जाता था। ऐयारी, जासूसी, हैरतअंगेज तथा चमत्कार दिखाने वाली कहानियाँ चंदामामा की उपलब्धि रही हैं। धारावाहिक विक्रम और बैताल की कथा इसका जीता जागता उदाहरण है। इधर चंदामामा की रचनाओं में आंशिक फेर-बदल हुआ है मगर उसका पुराना परंपरावादी दृष्टिकोण आज भी देखा जा सकता है।

वैसे तो इस काल में ऊपर संदर्भित अनेक बालपत्रिकाओं ने अपनी उपस्थिति से बालसाहित्य को आंदोलित किया परंतु लोकप्रियता की दृष्टि से अधिकांश बालपत्रिकाओं का ग्राफ नीचे ही रहा। हाँ, इस अवधि में बड़ों के लिए प्रकाशित होनेवाली दो ख्यातिप्राप्त प्रमुख पत्रिकाओं—धर्मयुग और साप्ताहिक हिंदुस्तान में क्रमशः बालजगत और फुलवारी शीर्षकों से बच्चों के लिए जो सामग्री प्रकाशित हुई उनमें सही अर्थों में बचपन का प्रतिनिधित्व हुआ। सैकड़ों पृष्ठों में फैला यह दस्तावेज हिंदी बालसाहित्य की अनमोल धरोहर है। सातवें दशक से बीसवीं शताब्दी तक प्रमुखता से छपनेवाले इन पृष्ठों में बालकविताओं और बालकहानियों के अतिरिक्त वैज्ञानिकों का बचपन, धारावाहिक बालउपन्यास, रोचक संस्मरण, पहेलियाँ और यात्रा-विवरण भी प्रकाशित हुए। मनहर चौहान का रोचक बालउपन्यास 'जादुई खड़िया' धर्मयुग के बालपृष्ठों में धारावाहिक प्रकाशित हुआ था।

उस समय प्रकाशित होनेवाले लगभग सभी समाचार-पत्रों में बच्चों की दुनिया, बच्चों का पन्ना, बाललोक, बचपन, बालरंग, नन्हीं दुनिया, बालपृष्ठ तथा बालसंसद आदि शीर्षकों से हर

रविवार को बालसाहित्य प्रकाशित होता था। इन समाचार-पत्रों में बच्चों के द्वारा लिखी गई रचनाएँ भी प्रकाशित की जाती थी। वाराणसी से प्रकाशित आज अखबार में तो बाकायदा बालसंसद स्तंभ के अंतर्गत बच्चों को सदस्य बनाया जाता था तथा उनकी रचनाएँ सदस्य संख्या और छायाचित्र सहित प्रकाशित की जाती थीं। इन पंक्तियों के लेखक ने अपने लेखन की शुरुआत आठवें दशक में इसी समाचार-पत्र से शुरू की थी। कुछ समाचार-पत्रों में तो सामग्री को लेकर होड़ मची रहती थी।

नवें दशक के बाद से लेकर बीसवीं शताब्दी के अंत तक बालसाहित्य में प्रतिमानों की तलाश शुरू हुई। किशोरों के मन में उठने वाली अनेक संवेदनाओं को पराग जैसी बालपत्रिका ने शिद्दत से प्रकाशित रचनाओं में उठाया। हालाँकि इस काल में भी कुछ बालपत्रिकाएँ फार्मूलबद्ध ढंग से भी प्रकाशित होती रहीं। उस समय पराग में प्रकाशित एक कविता का अंश उद्धृत करने का मैं लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ–

पापा जी तुम देर से घर क्यों आते हो?
क्यों मम्मी का इतना दिल दुखाते हो?
रोज शाम को मम्मी रोती रहती हैं
और हमसे बात भी नहीं करती हैं।
मैं गुड़िया के संग खेलूँ कब तक पापा?

–राकेश मिलिंद

इस दौर की महत्त्वपूर्ण बालपत्रिकाओं में बालहंस ने भी एक नया इतिहास बनाया है। इसमें बच्चों की लेखनी को भरपूर प्रोत्साहन मिलता रहा है। बालहंस ने एक अद्‌भुत पहल करके अलग-अलग प्रदेशों को लेकर वहाँ के बालसाहित्यकारों पर केंद्रित इतनी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की थी कि कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है। इस संपूर्ण सामग्री को मिलाकर इकट्ठा किया जाए तो हिंदी बालसाहित्य के इतिहास की एक झलक आसानी से देखी जा सकती है। 'कवि एक : रंग अनेक' स्तंभ में अलग-अलग मिजाज की इतनी कविताएँ प्रकाशित हुईं कि पृष्ठ के पृष्ठ भर गए।

बालहंस के तत्कालीन संपादक अनंत कुशवाहा बड़े कुशल और महत्त्वपूर्ण चित्रकार थे इसलिए उसमें कई चित्रकथाएँ प्रमुखता से प्रकाशित होती थीं। बालहंस को उँचाइयों तक पहुँचाने में मनोहर वर्मा के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता है। मनोहर वर्मा एक अनुभवी संपादक के साथ-साथ लब्धप्रतिष्ठ बालसाहित्यकार भी थे। उन्होंने अनेकों बालसाहित्यकारों को बालहंस में लिखने के लिए प्रेरित किया। हालाँकि बालहंस आज भी प्रकाशित हो रही है परंतु उसमें पुरानी वाली चमक गायब है।

बच्चों का देश के संपादक संचय जैन पूरी निष्ठा और लगन के साथ पत्रिका को निकाल रहे हैं। आवरण सहित 52 पृष्ठों की यह पत्रिका पूरी रंगीन, आकर्षक और भरपूर साज-सज्जा के साथ प्रति माह बच्चों के बीच में अपनी पैठ बनाए हुए है। इसे समकालीन बालसाहित्यकारों का भरपूर सहयोग प्राप्त है। पत्रिका में कविताएँ, कहानियाँ, ज्ञानवर्धक लेख, पहेलियाँ, चित्रकथाएँ, बच्चों के लिए रोचक जानकारियाँ, वर्ग-पहेली, सुडोकू तथा पुस्तक परिचय सभी कुछ उपलब्ध है। इसके संपादन में बालसाहित्यकार प्रकाश तातेड़ का लगातार भरपूर सहयोग मिल रहा है।

पत्रिका निश्चय ही अत्यंत उपयोगी और बच्चों के लिए आवश्यक है।

भोपाल से प्रकाशित स्नेह बालपत्रिका भी बच्चों को जोड़कर उपयोगी सामग्री उपलब्ध करा रही है। यह संपादक की सूझबूझ और परिश्रम का परिणाम है कि इसे विद्यालयों के माध्यम से बच्चों तक पहुँचाया जा रहा है। बच्चे अपनी संस्कृति से जुड़ें तथा उनमें संस्कार को जानने और समझने का भाव उत्पन्न हो इसी उद्देश्य से पत्रिका का नियमित प्रकाशन हो रहा है है। इसमें प्रमुख रूप से कविताएँ, कहानियाँ, जानकारी भरे आलेख तथा देश-दुनिया के समाचारों से भी बच्चों को लाभान्वित कराया जाता है। संपादक कमलाकांत अग्रवाल का प्रयास सराहनीय है।

वैसे तो अपने समय में धूम मचाने वाली पत्रिका 'लोटपोट' भी प्रकाशित हो रही है जो अब साप्ताहिक से पाक्षिक हो गई है। इसे हँसी और मस्ती की पाठशाला नया नाम दिया गया है परंतु इसमें अब पहले वाली बात नहीं है। एक समय था जब इसमें प्रमुख रूप से व्यंग्य चित्र तथा हास्य कथाओं को प्रकाशित किया जाता था। कुछ साहसिक और प्रेरणाप्रद कथाएँ भी कभी-कभी देखने को मिल जाती थीं।

'हँसती दुनिया' पत्रिका बच्चों को संस्कारित करने का दावा करती है परंतु इसकी पहुँच बच्चों तक नहीं है। यह पत्रिका हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, अँग्रेजी और मराठी में भी प्रकाशित होती है। संत निरंकारी मंडल का प्रकाशन होने के कारण हँसती दुनिया चार दशकों से लगातार प्रकाशित हो रही है। मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि यह पत्रिका लोकप्रियता के उस ग्राफ को नहीं छू सकी है जिसे इतनी लंबी यात्रा के बाद उसे छू लेना चाहिए था।

'बालप्रहरी' पत्रिका भी अपने ढंग से प्रकाशित ही हो रही है परंतु उसकी न तो कोई रीति-नीति है और न ही उसकी कोई दृष्टि है। संपादक अभी तक अपना कोई उद्देश्य भी तय नहीं कर पाए हैं। खिचड़ी रचनाओं के सहारे अंक निकल रहे हैं। बीच-बीच में लखनऊ से प्रकाशित अनुराग बालपत्रिका के अंक भी दिखाई दे जाते हैं। इसमें साभार ली गई रचनाओं की संख्या अधिक होती है। इसकी विषयवस्तु में कभी-कभी नयापन नजर आता है परंतु प्रस्तुति में मौलिकता का अभाव नजर आता है। खेद की बात है कि कुछ बालपत्रिकाएँ सिर्फ खानापूर्ति के लिए प्रकाशित हो रही हैं।

यहाँ असमय बंद हो गई दो बालपत्रिकाओं का मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा। ये पत्रिकाएँ हैं–'नई पौध' और 'नन्ही कलम'। नई पौध एक संतुलित पत्रिका थी जिसमें महत्त्वपूर्ण बालसाहित्यकारों के साथ बच्चों की भी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इसके संपादक रामकुमार कृषक की दृष्टि इतनी व्यापक होती थी कि उसमें बच्चों का मन स्वत: हिलोरें लेने लगता था। पत्रिका बच्चों से सीधा संवाद करने का एक सशक्त माध्यम थी परंतु यह हिंदी बालसाहित्य का दुर्भाग्य ही था कि पत्रिका असमय कालकवलित हो गई।

दूसरी हस्तलिखित पत्रिका 'नन्ही कलम' के पीछे बालसाहित्यकार श्याम सुशील की एक सुनियोजित सोच थी। शिवांक और शिप्रा तथा अन्य बच्चों के सहयोग से इस की हस्तलिपि प्रति तैयार की जाती थी। बाद में इसकी फोटोकॉपी कराकर बच्चों तथा बालसाहित्यकारों को प्रेषित की जाती थी। समकालीन बालसाहित्यकारों से हस्तलिखित रचनाएँ मँगाकर पत्रिका में बड़े सुंदर ढंग से सजाकर प्रस्तुत किया जाता था। इस पत्रिका के माध्यम से बच्चे और बालसाहित्यकार साथ-साथ एक मंच पर मिलते थे। आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में बच्चों के ऐसे प्रयास हमें निश्चय

ही आश्चर्य में डालकर सुखद अनुभूति कराते हैं।

लंबे समय से प्रकाशित हो रही 'बालवाटिका' पत्रिका में इधर काफी बदलाव आया है। रचनाओं के स्तर पर अब इसे किशोरोपयोगी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। अब इसमें बालसाहित्य पर आलोचनात्मक आलेखों को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है। बालवाटिका ने कई मूर्धन्य बालसाहित्यकारों पर महत्त्वपूर्ण विशेषांक निकालकर एक अच्छा काम किया है। 'पुस्तक समीक्षा' स्तंभ में समय-समय पर प्रकाशित होनेवाली बच्चों की पुस्तकों की जानकारी मिलती रहती है। कभी-कभी अच्छे साक्षात्कार और संस्मरण भी बालवाटिका में पढ़ने को मिल जाते हैं। यह सुखद है कि पत्रिका अपने प्रकाशन के रजत जयंती वर्ष में पहुँच गई है इसका लगातार छपना भी हमें आश्वस्त करता है।

'देवपुत्र' प्रकाशन की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक प्रसार संख्या वाली बालपत्रिका बन गई है। एक आँकड़े के अनुसार इसकी प्रसार संख्या 3,68,925 प्रति अंक दर्शाई गई है। पहले साधारण ढंग से प्रकाशित होनेवाली यह पत्रिका अब पूरी तरह बहुरंगी हो गई है। इसमें प्रकाशित चित्रों का संयोजन बड़े अच्छे ढंग से किया जाता है। भारतीय संस्कृति और परंपराओं को इसमें विशेष रूप से स्थान दिया जाता है। कुछ धारावाहिक चलने वाली जानकारियाँ भी उपयोगी होती हैं।

'चकमक' की गणना इस समय प्रकाशित होनेवाली बच्चों की बेहतरीन पत्रिकाओं में की जाती है। वैज्ञानिक सोच और आधुनिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करनेवाली यह पत्रिका आरंभ से ही बच्चों और बालसाहित्यकारों में बहुत लोकप्रिय रही है। इसका सौवाँ अंक जितना महत्त्वपूर्ण प्रकाशित हुआ था, उससे कहीं ज्यादा विविधता लिए हुए इसका 150वाँ अंक प्रकाशित हुआ। इसमें बच्चों के द्वारा लिखी गई रचनाओं और उनके द्वारा बनाए गए चित्रों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है। कुछ विदेशी विद्वानों की उत्कृष्ट रचनाएँ भी अनुवाद के माध्यम से बराबर पढ़ने को मिलती रही हैं। यह पत्रिका आज भी अपना स्तर बनाए हुए है।

नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली से प्रकाशित पाठक मंच बुलेटिन की गणना भी अपने समय की अच्छी पत्रिकाओं में की जानी चाहिए। यह पत्रिका लगातार उत्कृष्ट रचनाएँ प्रकाशित कर रही है। इसमें हिंदी के साथ-साथ अँग्रेजी में भी रचनाएँ छपती हैं। बच्चों की लिखी हुई रचनाओं और उनके द्वारा बनाए गए चित्रों का इसमें अच्छा-खासा प्रतिनिधित्व रहता है। यह पत्रिका अब रीडर्स क्लब बुलेटिन के नाम से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के राष्ट्रीय बालसाहित्य केंद्र द्वारा प्रकाशित हो रही है। इसे राष्ट्रीय बालसाहित्य केंद्र से जुड़े पाठक मंचों को नि:शुल्क वितरित किया जाता है। यह पत्रिका भी अपने प्रकाशन के रजत जयंती वर्ष में पहुँच गई है।

अलीगढ़ से प्रकाशित 'अभिनव बालमन' पत्रिका भी लगातार अपनी उपस्थिति का आभास करा जाती है। इसमें वरिष्ठ बालसाहित्यकारों के साथ-साथ नए लेखकों को भी प्रकाशन का भरपूर अवसर प्रदान किया जाता है। विशेष रूप से बच्चों की रचनाएँ और उनके बनाए हुए चित्रों को प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका के बैनर पर समय-समय पर होनेवाली बच्चों की कार्यशालाओं के माध्यम से उनकी रचनाधर्मिता को आगे लाने का अवसर भी प्रदान किया जाता है।

शाहजहाँपुर से डॉ॰ नागेश पांडेय 'संजय' के संपादन में वार्षिक 'बालप्रभा' पत्रिका प्रकाशित हो रही है। अब तक इसके कई अंक प्रकाशित हो चुके हैं जिन्हें बराबर सराहना मिलती रही है। पत्रिका आवरण से लेकर अंतिम पृष्ठों तक बच्चों के अनुकूल प्रकाशित हो रही है। धरोहर

के रूप में कई वरिष्ठ बालसाहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित करके संपादक ने अपनी सार्थक सोच वृहत्तर आयाम दिया है। इस पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल है।

दिल्ली प्रेस से प्रकाशित 'सुमन-सौरभ' किशोरों की पत्रिका है। इसमें किशोरों पर केंद्रित अलग-अलग मूड्स की कहानियाँ आकर्षण साज-सज्जा के साथ प्रकाशित होती हैं। कभी-कभी विश्व में प्रचलित कहानियों को भी आज के परिवेश में ढालकर प्रस्तुत किया जाता है। दिल्ली प्रेस की अपनी कुछ रीतियाँ-नीतियाँ हैं उसी के तहत इसमें रचनाएँ स्थान पाती हैं। एकमुश्त धनराशि के एवज में रचनाओं का कॉपीराइट बेचने वाले लेखक ही सुमन सौरभ में स्थान पा सकते हैं। इस पत्रिका में कविताएँ नहीं छपती हैं। कभी-कभी रोचक जानकारियाँ देनेवाले आलेख अवश्य छप जाते हैं।

उ॰प्र॰ हिंदी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित होने वाली बच्चों की प्रिय पत्रिका 'बालवाणी' पहले मासिक थी। लगातार पाँच वर्षों तक प्रकाशित होने के बाद इसका प्रकाशन बंद हो गया था। बाद में इसे द्विमासिक के रूप में प्रकाशित किया गया। सरकारी प्रकाशन होने के नाते उ॰प्र॰ हिंदी संस्थान लखनऊ के कार्यकारी अध्यक्ष इसके मुख्य संपादक/प्रधान संपादक, निदेशक प्रबंध संपादक तथा प्रधान संपादक/संपादक इसके संपादन का दायित्व निर्वहन करते हैं।

इस समय प्रो॰ सदानंदप्रसाद गुप्त के मुख्य संपादन में बालवाणी सचित्र, रंग-बिरंगी, आकर्षक कलेवर वाली तथा विविध रचनाओं से परिपूर्ण लगातार प्रकाशित हो रही है। इसके स्मरण और धरोहर स्तंभ ऐसे दिवंगत रचनाकारों की याद दिलाते हैं जिन्होंने बच्चों के लिए महत्त्वपूर्ण साहित्य का सृजन किया है। कविताओं और कहानियों के अतिरिक्त इसमें ज्ञान-विज्ञान, चित्रकला, बच्चों की तूलिका, वर्ग पहेली जैसे स्तंभों में विविधतापूर्ण बालसाहित्य प्रकाशित होता है। बच्चों की लेखनी को भी भरपूर प्रोत्साहन देकर बालवाणी एक नई जमीन तैयार कर रही है।

भोपाल से प्रकाशित बच्चों का दुपहिया साइकिल तथा प्लूटो पत्रिकाएँ एक नई सोच के साथ लगातार प्रकाशित हो रही हैं। प्लूटो छोटे बच्चों की पत्रिका है तो साइकिल में थोड़े बड़े बच्चों को केंद्र में रखकर रचनाओं का चयन किया जाता है। आकर्षक साज-सज्जा और रंग-बिरंगी प्रस्तुतियाँ दोनों पत्रिकाओं की विशेषताएँ हैं। इनमें आजकल के बच्चों के मनोविज्ञान पर आधारित नए-नए विषयों पर संपादक बालसाहित्यकारों से रचनाएँ आमंत्रित करके प्रकाशित करते हैं जिन्हें भरपूर सराहना मिलती है। प्रकाशन संस्थान की ओर से बच्चों के लिए अनेक कार्यशालाएँ भी आयोजित की जाती हैं जिसमें रचनाधर्मिता के रुचिकर नमूने देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार प्रारंभ से लेकर आज तक की बालपत्रकारिता में अनेक पड़ाव आए हैं परंतु दुख की बात है कि हिंदी साहित्य के मूर्धन्य समीक्षकों ने अपने इतिहास ग्रंथों में बालसाहित्य और बालपत्रकारिता को कोई महत्त्व नहीं दिया। धीरे-धीरे समय बदला और परिस्थितियों ने भी पलटी खाई। अब हिंदी बालसाहित्य दोयम दर्जे से उबरकर मुख्य धारा में आ गया है। बालपत्रकारिता पर भी न केवल चर्चा शुरू हुई अपितु बालपत्रकारिता का इतिहास भी पुस्तकाकार सामने आया और छपकर आते ही उस पर लोगों का ध्यान भी गया। कई विश्वविद्यालयों ने भी बालपत्रकारिता को अपने पत्रकारिता-विषयक पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करके प्रशंसनीय कार्य किया। अब स्थिति यह है कि बालपत्रकारिता की अवहेलना करना आसान नहीं रह गया है।

जिस प्रकार बालसाहित्य के मूल्यांकन के अपने मानदंड हैं उसी प्रकार बालपत्रिकाओं के मूल्यांकन की भी अलग कसौटी है। बालपत्रकारिता का यह लंबा सफर अनेक सवालों से जूझता

हुआ इस मुकाम पर पहुँचा है। आज जो भी बालपत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं उनमें से अधिकांश ने अपने को बालसाहित्य की मुख्य धारा से जोड़ लिया है। उसमें भरपूर रोचक सामग्री के साथ चित्ताकर्षक और नयनाभिराम चित्रों का संयोजन है। आज के मल्टीमीडिया युग में बहुरंगी चित्रों का चयन और चलन आसान हो गया है। अब कई बालपत्रिकाएँ इंटरनेट पर उपलब्ध हो गई हैं, ऐसे में संपादकीय कौशल से बालपत्रिकाओं को जनसुलभ कराना आसान हो गया है।

आज बालपत्रिकाओं ने बच्चों की बदलती भाषा को भी अच्छी तरह पकड़ लिया है। विशेष रूप से अँग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले बच्चों का भी हिंदी के प्रति अनुराग जगाना बाल-पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य हो गया है। बोझिल भाषा और थोपी गई शब्दावली को नकारकर बच्चों को सहज और सरल भाषा में जानकारी देना बालसाहित्यकारों ने अपना लक्ष्य बना लिया है। आज प्रचलन में आए दूसरी भाषाओं के शब्दों को भी रचनाओं में पिरोकर बालपत्रिकाओं में प्रकाशित किया जा रहा है।

आज बालपत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की विषयवस्तु पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। अब बालसाहित्यकारों ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लिया है कि आज का बच्चा यथार्थ की दुनिया में साँस ले रहा है। अत: उसे यथार्थवादी रचनाएँ ही दी जानी चाहिए। मात्र आदर्श की घूँटी पिलाना एवं हवाई कल्पना के महल बनाना आज के बालसाहित्य का उद्देश्य बिलकुल नहीं होना चाहिए।

व्यावसायिकता के इस दौर में बहुरंगी, आकर्षक और नयनाभिराम बालपत्रिकाएँ निकालना हँसी-खेल नहीं है। केवल पूँजीपति या बड़े व्यावसायिक संस्थान ही ऐसी बालपत्रिकाएँ निकाल सकते हैं। यह बात बिलकुल सत्य है कि बच्चों के मस्तिष्क पर पत्रिका के गेट-अप और सामग्री का गहरा प्रभाव पड़ता है। वह बहुरंगी और आकर्षक बालपत्रिकाएँ ही पढ़ना चाहता है।

अंत में, यह कम चिंता की बात नहीं है कि लगभग एक करोड़ तीस लाख की आबादी वाले भारत देश में हजार तो क्या ढंग की सौ बालपत्रिकाएँ भी नियमित प्रकाशित नहीं होती हैं। कुछ लोग अपने दम पर बिना सरकारी सहयोग के बालपत्रिकाएँ निकालने का जोखिम जरूर उठाते हैं, मगर दो-चार अंक निकालकर थक-हारकर इसलिए बैठ जाते हैं कि न तो वे सदस्य बना पाते हैं और न ही बालपत्रिकाओं की काउंटर पर कोई बिक्री होती है। नि:शुल्क और लेखकीय प्रतियाँ देकर धीरे-धीरे संपादक का जोश ठंडा हो जाता है। उन्हें न तो कोई सरकारी सहायता मिलती है और न ही सामाजिक संस्थाएँ उनका कोई सहयोग करती हैं।

महँगाई के इस दौर में बालपत्रिकाओं के भविष्य को अगर सुरक्षित रखना है तो सरकारी स्तर पर बालपत्रिकाएँ निकालने के लिए सब्सिडी दी जानी चाहिए उन्हें सरकारी/गैर-सरकारी विज्ञापन भी भरपूर मात्रा में मिलने चाहिए। बालपत्रिकाओं के मुद्रण के लिए विशेष प्रबंध किए जाने चाहिए। इस दिशा में काम करने के लिए कुछ उत्साही और बच्चों के लिए समर्पित लोगों और संस्थाओं को भी आगे आना चाहिए ताकि बालसाहित्य और बालपत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त हो सके।

सी-1245, **एम॰आई॰जी॰**
राजाजीपुरम लखनऊ (उ॰प्र॰) 226017
मो॰ 08960285470, 09450355390, 07618867609
vikram.surendra7@gmail.com

गीतकार पुष्पेंद्र वर्णवाल की प्रेमकाव्य कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन

जयप्रकाश सिंह, शोधार्थी
डॉ॰ महेश 'दिवाकर', डी॰लिट्॰, शोध निर्देशक
श्री वेंकटेंश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला

मुरादाबाद के हिंदी के यशस्वी साहित्यकार डॉ॰ पुष्पेंद्र वर्णवाल जीवनपर्यंत हिंदी की साधना करते रहे। 04 जनवरी 1946 को मुरादाबाद के मौहल्ला-नवाबपुरा में पिताश्री स्व॰ नेत्रपाल बरनवाल और माताश्री स्व॰ शांतिदेवी बरनवाल जी के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में आपका जन्म हुआ।

हिंदी के उन्नयन एवं संवर्द्धन के प्रति वे आरंभ से ही अति गंभीर रहे। वे खोजी मनोवृत्ति के थे। डॉ॰ पुष्पेंद्र वर्णवाल जी ने प्रचुर मात्रा में हिंदी में साहित्य सृजन किया। वे छंद के कवि थे। उनकी कृतियों में अद्योलिखित कृतियाँ उल्लेखनीय हैं—ऋषि, अर्भीक, शब्द मौन, विरोधाद्वार, प्रणय-दीर्घा, प्रणय-प्रतीति, प्रणय-योग, प्रणयबंध, रिमझिम, बीज और बंजर जमीन, रामानंद बाल-विरद, विश्राम द्वारिका, उत्पविता, वज्रयान की आधारभूमि, विजय पताका : एक विंहगम दृष्टि आदि। अस्तु! हिंदी गद्य-पद्य की विविध विधाओं में उन्होंने उल्लेखनीय सृजन किया है। वे जीवनपर्यंत अभावग्रस्त रहे। अंतत: 5 जनवरी 2019 को स्वर्ग सिधार गए।

हिंदी में गीत, विगीत, कविता, मुक्तक, प्रबंधकाव्य गद्यकाव्य, उपन्यास, समीक्षा, निबंध और अनुवाद के क्षेत्र में उन्होंने प्रचुर कार्य किया है। वे अक्खड़ एवं फक्कड़ स्वभाव के थे। फलत: उनके साहित्य पर हिंदी में कोई शोधकार्य नहीं हुआ।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने साहित्य की विविध-विधाओं में रचनाएँ प्रस्तुत करके देश-विदेश के साहित्य संसार को समृद्ध किया है। अब तक उनके द्वारा रचित दो लघुकाव्य, दो खंडकाव्य, तीन गीत-संग्रह, एक मुक्तक संग्रह, एक वार्तिक नाट्य, सात गद्य कृतियाँ और दो विदेशी भाषाओं से अनुवादकार्य हिंदी में प्रकाशित है। उनके द्वारा रचित दो कृतियों का जापानी भाषा में अनुवाद भी हिंदी-जापानी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार डॉ॰ कात्सुरो कोगा सन् द्वारा अनुवादित एवं प्रकाशित है। उनके साहित्य में सर्वत्र प्रणय की बासुरी मधुर ध्वनि से ध्वनित हो रही है, पर यह ध्वनि उनके गीत संग्रहों में अधिक मोहक है। उनके साहित्य-उद्यान में पल्लवित 'प्रणयदीर्घा', 'प्रणययोग' और 'प्रणयबंध' शीर्षकों से प्रकाशित उनके गीतों के संग्रह रूपी तीन निकुंजों में प्रणय के मूर्त और अमूर्त व्यापारों की सुंदर अभिव्यंजना हुई है। इन काव्य कृतियों का सामान्य परिचय संक्षेप में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. **प्रणय दीर्घा :** कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की यह रचना संवत् 2042 विक्रमी में 'सागर तरंग प्रकाशन' मुरादाबाद (उ॰प्र॰) से प्रकाशित हुई। इस कृति में कुल बयालीस पृष्ठ हैं। कवि वर्णवाल ने गीतों को 'क', 'ख', 'ग' खंडों में विभाजित किया है। प्रथम खंड 'क' में उन्नीस विगीत है,

 ISSN 0975-735X

द्वितीय खंड 'ख' में तेरह विगीत हैं और तृतीय खंड 'ग' में आठ विगीत हैं। इस प्रकार प्रस्तुत काव्यकृति में कुल चालीस विगीत हैं। गीत-संग्रह की परिचायिका के रूप में श्री अशोक विश्नोई ने अपना अभिमत व्यक्त किया है। उनके शब्दों में–प्रणय-दीर्घा' पुष्पेंद्र वर्णवाल जी के आजीवन गीतों के संकलन का शीर्ष बोध है, शीर्षक भी। प्रणय जैसे शब्द को आयु का उलाहना देकर निरर्थक सिद्ध नहीं किया जा सकता है। देह को वयसंधियों से मुक्त रखकर जीने का नाम ही पुष्पेंद्र जी का प्रणय है।'[1]

काव्यकृति के प्रारंभ में कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने प्रणय के अर्थ व स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'प्रणय-परिधि पर' शीर्षक से इस रचना के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं– 'प्रणय भी एक शब्द है-ठीक वैसा ही, जिसका कुछ अर्थ होता है। परस्पर समर्पण में आश्रय-अश्रित भाव को प्रेम माना जाता है। परस्पर अवलोकन, वार्ता, स्पर्श आदि से प्रेम जब दृढ़ हो जाता है तथा दोनों में से किसी एक के अपराधों पर भी जब दूसरा विचलित नहीं हो पाता, तो प्रणय कहलाता है। प्रणय से आगे भी कुछ स्थिति होती है। अधिक सामीध्य के कारण आनंदित करने में समर्थ प्रणय ही राग का रूप धारण कर लेता है। दूर से प्रणय वाली बात मात्र आसक्ति के और कुछ नहीं कही जा सकती हैं। हाँ, प्रणय की भूमिका अवश्य हो सकती है...आसक्ति जब दोनों की ओर से खुलकर व्यक्त हो पाती है, तब प्रणय-परिधि पर क्रीड़ाएँ उभरती हैं।...प्रणय-दीर्घा और उस पर थमी वीथियों में प्रणय के माध्यम से जो चिह्न अथवा आकृतियाँ अक्षर-रूप पाकर शब्दों से गीत का प्रवाह थमाते रहे हैं, अपने ऐसे ही विगत दो दशकों से अधिक काल की छवियाँ अवलोकन के निमित भाव से अपनों के हाथों में सौंप रहा हूँ।'[2]

उपर्युक्त कवि कथन के आलोक में अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि 'प्रणय-दीर्घा' कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल के कृति प्रकाशन से पूर्व के विगत बीस वर्षों के सुसंचित भावरस का सुपरिपक्व मधुर-फल है। इसमें कवि की भाव-नर्तकियों को खुलकर क्रीड़ा करने का सुंदरतम सुयोग प्राप्त हो सका है। यह क्रीड़ा अधिकतर संयोगश्रृंगार के रूप में प्रकट हुई है। 'क' खंड में संकलित गीतों में नायक-नायिका की सरस वार्ताएँ हैं। प्रणयी युगल इस खंड में स्वयं में ही व्यस्त हैं। इनकी अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ आंतरिक आनंद से ओत-प्रोत हैं। इस आनंद में जीवन का पलायन नहीं है, प्रत्युत जीवन की प्रेरणा है। सबके सुख का मंगलमय विधान है लोकहित का संदेश है, और संघर्ष का स्वर है। कवि छायावादी कवियों के समान ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे नहीं गाता। वह अपनी प्रेयसी के साथ जीवन का संग्राम छोड़कर भागना भी नहीं चाहता। वह तो सारे संसार को सुखी बनाने के लिए जीवन के निकट चलने के लिए अपनी प्रेयसी से आग्रह करता है–

जीवन को जीवन के तीर ले चलो
भाव मेरे श्वास का समीर ले चलो
जन्म-जन्म अर्पित है मात्र तुम्ही को
अंतर में अनुपम प्रतिमा है तुम्हारी
देखो संसार दुखी सामने खड़ा–
इसको भी सुख की प्राचीर दे चलो।[3]

इन विगीतों में प्रणयी युगल की पुकार है। प्रेमी की विकल मनुहार है। निम्नांकित गीत में

यह मनुहार देखी जा सकती है–

उठती उम्र तपाता यौवन, मन भारी कर देते
जीवन में यदि स्नेह जुड़े, सब-कुछ सुखकर देते
मिलते हुये स्नेह का स्वागत बुरा नहीं होता
स्नेह प्रीत को ठोकर मार कभी मत विलगाना।[4]

'प्रणय' दीर्घा के विगीतों में मौलिकता है। ये सभी विगीत अपने युग की समसामयिक चेतना से सर्वथा अनुप्राणित है। इनमें परंपरा के रंग है और नवीनता की गंध है। डॉ॰ एस॰पी॰ शर्मा ने भी इन रचनाओं की नवीनता को स्वीकार किया है। इनका अभिमत है–'पुष्पेंद्र जी की एक कृति 'प्रणय-दीर्घा' शीर्षक से प्रकाशित है जो एक गीत काव्य है। लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर कवि ने गीत लिखे प्रतीत होते हैं। इसका कलेवर प्रणय-गीतों से परिपूर्ण है, जिनमें सजगता, शृंगार और चैतन्यता का समावेश है। कवि ने विश्व के बदलते हुए नैतिक मूल्यों को देखते हुए ही प्रणय का वैज्ञानिक विश्लेषण इन गीतों में करने का प्रयास किया है, जो कवि के अध्ययन और प्रौढ़ता की ओर संकेत करता है।'[5]

'प्रणय-दीर्घा' में संकलित प्रथम खंड के गीतों में सहज प्रसन्नता की व्याप्ति है। यह प्रसन्नता संयोगवस्था के कारण है। द्वितीय खंड के गीतों में यह प्रसन्नता परिलक्षित नहीं होती, क्योंकि इस खंड के अधिकांश विगीत एकांतिक हैं। इनमें प्रणयी-युगल 'विप्रलंभशृंगार' की स्थिति में है और संयोगावस्था के पूर्व अनुभूत आनंद की मधुर-स्मृतियों में व्यस्त है। यद्यपि अतीत के मिलन-पलों का आनंद विरह-व्यथित-चित्त को श्रांति का अनुभव होने से बचाता है और शांति प्रदान करने की चेष्टा करता है, तथापि इनमें वियोग की कसक अवश्य है–

भीतर से पास-पास, बाहर से दूर
भूल रही प्रीति, भरी साँझ का सरूर
चितवन से छेड़ी थी चुंबन-सी बात
नयनों में आँक लिया था हृदय मयूर
सुधियों के दर्पण से और लो टटोल
गुँथे हुए जूड़े में पिछली सौगंध।[6]

खंड 'ग' के गीतों में वैराग्यभाव का स्वर मुखर हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि इस खंड के गीतों में काम से मोक्ष की ओर प्रस्थित हुआ है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य में काम की तुष्टि के पश्चात ही मोक्ष का स्थान निश्चित है। इसी प्रकार शृंगार के संयोग और वियोग का पूर्ण रसास्वादन करने के अनंतर कवि की अंतश्चेतना निर्वेद के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। इसे हम लौकिक प्रणय से अध्यात्मपरक प्रणय की ओर प्रस्थान भी कह सकते हैं। पूर्व मध्य युगीन हिंदी काव्य में सूफी संतों का प्रणय इसी रूप में प्रकर्ष को प्राप्त हुआ है।

इस खंड के गीतों में दार्शनिकता का पुट है। इनमें जगत की क्षणभंगुरता, रूप-यौवन की नश्वरता, लोकजीवन में दुखों की अधिकता, वैभव की अनित्यता आदि दार्शनिक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। कहीं-कहीं पर तो अध्यात्म व दर्शन के शब्दों का भी कवि ने मुक्तहस्त से प्रयोग किया है।

'प्रणय-दीर्घा' में श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल ने विगीतों का वर्गीकरण उनकी भाव-चेतना के

आधार पर किया है। यह वर्गीकरण सार्थक है और विगीतों के भाव-रूप को स्पष्ट करता है। इसमें कवि की चिंतनधारा का क्रमिक विकास भी परिलक्षित होता है। कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने इन विगीतों में स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रयाण किया है। विगीतों के पृथक-पृथक प्रस्तुतीकरण ने समीक्ष्य काव्य-कृति को बोध गम्य बनाया है। और शोधकार्य को सरलता प्रदान की है। सम्यक वर्गीकरण के अभाव में ये विगीत परस्पर मिल जाते और अपनी पृथक पहचान खो बैठते तब इनका मूल रूप और प्रकृत-भाव समझने व परखने में अध्येताओं को विशेष असुविधा रहती। कवि ने अपने स्तर से अपने विगीतों का सही-सही वर्गीकरण कर बड़ी सहजता से अध्येताओं को उबार लिया है और संग्रह की उपादेयता में वृद्धि की है।

2. **प्रणय-योग :** इसमें कवि के बयालीस विगीत संकलित हैं। इन विगीतों को बिना कोई क्रम प्रदान किए एक समवेत रूप में प्रकाशित किया गया है। कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल के प्रत्येक विगीत के साथ सुधी समीक्षक श्री जयप्रकाश तिवारी 'जेपेश' की अनुमूल्यात्मक टिप्पणी प्रकाशित है। ये टिप्पणियाँ विगीत का आशय सुस्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हुई हैं।

'प्रणय योग' का प्रकाशन अहिवरण समूह प्रकाशन, मुरादाबाद' ने किया है। प्रकाशन वर्ष जनवरी, 1994 ई॰ है। 'प्राक्कथन' के रूप में डॉ॰ मथुरादत्त जोशी का अभिमत भी प्रकाशित हुआ है। डॉ॰ जोशी ने इन विगीतों के संदर्भ में लिखा है कि 'प्रणय-योग' की गीतियों में सरसता, भावों की यथार्थता एवं सहजता प्रशंसनीय है। कहीं भी कल्पना की ऊँची उड़ान न होकर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भावों की पकड़ गीतों में मिलती है। गीतों में जो कुछ भी कहा है वह अपना अनुभूत है। अपनी बात कही है और धरती की बात कही है। कवि का अल्हड़पन एवं फक्कड़पन यत्र-तत्र प्रतिबिंबित होता रहा है।[8]

'प्रणय-योग' के गीतों का रचनाकाल इस शताब्दी का सातवाँ व आठवाँ दशक है। कवि ने इन्हें स्वयं भी विगीत कहा है और इनके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास कृति के प्रारंभ में किया है। कवि के अनुसार–'प्रणय, अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए–इस धारणा के अंतर्गत प्रणय योग गीतों के रूप में देहों के अमलतास ही प्रकाशित हो रहे हैं। अमलतास राजवृक्ष होता है और किसी की अस्मिता पर उभरे गीत उसके जीवन में अमलतास से भिन्न नहीं होते। अमलतास का एक गुण शूल को निर्मूल करना भी है। संग्रह के गीत प्रणय की वेदना को निर्मूल करने के लिए नहीं हैं, अपितु सार्थकता सिद्ध करने की रुचि है।...इसमें गीत के नाम पर जो कुछ है, उसमें से कुछ गीत विलगता को प्राप्त विगीत कहे जाते हैं। मेरा प्रणय-बोध इन गीतों में निश्चित रूप से विलगता का ज्ञापन करता है।'[9] कवि का यह आत्मविश्वास 'प्रणय-योग' के गीतों की सृष्टि का सबल आधार है। पुष्पेंद्र जी ने इस संग्रह के विगीतों में अपनी विरह-वेदना का ढिंढोरा नहीं पीटा है। न ही उन्होंने कहीं पर भी आहों-कराहों से गीत-संग्रह को मिथ्या प्रणय-गाथा बनाने की चेष्टा की है। उन्होंने तो प्रणय की जीवनोपयोगी सार्थकता सिद्ध कराने का सफल प्रयास इस रचना के विगीतों में किया है।

प्रस्तुत काव्यकृति के विगीतों में नवीनता है। यह नवीतना कवि की मौलिकता से उत्पन्न हुई है। प्रकाशक-द्वय के अनुसार प्रस्तुत गीत-संग्रह अब तक हिंदी में प्रकाशित समस्त गीत-संग्रहों से कुछ भिन्न रूप से प्रकाशित हो रहा है। हिंदी गीतों की दिशा में यह एक नया प्रयोग है। कुछ पाठक ऐसे भी होंगे, जो इस प्रयोग से सहमत न भी हों, फिर भी यह गीत-संग्रह अपने नए

प्रायोगिक स्वरूप में हिंदी में भिन्न प्रस्तुति तो है ही।'[10] कोई भी नवीन प्रस्तुति प्रथम बार तो बहुत कम मर्मज्ञों द्वारा ही स्वागत प्राप्त कर पाती है। अधिकांश सामान्य साहित्यिक तो उसमें दोष-दर्शन करते हैं। यह एक अलग बात है कि आगे चलकर जब वही प्रयोग लोकप्रियता पाता है तो साहित्य जगत में नई दिशा का द्वार खोल देता है और नवीन प्रयोगकर्ता के परवर्तीयुग का साहित्यक बेहिचक उस पथ पर बढ़ने लगता है। नई कविता अथवा मुक्त छंद में रचित कविता के संदर्भ में हिंदी साहित्य-जगत इस सत्य का साक्षात्कार कर चुका है। स्वयं महाप्राण निराला जैसे विराट साहित्यिक व्यक्तित्व ने इस तथ्य की सत्य स्वीकारोक्ति 'सरोज-स्मृति' में दी है। मुक्त छंद में रचित उनकी रचनाएँ संपादकगण निरानंद कहकर वापस कर देते थे–

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि-जीवन में भी व्यर्थ व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्तछंद
पर संपादक गण निरानंद
वापस कर देते पढ़ सत्वर।[11]

निराला के परिवर्तीयुग में वे ही रचनाएँ सुधी-साहित्यिक वर्ग में समादृत हुईं और उनकी अगली पीढ़ी के कवियों के लिए नया-पथ प्रशस्त कर गईं। 'प्रणय-योग' के विगीतों के संबंध में भी उपर्युक्त सभावनाओं से मुख नहीं मोड़ा जा सकता है। प्रकाशकद्वय की आंशका अपने स्थान पर सत्य है पर जिस प्रकार श्री जयप्रकाश तिवारी 'जेपेश', डॉ॰ महोश्वेता चतुर्वेदी, डॉ॰ छोटेलाल शर्मा 'नागेंद्र', डॉ॰ मथुरादत्त जोशी, डॉ॰ रामानंद शर्मा, डॉ॰ एस॰पी॰ शर्मा आदि विद्वान-समीक्षकों ने अपनी प्रतिक्रियाएँ कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल के विगीतों पर व्यक्त की हैं। उनसे सिद्ध होता है कि ये विगीत निश्चय ही साहित्य जगत को एक नवीन दिशा प्रदान करने में सर्वथा समर्थ हैं।

'प्रणय योग' के विगीतों का रचना विधान गीतों के पारंपरिक रूप से हटकर है। यह नवगीत से पूर्णतया भिन्न नहीं है, पर उसमें कुछ नवीनता अवश्य है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। श्री जयप्रकाश तिवारी के विचारों में–'आज का हिंदी गीत अपने संक्रांतिकाल में है। इसलिए आवश्यकता है कि इसके कोमल पक्ष को बड़ी सावधानी तथा संयम के साथ बचाकर रखा जाए। श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल अपने जीवन के अधिकांश समय में साहित्य चिंतन में ही साँस लेते हैं। अत: वह गीत की बदलती स्थिति एवं उसकी आवश्यकता से परिचित होकर उसे अपनी ओजस्विनी प्रतिभा से अपेक्षित स्थान दिलाने में समर्थ भूमिका का निर्वाह करते हैं, जिससे उनका गीत 'विगीत' स्वरूप का प्रकाश फैला रहा है। आशा है 'प्रणय-योग' से कवि के मौलिक रचना विधान को समझा जा सकेगा।'[12]

डॉ॰ एस॰पी॰ शर्मा जी की मान्यता है कि कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने प्रथम बार हिंदी में प्रेयस की उद्‌भावना की है। 'प्रणय-योग' के विगीतों में प्रेयस की व्याप्ति को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है–'प्रणय-योग के प्रकाशन से एक विशिष्टता और भी सांकेतित है और उसे डॉ॰ जोशी ने हिंदी में नए रस-प्रयोग का अधुनातन पक्ष मानकर इन गीतों में प्रेयस की उपस्थिति से हिंदी जगत को परिचित कर दिया है। संस्कृत साहित्यानुरागियों ने यद्यपि प्रेयस को रसवादी एवं अलंकारवादी पक्षों में विवादित ही रखा है, परंतु हिंदी में प्रेयस की उद्‌भावना का श्रेय विगीत के गायक श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल को ही जाता है।'[13] इस प्रकार रस की दृष्टि से 'प्रणय-योग' के विगीत महत्त्वपूर्ण

 ISSN 0975-735X

हैं।

प्रणय सदा से ही पीड़ाप्रद रहा है। यह एक पृथक तथ्य है कि प्रणयी मन उस पीड़ा से आनंद का अनुभव कर लेता है। महाकवि सूर का मत है कि प्रेम करके कभी किसी को सुख नहीं मिला। भ्रमर ने कमल से प्रीति की तो उसे कमल के सुकोमल संपुट की कारा मिली। मृग ने संगीत से प्रेम किया तो उसे आखेटक का वाण सहना पड़ा—

प्रीति करि काहू सुख न लहयों।
प्रीति पंतग करो पावक सो आपै प्रान दहयों।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों संपुट मांझ गहयों।
सारंग प्रीति करी जुनाद सों सन्मुख बान सहयो।
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कुछ कहयो।
सूरदास प्रभु बिन दुख पावत नैननि नीर बहयो।[14]

प्रणय की इस पीड़ा के दर्शन 'प्रणय-योग' के विगीतों में भी होते हैं। यही पीड़ा विगीतों के सृजन का आधार भी है। कवि ने इस पीड़ा की सार्थकता सिद्ध करने के लिए ही इन विगीतों की सृष्टि की है। कवि ने भी जिस प्यार किया है उससे प्रतिदान में पीड़ा पाई है। स्वयं कवि के शब्दों में इस तथ्य को स्वीकारोक्ति मिलती है—

मैंने तुमको प्यार दिया था, तुमने दर्द मुझे लौटाया,
ब्याज दिया है मूल बकाया,
मेरा प्यार उधार रहा।
कितने कितने सपने लेकर, मेरी पलकों की चौखट पर,
मुझे मनाया तुमने आकर, लौटे मन चाहा ऋण पाकर,
और, न फिर संबंध निभाया, तुमने दर्द मुझे लौटाया,
ब्याज दिया है मूल बकाया,
मेरा प्यार उधार रहा।[15]

'प्रणय-योग' के गीतों में कवि की स्वानुभूति अनुभूतियाँ गुंफित हैं। उसने अपने प्रणयी मन में अपनी प्रेयसी को देखकर जहाँ, जब और जैसा अनुभव किया है, वहाँ वैसा ही वर्णन कर दिया है। यही कारण है कि कवि की अनुभूति पाठक को अपनी अनुभूति प्रतीत होती है। प्रेयसी के दर्शन का प्रणयी मन पर जैसा सुशीतल और आनंदकारी प्रभाव होता है उसकी अनुभूति को कवि ने बड़े ही अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने पर्वतीय सौंदर्य को आलंब के रूप में ग्रहण कर प्रणय को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है वह ढंग सर्वथा अपूर्व है, अद्‌भुत है—

तुम्हें देखकर मेरे मन पर बर्फ कभी जब जम जाती है,
मेरी सारी देह दूधिया चादर जैसी तन जाती है।
मैं हूँ जैसे कोई पेड़ टहनियाँ सिमटाए बैठा हो,
बर्फ-कुहासे में ऐंठा जोगी, जैसे जड़ हो बैठा हो,
ढलती हुई सर्दियों जैसी काया कविता बन जाती है।[16]

'प्रणय-योग' के विगीत ऐसी अनूठी अनुभूतियों से भरे पड़े हैं। इन अनुभूतियों के पीछे कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की सूक्ष्म-सार-गहिणी प्रवृत्ति और संवेदनशील शक्ति छिपी हुई है। अपनी

इस प्रवृत्ति और शक्ति का सही-सही उपयोग कवि ने इन विगीतों के प्रणयन में किया है। इसी कारण यह काव्य-कृति सुधी-समीक्षकों और रसिक साहित्यिकों द्वारा इतनी अधिक समादृत हो सकी है।

3. **प्रणय-बंध :** किसी भी कृति पर उसके कृतिकार के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप होती है। रचनाकार का व्यक्तित्व जितना सरल और प्रेमपूर्ण होता है, उसकी रचना भी उतनी ही सरल और भावमयी होती है। 'प्रणय-बंध' भी इसी प्रकार की प्रभावपूर्ण काव्य-रचना है। इस पर कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनकी सरलता, भावुकता, कोमलता और प्रणय प्रियता इस रचना में पुण्य सलिला गंगा की तरल तरंगों के समान रसधार बनकर प्रवाहित हो रही है।

'प्रणय-बंध' का प्रकाशन, अहिवरण प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रथम बार सन् 1996 ई॰ में हुआ है। इस ग्रंथ की सुविस्तृत भूमिका डॉ॰ रामानंद शर्मा (डी॰लिट्॰), रीडर हिंदी विभाग, हिंदू कालेज, मुरादाबाद (उ॰प्र॰) द्वारा लिखी गई है। इसमें कुल पचास विगीत हैं। इन विगीतों में उनके द्वारा पूर्व में प्रस्तुत प्रणय की अवधारणा की पुष्टि होती है। डॉ॰ एस॰पी॰ शर्मा के अनुसार–'उनका तीसरा गीत संग्रह विगीत की संपुष्टि और प्रेयस की अभिव्यक्ति की दिशा में 'प्रणय-बंध' शीर्षक से हिंदी पाठकों को प्राप्त हुआ है जिसमें उनका आत्मीयकरण इस बात का प्रमाण है कि प्रणय-संदर्भ और प्रणय-भाव से उनका संपूर्ण स्वैरैक्य है।'[17]

'प्रणय-बंध' के विगीतों में एक कथासूत्र-सा अव्यक्त और विशृंखल रूप में व्याप्त है। इस काव्यकृति के विगीतों का नायक किसी अद्वितीय सुंदरी नायिका का रूप दर्शन कर उसके प्रेमपाश में बँध जाता है। नायिका भी नायक के प्रति अनुरक्त होती है और प्रेमी युगल का प्रणय-प्रसंग उत्तरोत्तर अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। दोनों परस्पर अवलोकन, संभाषण, परिरंभण आदि से निरंतर घनिष्टता को प्राप्त करते हुए अनन्य भाव को प्राप्त हो जाते हैं, किंतु उनकी अनन्यता भाव के स्तर पर ही सीमित होकर रह जाती है। वह भौतिक धरातल पर एकत्व को प्राप्त नहीं कर पाती क्योंकि प्रणय-प्रसंगों का अकारण विरोध करने वाला रूढ़िवादी समाज उन्हें अलग कर देता है। महाकवि बिहारी ने इस संदर्भ में लिखा है–

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चिंत प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।[18]

दुर्जनों के हृदय में पड़नेवाली यह गाँठ 'प्रणय-बंध' के विगीतों में प्राप्त नायक-नायिका को भी अलग-अलग कर देती है। वे भी इस रीति की बलिवेदी पर भेट चढ़ते हैं।

'प्रणयबंध' में प्रेमी अपनी अधूरी अभिलाषाओं की टूटी काँवर उठाए वह विरह के सूने पथ पर अपनी विरहानुभूतियों के साथ अकेला ही भटकता फिरता हैं–

पाहुन-सी आकर जा लौटी, खड़ी किए मजबूरी
अभिलाषा के क्रम में अपनी है हर चाह अधूरी
आज प्यार के द्वार टँगे हैं बंदनवार विरह के
अनजाने बढ़ रही कि अपने तन से मन की दूरी।[19]

तन से मन की दूरी को समाप्त करने के लिए 'प्रणय-बंध' का नायक स्वयं के अस्तित्त्व को अपनी प्रेमिका के अस्तित्त्व में भाव के स्तर पर विलीन कर देता है। वह उसी के प्रणय-भाव

 ISSN 0975-735X

में अपने जीवन की सार्थकता मानता है और उसी में खोकर रह जाता है–

मैं तुम्हारी देह का अध्याय हूँ
देखकर भी झूमता निरुपाय हूँ
तुम निपट एकांत का उन्माद हो
मैं निकटता का बना पर्याय हूँ
निर्मले! स्वीकृत हुआ जो नियति को
मैं उसी क्षण से तुम्हारा हो गया
और बस मैं तो तुम्ही में खो गया।[20]

'प्रणय-बंध' के गीतों में प्राप्त कथासूत्र जितना वैयक्तिक है उतना ही सामाजिक भी। इसमें संकलित विगीतों के सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इसमें 'निर्मला', 'सुजाता' और 'विवाह' शब्द बार-बार प्रयुक्त हुए है। विगीतों में इनकी बार बार प्रस्तुति से प्रतीत होता है कि इन शब्दों का कवि के प्रणयी-जीवन से सीधा संबंध है और नायक के रूप में कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने स्वयं को ही अपने विगीतों में प्रस्तुत किया है। यह प्रतीति अनुमान पर आधारित है। इस कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये विगीत कवि की व्यक्तिगत कथा ही है। डॉ॰ रामानंद शर्मा का विचार है कि इस काव्य-कृति में प्रस्तुत 'निर्मला', 'सुजाता' और 'विवाह' शब्द प्रतीकात्मक है। उन्होंने लिखा है कि–'यह प्रतीति प्रथम दृष्ट्या ही है। यदि गंभीरता से देखा जाए और इन शब्दों के स्वरूप पर विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि ये शब्द अपने रूढ़ अर्थ से दूर किंचित विशिष्ट और गहन अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं। 'निर्मला' शब्द संबोधन रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह सत्य है, लेकिन 'निर्मल' का अर्थ है 'निर्गतानि मलानि यस्मात्' अर्थात् जिसकी मलिनता नष्ट हो गई हो, उज्ज्वल, निष्पाप, पावन और यह संबोधन जीवात्मा या प्राणि मात्र के लिए भी हो सकता है। कृसुजाता शब्द भी सुंदर और प्रिय के साथ सत्कुलीना या उच्चवंशोदभवा के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। किसी भी भद्र महिला को निर्मला या सुजाता कहने की प्राचीन भारतीय परंपरा भी है। 'विवाह' शब्द केवल परिणय या पाणिग्रहण संस्कार का ही वाचक नहीं है, अपितु किसी व्यक्ति विशेष को सम्मानपूर्वक ले जाने या मन के उन्नयन का भी बोधक है।'[21]

हिंदीकाव्य में अपने अभिधेयार्थ से दूर ऐसे लाक्षणिक शब्द-प्रयोग की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। 'विवाह' शब्द संतसाहित्य में जीवात्मा-परमात्मा के मिलन के संदर्भ में बार बार प्रस्तुत हुआ है। कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की निम्नांकित पंक्तियों में यही भाव अभिव्यक्त हुआ है–

अब मैंने कर लिया विवाह
कर सका न अपनापन जब मुझे निवाह
प्राण और आत्मा का शाश्वत संबंध
प्राणी का उद्‌भव है उनका अनुबंध
जीवन है पंचभूत तत्त्व का प्रवाह
इसीलिए कर लिया विवाह।[22]

'प्रणय-बंध' के विगीतों में अभिव्यक्त प्रणय-भावा का स्वरूप अत्यंत उदात्त है। इसमें नायक-नायिका से अलग होने पर भी उसके प्रति कटु नहीं हुआ है। नायिका उसे छोड़कर चली गई है, फिर भी वह उसे उपालंभ नहीं देता है उसका तिरस्कार नहीं करता। वह स्वयं को उसी की

मधुर स्मृतियों के लिए अर्पित कर देता है। प्रणय-संबंधों की यह रागात्मकता नायक को उपासक के उन्नत स्तर तक ले जाती है। प्रेमिका उसके लिए उपास्य है और प्रेम उसकी उपासना। इस संग्रह के विगीत प्रणय की इसी धवल चंद्रिका से नहाए हुए हैं।

इन विगीतों में अंतरात्मा का स्वर मुखर है, स्वानुभूति की गीतिका गुंजित है। अतएव कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल के ये विगीत पाठकों को स्वयं में बाँधे रखने में सक्षम हैं। यही 'प्रणय-बंध' की सच्ची सफलता है।

कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल द्वारा रचित प्रणय काव्य परक रचनाओं के उपर्युक्त सामान्य परिचय के पश्चात उन पर समीक्षा शास्त्रीय दृष्टि डालना भी अत्यंत आवश्यक है। इस दृष्टि से इन रचनाओं के शीर्षक, वर्ण्य-विषय, काव्य-रूप और कवि की सृजन-यात्रा का क्रमिक विकास विशेष रूप से विवेचनीय है। इन बिंदुओं में समीक्ष्य काव्य-कृतियों की विवेचना इस प्रकार प्रस्तुत हैं–

1. **शीर्षक :** कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की उपर्युक्त तीनों रचनाओं के शीर्षकों में 'प्रणय' शब्द का अनिवार्य रूप से प्रयोग हुआ है। ये शीर्षक हैं–'प्रणय-दीर्घा' प्रणय योग और 'प्रणय-बंध'। तीनों में ही 'प्रणय' शब्द समान रूप से प्राप्त होता है। यह शब्द इन रचनाओं की विषयवस्तु को भी संकेतित करता है। कवि के विचार में 'प्रणय' का तात्पर्य इस प्रकार है–'परस्पर अवलोकन, वार्ता, स्पर्श आदि से प्रेम जब दृढ़ हो जाता है तथा दोनों में से किसी एक के अपराधों पर भी जब दूसरा विचलित नहीं होता, तब प्रणय कहलाता है।'[23] ऐसे ही प्रणय-भाव से परिपुष्ट गीत इन तीनों काव्य-कृतियों में प्रस्तुत हुए हैं। अत: इनके शीर्षकों में प्रणय शब्द का उपयोग सर्वथा सार्थक हैं।

इस प्रकार पुष्पेंद्र वर्णवाल की उपर्युक्त तीनों कृतियों के शीर्षक सुविचारित सिद्ध होते हैं। कवि ने उसमें वर्ण्य-विषय की सुगंध 'प्रणय' शब्द से संयोजित करके उन्हें सारगर्भित बना दिया है। शीर्षक चयन की यह कुशलता कवि की सुपरिपक्व काव्य चेतना और बुद्धिमता का प्रमाण है।

2. **वर्ण्य-विषय:** समीक्ष्य काव्य कृतियों में प्रस्तुत 'प्रणय' शब्द से उनका वर्ण्य-विषय स्पष्ट हो जाता है कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने इन रचनाओं में प्रणय को ही प्रमुख रूप से विषयवस्तु के रूप में चुना है तथापि गीत रूप से प्रकृति, युग चेतना, मानव-मूल्य आदि समीक्ष्य गीत-संग्रहों के वर्ण्य-विषय बने हैं। समीक्ष्य रचनाओं की विषय वस्तु प्रणय भाव की अधिकता होने के कारण डॉ॰ एस॰पी॰ शर्मा ने इन्हें प्रणयोपनिषद की संज्ञा दी है। उनका मत है–'प्रणय का स्रोत पुराण है, महाकाव्य है, वेद की ऋचाएँ हैं और वह समग्र भारतीय दर्शन तत्त्व जो जीव को ईश्वर से अंशाशी भाव में अभिव्यक्ति सौंपते रहे हैं। यही कारण है कि पुष्पेंद्र वर्णवाल की कविताओं में भारतीय मानसिकता का प्राचीन सौंदर्य और प्रणय की शक्ति झलकती है। उनके गीतों की प्रणयोपनिषद् की संज्ञा दी जा सकती है। जिनमें उन्होंने बड़ी दक्षता से प्रणय को सुरक्षित रखा है।'[24]

डॉ॰ शर्मा के उपर्युक्त अभिमत से समीक्ष्य काव्य कृतियाँ की विषयवस्तु में प्रणय की प्रमुखता सिद्ध होती है तथापि इसके अतिरिक्त इन रचनाओं में प्रकृति के सौंदर्यपरक चित्र और सम-सामायिक समस्याओं के सम्यक् समाधान भी सन्निहित हैं।

इस प्रकार समीक्ष्य काव्य-कृतियों के वर्ण्य विषय में विविधता के दर्शन होते हैं। कवि ने प्रकृति, युग, मूल्य आदि विविध विषयों पर विगीतों की सुंदर रचना की है पर इन सबका केंद्र प्रणय ही रहा है। प्रणय के अतिरिक्त चित्रित अन्य भाव व विषय परिधि पर रहे हैं, केंद्र में नहीं।

3. **काव्य-रूप :** समीक्ष्य गीत-संग्रह मुक्तक काव्य की श्रेणी में आते हैं। इनमें प्राप्त प्रत्येक गीत स्वयं में परिपूर्ण है, अत: मुक्तक कहलाने का अधिकारी है। बाबू गुलाबराय के अनुसार–'मुक्तक छंद' पारस्परिक बंधन से मुक्त होते हैं, वे स्वत: पूर्ण होते हैं। वे क्रम में रखे जा सकते है किंतु एक छंद दूसरे से अपेक्षा नहीं करता।...मुक्तक में एक-एक छंद की अलग-अलग साज-सम्हाल की जाती है।[25] इस दृष्टि से परखने पर 'प्रणय-दीर्घा', 'प्रणय-योग' और 'प्रणय-बंध' तीनों ही रचनाएँ मुक्तक सिद्ध होती है। इनमें कथासूत्र की व्याप्ति नहीं है और प्रत्येक पद स्वतंत्र हैं। अंतिम रचना 'प्रणय-बंध' में कथासूत्र का आभास मिलता है, पर वह सांकेतिक और अप्रत्यक्ष है। अत: महत्त्वपूर्ण नहीं है और काव्य-कृतियों को मुक्तक सिद्ध करने में बाधक नहीं है।

गीतकाव्य के सभी तत्त्व विद्यमान हैं। मुक्तककाव्य का भेद भी प्रगीतकाव्य के रूप में प्राप्त होता है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में–'प्रगीत काव्य में कवि जो कुछ कहता है। अपने निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता आत्मनिवेदन के रूप में प्रकट होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाए रखने के लिए उसका अपेक्षाकृत छोटा होना आवश्यक है। आकार की इस संक्षिप्तता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है।...यह काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अंत:प्रेरित होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है।'[26] समीक्ष्य काव्य कृतियों में प्रगीत काव्य के उपर्युक्त समस्त लक्षण मिलते हैं। प्रगीत के तत्त्व जैसे–संगीतात्मकता, निजीरागात्मकता, संक्षिप्तता और भाव की एकता इसमें सर्वत्र सहज सुलभ है। अत: इन काव्य कृतियों के काव्य रूप को प्रगीत-मुक्तक कहना अधिक उपर्युक्त है। प्रगीत के स्थान पर 'विगीत' शब्द का भी प्रयोग इस संदर्भ में अपेक्षित है, क्योंकि 'विगीत' से इन गीतों का वैशिष्ट्य स्पष्ट हो जाता है।

4. **सृजन यात्रा का कृमित्र विकास :** रचनाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने व उसके वैचारिक परिवर्तन को जानने के लिए उसकी रचना-यात्रा के सोपानों की ठीक से जानना अत्यावश्यक होता है। कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की प्रणय-भावना को समझने में उनकी समीक्ष्य विगीत रचनाएँ सहायक है। इनमें कवि की चिंतनधारा का सहज-विकास स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

'प्रणय-दीर्घा' में प्रकाशित विगीत कवि के किशोर व प्रौढ़तापूर्व चिंतन की दिशा को अभिव्यक्त करते हैं। इनमें उल्लास है, उमंग है और प्रणय की काकली है। 'प्रणय-योग' के विगीत परिपक्व वय के प्रणय-चिंतन को निनादित करते हैं। इनमें उल्लास और उमंग है तो, पर उतनी अधिक नहीं है, जितनी की 'प्रणय-दीर्घा' के विगीतों में व्याप्त है। 'प्रणय-योग' के विगीत परिपक्वता से युक्त है। 'प्रणय-दीर्घा' से कवि के प्रणय की जो भाव-यात्रा प्रारंभ हुई, वह प्रणय के ऊबड़-खाबड़ साधना-पथ को पार करती हुई 'प्रणय-बंध' में आकर अपनी मंजिल को पा गई है। यहाँ वह असीम शांति व अपार आनंद की अनुभूति करती है। यही कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की काव्य-यात्रा में प्रणय-भाव की सार्थकता व सफलता है।

सारत: कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल की प्रणय-परक काव्य-कृतियों का अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि प्रणय-भाव उनकी कविता का प्रणय तत्त्व है। उन्होंने सच्चे अर्थों में प्रणय को जिया है, भोगा है और आत्मसात किया है उनकी अनुभूतियाँ यथार्थ पर आधारित हैं और इस कारण अत्यधिक प्रभावोत्पादक हैं। कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल ने प्रणय के अतिरिक्त सामाजिक युगबोध, प्रकृतिचित्र,

मानव-मूल्य आदि पर भी विगीतों की रचना की है। इस कारण उनके वर्ण्य-विषय में विविधता है। यह विषयपरक विविधता कवि की प्रतिभा के बहुमुखी आयाम प्रस्तुत करती है और समीक्ष्य काव्य कृतियों की एकरसता का परिहार करती है। इसके कारण रचनाएँ अधिक सरस बन सकी हैं।

समीक्ष्य काव्य-कृतियों के शीर्षक सुविचारित हैं। कवि ने शीर्षकों का चयन रचना की प्रकृति और वस्तु के अनुसार किया है। शीर्षक आकर्षक होने के साथ-साथ लाक्षणिकता से संपन्न है। इन रचनाओं का काव्य रूप विगीत-मुक्तक हैं। इनमें प्रस्तुत विगीत मुक्तकों के लक्षणों से सर्वांगत युक्त है। कवि की रचनाधर्मिता के विविध-सोपानों का दर्शन भी इन कृतियों के अनुशीलन से होता है। कवि की विचारधारा का क्रमिक विकास समीक्ष्य रचनाओं में स्पष्ट रूप से अंकित हुआ है। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि ये काव्य-कृतियाँ अपनी सरस अभिव्यक्ति के कारण काव्यजगत में विशेष महत्त्व की हैं।

संदर्भ

1. प्रणय-दीर्घा, 'अशोक' शीर्षक से उद्‌धृत
2. प्रणय-दीर्घा, 'प्रणय परिधि पर' शीर्षक से उद्‌धृत
3. प्रणय-दीर्घा, पृ॰ 8
4. प्रणय-दीर्घा, पृ॰ 18
5. कवि श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल और उनका साहित्य, पृ॰ 21
6. प्रणय-दीर्घा, पृ॰ 30
7. प्रणय-दीर्घा, पृ॰ 41
8. प्रणय-योग, प्राक्कथन से उद्‌धृत
9. प्रणय-योग, 'छोटी सी बात' से उद्‌धृत
10. प्रणय-योग, 'प्रकाशक की ओर से' से उद्‌धृत
11. राग-विराग, पृ॰ 83
12. प्रणय-योग, जयप्रकाश तिवारी का अभिमत
13. कवि श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल और उनका साहित्य, पृ॰ 22
14. सूर-सागर, पृ॰ 565
15. प्रणय-योग, पृ॰ 4
16. प्रणय-योग, पृ॰ 47
17. कवि श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल और उनका साहित्य, पृ॰ 23
18. बिहारी सतसई, पृ॰ 243
19. प्रणय-बंध, पृ॰ 17
20. प्रणय-बंध, पृ॰ 27
21. प्रणय-बंध, पृ॰ 13
22. प्रणय-बंध, पृ॰ 25
23. प्रणय-दीर्घा, 'प्रणय परिधि पर' से उद्‌धृत
24. कवि श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल और उनका साहित्य, पृ॰ 22
25. काव्य के रूप, पृ॰ 80
26. काव्य के रूप, पृ॰ 109-110

 ISSN 0975-735X

गुरु जंभेश्वर वाणी में रहस्यवाद : एक तथ्यात्मक दृष्टिकोण

परवीन कुमारी, शोधार्थी
टाँटिया विश्वविद्यालय
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

भारतीय एवं पाश्चात्य जगतिक दर्शन में रहस्यवाद का कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी प्रकार का वर्णन अवश्य मिलता है, जिसे गुह्य या गुप्त-ज्ञान कहते हैं। जब यह गुह्य-ज्ञान प्रकट होता है तो यह दुर्लभ न होकर सुलभ बन जाता है और यह गोपनीयता ज्ञान का रूप धारण करके भाषा द्वारा प्रकट होता है तब यह 'वाद' या सिद्धांत कहलाता है। इस गुप्त-ज्ञान का प्रकटीकरण ही रहस्यवाद है। डॉ॰ बी॰एन॰ सिंह कहते हैं, 'रहस्यवाद गुप्त-ज्ञान का प्रकाश ही नहीं बल्कि गुह्य अनुभूति का प्रकाश है। दर्शन के क्षेत्र में रहस्यवाद भाषा की असमर्थता बताते हुए आंतरिक अनुभूति की गहराई तक पहुँचने का प्रयास करता है। जब आत्मा और परमात्मा शुद्ध ज्ञान के क्षेत्र से निकल कर इंद्रियों के अनुभूति क्षेत्र में प्रतिष्ठित करते हैं तो उसके प्रति प्रेमानुभूति, भावानुभूति उत्पन्न होती है, यही रहस्यवाद है।'[1] भारतीय दर्शन में कहा गया है कि जब हम अंतिम सत्ता से ऐक्य की ओर बढ़ते हैं, तब रहस्यानुभूति उत्पन्न होती है, जो एक ज्योतिस्वरूप है। इस समय ध्यान की स्थिति में ध्याता का ध्येय एक ही होता है वह अंतिम सत्ता ब्रह्म या ईश्वर है।

रहस्य शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

रहस्य शब्द संस्कृत की 'रहस्य' धातु के 'असुन्य' प्रत्यय लगने से निष्पादित होता है जिसका शाब्दिक अर्थ–'विवक्त, विजन, गुह्य, गुप्त, एकांत, गूढ़ तत्त्व, निर्जन भाव तथा जो स्वयं में होता है।[2] एनसाइक्लोपिडिया इंडिका में उपरोक्त शब्द के यही अर्थ मिलते हैं।[3] ऋग्वेद में रहस्य शब्द के लिए 'रहसुरिवाग:'[4] शब्द प्रयोग किया गया है। गीता में भी इसी शब्द से इसे अभिहित करते हुए कहा गया है कि 'हे अर्जुन यह बौद्विक ज्ञान नहीं बल्कि अलौकिक ज्ञान है इसलिए मेरे रहस्य को जान।'[5] हिंदी साहित्यकोश में कहा गया है, 'अंतस्फुर्ति, परोक्षानुभूति द्वारा सत्य साक्षात्कार की अनुभूति ही रहस्यवाद है।'[6] दर्शन के अनुसार 'इस सृष्टि की अलौकिकता का ज्ञान प्राप्ति ही रहस्य है।'[7] इसी बात का समर्थन डॉ॰ राधाकृष्णन,[8] डॉ॰ बी॰एन॰ सिंह,[9] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी,[10] डॉ॰ रामकुमार वर्मा,[11] डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत[12] भी करते हैं।

पाश्चात्य दर्शन में भी रहस्यवाद के लिए Mysticism का प्रयोग हुआ है, जो यूनानी भाषा Muo[13] से बना है, जिसका अर्थ 'मैं चुप हूँ।' इसे Mum से भी माना गया है। इसका अर्थ 'चुपचाप साधना करना है।' कुछ दार्शनिक इसे ग्रीक भाषा Mystas से भी मानते हैं, जिसका अर्थ 'गुरु से गूढ़ रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना है।[14] ऑक्सफोर्ड कोश इसके लिए अंतर्दृष्टि, ईश्वर से संबंध, गूढ़ तत्त्व शब्द माने गए हैं।[15] रहस्यवादी दार्शनिकों ने भी रहस्यवाद की परिभाषाएँ दी हैं। दार्शनिक फ्लीडर का कहना है कि, 'आत्मा-परमात्मा के एकत्व प्रत्यक्ष चेतना ही रहस्यवाद है।[16] प्रिंगल

पेटिशन कहते हैं, 'मानव मस्तिष्क द्वारा अंतिम सत्य की प्राप्ति ही रहस्यवाद कहलाती है, जिसमें व्यक्ति आनंद प्राप्त करता हुआ धार्मिक पक्ष का अनुभव करता है।'[17] केयर्ड ने रहस्यवाद को मानव मन की विशेष प्रवृत्ति मानते हुए बताया, 'आत्मा का परमात्मा में विलीन होना ही रहस्य है।[18] नेटलशिप बताते हैं कि जिस तत्त्व का हम अनुभव करते हैं, वह केवल एक तत्त्व है, जिससे आत्मा किसी अन्य की ओर इंगित करती है यही रहस्य है।[19] प्रोफेसर ब्राईटमेन ने समस्त परिभाषाओं का सार बताते हुए कहा है कि रहस्यवाद दैवीय सत्ता आत्मा और परमात्मा की साक्षात् अनुभूति है।[20] अंडरहिल कहते हैं, 'यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य अपने पूर्ण प्रेम को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है और फिर निरपेक्ष सत्ता से ऐक्य स्थापित करता है।'[21] इसी प्रकार रहस्यवादी रसेल, ओटोरूडोल्फ तथा टी स्टेस भी ऐसा ही मानते हैं।[22]

भारतीय दर्शन में रहस्यवाद को दो भागों भावात्मक और साधनात्मक में बाँटा गया है। भावात्मक रहस्यवाद में प्रेम आस्तिकता, आध्यात्मिकता हृदय के अंतरहस्यों के ज्ञान द्वारा उपास्य की एक्यानुभूति व आंनदोपलब्धि प्राप्त करना है। इसलिए कहा गया है कि 'आस्तिकता ही रहस्यवाद की आधारशिला है। इसके बिना रहस्यवाद की साधना आगे बढ़ नहीं सकती। यह अंतर्मुखी है। बहिर्मुखी पक्ष हेतु इंद्रियों की आवश्यकता होती है। गहराई से देखने पर स्पष्ट होता है कि दोनों पक्षों का एक ही लक्ष्य अंतिम सत्ता को प्राप्त करना है जो अनिर्वचनीय है। जब जीव को अतींद्रिय का ज्ञान हो जाता है तब वह समस्त सृष्टि की अनेकता में एकता का अनुभव करता जिसे वह वर्णन करने मैं असमर्थ होता है तथा साधक परमशक्ति की ओर अग्रसर होता है, उसे किसी प्रकार का भान नहीं रहता। इस स्थिति में धैर्यता, ध्यान और धेय एक हो जाते हैं, यही अद्वैत समाधि कहलाती है। साधना पक्ष में ध्याता ब्रह्म को प्राप्त करने की कोशिश करता है जिससे उसे अनिर्वचनीय का ज्ञान होता है, फिर वह उस रहस्य क्षेत्र को जानने की कोशिश करते हुए अपनी अस्मिता को पहचानते हुए स्वयं रूप की ओर बढ़ता है। रहस्यात्मक ज्ञान होने पर साधक यह जान लेता है कि बह्म ज्ञान तो गूँगे के गुड़ के समान है। उसका अनुभव तो नाम और नाद द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। विश्व के मुख्यत: सभी दार्शनिकों ने रहस्य शब्द का अर्थ गूढ़ या गुप्त माना है। इसमें प्रत्यय के अभाव के कारण मनुष्य की जिज्ञासा हमेशा अनंत और असीम की ओर बनी रहती है इसलिए वेदों में इसे 'कस्मै देवाय: हविषा विधेयं'[23] कहा गया है। इसी जिज्ञासा का वर्णन गुरु जंभेश्वर जी की वाणी में भी मिलता है। कहते हैं कि उस अनंत, असीम, निराकार, शून्यरूप को कैसे और किस साधना से प्राप्त किया जाए, क्योंकि वह तो स्वयंरूप ही है।[24] यह आत्मा कहाँ से आता है, कहाँ जाता है।[25] यह सृष्टि जो अनेकता में है परंतु सभी एक ब्रह्म द्वारा ही रची गई है।[26] यह सृष्टि रचना-संबंधी एक रहस्यवाद है। गुरु जंभेश्वर जी रहस्यवादी शैली में कहते हैं, ब्रह्म सभी संबंधों से रहित है उसके कोई माता-पिता, सगा-संबंधी नहीं है। वह तो स्वयं में ही निरंजन रूप है।[27] जीव के दस द्वार हैं किस द्वार से कौन आता है, कोई नहीं जानता।[28] जिसने षट्विकारों पर विजय पा ली है वही उसे जान सकता है।[29] गुरु जंभेश्वर जी ने इसे प्रतीक रूपों में बताया है।[30]

रहस्यक्षेत्र

गुरु जंभेश्वर जी ने स्वयं को विष्णु का अवतार बताते हुए अपनी लीला से धर्म की रक्षा हेतु इस धरा पर जन्म लिया। गुरु जंभेश्वर वाणी में रहस्य क्षेत्र के दो रूप 'पिंड और ब्रह्मांड'[31] दिखाई पड़ते हैं। पिंड (शरीर) वह क्षेत्र है जिसमें सप्तचक्र[32] (मूलाधार से सहस्त्र चक्र) तक रहते

हैं जिन्हें आकाश, अवजूं मंडल नामों से पुकारा गया है तथा ब्रह्मांड रूप में जहाँ ब्रह्म का निवास है वही अंजू मंडल[33] है। आगे कहते हैं कि यह शरीर एक रहस्य और गुह्य रूप है इसे तो ज्ञानी जन ही गुरु की कृपा से जान सकते हैं।[34] भारतीय दर्शन में जिस प्रकार कुंडलिनी का वर्णन किया गया है उसी प्रकार गुरु जंभेश्वर जी ने भी कुंडलिनी शिवलिंग से चलकर परम शिव तक जाने का वर्णन करते हुए कहा है कि उर्ध्वमुखी कमल उलटकर सीधा हो गया है जहाँ हमेशा अमृत बरसता है और अनहदनाद गूँजता है, आत्मा ब्रह्म का अनुभव करता है।[35] अन्य योगियों की तरह गुरु जंभेश्वर जी ने भी इस रहस्य क्षेत्र को कोट, रतनकाया, हंस, मोती कहते हुए बताया कि जहाँ जीव परमात्मा का मिलन होता है वहीं विष्णु (ब्रह्म) निवास करते हैं। काया कंचन होकर आलोकिक हो जाती है।[36] यह ब्रह्म शरीर में निवास करता है इसे पहाड़ों, जंगलों आदि में नहीं ढूँढना पड़ता, इसे तो राजयोग से प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने हठयोग की आलोचना करते हुए कहा कि जो लोग ब्रह्म (विष्णु) को हठयोग से प्राप्त करने की कोशिश करते हैं वे भ्रम जाल में फँसे हुए हैं, वे पाखंडी हैं, शरीर को कष्ट देते हैं इससे ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।[37] फिर उन्होंने 'शून्य समाधि' का वर्णन करते हुए बताया है कि यह शून्य समाधि निर्विकल्प भावभूमि है, जिसे उन्होंने 'गिगन पियाके' कहा है।[38] इस 'गिगन पियाके' में धरती, आकाश, सूर्यचंद्र आदि कुछ भी नहीं वहाँ तो केवल धंधूकार ही है, वहाँ करतार स्वयं ही वास करते हैं जहाँ साधक पहुँचकर उसी (विष्णु) के समान हो जाता है।[39]

अनिर्वचनीयता

वेद, उपनिषदों में कहा गया है कि रहस्यवाद वह अपूर्व स्थिति है, जहाँ वाणी पहुँचकर वापिस लौट आती है।[40] इसी का समर्थन करते हुए गुरु जंभेश्वर जी कहते हैं कि जीव ब्रह्म का अनुभव करते हुए उसे (विष्णु)को अपने से अलग नहीं समझता। उसके अनंत गुण,[41] असीम, निरंजन[42] घर-घर[43] में व्याप्त वाणी और इंद्रियों से परे है।[44] उसका ज्ञान तो सच्चे गुरु द्वारा बताए गए नाम जाप से ही हो सकता है।[45] कुछ लोग उसे पाखंडों से जानने का प्रयत्न करते हैं लेकिन वे यह नहीं जानते कि जो वे कर रहे हैं उससे उन्हें ब्रह्म (विष्णु) की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि वह तो अभिव्यक्ति से परे हैं। उसके अनेक नाम, रूप, गुण है उसके बारे में जितना विचार किया जाए उतना ही कम है।[46] मन में आकांक्षा रहते हुए उसके बारे में जीव कुछ भी वर्णन नहीं कर सकता। उसका ज्ञान सीमित पोथी से भी परे है क्योंकि वह तो असीम है। उसे किसी प्रतीक या मूर्ति द्वारा नहीं जाना जा सकता क्योंकि वह तो देश-काल से परे है।[47] जब उस असीम का जीव को ज्ञान हो जाता है वह अपने को आनंदित महसूस करता हुआ उसे अपने समान समझता है।[48] अगम, अथाह, निराला होने के कारण उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह तो वाणी से परे है, वाणी उसे कहने में असमर्थ है।[49] सच्चा गुरु ही उसे पहचान सकता है।[50] जानने के बाद उसे वाणी द्वारा नहीं बताया जा सकता वह तो अनिर्वचनीय है।[51] उसकी न तो मूर्ति बनाई जा सकती है और न ही प्रतीक। इसलिए गुरु जंभेश्वर जी ने मूर्ति पूजा का खंडन किया है।[52] अतींद्रिय द्वारा उस अनाम, अगोचर, अमोनी का अनुभव करना गुरु जंभेश्वर जी का अनोखा रहस्यवाद है।

स्वयंरूप

गुरु जंभेश्वर जी ने ब्रह्म (विष्णु) को अनंत, असीम, निराकार, निरंजन, अलख, अलेख, अरेख बताते हुए कहा है कि वह (विष्णु) स्वयं के स्वरूप को स्वयं ही जानता है तथा स्वयं में

ही निवास करता है जो रंग रूप है वे उसी से ही पैदा होते हैं।[53] वही सच्चा, निर्गुण, निराकार स्वयं में निवास करते हुए समस्त सृष्टि का संचालन करता है।[54] उन्होंने ब्रह्म को सत्य तथा जगत को मिथ्या बताते हुए कहा है कि समस्त संसार धुंध के समान नश्वर है जो वस्तु में शाश्वत दिखाई पड़ती है, वे अवश्य ही नष्ट होगी। ये तो केवल मात्र उसी ब्रह्म की ही ज्योति है।[55] यह मकड़ी और जाले के समान है, वह स्वयं ही सृष्टि को पैदा करता है, स्वयं ही उसे समेट लेता है और स्वयं ही उसे समझता है, स्वयं समझता है, ध्येता है, स्वय ही श्रोता है, स्वयं ही कर्ता, भर्ता, हर्ता है।[56] वाणी में जगह-जगह कहा गया है कि सच्चा योगी वही है जो उसके अनहदनाद को सुनता हुआ उसमें एकाकार हो जाता है।[57] ब्रह्म (विष्णु) भक्तों के कष्ट निवारण हेतु अवतार धारण करते हैं।[58] आत्मा नश्वर शरीर को छोड़कर जहाँ जाता है वह उसी रूप में समा जाता है। इस प्रकार गुरु जंभेश्वर जी ने ब्रह्म (विष्णु) की स्वयं रूपता को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है।

अस्मिता

दार्शनिकों ने ब्रह्म की अस्मिता को भी एक रहस्य रूप माना है। गुरु जंभेश्वर जी ने अवतारवाद की परिकल्पना करके भक्तों के लिए ब्रह्म आसान कर दिया है, परंतु निर्गुण संतों के लिए यह मार्ग दुरूह हो जाता है। गुरु जंभेश्वर जी की वाणी का अध्ययन करने पर पता चलता है कि सगुणर्निगुणोपासना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। कहते हैं कि कहाँ से आए थे कहाँ जाएँगे जीव का वास कहाँ है, इसके बारे में जीव नहीं जानता। गुरु जंभेश्वर जी इसका उतर देते हुए कहते हैं कि जीव ब्रह्म (विष्णु) से पैदा होता है और उसी में समा जाता है। इस प्रकार के उत्तर उन्होंने शास्त्रार्थ द्वारा दिए हैं और कहा है कि वह (विष्णु) अपनी गति स्वयं जानता है, स्वयं में प्रकट है और गुप्त भी।[59] भक्तजन उसे जानने की कोशिश करते हैं, इसलिए उन्होंने उसके लिए रतन-मोती, हीरा, रतनकाया, कोट से अभिहित किया है।[60] ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी अपनी पहचान स्वयं कराता है। कहते हैं कि वह अंजन है लगाने पर वह (जीव) निरंजन में समा जाता है।[61] निर्गुण होते हुए भी वह घट-घट में समाया हुआ है। गुरु सबद द्वारा उसे जाना जा सकता है, इसके लिए जीव का शुद्धाचरण, सरल स्वभाव व साधना की आवश्यकता होती है।[62] अत: जीवात्मा ही ब्रह्म है। इसलिए (विष्णु) रूपी रत्न की पहचान ब्रह्म की पहचान है।[63] इसलिए गुरु जंभेश्वर जी के मार्मिक दार्शनिक दृष्टिकोण को डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी ने न तो पूर्ण सगुणवादी और न ही निर्गुणवादी कहा बल्कि समन्वयवादी कहा है।[64]

मुकास्वादन

निर्गुण संतों का एक मात्र साध्य, अचिंता, निराकार, निरंजन, अलेख, अखंड ब्रह्म ही रहा है। गुरु जंभेश्वर जी ने ज्ञान-भक्ति-कर्म मार्ग द्वारा इसकी प्राप्ति का सरल मार्ग बताया है। कहा है कि कोरे शास्त्रीय ज्ञान से ब्रह्म को नहीं जाना जा सकता। ऐंद्रिक सत्ता को अभिकेंद्रित करके ब्रह्म के गुह्य रूप को जाना जा सकता है।[66] फिर कहते हैं कि ब्रह्मरूपी रस को मुकास्वादन व गुणगान नाम रस प्राप्त करके ब्रह्मनाद द्वारा जाना जा सकता है। इसलिए इनकी वाणी उपासना से भरी दिखाई पड़ती है।[67] गुरु जंभेश्वर जी ने भक्ति का रूप अपनी वाणी में सरल रूप से रखकर कहा है, 'हे मनुष्य विष्णु का भजन कर जैसे एक-एक पैसा जोड़ने पर लाखों रुपए बन जाते हैं उसी प्रकार विष्णु का एक-एक नाम जाप से मृत्युरूपी डर भाग जाएगा और मोक्ष की प्राप्ति होगी।'[68] इससे स्पष्ट होता है कि गुरु जंभेश्वर जी की भक्ति भावना भी मुकास्वादन को प्रकट करती है।

नामस्वादन व नादास्वादन

जीव कान द्वारा सुनकर जिह्वा द्वारा नाम को उच्चारित करके नामास्वादन प्राप्त करता है। इससे जीव साधनावस्था को अपनाकर नाम जाप द्वारा ब्रह्म (विष्णु) को प्राप्त करता है। यही महान रहस्य है।[69] जीव परम सत्ता में एक रूप हो जाता है जो एक श्रेष्ठ साधन है, रसों का रस है, इससे मन आनंदित हो उठता है।[70] वाणी में नाम जाप का जगह-जगह वर्णन किया गया है। सच्चे गुरु द्वारा दिए गए शब्दरूपी नाम से जीव तृप्त होकर सहजावस्था को प्राप्त होता है।[71] उसके सब भ्रम दूर हो जाते हैं तथा इस अदृश्य, अलेख, अरेख, अनाम ज्योति की प्राप्ति हो जाती है।[72] इसके बाद जीव को नाद सुनाई पड़ता है, जिसे सिद्धावस्था कहते हैं। इस स्थिति में जीव केवल अनहदनाद ही सुनता है, उसका एकमात्र साध्य ब्रह्म (विष्णु) ही रह जाता है। कहते हैं कि यह वह स्थिति है जहाँ मन, बुद्धि एकाग्रचित होकर आत्मलीन हो जाता है। यह मार्ग केवल गुरु ही बता सकता है।[73] इस अवस्था में जीव को अंतर्ज्ञान प्राप्त हो जाता है, चितवृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं, इस स्थिति को 'सुरति-निरति' की अवस्था कहते हैं।[74] इस समय कुंडलिनी उर्ध्वावस्था से ऊपर उठकर कमल सीफा हो जाता है, केवल अमृत वर्षा होती है, कुंडलिनी सहसनाद में पहुँच जाती है वहाँ केवल अनहदनाद ही सुनाई पड़ता है।[75] यह स्थिति वैसी ही हो जाती है जैसे जल में मच्छली जल में गोते खाते हुए अनजान रास्तों में चली जाती है।[76] इस अवस्था में जीव के षट्विकार नष्ट हो जाते हैं, मन आनंदित हो उठता है, यहाँ पाखंडों का नामोनिशान नहीं रहता। यही अनहदवाद या नादास्वादन, सिद्धावस्था की अंतिम स्थिति है जहाँ ब्रह्म और जीव एकाकार हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि गुरु जंभेश्वर जी ने साधक को बहिर्मुखी अवस्था से भावात्मक स्थिति में अवस्थित करके अंतर्मुखी अवस्था में ला दिया है तथा सिद्धावस्था की प्राप्ति करवा दी है। मेरा शोध-पत्र मात्र छाया प्रति है लेकिन गुरु जंभेश्वर जी ने जो रहस्यवाद प्रस्तुत किया है अपने-आपमें गहन शोध का विषय है। जिस पर शोधार्थी आगे गहराई से शोध कर सकते हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ बी॰एन॰ सिंह, धर्म दर्शन, पृ॰ 162
2. वमन आप्टे, संस्कृत हिंदी कोश, पृ॰ 856
3. Nagender Nath Vasu, Encyclopaedia Indica, Vol.19, P. 19
4. ऋग्वेद, 2/29/1
5. मद्भगवद्गीता, 6/10, 18/63-65
6. डॉ॰ रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृ॰ 635
7. दर्शन कोश, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृ॰ 531
8. Radha Krishanan, Eastern Religion and Western Thought, P.35.
9. डॉ॰ बी॰एन॰ सिंह, वही, पृ॰ 163
10. आचार्य परसुराम चतुर्वेदी, रहस्यवाद, पृ॰ 25
11. डॉ॰ रामकुमार वर्मा, कबीर का रहस्यवाद, पृ॰ 6
12. डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा, पृ॰ 236
13. Encylopaedia Britanica, Vol.IX. P. 29, Encylopaedia American, Vol.XXI, p. 237
14. Laxcon Encylopaedia, Vol.XIII p. 693

15. Encylopaedia Social Sciences, Vol. Ix. p. 175
16. Mysticism in Religion, Dean Inge, p. 25
17. Pringle Pattism, Mysticism, p. 25
18. Caird, Evoluation to Theology, p. 210
19. R.L.Nattleship, Mysticism in Religion, p. 25
20. Brightman, Philosophy of Religion, p. 45
21. E.Underhill, Mysticism, p. 81
22. Otto Rudolof, Mysticism in East and West, p. 392
23. ऋग्वेद, 2/116/12
24. डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी, जंभो जी की सबदवाणी, (मूल टीका)93/4-7
25. वही, 25/5-6, 9
26. वही, 83/22
27. वही, 5/6, 40/3, 17/4-5, 103/7, 104/3, 63/41-59
28. वही, 106/7-10
29. वही, 108/1, 109/4-5
30. वही, 3/17, 13/11, 19/1, 21/3-22, 61/34, 85/8-9, 98/3-4, 107/20
31. वही, 17/2, 40/4
32. वही, 106/13-16
33. वही, 7/37-38, 10/3-56, 64/7-11, 81, 99/8, 117/11, 123/2, 104, 112/4-6,
34. वही, 20/3, 21/3-6, 98/4
35. वही 3/1-29, 17/1-6, 19/1-28, 27/64-65, 40/1-10, 43/1-4, 57/5-8, 89/1-6, 106/15-21, 94/1, 63/34-35, 117/10-11
36. वही, 21/5-19, 22/3, 23/9, 98/8, 122/2
37. वही, 45/1-11, 46/7-8, 47/2, 48/15-20
38. वही, 19/11, 106/21
39. वही, 3/21-22, 95/2
40. तैत्तिरियोपनिषद्
41. जंभो जी की सबदवाणी
42. वही, 3/26-27, 121/1
43. वही, बाकक मंत्र, गुरु मंत्र, विष्णु मंत्र
44. वही, 107/13-14
45. वही, 1/1-20, 119, 120, 121, 122
46. वही, 3/26-27, 63/30-31, 121/1
47. वही 25/4
48. वही, 5/8-11
49. वही, 951-3
50. वही, 11/4-5, 21/3-22, 85/8-9, 107/20, 98/3-4
51. वही, 2/6, 39/16, 104/2

 ISSN 0975-735X

52. वही, विस्तृत द्रष्टव्य, पाखंड विरोध
53. वही, 3/1-15, 63/58, 95/1-42
54. वही, 63/66-67
55. वही, 31/7, 19/11, 66/40, 77/2
56. वही, 3/23-29, 63/66-67
57. वही, 1/3, 19/11-27, 70/5, 79/5, 94/1
58. वही, विस्तृत द्रष्टव्य, अवतारवाद
59. वही, 27/15-18, 20/1-4, 93/1
60. वही, 5/2, विष्णु के अनेक नामों हेतु देखे, डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी, जंभो जी विष्णोई संप्रदाय और साहित्य पृ॰ 257, भाग-1
61. वही, 12/3
62. डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी, जंभो जी की सबदवाणी, (मूल टीका), 70/1, 74/1-4, 107/4-10, 117/1-2
63. वही, 107/13-16
64. वही, भूमिका, पृ॰ 36
65. वही, 57/1, 25/4
66. वही, गुरु मंत्र
67. वही, 5/8-11, 91/10, 108/3
68. वही, 120/1-4, 122/1-2, संध्या मंत्र, विष्णु मंत्र
69. वही, उपर्युक्त
70. वही, 119/1, 120/1-4
71. वही, 91/10
72. वही, 108/1-3
73. वही
74. वही, 5/8-11, 40/1-2, 123/2
75. वही, 94/1-2, 1/3
76. वही, 27/1-2
77. वही, 106/3-21

धूमिल की लंबी कविता 'पटकथा'

आर॰ रमेशकुमार और डॉ॰ ल॰ तिल्लै सेल्वी

जब पुराने काव्यरूप नए कथ्य को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं तो रचनाकार नए युग के अनुकूल भावाभिव्यक्ति के लिए नए काव्यरूप की तलाश करता है। लंबी कविता आधुनिकयुग की देन है, जो इधर आवश्यक साबित हुई है। कहा जा सकता है कि छोटी कविता स्वयं समकालीन सोच और संवेदना को सम्यक् अभिव्यक्ति देने में सक्षम नहीं है। अपने व्यापक अनुभवों को वृहद फलक पर प्रस्तुत करने के लिए ही लंबी कविता का जन्म हुआ है ।

माना जाता है कि नए अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए एक ऐसे काव्यरूप की खोज जारी हुई, जिसमें नए जीवन-विधान की आहट हो, साथ ही साथ वह क्लासिकल कलारूपों की रूढ़िवादिता से भी पूर्णतया मुक्त हो। इसी खोज के दौरान 'लंबी कविता' जैसा काव्यरूप सामने आया। आधुनिक अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए यह काव्यरूप सक्षम सिद्ध हुआ। लंबी कविता के मूल्यांकन व विवेचन में उसके अपने विशिष्ट संरचनात्मक गुणों–अन्विति, नाटकीयता, विचार, बिंब आदि को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है, तभी हम लंबी कविता के स्वरूप को सही तौर पर विवेचित कर सकते हैं।

दूधनाथसिंह ने प्रबंधकाव्य और लंबी कविता के आपसी संबंध को रेखांकित करते हुए लिखा है–'लंबी कविता वह कविता है, जिसमें काव्य का विकास प्रवाह एक सार्थक सोची हुई परिणति हो, जिसमें किसी झीने कथात्मक आधार पर अपने विचार चिंतन को नए अर्थों से प्रकाशित करने की रचनात्मक योजना कवि ने क्रियान्वित और प्रतिफलित की हो। यह पुरानी प्रबंधात्मकता से मुक्ति की पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी में किसी भी पौराणिक, ऐतिहासिक या मिथिकल संदर्भ का पूर्णतया बहिष्कार हुआ। कथ्य के इस आख्यानगत आधार के बिना ही कवि ने अपने चिंतन को ही रचनात्मक स्तर पर एक कथानक आधार दिया, बल्कि चिंतन को ही कथा का रचनात्मक रूप दिया।'[1]

हिंदी में वैसे तो लंबी कविताओं की कमी नहीं है–राम की शक्ति पूजा और सरोज-स्मृति (निराला), असाध्य वीणा (अज्ञेय), परिवर्तन (सुमित्रानंदन पंत) को हिंदी की श्रेष्ठ लंबी कविताओं में गिना जा सकता है। वाणी प्रकाशन ने धर्मवीर भारती की कुछ कविताएँ 'कुछ लंबी कविताएँ' शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रकाशित की है।

लंबी कविता की अवधारणा छायावादकाल की है। कोई इसे 'परिवर्तन' से आरंभ मानता है तो कोई इसे 'प्रलय की छाया' से। कुछ आलोचक 'राम की शक्ति-पूजा' से लंबी कविता का आरंभ मानते हैं। लंबी कविता की परंपरा को मुक्तिबोध के बाद, राजकमल चौधरी की 'मुक्ति-प्रसंग' और धूमिल की 'पटकथा' आगे बढ़ाती है।

सुदामा पांडेय 'धूमिल' के तीन ही कविता-संग्रह हैं, पर वे सारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था और देश की स्थितियों को नापने में सफल रहे। इनकी कविताओं में सहज, सरल और चोटिल

 ISSN 0975-735X

भाषा के वाग्बाण हैं, जो पढ़ने और सुननेवाले को घायल करते हैं। कविताओं में संवादात्मकता है, प्रवाहात्मकता है, प्रश्नार्थकता है। धूमिल भारत की उस जमीन के कवि हैं, जिस पर एक किसान अपने पसीने से धान बोता है। धूमिल उस कारखाने के कवि हैं जिसमें काम करते हुए एक मजदूर मर जाता है और अगले दिन का अखबार चमड़ी को गोरा करनेवाली क्रीम के विज्ञापन से भरा होता है।

धूमिल अपनी कविताओं में संसद से लेकर संविधान तक को सड़क पर लाने की बात करते हैं क्योंकि देश का लोक सड़क पर है तो तंत्र बंद किताबों और कमरों में नहीं चल सकता। कविता के लिए धूमिल ने नई भाषा और नैतिकता की नई परिभाषा गढ़ी है। उनकी भाषा इतनी खुरदरी है कि पढ़ते वक्त कई बार पाठक की जबान भी छिल जाती है। उनकी कविता हमारी समझ और संवेदना, जो होता है उसके लिए हमारी जिम्मेदारी के अहसास को बढ़ानेवाली है। वह हम पर अपना बोझ नहीं डालती और न ही किसी नैतिक ऊँचाई से हमें आतंकित करने की चेष्टा करती है। उसमें आत्मदया नहीं, बेबाकी है। दोषारोपण नहीं, आत्मालोचन है । वह हमारी सहचारी कविता है और हर समय उसे पढ़ते हुए हम इस विस्मय से भर जाते हैं कि वह हमसे हमारी तकलीफ, संघर्ष, बेचारगी और जिम्मेदारी की कथा कहती है और ऐसे कि कवि और हम दोनों का ही वह जैसे शामिलात खाता है ।

आजादी के बाद सालों गुजरे पर आम आदमी के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, अतः सारा देश मोहभंग के दुःख से पीड़ित हुआ। इस पीड़ा को धूमिल ने 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' इन तीन कविता-संग्रहों की कई कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी कविता में पीड़ा और आक्रोश देखा जा सकता है। धूमिल की यह कविता हमारे लोकतंत्र की एक गहरी आलोचना है, इसलिए वह उनकी दूसरी बहुचर्चित कविता 'मोचीराम' की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

'मोचीराम' कविता धूमिल की सारी वेदनाओं और संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। 'पटकथा' भी राजनीति-केंद्रित कविता है। 'संसद से सड़क तक' में प्रकाशित 25 कविताओं में से 'पटकथा' उनकी बेहद महत्त्वपूर्ण और चर्चित कविता है।

'पटकथा' आम जनता के सपने, देश की आजादी और उसके सपनों के बारे में विचार करती है। देश की आजादी से लोगों ने भी कुछ सपने देख रहे थे, किंतु उनके सपने पूरे से ज्यादा अधूरे रह गए। यह कविता स्वातंत्रोत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों का चित्र-फलक प्रस्तुत करती है।

इस कविता के माध्यम से धूमिल व्यवस्था के शोषण-चक्र को उजागर करने के साथ ही लोगों को नया सोचने, समझने तथा विचारयुक्त होकर सामाजिक विसंगतियों को दूर करने की प्रेरणा भी देते हैं। यह कविता बेरहमी, बेदर्दी और बेबाकी से कई धाराओं और विचारधाराओं और उसके नाम के माला जाप करने वालों के चेहरे से नकाब हटाने का काम करती है; वहीं आम आदमी की अज्ञानता-युक्त शराफत भरी कायरता पर भी क्रूरतापूर्वक सवाल करती है।

धूमिल पर मोहभंग का असर आजादी से शुरू होता हुआ नेहरूयुग की असफलताओं के साथ गहराता जाता है। कविता का आरंभ आजादी के मोह और आकर्षण से होता है। आरंभ में ही धूमिल ने आजादी के प्रति अपने मोह को विस्तार से चित्रित किया है। वह उस आजादी के मिलने

प्रसन्नता प्रकट करता है, जिससे उसे बहुत उम्मीदें हैं–

मैंने कहा आजादी
मुझे अच्छी तरह याद है/ मैंने यही कहा था
मेरी नस-नस में बिजली/ दौड़ रही थी
उत्साह में/ खुद मेरा स्वर
मुझे अजनबी लग रहा था
मैंने कहा–आ-जा-दी
और दौड़ता हुआ खेतों की ओर गया।
वहाँ कतार के कतार
अनाज के अंकुर फूट रहे थे।[2]

वस्तुत: जब कवि के पास अनुभवों की विशदता और गहराई आ जाती है, तब रचनाकार पर बाहर-भीतर के अत्यधिक दबाव पड़ते हैं, जिसकी सम्यक अभिव्यक्ति छोटी कविता में नहीं हो पाती है उनका अनुभावन लंबी कविता में उतर आता है। लंबी कविता और छोटी कविता में सिर्फ आकार का अंतर ही नहीं होता, बल्कि दृष्टि, संरचना और भावबोध में भी मिलता है। विशेष बात यह भी है कि लंबी कविता बहुआयामी होती है और इसीलिए इसमें कवि की सर्जनात्मक ऊर्जा भी सक्रिय होती है। वैसे ही आजादी मिलने के बाद कवि को आनंद होता है और मन में एक नया उत्साह जाग्रत होता है। वे लिखते हैं–

मैंने दरवाजे के बाहर
एक पौधा लगाया और कहा–
वन महोत्सव
और देर तक/ हवा में गरदन उचका-उचकाकर
लंबी-लंबी साँस खींचता रहा
देर तक महसूस करता रहा/ कि मेरे भीतर
वक्त का सामना करने के लिए
औसतन, जवान खून है
मगर, मुझे शांति चाहिए
इसलिए एक जोड़ा कबूतर लाकर डाल दिया
'गूँ..गुटरगूँऽ गूँऽ गुटरगूँऽ'
और चहकते हुए कहा/ यही मेरी आस्था है
यही मेरा कानून है।
इस तरह जो था उसे मैंने/ जी भरकर प्यार किया
और जो नहीं था/ उसका इंतजार किया।[3]

यह कविता पूर्व निर्धारित शास्त्रसम्मत सिद्धांतों को आधार बनाकर नहीं लिखी जाती, बल्कि नई जमीन तोड़ने की कोशिश का परिणाम है। इसमें गतिशील यथार्थ से भी हमारा साक्षात्कार होता है, जो विशेष उल्लेखनीय है। धूमिल की लंबी कविता कवि के जटिल आत्मसंघर्ष का प्रमाण होती है। कविता का आकार आज के कवि के लिए ढाँचे या शिल्प का

प्रश्न नहीं है। आजादी के लगभग दो दशक मोह और आशावाद में दूबे दिखाई देते हैं। भारत का बुद्धिजीवीवर्ग इसी आशावादिता के कारण एक नए भारत एक नए समाज और एक नई राजनीति का स्वप्न देख रहा था। वह सोचता है कि–

मैंने इंतजार किया–
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी।
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट-घुटकर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है
जैसा पहले हुआ करता था
सूर्य, हमारा सपना है
मैं इंतजार करता रहा..
इंतजार करता रहा...
इंतजार करता रहा...।[4]

आम आदमी का आक्रोश कवि की वाणी में घुलता है और शब्द रूप धारण कर कविताओं के माध्यम से कागजों पर उतरता है। बिना किसी अलंकार, साज-सज्जा के सीधी, सरल और सपाटबयानी आदमी की पीड़ाओं को अभिव्यक्त करती है। आजादी के बाद स्वतंत्र भारत की सत्ता अँग्रेज पूँजीपतिवर्ग के हाथ से निकलकर भारतीय पूँजीपति के हाथ में आ गई थी, जिसके हित आम आदमी के हितों से अलग थे। भारतीय आजादी की इन विसंगतियों को समझकर ही आजादी का स्वागत करने और उससे उम्मीदें लगाने की जरूरत थीं। कवि विश्वास करते थे कि आजादी कम-से-कम मूलभूत जरूरतों की पूर्ति अवश्य करेगी, परंतु आजादी जनतंत्र जैसे शब्द उसे अर्थहीन लगने लगा। इसलिए उस स्थिति का वर्णन यों करते हैं–

दिन बीतते रहे...
मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया।
मेरा सारा धीरज
युद्ध की आग से पिघलती हुयी बर्फ में
बह गया।
मैंने देखा कि मैदानों में
नदियों की जगह

मरे हुये साँपों की केंचुली बिछी हैं
पेड़-टूटे हुए रडार की तरह खड़े हैं
दूर-दूर तक
कोई मौसम नहीं है
लोग–
घरों के भीतर नंगे हो गए हैं
और बाहर मुर्दे पड़े हैं
विधवाएँ तमगा लूट रहीं हैं
सधवाएँ मंगल गा रही हैं
वन-महोत्सव से लौटी हुई कार्यप्रणालियाँ
अकाल का लंगर चला रही हैं
जगह-जगह तख्तियाँ लटक रहीं हैं–
'यह श्मशान है,यहाँ की तश्वीर लेना
सख्त मना है।'[5]

यहाँ रचना-प्रक्रिया एक ऐसी आंतरिक खोज में बदल जाती है, जहाँ सभी उलझी हुई जटिल मगर ठोस सच्चाइयाँ अपनी अलग-अलग पहचान बनाते हुए प्रतीक और विषम बिंबमालाओं में रूपाकार ग्रहण करती हैं। नए-नए अनुभवों से साक्षात्कार की तरह उभरती है। यह प्रक्रिया बहुत जटिल है, लेकिन इस प्रक्रिया के बीच गुजर कर लंबी कविता के लघु कलेवर से सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए रचनात्मक संघर्ष की एक समूची प्रक्रिया अपने अपरिहार्य विस्तार के कारण समा नहीं पाती।

यहाँ कीचड़ और काँच से बने होने में जनता के प्रति घृणा-भाव की अभिव्यक्ति हुई है। दूसरों की सुविधा के लिए अपनी पीठ पर बोझा ढोने और हरेक की हाँ में हाँ मिलाने में उसकी ताकत और समझ दोनों को नाकारा गया है। धूमिल ने उसी जनता को संघर्ष शक्ति रहित मान लिया है जिस ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई थी। धूमिल स्वयं इसी जनता का हिस्सा हैं फिर भी इसे भेड़ मान लेते हैं–

मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का
सबसे बड़ा बौद्धमठ
बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है
अखबार के मटमैले हासिए पर
लेटे हुए, एक तटस्थ और कोढ़ी देवता का
शांतिवाद, नाम है
यह मेरा देश है...
यह मेरा देश है...
हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक/ फैला हुआ
जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब–

 ISSN 0975-735X

नफरत है/ साजिश है/ अँधेर है।
यह मेरा देश है
और यह मेरे देश की जनता है
जनता क्या है?
एक शब्द... सिर्फ एक शब्द है
कुहरा, कीचड़ और काँच से
बना हुआ.../ एक भेड़ है।[6]

लंबी कविताएँ वर्तमान युग की जटिलताओं को कई स्तरों पर सामने रखती हैं, अत: उसकी संरचना में जटिलता का होना स्वभाविक है। अन्विति ही वह माध्यम है, जिससे वे वर्तमान जिंदगी के संश्लिष्ट रूपों को एक साथ व्यापक स्तर पर चित्रित करने की क्षमता अपने में रखती है। डॉ॰ रघुवंश की यह मान्यता है कि 'वास्तव में लंबी कविता एक लय की अभिव्यक्ति नहीं है वरन जिंदगी की अनेक लयों की एक संश्लिष्ट लय है। उसमें जीवन और शिल्प दोनों के अनेक उतार-चढ़ाव होते हैं।'[7]

हरिनारायण व्यास कहते हैं–'उसकी कविता एक बेचैन आदमी की नफरत है। अंदर से ईमानदार आदमी की आंतरिक करुणा तथा सब कुछ ठीक और उचित होने की अभिलाषा की अभिव्यक्ति है। उसकी कविता प्रोटेस्ट की कविता है। एक वह आवाज है जो भीड़ के बीच में खड़ा होकर झूठ का विरोध करने वाले व्यक्ति के शब्दों से फूटती है।'[8] धूमिल को जनतंत्र ताकतवर द्वारा कमजोर का शोषण करने की छूट लगने लगा, इसलिए वे कह उठते हैं–

उसको समझा दिया गया है
कि यहाँ ऐसा जनतंत्र है
जिसमें घोड़े और घास को
एक-जैसी छूट है, कैसी विडंबना है,
कैसा झूठ है।
दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है,
जिसकी जान मदारी की भाषा है।
हर तरफ धुआँ है
हर तरफ कुहासा है
जो दाँतों और दलदलों का दलाल है
वही देशभक्त है
अंधकार में सुरक्षित होने का नाम है–
तटस्थता यहाँ
कायरता के चेहरे पर
सबसे ज्यादा रक्त है।[9]

लंबी कविता की संरचना में नाटकीयता एक अनिवार्य तत्त्व है। नाटकीयता के अभाव में आज के जीवन के अंतर्विरोधों से परिपूर्ण स्थितियों को उजागर नहीं किया जा सकता। लंबी

कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता है, उसके लिए नाटकीय विधान का होना आवश्यक है। स्थितियों के पीछे की स्थितियाँ, व्यवहारों, मानसिक आत्मिक क्रियाकलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान को लंबी कविता की अनिवार्य संरचना माना जा सकता है।

धूमिल ने पटकथा में जनता को कोहरा, कीचड़ और काँच कहा है। वे मानते हैं कि यह जनता कीचड़ है, जो देश के बिगड़ते हुए हालात से बेखबर पशुओं जैसा जीवन जी रही है। उन्होंने जनता को 'भेड़' की संज्ञा भी दे डाली है। उन्हें लगता है देश के राजनीतिक हालात में कहीं कोई हस्तक्षेप नहीं है और जनता केवल शोषण के लिए बनी है–

मेरी उलझनों के अँधेरे में/ एक हमशक्ल खड़ा है
मैंने उससे पूछा–'तुम कौन हो?
यहाँ क्यों आए हो?
तुम्हें क्या हुआ है?'
'तुमने पहचाना नहीं–मैं हिंदुस्तान हूँ
हाँ–मैं हिंदुस्तान हूँ',
वह हँसता है–ऐसी हँसी कि दिल/ दहल जाता है
कलेजा मुँह को आता है
और मैं हैरान हूँ
'यहाँ आओ/ मेरे पास आओ/ मुझे छुओ।
मुझे जियो/ मेरे साथ चलो
मेरा यकीन करो।
इस दलदल से बाहर निकलो!
सुनो! तुम चाहे जिसे चुनो
मगर इसे नहीं।
इसे बदलो।
मुझे लगा–आवाज
जैसे किसी जलते हुए कुएँ से/ आ रही है।
एक अजीब-सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया
अपने छौने को दूध पिला रही है
साथ ही किसी छौने का सिर चबा रही है।[10]

लंबी कविता में कथ्य से लेकर संरचना तक सर्वाधिक प्रभावी रहनेवाला तत्त्व विचार है। यही विचार तत्त्व तथ्यों, विवरणों, संदर्भों आदि को अंत:सूत्रों में पकड़ता एवं नियोजित करता है। यह विचार तत्त्व समूची इस 'पटकथा' कविता का प्राणतत्त्व है। इस कविता का कुल कथ्य आज के समाज की विरूपताओं के बीच मानव के अस्मिता की खोज है ।

हर चुनाव के बाद धूमिल को लगता है कि कोई खास फर्क नहीं है। परिवर्तन का भ्रम मात्र है, वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ है। केवल 'टोपियाँ बदल गई हैं, कुर्सियाँ वही हैं। इसीलिए

 ISSN 0975-735X

उन्हें देश की धड़कन को प्रतिबिंबित करनेवाली संसद केवल मात्र झूठ का गढ़ लगती है। धूमिल को पता है कि जनतंत्र, स्वतंत्रता, शांति, मनुष्यता ये सब सत्ताधारी वर्ग की ओर से दिए गए सुनहरे वादे हैं, जो सुनने में मोहक लगते हैं। धूमिल के व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें तीखेपन के साथ-साथ बौखलाहट जरा भी नहीं रहेगा। इस कविता में वकीलों, वैज्ञानिकों, अध्यापकों, नेताओं, दार्शनिकों, लेकखों, कवियों तथा कलाकारों के बारे में निम्न पंक्तियों के द्वारा धूमिल कहते हैं–

मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार मैंने जिसकी पूँछ
उठाई है उसको मादा/ पाया है।
वे सबके सब तिजोरियों के/ दुभाषिए हैं।
वे वकील हैं, वैज्ञानिक हैं,
अध्यापक हैं, नेता हैं, दार्शनिक हैं,
लेखक हैं, कवि हैं, कलाकार हैं।
यानी कि–
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।[11]

लंबी कविता के अंतर्गत विचार की सक्रियता कथ्य नियोजन और संरचनात्मक परिणतियों के रूप में देखी जा सकती है। जीवन परिदृश्य में व्याप्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक प्रभावों के फलस्वरूप उत्पन्न विसंगतियों, मूल्यहीनताओं, विडंबनाओं और अमानवीय स्थितियों का चयन कार्य विचार द्वारा ही फलित होता है। भारत के युद्ध का परिणाम यह हुआ कि चारों ओर अकाल, भुखमरी, गरीबी और मृत्यु का साम्राज्य फैल गया जो नेहरू की नीतियों की चरम असफलता थी।

धूमिल को तब आजादी, जनतंत्र, जनता आदि के प्रति निराशा उत्पन्न होती है और उनकी मनोस्थिति निराश-हताश व्यक्ति की मनोस्थिति के रूप में सामने आती है। इस पहेली को हल करते हुए धूमिल जनतंत्र के प्रति अपने मोहभंग को चित्रित करते हुए उसे अस्वीकार करते हैं। उनके लिए जनतंत्र ढकोसला मात्र है। इसलिए वे कह उठते हैं–

सुनो!
आज मैं तुम्हें वह सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सचाई
छोटी है। इस दुनिया में
भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
रोटी है।
मगर तुम्हारी भूख और भाषा में
यदि सही दूरी नहीं है
तो तुम अपने-आपको आदमी मत कहो

क्योंकि पशुता
सिर्फ पूँछ होने की मजबूरी नहीं है
वह आदमी को वहीं ले जाती है
जहाँ भूख
सबसे पहले भाषा को खाती है
वक्त सिर्फ उसका चेहरा बिगाड़ता है। [12]

लंबी कविता की रचना के लिए सर्जनात्मक तनाव भी आवश्यक तत्त्व है। साथ ही उसका दीर्घकालीन होना भी आवश्यक है। कवि के रचना कर्म में प्रवृत होने का आधार सर्जनात्मक तनाव होता है, जिसकी व्युत्पत्ति अनुभव और विचार के द्वंद्व से होती है। प्रत्येक कवि की अपनी अभिव्यक्ति प्रक्रिया संवेदन प्रक्रिया तनाव को पृथक ढंग से तानती एवं फैलाती है।

लंबी कविता के अंत को लेकर कई तरह की मान्यताएँ प्रचलित हैं। वस्तुत: लंबी कविता का कोई आदि या अंत नहीं होता, क्योंकि लंबी कविता वर्तमान को उसकी समग्रता में चित्रित करना चाहती है, जबकि इस समग्रता का एक दौर अतीत में होता है और एक वर्तमान में। साथ ही इन तीनों की स्थिति लगातार बदलती रहती है। काल और गति के संदर्भ में कथावस्तु की यह पहचान रचना को जीवित की निरंतरता के प्रसंग में ही सार्थकता दे पाती है। इसीलिए मुक्तिबोध यह स्वीकारते हैं कि 'उनकी कोई कविता पूरी नहीं हो सकी।' (मुक्तिबोध: एक साहित्य की डायरी, पृ० 31) धूमिल की ये पंक्तियाँ लंबी कविता के अंत की ओर संकेत करती हैं–तब उसे भविष्य तो अंधकारमय लगता ही है, अतीत भी अंधकार में डूबा प्रतीत होता है आज तक–

नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए
मैंने कई रातें जागकर गुजार दी हैं
हफ्ते पर हफ्ते तह किए हैं।
ऊब के
निर्मम अकेले और बेहद अनमने क्षण/ जिए हैं।
मेरे सामने वही चिरपरिचित अंधकार है
संशय की अनिश्चयग्रस्त ठंडी मुद्राएँ हैं
हर तरफ शब्दभेदी सन्नाटा है।
दरिद्र की व्यथा की तरह/ उचाट और कूँथता हुआ।
घृणा में/ डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी/ मेरा कारागार है।[13]

समकालीन कविता के प्रमुख आधार-स्तंभ के नाते धूमिल ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। उनकी कविता में राजनीति पर जबरदस्त आघात है। उनकी कविता में पीड़ा और आक्रोश देखा जा सकता है। आम आदमी का आक्रोश कवि की वाणी में घुलता है और शब्द रूप धारण कर कविताओं के माध्यम से कागजों पर उतरता है। बिना किसी अलंकार, साज-सज्जा के सीधी, सरल और सपाटबयानी आदमी की पीड़ाओं को अभिव्यक्त करती है। संवादात्मक और व्यंग्यात्मक शैली में लिखी धूमिल की कविताओं का केंद्र आदमी रहा है।

डॉ० नंदकिशोर नवल ने इस कविता के विषय में कहा है–'पटकथा' धूमिल के यथार्थबोध

की परिपक्वता का चरम परिणाम है। उसमें नेहरु के प्रति उनके भाव और विचार बदले हुए हैं। इस प्रसंग का जिक्र यहाँ इसलिए किया गया है कि हम धूमिल की उस प्रक्रिया से अवगत हो सकें जिसे मोहभंग की प्रक्रिया के अलावा और कुछ नहीं कह सकते।'[14] राजनीति में प्रवेश कर चुका हर एक खद्दरधारी, टोपीधारी आम आदमी के खून को चुस रहा है। वर्तमान राजनीति में राजनेताओं के चेलों की भी एक लंबी फौज तैनात हो गई है। अर्थात् संसद (राजनीति) से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति का मूलमंत्र 'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे' वाला बन चुका है। चुपचाप तुम भी खाओ और मैं भी खाता हूँ का धर्म बड़ी ईमानदारी से निभाया जा रहा है।

संदर्भ

1. दूधनाथ सिंह, निराला-आत्महंता आस्था, पृ॰ 106
2. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 100
3. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 101
4. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 102
5. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 104
6. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 105
7. कल्पना, 2 अप्रैल 1974
8. पूर्वग्रह, सं॰ अशोक वाजपेयी-मार्च-अप्रैल-1975, पृ॰ 19
9. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 106
10. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 112
11. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 126
12. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 114-115
13. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ॰ 128
14. कविता की मुक्ति, डॉ॰ नंदकिशोर नवल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं॰ 1980

रमेशकुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग
अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर 608 002
rameshjee67@gmail.com
9486916361
डॉ॰ ल॰ तिल्लै सेल्वी
हिंदी विभाग सह-आचार्या
अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर 608002

‘शब्द-कलश’ में संवेदना के विविध स्वर

संतोषकुमार, शोधार्थी
डॉ॰ महेश ‘दिवाकर’, शोध निर्देशक
श्री वेंकटेंश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला

हिंदी की साहित्य साधिका एवं विदुषी प्राध्यापिका डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल एक आदर्श भारतीय नारी हैं। साधना में रत एवं प्रचार से विरत वे निरंतर सृजनकार्य कर रही हैं। उन्होंने बहुआयामी विधाशः प्रचुर साहित्य हिंदी को दिया है। डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल स्वातंत्र्योत्तर साहित्य जगत की एक प्रखर प्रहरी हैं। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी असाधारण उपलब्धियाँ हैं। उन्होंने हिंदी के उन्नयन एवं संवर्द्धन के लिए अनेकानेक रचनात्मक कार्य भी किए हैं।

डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल की रचनाओं में सत्य, अहिंसा, प्रेम, प्रकृति, शांति एवं युद्ध, आतंक, नस्लवाद, अंतर्राष्ट्रीय सौहार्द्र, समता, सहयोग, स्वतंत्रता, आध्यात्मिकता का चित्रण, मजदूर, किसान, दलित और सर्वहारावर्ग के प्रति हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमन, जातिवाद, भ्रष्टाचार, तानाशाही, क्षेत्रवाद आदि विसंगतियों और मानवीय मूल्यों तथा सामाजिक ब्याधकीय पक्षों के विरुद्ध जनचेतना जाग्रत की। उन्होंने एक आदर्श भारतीय समाज और ‘वसुधैव कुटुंबकम’ की भावना से ओत-प्रोत भारत एवं विश्व के निर्माण के लिए अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रेरक प्रयास किया। कुल मिलाकर, साहित्यिक दृष्टि से भी उनका सांस्कृतिक प्रयास अकथनीय एवं उल्लेखनीय है। अस्तु, डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल ने समग्र मानवता के कल्याण के लिए अपने साहित्य में जो मार्ग दर्शाया है, अगर उसका अनुशरण किया जाए तो भारत ही नहीं समग्र विश्व का कल्याण हो जाए।

डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल का सृजन विविधात्मक है। जैसा कि लेखिका ने अपने कई ग्रंथों की भूमिकाओं में बार-बार स्वीकार किया है कि उनका लेखन स्वांत:सुखाय ही रहा है, उसमें कभी किसी प्रकार के यश या अर्थ की प्राप्ति का भाव नहीं रहा। उनके शब्द हैं–‘मेरी लेखनी मेरी अस्मिता का पर्याय है और शायद इसीलिए मेरी हर रचना डायरी का एक पृष्ठ बन गई है। मेरे लिए मेरी एक एक पंक्ति मेरे मन की हथेली पर गहरा रची मेहँदी की रंग रेखा है।’[1] उनकी इसी निश्छलता ने उनकी समस्त कृतियों को इतनी प्रभविष्णुता प्रदान की है कि वे सहज ही साहित्य मर्मज्ञों को आह्लादित कर देती हैं। उन सभी में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियो से ही कोई काल्पनिकता या अलंकारिता नहीं है।

‘शब्द-कलश’ के अतिरिक्त उनका एक काव्य-संकलन और हैं, ‘आओ, पढ़ें पढ़ाएँ, इसमें साक्षरता अभियान और लड़की बचाओ, लड़की पढ़ाओ के राजकीय अभियान से जुड़ी सीधी, सरल, बोलचाल की भाषा में लिखी छोटी-छोटी नई कविताएँ हैं। उनके द्वारा दी गई कुछ परिभाषाओं का सार निम्नांकित हैं–

‘काव्य और कविता में कोई तात्विक भेद नहीं है। दोनों के मूल उपादान एक ही होते हैं।

 ISSN 0975-735X

अंतर केवल रूप में होता है। काव्य को जब छंदों कीशृंखलाओं में विधिवत-बाँध दिया जाता है तभी उसे 'कविता' कहने लगते हैं। छंद विधान, वास्तव में कविता की सबसे प्रमुख विशेषता है।'[2]

अस्तु! समय-समय पर अँग्रेजी, संस्कृत, हिंदी आदि-आदि भाषाओं के विद्वानों, समीक्षकों, आचार्यों और साहित्यकारों ने अपनी-अपनी तरह से 'कविता' को परिभाषित किया है। मेरी दृष्टि में 'कविता' अंतर्मन का संगीत है, जिसकी अभिव्यक्ति शाब्दिक होने पर और छंदात्मकता को ग्रहण कर लेने पर कविता बन जाती है। वस्तुत: दु:ख-सुख की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अपने अनुकूल शब्द एवं लय पाकर 'कविता' बन जाती है।

काव्य के संदर्भ में दोनों वर्गों के विचारकों की अवधारणाओं में कतिपय अंतर होते हुए भी दोनों ने काव्य को मानवीय भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति का एक ऐसा सशक्त माध्यम माना है, जो आनंद की सृष्टि करता है और जिसमें दूसरों से तादात्म्य स्थापित करने की अद्‌भुत क्षमता है। दोनों ने माना है कि कविता का मूल तत्त्व संवेदना है अर्थात् अपने साथ ही दूसरों से सुख-दु:ख को अनुभव करने की क्षमता अपनी इसी समार्थ्य से मनुष्य मनुष्य से जुड़ता है और उससे एक रूप होता है। यह संवेदना ही है जो पाषाण में भी परमात्मा के रूप को महसूस करती है और यह उसकी रागात्मकता ही है जो सारी सृष्टि में अपनेपन का भाव स्थापित करती है। इस संवेदना की सघनता इस बात पर आधारित है कि कवि और कविता का पारस्परिक संबंध क्या है? कैसा है?

कवि और कविता का संबंध

स्वयं लेखिका ने लिखा है 'कवि एवं कविता का संबंध सर्जक तथा सृजन का एक रागात्मक संबंध है। कवि का पहला गुण है-संपृक्ति। वह विशिष्ट व्यक्ति न होकर हममें से एक है वह हमारी ही तरह समय का सहयात्री और समभागी है। उसकी यही उदार आत्मीयता उसे अपने सृजन के साथ-साथ एक नए संवेदनात्मक संबंध के धरातल पर प्रतिष्ठित करती है।'[3]

कविता की विकासात्मक प्रक्रिया इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आदिकाल से लेकर आधुनिकयुग के विभिन्न चरणों भारतेंदुयुग, द्विवेदीयुग, छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नई कविता सभी युगों में परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुसार कवि और कविता के आपसी रिस्तों में भी काफी बदलाव आए हैं। निष्कर्षत: अब कवि की भूमिका एक तटस्थ पर्यवेक्षक नहीं है—अब वस्तुनिष्ठ भी नहीं है। अब उनके शब्द उसकी अपनी निजी आंतरिक अनुभूतियों के संदेशवाहक भी बन गए हैं और उसकी लेखनी परंपरागत शास्त्रीय बंधनों से पूर्ण मुक्ति का उद्‌घोष करने के साथ ही अनेक बंद बातायनों को भी खोल रही है—यह निश्चित ही स्वागत योग्य है।

'शब्द कलश' में कवयित्री की वैयक्तिक स्वीकृतियाँ

डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल ने 'अपनी बात' में अपने इस कविता-संकलन के अनुभूति और शिल्प दोनों पक्षों पर बड़ी ही सरलता से अपने मन को अनावृत्त किया है। उन्होंने लिखा है— 'शब्द-कलश' की अनुभूतियाँ किसी दिशा विशेष से नहीं जुड़ी हैं, इनमें अनेक रंग हैं, पर मुझे प्राय: ऐसा लगता है कि वे किसी-न-किसी बहाने मेरे हृदय को निरंतर आंदोलित करने वाले एक ही प्रश्न का उत्तर खोज रही हैं कि आज वह आदमी कहाँ गया, जिसे परमात्मा ने अपनी तरह सच्चिदानंद स्वरूप बनाया था? आज उसकी सोच इतनी स्वार्थी कैसे हो गई कि वह अपने सारे संस्कारों और संबंधों को हानि-लाभ के तराजू पर तोलने लगा? क्या उसे यह भी याद नहीं रहा है

कि आज वह जिस आत्मीयता की जड़ें इतनी निर्ममता से स्वयं काट रहा है कल उसी अपनेपन के लिए वह खुद तरसेगा?'[4]

अपने शिल्प के लिए भी उन्होंने निःसंकोच स्वीकार किया है—'मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि शिल्प के मापदंड पर 'शब्द कलश' निर्दोष नहीं है। हर विधा का अपना एक निश्चित नियम विधान होता है और मेरे लिए अपनी लेखनी को किसी नियमावली में बाँध पाना कभी संभव नहीं हुआ। मेरे लिए तो मेरी लेखनी का सृजन संसार स्वयं अपने आप से ही संवाद करने का अद्‌भुत आनंदलोक है इस अलौकिक आत्मसंतोष के समक्ष किसी लौकिक बंधन के लिए कोई अवकाश नहीं रहा।'[5]

'शब्द कलश' में कवयित्री के मन के सब रस हैं। 'जीवन में कभी-कभी कुछ हठीले क्षण सामने आकर ऐसे अड़ जाते हैं कि उनकी बात सुने बिना निस्कृति नहीं होती ऐसे ही जिद्दी कालांशों की प्रतिक्रिया है शब्द-कलश'[6] जिन कालांशों के समक्ष कावयित्री एक प्रकार से अपने को विवश पाती है, उनमें से मुख्य हैं—

1. आज के मनुष्य की जीवन-दृष्टि
2. प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति के प्रति आसक्ति
3. नारी की वेदनामयी नियति
4. गौरव की अभिव्यक्ति
5. राष्ट्रीयता।

आज मनुष्य की जीवन-दृष्टि

बदलते हुए समय के साथ बहुत-सी चीजों के मापदंड परिवर्तित होते रहे हैं, पर जहाँ तक मानवीय मूल्यों का प्रश्न है हमारी भारतीय संस्कृति में सदा से ही अर्थ (धन) और काम (वासना) से ऊपर धर्म को प्रतिष्ठित किया गया है। यही धर्म मानव और पशु का भेदक तत्त्व भी है। धर्म का मूल है प्रेम जो सृष्टि का संयोजक तत्त्व है और साथ ही वह दया, क्षमा, धैर्य व करुणा जैसी सभी सद्‌वृत्तियों का मूल आधार भी है। सच्चा प्रेम निर्व्याज होता है, लालसा और प्रतिदान की अपेक्षा से रहित। सच्चा प्रेम सिर्फ देता है, वह सदैव हितैषी होता है और उसका विस्तार व्यक्ति से लेकर विश्व तक है। प्रेम कण-कण में बिखर जाने वाला अमृतरस है, मानव में देवत्व की प्रतिष्ठा करने वाला तत्त्व है और अपने उदात्त रूप में वही भक्ति भी है।

प्रेम ही हमारी सारी संवेदनाओं का मूल स्रोत है, पर आज मनुष्य ने प्रेत की उसी पवित्र भावनाओं को कलुषित कर दिया है, उसे जोड़ने की जगह तोड़ने का कारण बना दिया है। यानी अब वह अपने सारे पारिवारिक व सामाजिक संबंधों को व्यापार की तरह हानि-लाभ के तराजू पर तोलने लगा है, इसीलिए उसमें निश्छल अपनापन नहीं रहा है। अब उसकी जीवनदृष्टि धर्ममयी न रहकर इतनी अधिक अर्थमयी और काममयी हो गई है कि वह नर से नारायण न बनकर नरभक्षी हो गया है। अब उसने कछुए की तरह अपनी सारी संवेदनाओं को जैसे अपने ही अंदर समेट लिया है, वह पूरी तरह आत्मकेंद्रित व स्वार्थी बन गया है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' या 'विश्वबंधुत्व' जैसे मानवीय मूल्य उसकी दृष्टि में निष्प्रयोजन हो चुके हैं। अब तो जैसे वह एक निर्जीव यंत्र भर बना रहता है जो सब-कुछ करता है पर महसूस कुछ नहीं करता।

आज के मनुष्य की यही संवेदनशून्यता कवयित्री के समक्ष बार-बार एक प्रश्न खड़ा कर

देती है और वह निरंतर धरती से लेकर आकाश तक से सबसे यही पूछती है–

जंगलों में जो खड़ा था, रात में दिया लिए,
वह आदमी कहाँ गया? यही सवाल है,
शंख था, अजान था, बाइबिल, कुरान था,
शब्द, शब्द था सबद, दीन था, ईमान था,
बाँधकर कफन चला था, जो स्वराज्य के लिए,
भारती का वंशधर लोक-संविधान था
सूलियों पे जो चढ़ा था, केसरी विदा लिए,
वह आदमी कहाँ गया? यही सवाल है।'[7]

चारों ओर फैली हुई रेगिस्तानी गर्म हवाओं के बीच में सावन की रसवंती बौछार को खोजती हुई कवयित्री के शब्द उसकी चिंता दर्पण बन जाते हैं–

कहाँ सुनहरी सूर्यमुखी है? गोरी रजनी गंधा?
हर मधुवन में उग आए हैं, ऊँचे हरे बबूल
तार-तार हो गई रेशमी/ चूनर सपनों की,
पात-पात झर गई महकती/ मेहँदी अपनों की
कहाँ गुनगुनी धूप नेह की? घर की ठंडी छाया?
हर चितवन में अंकुराए हैं, नागफनी के फूल।[8]

जब-जब सर्जिका अपने चारों ओर दृष्टि डालती है तो देखती है कि अब तो आदमी और उसके संबंधों के अर्थ ही बिलकुल बदल गए हैं। कहीं भी न आत्मीयता भरी वह छुअन शेष है, जो बिना बोले सारे घावों को चुपचाप सहला देती थी और न किसी आँख में वह नेह भरा आमंत्रण है, जो दूर से ही गले लगा लेता था-आज तो आँगन हो, प्रेमपाती हो और या कोई संबोधन हो-सब केवल शब्दमात्र हो गए हैं, सारी संवेदनाएँ प्रथा और सारे आँसू औपचारिकता बन गए हैं। दूर-दूर तक भयानक अकेलापन और बनावटीपन है–कागज के फूलों की तरह सब-कुछ नकली, सब-कुछ दिखावटी–

संबंधों में गंध नहीं है अपनेपन की
चंदन बन घिर गया कि जैसे मीन बाबूलों से

आँगन तो हैं अब भी लेकिन,
अपनापन कहीं नहीं है,
संबंधों के आगे-पीछे/ काँटे चुने हुए हैं,
संवादों में भी जैसे/ सन्नाटे बुने हुए हैं
कैसी-कैसी कूटनीतियाँ, सारी परिभाषाएँ बदलीं
बंधन जन्म-मरण के लेकिन, अंतर्मन कहीं नहीं है।[10]

रिश्तों का रेगिस्तान
और प्यासा है आदमी[11]

इसी तरह 'सिर्फ नाम है आदमी' और 'आहा यह आदमी' आदि कविताओं में भी आदमी

की विकृत सोच और उसके सर्वनाशी कृत्यों का बड़ी ही मार्मिकता से चित्रण किया गया है। भविष्य के विषय में निरंतर चिंतन करती हुई लेखनी यही मंगलकामना करती है–

हर अँधेरा पियो, रोशनी के लिए,
आदमी बन जियो आदमी के लिए।
साँप से डस रहे हैं, सपेरे यहाँ,
चाँद तारे बने हैं लुटेरे यहाँ।
एक आँधी बड़ी, राह रोके खड़ी,
सूर्य ने बेच डाले सबेरे यहाँ।
एक आवाज देता समय आज है,
तुम दिया बन जलो, भारती के लिए।[12]

संवेदना का यही स्वर 'आदमी तुम बनो' में भी मुखरित है।

प्रेम, सौंदर्य व प्रकृति के प्रति आसक्ति–

ये तीनों ही विषय कविता के प्रियतम विषय हैं और इनकी इंद्रधनुषी छवियों को इतने रंग-रूपों में अंकित किया गया है कि उनकी गणना तक करना संभव नहीं है पर सरोजिनी जी ने इनको केवल इस तरह छुआ है जैसे किसी विस्तृत वनस्थली में उड़ती तितली खिले-अधखिले फूलों के पास से उनकी पंखुरियों को छूती हुई इधर से उधर चली जाती है। प्रेम सौंदर्य और प्रकृति का सहज सात्विक रूप ही उन्हें सदा ग्राहय रहा है। उनकी पंक्तियाँ हैं–

रूप मंगलाचरण प्रेम का
लेकिन अंतिम छंद नहीं है।
दीप-शिखा सी देह ज्योति पर
विश्व शलभ बन जलता आया,
सोनजुही से हेम रंग पर
मुग्ध स्वयं को छलता आया,
प्रेम, साथ आमरण पंथ का,
बस केवल सौगंध नहीं है।[13]

नारी-सौंदर्य के मांसल या उत्तेजक रूप के चित्रण में उनकी कोई रुचि नहीं है। वे तो उसकी देह की जन्मजात वासंती सुषमा की ही सराहना करती हैं–

तुमने खोले हैं केश कि बादल घिर आए?
ये चाँदी-से राजंहस/ आए हैं उड़कर
या हँस उठीं अनायास
तुम पीछे मुड़कर
तुमने बदले हैं वैश कि इंद्रधनुष छाए।[14]

'शब्द कलश' में प्रकृति के कई रंग हैं विशेषतया फागुन और सावन के–

मन के कोरे कागज पर लिख गया प्रणय के छंद
छबीला फागुन/ कस्तूरी-सी देह हो गई
भुवनमोहिनी चितवन/ अंग-अंग छाया रति दर्पन

रोम-रोम रति दर्पन
तन की क्वॉरी केसर का-कर गया सुनहरा रंग
रंगीला फागुन।[15]

या पावस की छटा देखिए—

ये मदन छंद से मेघ कि नभ से रस बरसे,
देह हुई कस्तूरी मृग-सी
काम गंध से चंचल,
प्राण कि जैसे सूखे वन में/ रहक उठे दावानल,
ये इंद्रधनुष के रंग कि नभ से विष बरसे।[16]

'ओ नीलकंठ बादल', ये सावन के मेघ, फागुन मेरे लिए, मधु बसंत छाया है। यह 'धूल भरा मौसम' और 'तुमने मेरा क्वॉरा मन क्यों छुआ' में भी इन्हीं अनुभूतियों की आकर्षक रंगोली सजी हुई है।

नारी की वेदनामयी नियति

सरोजिनी जी के हृदय को सर्वाधिक झकझोरा है नारी की निरीहता ने। पुरुषों की सामंतवादी सोच के कारण अनेक लक्ष्मण-रेखाओं में बंदिनी बनी, अकारण बार-बार अग्नि परीक्षाएँ देती, कठोर विषपान करती, वस्तु की भाँति बलात वशीभूत की जाती, अपने आत्मजों (संतानी) द्वारा अकेलेपन की भयानक यंत्रणाओं को झेलने के लिए विवश की जाती और इन सब अमानवीय अत्याचारों के साथ ही जन्म लेने के अधिकार से भी वंचित की जाती नारी की वेदनामयी नियति उनकी कई कविताओं में बड़ी ही मार्मिकता से व्यक्त की गई है। उनकी संवेदना के स्वर कहीं सौम्य हैं और कहीं उग्र। कभी-कभी तो उनका अंतर्जात आक्रोश इतना अधिक प्रखर हो गया है।

वह पुरुष प्रधान समाज के साथ ही सीधे विधाता से भी प्रश्न करने को तत्पर हो गया है। नहीं झरेगी शेफाली में बलात्कार के प्रति उनके क्रोध का ज्वार जैसे सारी सीमाएँ ही लाँघ गया है—आखिर कब तक/ व्यक्ति को वस्तु बनाने के/ ये नारी भक्षी षड्यंत्र। ऐसे ही चले रहेंगे/ और नपुंसकों की तरह/ देखता रहेगा समय/ और समय का स्रष्टा भी?/ आखिर कब तक?'[17]

उनके अंदर की यही ज्वाला उस समय भी सारी सामाजिक संरचना को अस्थीभूत कर देना चाहती है तब भ्रूण-हत्या का कोई निर्णय लिया जाता है। वे ऐसे निर्णायकों को अपनी पूरी ताकत से धिक्कारती हैं और उन्हें अमानुष तक कहती हैं—आखिर इतने क्रूर कैसे हो गए तुम?/ कि करने लगे हो हत्याएँ/ अपने ही आँगन की/ अजन्मी मधुमती कविताओं की/ क्यों? आखिर क्यों?

क्या हो गया है तुम दोनों को?/ तुम अजन्मी कल्पनाओं की नहीं/ अपनी हत्या कर रहे हो/ भागे आने वाली सदी/ तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगी/ इस अमानवीय कल्प के लिए/ कभी नहीं।'[18]

उनकी संवेदना का यह प्रलयंकारी स्वर उस समय बड़ा ही संयत और शांत हो जाता है जब अकेलेपन का भीषण दर्द चुपचाप झेलती माँ अपनी व्यथा-कथा अपने बेटे से कहती हैं—

हमें तुम्हारा पूरा दिन नहीं/ केवल दो-चार पल चाहिए/ घर से जाते-आते समय रोज/ हमारे कमरे में झाँक लिया करना/ बस इतना ही बहुत/ हमारे लिए।

तुम परेशान मत होना बेटे। बच्चों से कहना पत्र लिखते रहेंगे हमें। बनाए रखेंगे हमारा यह विश्वास कि तुम सब दूर रहकर भी हमारे पास हो। बस इतना ही बहुत है। हमारे लिए।[19]

उन्होंने नारी की पीड़ा का चित्रण करने के साथ उसे उसकी असीम शक्ति के प्रति आश्वस्त भी किया है और अपनी अस्मिता के महासमर के लिए एकजुट होने का सशक्त आवाहन भी किया है। उन्होंने पूर्ण विश्वास से यह घोषणा की है कि नारी ही सृष्टिकर्त्ता सदाशिव की संजीवनी शक्ति है इसके बिना शिव शव मात्र रह जाते हैं अत: उसे अपनी विजय के लिए केवल और केवल अपनी अंतर्निहित शक्ति को संचित करना मात्र है। उसे अपनी विजय के लिए कोई बैसाखी नहीं चाहिए।

'मीरा', आओ प्रणाम करे, सांध्य कामना, एक प्रश्न नारी से, आदि कविताएँ भी नारी नियति की ही प्रतिच्छायाएँ हैं।

राष्ट्रीय गौरव की अभिव्यक्ति

नारी के स्वयंसिद्धा होने पर सरोजिनी जी को जितना अगाध विश्वास है, उतनी ही गहराई से वे अपने शब्द के उज्ज्वल भविष्य के प्रति पूर्ण विश्वस्त है। इसमें उन्हें कोई संदेह नहीं है कि एक दिन ऐसा आएगा, जब हम पुन: अपने भारतीय जीवनमूल्यों और गांधीवादी आदर्शों को अपना कर अपने ईश को विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित करेंगे। उन्हें अपने राष्ट्र की हर वस्तु पर चाहे वह हिंदी भाषा हो चाहे वह अपना तिरंगा ध्वज हो, चाहे वे युगपुरुष महात्मा गांधी हो और चाहे स्वतंत्रता का 15 अगस्त और गणतंत्र का 26 जनवरी का पावन दिवस हो, उनकी लेखनी ने उत्साहपूर्वक सबका अभिनंदन किया है और पूरे हृदय सें राष्ट्र-वंदना की है–

मुक्ति का पर्व है आत्ममंथन करो
स्वर्ग का रूप भू पर सँवर जाएगा,
सूक्ति-सी यह धरा, मंत्र-सा है गगन
रत्न की सिंधु है, स्वर्ण से हैं सुमन
मेघ-सी झर रही हैं ऋचाएँ यहाँ
गंध के काव्य-सा मोद भरता पवन,
क्रांति के प्रश्न का पार्थ उत्तर बनो
देश का कर्ज शायद उतर जाएगा।'[20]

वे अपने देश की प्राकृतिक सुषमा को विविधता में भरी उसकी एकता को और उसकी माटी की अपूर्व गरिमा को शत-शत प्रणाम करती हैं। उनकी दृष्टि में धर्मांधता, सांप्रदायिकता व स्वार्थपरता तथा देश को सर्वोच्च न मानने की हठवादिता ही हमारी स्वतंत्रता के लिए सबसे अधिक घातक है और ऐसे देशद्रोही तत्त्वों के प्रति के बार-बार सबको सचेत करती है और उनको अपने गौरवपूर्ण अतीत की याद दिलाकर देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने का आमंत्रण देती हैं। वे बार-बार एक ही प्रश्न पूछती हैं–

किसने बंद किए वातायन, बंदी किसने की है गंध?
कौन लिख रहा चंदन-वन में देखो नागफनी के छंद?
किसने यह दीवार उठाई? किसने छिपकर बोये-काँटें?
कौन कह रहा मजहब को फिर नफरत का अनुबंध?[21]

वे राष्ट्र कल्याण के लिए प्रस्तुत परिवार नियोजन, नारी शिक्षा जैसी राजकीय योजनाओं का सशक्त समर्थन करती हैं और बार-बार नारी शक्ति को आवाज देती हैं, उन्हें देशभक्तों के प्रसंग सुनाती हैं और उन्हें नवनिर्माण का संकल्प दिलाती हैं–

एक-एक रत्ना, सीता, श्रद्धा-सी तुम
कंचन भविष्य का वचन भरो
देश अर्थ है, जन्म शब्द है,
लेकिन जन-जन जीवन से ही, राष्ट्र सँवरता है।[22]

वे प्राय: देश की दुर्दशा से दु:खी होती हैं पर उसकी प्रगति के प्रति प्रयत्नशील रहती हैं और अपनी लेखनी को राष्ट्रीय जागरण के अस्त्र के रूप में प्रयोग करती हैं। राष्ट्रीय गौरव से जुड़ी उनकी सभी छंदात्मक और मुक्तछंदात्मक कविताओं 'मुक्ति का पर्व', 'देश विश्वास है', 'उठो चलो', 'चंदन-सी यह मार्टी', 'अपने इस देश में' तथा 'हिंदी हमारी राष्ट्र भाषा है' में उनकी देशभक्ति की भावना अपने सहज रूप में व्यक्त हुई है। उनकी संवेदना सचमुच राष्ट्रीय सुख-दु:ख से जुड़ी है उसमें कोरी राष्ट्रयोजना मात्र नहीं है कि सिर्फ नारेबाजी नहीं करती है और न ही झूठे सपने दिखाकर अपने देशवासियों को दिग्भ्रमित करती हैं–उनकी वास्तव में यही चेष्टा रही है कि वे अपने शब्दों की शलाकाओं से एक बार फिर से बुझी हुई राष्ट्रीय गौरव की शीतल पड़ी अग्नि को ज्वालामुखी बना सकें।

उपर्युक्त सभी विषयों पर लिखी काव्य पंक्तियों में उनकी संवेदना के विविध स्वर मुखरित हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने जीवन-मृत्यु, अकेलापन, सांध्यकामना तथा कुछ अन्य अनेक अनुभूतियों को भी छुआ है। निष्कर्षत: उनकी हर कविता समुद्र के तट पर बिखरी हुई सीपियों की तरह हैं, पर उनकी संवेदना का स्पर्श उन सबको उसी तरह रमणीय बना देता है जैसे चंद्रमा की किरनें विविध आकार-प्रकार की सीपियों को प्रभामंडित कर देती हैं।

शब्दकलश का शिल्प

कवयित्री ने स्वयं अपनी बात को इस संदर्भ में स्पष्ट किया है–'शब्द-कलश' में मेरी संवेदनाओं ने कई रूपाकार ग्रहण किए हैं जैसे गीत, तुकांत-अतुकांत कविता, मुक्तक, गजल, हाइकू (जापानी छंद) व क्षणिकाएँ आदि। मैंने बार-बार यह अनुभव किया है कि हर अनुभूति का अपना एक नैसर्गिक स्वभाव होता है और उसे कोई भी लेखनी अपनी इच्छा से किसी विशेष विधा में नहीं बाँध सकती, यदि वह ऐसा दुराग्रह करती है तो भावनाओं का सहज प्रवाह अप्रतिहत न रहकर खंडित लहरों की तरह अपनी पूरी बात कहे बिना बीच में ही विलीन हो जाता है। मेरी दृष्टि से हर संवेदना को अपना शिल्प स्वयं निश्चित करने के लिए मुक्त छोड़ देना चाहिए तभी वे अपनी सघन वृत्ति और विस्तृति को एक साथ बनाए रख सकती है। सरल चित्त में त्रिभंगीलाल को बिठाने की हठवादिता हास्यास्पद ही सिद्ध होती है।[23]

सरोजिनी अग्रवाल ने अपनी इस कृति का मूल्यांकन जिन शब्दों में किया है उन्हीं को अंत में उद्‌धृत कर देना मुझे समीचीन प्रतीत हो रहा है। सृजनकर्ता की स्वीकृति से अधिक सत्य कुछ हो ही नहीं सकता। कवयित्री ने लिखा है–

अनुभूति और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से 'शब्दकलश' की कविताएँ छत की मुंडेर पर अपने आप उग आई छोटी-छोटी हरी भरी दूर्वाएँ ही हैं और अनावश्यक रूप से इन्हें मैंने कभी

काटा-छाटा भी नहीं है। काव्य के मापदंड पर ये सुगढ़ है या अनगढ़-यह मेरी चिंता का विषय कभी नहीं रहा—इनका अपनापन ही इनकी सार्थकता है मेरे लिए।'[24]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल के काव्य में संवेदना के विविध स्वर दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी संवेदना का फलक अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक है।

संदर्भ

1. शब्दकलश, अपनी बात
2. डॉ॰ गोविंदशरण त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, भाग-2, पृ॰ 1
3. वाग्धारा, डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल, पृ॰ 54
4. शब्दकलश, अपनी बात
5. शब्दकलश, अपनी बात
6. वही
7. शब्दकलश, पृ॰ 25
8. शब्दकलश, पृ॰ 18
9. वही, पृ॰ 14
10. वही, पृ॰ 15
11. वही, पृ॰ 24
12. वही, पृ॰ 29
13. वही, पृ॰ 24
14. वही, पृ॰ 14
15. वही, पृ॰ 70
16. वही, पृ॰ 72
17. वही, पृ॰ 126
18. वही, पृ॰ 129-130
19. वही, पृ॰ 135-136
20. वही, पृ॰ 34
21. वही, पृ॰ 32
22. वही, पृ॰ 103
23. शब्दकलश, 'अपनी बात'
24. वही
25. वही, पृ॰ 22

 ISSN 0975-735X

अपने ही चरित्र के आईने में नारी का संघर्ष

देवी नागरानी

जीवन एक संघर्ष, एक चुनौती है जिसे हर इंसान को स्वीकारना पड़ता है। संघर्ष में न सिर्फ उन्हें ऊर्जस्विता मिलती है, बल्कि जीवन की विविध दिशाओं और दशाओं से उनका परिचय भी होता है। मानव समाज का इतिहास स्त्री को सत्ता, प्रभुत्व एवं शक्ति से दूर रखने का इतिहास है।

नारी की संघर्ष-क्षमता और ऊर्जा में ही उसकी अपनी पहचान बनाने और कुछ कर पाने की ताकत छिपी हुई होती है। जब उस पर बन आती है तो वह अपने घर-संसार, जीवन के वरदान बच्चों के लिए जिंदगी की सारी चुनौतियों से रू-ब-रू होती है, उन्हें स्वीकारती है। कात्यायनी की एक सशक्त रचना 'जादू नहीं कविता' का एक-एक अंश स्त्री में सच से लड़ने की स्फूर्ति प्रदान करता हुआ मन में, सोच में, जीवन के संघर्ष की राहों में हौसले की ऊर्जा फूँकता है–

स्वीकार है मुझे यह अधूरापन
और यह नाउम्मीदी
उम्मीदों के नाम पर, लो
मुझे स्वीकार है इन हालत की
समूची चुनौतियाँ...!

आधुनिक समाज के बदलते मूल्यों को रेखांकित करते हुए अपने आत्मकथ्य के साथ-साथ अपने अंदर के सन्नाटे से मुक्ति पाने की कोशिश में नारी खुद के मन को भेदती है, लहूलुहान करती है। आपने ही पात्र की गहराई और गरिमा में खुद डूब जाती है। इस तत्व पर कमलेश्वर जी, कलम के माध्यम से चक्रव्यूह को छेदने का काम करते हुए लिखते हैं, 'ताजमहल से ज्यादा खूबसूरत परिवार नामक संस्था का निर्माण करने वाली औरत खुद उसी में घुट-घुटकर दफन होती है, सबके लिए सुख और शुभ तलाश करती औरत अपने ही आँसुओं के कुँओं में डूबकर आत्महत्या करती है।'

सच भी है, अपनी ही बनाई हुई दीवारों में औरत बंदी हो जाती है, अपने भीतर के न्यायलय में स्वयं को यह निर्णय सुनाती है, कारावास का दंड भोगती है लेकिन आज जमाना बदलाव की ओर कदम बढ़ा रहा है। जिसके मन में आग लगे वही बुझाने के रास्ते ढूँढने को आमादा रहता है। कहते हैं जब तक पानी हमारे पैरों तले से नहीं गुजरता, पाँव गीले नहीं होते। अपनी समस्या का समाधान पाना अब नारी का ध्येय बन गया है। पुरुष प्रधान समाज में हालातों से मुकाबला करना अब नारी का लक्ष्य बन गया है।

बदलते जमाने में नारी पुरुष की जागीर नहीं, उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में सक्षम है। आधुनिक नारी पुरुष की संपति-मात्र न बनकर उसकी सहभागिनी होकर जीवन व्यतीत करना चाहती है। घर और बाहर की हर परिधि में अपनी पहचान बनाए रखने के लिए

अपने परिवार से, अपने पति से सहकार के अपेक्षा रखती है। शिक्षा की रोशनी में अब नारी अपने रास्ते खुद तय कर रही है। पुरानी पगडंडियों को लाँघते हुए आज हर क्षेत्र में नारी कार्यरत है–पुलिस में, सेना में, विदेश–विभाग, प्रौद्योगिकी, विज्ञान, स्वास्थ विभाग, पत्रिकारिका से लेकर अंतरिक्ष–यात्रा व उपग्रह प्रक्षेपण जैसे चुनौती–भरे कार्यों में वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। अपनी क्षमताओं के कारण वह आज बच्चे का पालना भी झुलाती है, विमान भी चलाती है, हर जरूरत का ध्यान रखते हुए भी वह अपने घर, परिवार की जवाबदारी से बेमुख नहीं होती। पर जब परिस्थितियाँ उसके स्वाभिमान और सम्मान के चिथड़े उड़ाने लगतीं हैं, तब वह चीत्कार उठती है–

दुनिया ने जिसे सिर्फ औरत समझा
तूने उसे महज बच्चों की माँ समझा!

विरोध को सहकर भी नारी अपने हौसलों को विराम नहीं देती। उसकी संघर्ष–क्षमता और ऊर्जा में ही उसकी अपनी पहचान है यह वह जान गई है। जैसे एक नन्हा दीपक घनघोर अंधकार में भी पराजय नहीं मानता, ऐसे में नारी अपनी लड़ाई खुद लड़ते हुए उस चक्र से मुक्त होना चाहती है जहाँ उसे समाज कैदखाने की घुटन बख्शता है। इसी मानसिकता को एक नया अर्थ देते हुए सिंध की बागी शायरा अतिया दाऊद लिखती हैं–

मुझे गोश्त की थाली समझकर
चील की तरह झपट पड़ते हो
उसे मैं प्यार समझूँ?
इतनी भोली तो मैं भी नहीं
मुझसे तुम्हारा मोह ऐसा है
जैसा बिल्ली का छिछड़े से!
उसे मैं प्यार समझूँ?
इतनी भोली तो मैं भी नहीं।

विभाजन के छह दशक बाद भी आज शक्ति–संपन्न नारी त्याग और संवेदना की वशीभूत यातनाएँ झेलने को विवश है। विभाजन की त्रासदी में प्रतिशोध की मदांधता में विरोधी गुटों ने खोज–खोजकर स्त्रियों की अस्मत लूटी, उनकी हत्या तक करने से नहीं चूके, 'कारी' करार करते हुए उन्हें मौत के घाट उतारा। यही परिदृश्य हमें झकझोरकर यह सोचने पर मजबूर करता है कि इस देश में ही नहीं, विश्व के मानव समुदाय को ऐसी विभीषिकाओं से बचने की दिशा में सजग रहना होगा, उनके मान–सम्मान को कायम रखने के लिए आगे कुछ नहीं, बहुत कुछ करना होगा।

नई सदी की नारी की दुनिया में सब कुछ है–उसका घर, परिवार, नाते–रिश्ते, समाज–संसार लेकिन वह स्वयं कहाँ है?

वह कहाँ है? एक अस्तित्वपूर्ण सवाल, जवाब की तलब में आज भी टँगा हुआ है। अनेक स्थानों पर विवाहित महिलाएँ अपने घर आँगन में, समाज में जलील होती हैं, शब्दों के तीरों से तिरस्कृत होते हुए उन हालातों का सामना करती है. अपने घर, अपने आँगन, अपने चूल्हे चौके, अपनी चारदीवारी के भीतर सीमित–सास के तानों, दहेज से जुड़ी समस्याओं, पति की उपेक्षा, कन्या भ्रूण–हत्या के प्रताड़न से झुलसती है। समाज में आज भी कायरता को बल समझने की

 ISSN 0975-735X

भूल करने वाले अमानुष, औरत पर उँगली व हाथ उठाने को मर्दानगी समझते हैं।

पुरुष अपनी सर्वश्रेष्ठता और महानता से जुड़ी 'मेल-डोमिनेंस' से बाहर निकले, यही आज के समाज के लिए बेहतर परिवर्तन होगा। नारी को अपना सहभागी, सहयोगी मानकर उसे आदर सम्मान दे जिसकी वह हकदार है। अब वह पुरुष की दासी नहीं : अपनी चाह का परचम लिए वह जिस राह पर जाती है, वहां संघर्ष करते हुए राह में आई हर चुनौती को स्वीकारती है—विमर्श की नई चुनौतियों से भिड़ते हुए नए आयाम पाने में सक्रिय हो रही है—एक बेहतर जिंदगी जीने का हक पा रही है। आज का बोया हुआ यह संघर्ष का बीज आने वाले कल में फलित होगा, मर्द और औरत की सीमा रेखाओं को उलाँघते हुए उसके जीवन में बदलाव लाएगा और एक स्वच्छ संपन्न जीवन जीने का अधिकार देगा। इन्हीं संभावनाओं को स्पष्टता प्रदान करती अतिया दाऊद की ये पंक्तियाँ डंके की चोट पर कह रही है—

तुम इंसान के रूप में मर्द
मैं इंसान के रूप में औरत
लफ्ज एक है—
मगर माइने तुमने कितने दे डाले
मेरे जिस्म की अलग पहचान के जुर्म में।

केवल अपने को स्वतंत्र मान लेने से वह स्वतंत्र नहीं हो जाती। अपने घर की मालकिन कहलाई जाने वाली नारी कई बार चाहते हुए भी अपने किए हुए फैसलों को अमल में लाने की हैसियत नहीं रखती। नारी मन की व्यथा, पीड़ा और अंतर्मन की अकुलाहट को पलपल महसूस किया जा सकता है। जैसे दुख उनके जीवन का अहम हिस्सा है, देह के जरूरी अंग-सा! तभी तो उसका अस्तित्व चीत्कार उठता है—

मैं नारी मात्र हूँ नारी ही रहना चाहती हूँ।
सीता नहीं होना चाहती
उसे पसंद नहीं सीता का परीक्षा देना
राम की परीक्षा का विकल्प तब भी था,
और आज भी!

आज के दौर में कलम तलवार की धार बनकर बेजुबान की जुबान बन गई है। शब्दों की स्याही में आज की औरत की एक ऐसी रूदाद है, एक ऐसी आपबीती है जिसकी एक-एक पंक्ति में औरत के दिल के भरभराते अहसासों और जज्बों की घुटन महसूस की जाती है। अब उसकी हर चाहत खामोशी के पर्दों को चीरकर इन अल्फाज की गहराइयों के माध्यम से अपने जज्बों की अभिव्यक्ति बनकर गूँजने लगी है। आतिया जी के हृदय की बेजुबान चीखों की गूँज सुनिए—

दुनिया में आँख खोली तो मुझे बताया गया
समाज एक जगंल है, घर एक पनाहगाह
मर्द उसका मालिक और औरत किरायेदार
किराया वह वफादारी की सूरत में अदा करती है-
मैं भी रिशते नातों में खुद को पिरोकर
किस्तें अदा करती आई हूँ।

इन अल्फाज की गहराइयों में झाँकते हुए मानव मन कितनी ही जिंदगानियों के भीतर झाँक पाता है। कल और आज की नारी में जमीन आसमान का अंतर है। वह अपनी सोच को जबान देने में कामयाब हुई जा रही है, अपने भले-बुरे की पहचान रखते हुए, अपनी सुरक्षा, आत्म-निर्भरता व प्रगति की हर दिशा में अधिकार पाने की राहें तलाश रही है। अतिया दाऊद की अभिव्यक्ति में हर नारी की आवाज पाई जाती है। जहाँ मुल्कों की सरहदें अपना वजूद खो बैठती हैं, जहाँ सदियों के फासले तय करना उनके लिए आसान हुआ जाता है, सच के सामने आईने रखते हुए वे कह उठती है–

जिस धरती माँ की कसम खाकर
तुम से स्नेह निभाने के वाद किए थे
उस धरती को हमारे लिए कब्र बनाया गया है
देश के सारे फूल नोंचकर बारूद बोया गया है।

नई नस्ल की बुलंद आवाज अतिया दाऊद की कलम से लिखी शायरी में सरसराहट से विस्फोटित होती हुई। एक जोरदार आवाज में औरत के दोजख की आग में जलती जिंदगी के आस पास की कठिनाइयाँ बयान करती है। नकाबों में छिपे भेड़ियों, चेहरों, किरदारों के तेवर देखते हुए यही कहा जा सकता है कि औरत ने संघर्ष स्वीकार लिया है, चट्टानों से टकराना स्वीकार कर लिया है। पूर्ण रूप से वर्तमान में जीना सीख लिया है और भविष्य को अपने हाथों से सँवारने का संकल्प ले लिया है।

कहा गया है कि 'जो साहित्य देश समाज तथा समूची मानवता को कुछ नहीं देता, उसका सृजन करके कागज काले पीले करने का कोई अर्थ नहीं।'

स्त्रीवाद लेखन अस्मिता का प्रमाण है, कोई मनोरंजन नहीं। स्वतंत्र रूप से अपने भीतर की संवेदना को, भावनाओं को निर्भीक और बेझिझक स्वर में वाणी दे पाने में नारी सक्षम हुई है। अपने अंदर की छटपटाहट को व्यक्त करना अब उसका का ध्येय बन गया है। स्वरूप ध्रुव के शब्दों में नारी मन की व्यथा और संघर्ष दोनों जाहिर हैं–

सुलगती हवा में स्वाँस ले रही हूँ दोस्तो
पत्थर से पत्थर घिस रही हूँ दोस्तो

सिंध की लेखिका अतिया दाऊद ने भी दोस्तों की दोस्ती को मानवता की तराजू में तोलते हुए लिखा है–

दोस्त, तुम्हारे फरेब के जाल से निकल तो आई हूँ
मगर हकीकत की दुनिया भी दुख देने वाली है।

जो कवि अपने शीशमहल में बैठकर काव्य सृजन करते हैं वे तानाशाहों के अत्याचारों से वाकिफ तो होते हैं, लेकिन मनुष्य की पीड़ा और वेदना उन्हें द्रवित नहीं करती। लेखन में काव्य सौंदर्य तथा कथ्य और शिल्प का अद्‌भुत तालमेल पाठक की उकीरता जगाने के लिए काफी है। चिंता-प्रधान काव्य रहस्य की सीमाओं को छू पाने की, प्रविष्टि पाने की क्षमता रखता है। यही संधि रचनाकार को कसौटी पर खरा उतारती है। अपने मनोभावों को वह कलम की नोक से नहीं, तलवार की धार से वार करती दिखाई देती है। यही उत्तरदायित्व निभाने का जीवंत और कारगर माध्यम है। नारी आज रिश्तों की निरख-परख करते हुए अपने विचार बेझिझक, बेबाकी के साथ

सामने रखने से नहीं कतराती अपने मनोभावों को जबान देते हुए मेरी एक कविता का अंश भी अपना इजहार करते हुए यही दावा कर रहा है–

रिश्तों की बुनियाद
सुविधाओं पर रखी गई हों, तो
रिश्ते अपंग हो जाते हैं
अर्थ सुविधा के लिए स्थापित हों, तो
रिश्ते ललच की लाली में रंग जाते हैं
और अगर...
रिश्ते साथ निभाने की नींव पर टिके हों, तो
जीवन मालामाल हो जाता है!

नारी के मन की सइरा में शायद उसका सफर सदियों से जारी है। अपने मनरूपी ज्वालामुखी से पिघले हुए लावे की मानिंद निकली काव्य धारा में वह निरंतर प्रताड़ित मन की भावाभिव्यक्ति करते हुए लिखती हैं–

मुझे खाद पानी चाहिए फलने-फूलने के लिए, डाली के साथ।
मैं खुश हूँ सिर्फ 'मैं' होने में!'

dnangrani@gmail-com

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी-समस्याएँ

त॰ नागपलनीवेल, शोधार्थी
डॉ॰ त॰ तिल्लैचेल्वी, हिंदी विभाग
अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर, तमिलनाडु

नारी जननी है उसके बिना जीवन और जग का आगे बढ़ना असंभव है। नारी माँ है, बहन है, पत्नी है और प्यारी पुत्री भी है। नारी के बिना धरती नरकमय स्थान-मात्र है।

माना जाता है कि हमारे देश में वैदिककाल में नारी को पूर्ण आदर प्रदान किया जाता था। नारी संपूर्ण रूप से स्वतंत्र थी। वैदिककाल की नारियों ने पुरुषों के समकक्ष स्थिति का आनंद लिया। वैदिककाल की महिलाएँ शिक्षित होती थी, लेकिन पुरुष-प्रधान होने की भावना उसके जीवन की दिशा को बदल डालने में सबल रही।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। बालविवाह, पुनर्विवाह पर रोक, बहुविवाह, देवदासी-प्रथा जैसी कुरीतियों के माध्यम से नारी जाति का शोषण आरंभ हो गया। नारियों को पर्दे के पीछे कैद कर दिया गया। इसके बावजूद अनेक नारियों ने संघर्ष करते हुए राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियाँ अर्जित कर सम्मान पाया।

भारत में विदेशी शासन खासकर मुगल शासन से नारी के जीवन की दिशा बदल चुकी थी। पुरुष-प्रधान भावना धीरे-धीरे उसे प्रथम वर्ग से दूसरे वर्ग की श्रेणी देनी लगी। नारी की स्थिति नित गिरती जाने लगी। नारी अपनी स्वतंत्रता खोकर कठोरता झेलने लगी।

आजादी के बाद सन् 1950 में जब देश को संविधान मिला तो उसमें स्त्रियों को सुरक्षा, सम्मान और पुरुषों के समान अवसर व अधिकार मिले किंतु अशिक्षा, पुरातनवादी सोच तथा कमजोर सामाजिक ढाँचे के कारण नारी जाति उन अवसरों और अधिकारों का पूर्ण रूप से लाभ न उठा पाई। अपने बचपन में वह पिता, जवानी में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र पर निर्भर रही। पति के घर में प्रवेश करने के बाद उसकी अर्थी ही बाहर निकलती रही।

फिर भी नारी अपने जीवन को अपनी मर्जी से चलाने, स्वयं निर्णय लेने तथा अपने कार्यों को खुद कर नहीं सकती, लेकिन आज नारी विभिन्न पदों में विशिष्ट रूप से काम करने पर भी उसकी स्वतंत्रता पर अब भी प्रश्नचिह्न लगे हुए हैं। उसे पूर्णविराम में बदलने की कोशिश, प्रयास-मात्र ठहरा है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी जीवन तथा समस्याओं का यथार्थ चित्रण आकर्षक ढंग से किया गया है। नारी के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं पाई जानेवाली समस्याओं का सशक्त वर्णन कृष्णा सोबती के द्वारा यथार्थ रूप से किया गया है। नारी के जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए अपनी कहानी को बढ़ाने का महान कार्य करने मे कृष्णाजी सफल सिद्ध हुई है। विशिष्ट रूप से विभिन्न नारी समस्याओं पर प्रकाश डालकर कृष्णा सोबती अपने-आपको सशक्त नारी उपन्यासकार साबित करने में सफल सिद्ध हुई है।

 ISSN 0975-735X

नारी समस्याओं का मूलाधार

नारी समस्याओं का मूलाधार पुरुष-प्रधान समाज ही है। पुरुष-प्रधान समाज में नारीमुक्ति कल्पना-मात्र ठहरती है। पुरुष अपने आपको सर्वशक्तिमान समझता है और नारी पर शासन करना चाहता है। वह अपने आपको मलिक और स्त्री को दासी समझ बैठा है। पुरुष कहीं, कभी आ जा सकता है लेकिन स्त्री नहीं। पुरुष किसी से बात कर सकता है लेकिन स्त्री को कभी नहीं। उसे कभी कोई स्वतंत्रता नहीं। पुरुष प्रधान समाज में नारी की दयनीय दशा पर प्रकाश डालती हुई दिलो-दानिश की छूना कहती है–'दद्दा से महाविरा करेंगे। पुरानी रिवायतों के कढ्ढावा यहाँ न देखो, वहाँ न देखो। खिड़की क्यों खुली। चिलमन क्यों उठी है। भाई लोगों की दुनिया कुछ और है हम लोगों की कुछ और।'[1]

समाज की कुछ उच्च शिक्षित नारियाँ और उनके संगठन शायद यह समझते हैं कि मनचाहे कम वस्त्र पहनना, मुक्त जीवन जीना ही वांछित बदलाव है। इस बदलाव का उनके पास कोई तर्कयुक्त जवाब उनके पास नहीं है सिवाय इसके कि सदियों से चले आ रहे रहन-सहन व आचार-व्यवहार के हर नियम को उन्हें बस चुनौती देना है।

आधुनिक हो जाने पर भी, जीवन से संबंधित लगभग सभी क्षेत्रों में नारी के सहयोग तथा अनुपम कार्य को देखने के बाद भी पुरुष की मनोदशा में कोई बदलाव नहीं आया है। वह वही करना चाहता है, जो पुराने जमाने में कर रहा था। उसे नारी दूसरी श्रेणी की है। उसके लिए स्त्री शरीर मात्र है। उसके शरीर से अपनी कामवासना की तृप्ति तथा अपनी संतानों की उत्पत्ति उसका एकमात्र कार्य है। पुरुष-प्रधान भावना को कृष्णा सोबती अपने इन शब्दों में सुंदर रूप से प्रकट करती है–'स्त्री देह है। इसलिए वह आत्मदया से ग्रस्त है। पुरुष में आत्मा के रूप में परमात्मा का प्रवैश है। नारी-देह में प्रकृति का निवास है। माया की दूसरा नाम ही प्रकृति है।'[2]

पुरुष प्रधान समाज में रहते हुए नारी अपने आपके उन विचारों की आदी बना लेती है। नारी के लिए तो सारी नैतिकता, सारे आदर्श पुरुषों के समान आत्मनिर्भर और आत्मसंयमी तथा स्वतंत्रता पूर्ण नहीं बल्कि दूसरों के प्रति समर्पित होनेवाला, दूसरों पर निर्भर रहनेवाला होना, दूसरों के लिए जीनेवाला, दूसरों के प्रेम के लिए अपना सब-कुछ त्यागकर, त्याग में सुख अपनाना ही है। पति, पिता, भाई, बच्चे आदि सभी रूपों में मर्द की आराधना उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना नारी के लिए कर्त्तव्य बन गया है।

कृष्णा जी के प्रारंभिक उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' और 'मित्रो मरजानी' में स्त्री के इस स्वभाव पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। मित्रो की सास उसे समझाते हुए कहती है–'सुमित्रावंती, इसे जिद चढ़ी है तो तू ही आँख नीची कर ले। बेटे मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे?'[3] पुरुष-प्रधान समाज में नारी की मनोभावना का सही परिचय कृष्णा सोबती के इस वाक्य से एकदम स्पष्ट हो जाता है। मर्द को मालिक कहकर स्त्री-मन का परिचय तथा पुरुष-प्रधान समाज में नर तथा नारी की दर्जा पर कृष्णा सोबती प्रकाश डालती हैं।

भारत में बचपन से नारी को त्याग, क्षमा, समर्पण आदि बातों प्रमुखता देने की सीख दी जाती है। उसे बचपन से ही अपने भाई, पिता आदि के साथ बात करने का ढंग सिखाया जाता है। उसे पर-पुरुषों से दूर रहने की शिक्षा दी जाती है। सब-कुछ बदलने पर भी नारी की मानसिकता में पूर्ण स्वतंत्रता तथा नारी मुक्ति के विचार नहीं आए हैं। कृष्णा जी दिलोदानिश उपन्यास में

बउआजी कुटुंब प्यारी से कहती है–'हम से पूछो तो घर की बहू जिंदगी-भर या मर्द की सुनेगी या बेटों की। धर्मशास्त्र भी तो यही कहते हैं।'[4]

भारतीय नारी की इस दयनीय मानसिकता पर कृष्णा जी लिखती है–'देख पुच्ची, जो हमने देखा है, सदा है, कमोबेरा वही तो तुम भी देखोगी और सहोगी। परदों के हिस्से में आए हैं महफिल-मुजरे, खेल-तमाशे और औरत को लगे हैं बाल-बच्चे, दिन-त्योहार, पूजा-व्रत। रोने-धोने से क्या कुछ बदलने वाला है। अब जैसा जो कुछ है चलाती चलो। सो बहूजी, जो तुम्हारे साथ हो रहा है वह कुछ नया भी नहीं।'[5]

भारत में परिवार व्यवस्था ऐसा है कि माँ अपनी बेटी को सब-कुछ सिखाती आ रही है। हर लड़की अपनी माँ की रीति अपनाकर आगे बढ़ती है। माँ उसे सिखाती है कि कैसे रहना है, नारी की बात मानकर चलती है। इसलिए माँ का व्यवहार पुत्री तक पहुँच जाती है। किसी भी बच्ची के लिए माँ ही पहली गुराइन होती है घर उसका प्रथम पाठशाला। ऐसी स्थिति में मानसिक गुलामी से भरी माँ अपनी पुत्री को सामाजिक स्वतंत्रता का मूल्य सिखा नहीं पाती है। यही क्रम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है। बेटी जब माँ बनती है तब अपनी बेटी को भी यही शिक्षा देती है। अम्मू और उसकी बेटी से कहती है–'शादी के बाद पूरे परिवार के लिए शिकार की माँझी बन जाती है। झील में तीरती नाव और शिकारे तो देखे हैं न तुमने। उन पर परिवार मजे-मजे झूमते हैं और चप्पू चलाती है–औरत। उम्र-भर चलाती जाती है।'[6]

एक ही घर में जब लड़का-लड़की के बीच में भेदभाव दिखाया जाता है तब तो लड़की का मन बुझ ही जाता है। समाज की दोहरी नीति से लड़की का दिल बैठ जाता है। अम्मू भी लड़की-लड़के के बीच किए जानेवाले भेदभाव से अनभिज्ञ नहीं। लड़कों की परवरिश, उनके खान-पान, पढ़ाई-लिखाई आदि पर दिए जानेवाले ध्यान पर जोर देकर अम्मू कहती है–'हमारे भाई को भेजा गया कालेज और हम बहनों की पढ़ाई पंडित, ग्रंथी और मौलवी के पास। सच तो यह है कि लड़कियों को तैयार ही जानकारी के लिए किया जाता है–भाई पढ़ रहा है, जाओ दूध दे आओ। भाई सो रहा है, जाओ कंबल ओढ़ा आओ। जल्दी से भाई को थाली परस दो। उसे भूख लगी है। भाई खा चुका है। लो अब तुम भी खा लो।'[7]

आर्थिक परतंत्रता

मनुष्य के जीवन में अर्थ का स्थान अद्वितीय है। किसी ने सच ही कहा है कि 'बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपया।' नारी को अपनी इच्छानुसार सफल जीवन जीने के लिए उसको आर्थिक रूप से खुशहाल बनाना आवश्यक है। आर्थिक निर्भरता में उसे अपने पति, पिता, भाई या पुत्र के सामने हाथ फैलाने की नौबत आती है। घर चलाने के लिए पति पैसा कमाता है। कमाई उसकी होने के नाते पत्नी सेविका या दासी बन जाती है। कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में आर्थिक समस्या को यथार्थता से प्रस्तुत करती हैं। अर्थ जीवन का आधार है। इस पर जीवन की सारी स्थितियाँ निर्भर होती हैं। अर्थ के अभाव में नारी नारकीय जिंदगी जीनी पड़ती है।

'यारों के यार' उपन्यास में तमन्ना की जिंदगी में आर्थिक अभाव में नरकीय हो गई है। वे पैसों के कारण अपने आपको बेच देती है। उन्हें एक वस्तु समझकर उसके शरीर का सौदा होने लगता है। इस कारण सूरी कहता है–'जानता भी है इस कहचेरी के कट्टे को बीस टके दो चिपफंड और काला बाजार स्मग्लर सिंडिकेट का मालिक है। औरतों का कोआपरेटिव बहनचोद

अलग से चलाता है।'[8] इससे स्पष्ट होता है कि अर्थ प्राप्त करने के लिए नारी सब-कुछ करने के लिए तैयार हो जाती है और नारी के जीवन में अर्थ एक समस्या बन गई है।

स्त्री का शिक्षित होना तथा आत्मनिर्भर होना अपने अधिकार को समझने तथा पाने में मदद करता हैं। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने पर स्त्रियों में स्वाभिमान की मात्रा अधिक होती है। इसी तथ्य पर जोर देते हुए कृष्णाजी लिखती हैं, 'उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी। सोचने की बात है—मर्द काम करता है, तो उसे एवज में अर्थ धन-प्राप्त होता है। औरत दिन-रात जो खटकती रहती है वह बेगार के खाते में ही न। भूली रहती है अपने को मोह-ममता में, अनजान-बेध्यान। वह अपनी खोज खबर न लेगी तो कौन उसे पूछनेवाला है।

यह सत्य है कि नारी घर में रहकर जितने कार्य करती है यदि उनका मोल लगाया जाए तो वह पुरुष से कहीं भी कम नहीं ठहरती। लेकिन इस सत्य को अनदेखा करते हुए मर्द उसे अपनी सेविका मान रहा है। इस स्थिति को बदलना नारी के हाथों में है। नारी चाहेगी तभी इस समस्या से दूर हो सकती है।

नारी शोषण

नारी-शोषण भारत में वैदिककाल के बाद से अब तक चली आनेवाली समस्या है। नारी सबला भी क्यों न हो उसे अबला के रूप में देखना, अबला का भी उपयोग अपेक्षित स्तर तक करना नर का काम बन गया है। माँ, बहन, पत्नी, पुत्री व सेविका के रूप में नारी सदा नरों का काम करती आ रही है। उसे न कभी चैन मिलता है न ही आराम। कर्त्तव्यों के नाम पर चारदीवारी में वह चक्कर काटती रह जाती है।

'डार से बिछुड़ी' उपन्यास की 'पाशो' पात्र का शारीरिक, मानसिक और वैचारिक शोषण हुआ है। पाशो मामा-मामी के पास रहकर भी, वह शोषण की शिकार बनी हुई है। उसे गालियाँ देकर उसका मानसिक शोषण करने हैं—'अरी, यह कुल्छनियोंवाले हाव-भाव' मामियाँ कहती हैं—'अरी कुवें में डूब मरी थी। तेरी बीज डालनेवाली अब तू सँभालकर साँस भर।'[9]

ऐ लड़की का अम्मू इस सत्य पर प्रकाश डालते हुए कहती है—'चलाई होती व परिवार की गाड़ी तुमने भी तो अब तक समझ गई होती कि गृहस्थी में नारी शोभा नामा की है। यह इसकी पत्नी है, बहू है, माँ है, नाबी है, दात्री है। फिर वही खाना, पहचाना और गटना। लड़की वह नाम की महरानी है। सब-कुछ पोंछ-पोंछ के उसे बिठा दिया जाता है अपनी जगह पर।'[10]

घर में नारी शोषण

ज्यादातर घरों में पुरुष ही निर्णायक होता है। उसी के निर्णय को घर में महत्त्व दिया जाता है अन्य स्त्रियों को कभी नहीं। स्त्री क्षमता की मूर्ति मात्र रहकर अपने अधिकार खोते हुए भी संघर्ष के लिए तैयार नहीं होती है। वह त्याग की मूर्ति बनकर रह जाती है। नारी कभी पुत्री के नाम से, कभी सहेली के नाम से, कभी प्रेमिका के नाम से, कभी बहन के नाम से, कभी पत्नी के नाम से, कभी माँ के नाम से शोषण का शिकार होती है। 'ऐ लड़की' उपन्यास की अम्मू इस बात पर प्रकाश डालते हुए कहती है—'माँ कहीं भी हो, बेटी कहीं भी हो, माँ कोई भी हो, बेटी कोई भी हो, माँ बेटी हो, माँ बेटी ही रहेगी। रहती दुनिया तक।'[11]

घर के सब सदस्य जब सुख मात्र का अनुभव करते रहते हैं तब नारी अपने सुख-दुख की परवाह किए बिना सबकी भलाई के लिए कार्यरत रहती है। सबको सुख प्रदान करने के उद्देश्य से

वह निरंतर काम किया करती है। घर के सब लोगों को खाना प्रदान करने से अन्य सेवाएँ भी वह निस्वार्थ रूप से किया करती है।

घर के बाहर नारी-शोषण घर में ही नहीं बाहरी दुनिया में भी नारी शोषित है। घर से निकलकर दफ्तरों या अन्य केंद्रों में जब वह काम करने के लिए जाती है वहाँ वह विभिन्न रूप से शोषित है। यहाँ मुख्य रूप से उसका जीवन मशीन बन जाता है। घर का पूरा काम करके दफ्तर का काम भी वह पूर्ण मन से किया करती है और अपनी जिम्मेदारी पूर्ण रूप से निभाती है। लेकिन वहाँ भी उसे चैन नहीं मिलता। कहीं अपनी इच्छानुसार या कभी किसी के जाल में फँसकर वह अपने-आपको खोने तक तैयार हो जाती है।

'यारों के यार' लघु उपन्यास में दफ्तरों में नारी के हाल का वर्णन करते हुए कृष्णा जी लिखती हैं–'दारजी ने साफा छुआ, फिर हाथ बढ़ा स्टैनो के रेशमी बालों को सहलाया और लेसदार बारीक ब्लाउज पर खुश होकर कहा, 'तमाशा मिस, शार्टहैंड टाइप के लिए इतनी महीन चोली की जरूरत क्यों? तमाशा ब्यूटी सलून से सीखी ताजी अदाओं से शरमायी, फिर हँस दी। हाथ से बियर धुले बाल छितराए और आँखें नचाकर कहा-बड़े बॉस यह छोटा बॉस का स्टेंडिंग आर्डर है।'[12]

पुरुष-प्रधान समाज होने के कारण नारी-शोषण का तथाकथित जाल इस बारीकी और सुंदरता से बुना दिया गया है कि नारी शोषण आदिकाल से आधुनिककाल तक वैसा की तैसा ही है। जमाना के बदलने पर भी, पीढ़ियाँ निकल जाने के बाद भी नारी-विमर्श, नारी-मुक्ति, नारी-स्वतंत्रता पर लंबी-लंबी व्याख्याएँ किए जाने पर भी नारी का शोषण कम नहीं हुआ है।

बलात्कार

हमारे समाज में नारी की यौन पवित्रता को असीम महत्त्व दिया जाता है। नारी का चरित्र पवित्र हो, वह सदा अपने पति के अलावा किसी और के बारे में सपने में भी न सोचें। हमेशा पतिव्रता रहकर अपना जीवन बिताए। पुरुष स्त्री से तो अपेक्षा रखता है कि वह परपुरुष से दूर रहे लेकिन स्वयं पर नियंत्रण नहीं रखता है। पुरुष की इसी मानसिकता के परिणामस्वरूप आज समाज में बलात्कार से अनेक लड़कियाँ पीड़ित है। बलात्कार नारी समस्याओं में सबसे खतरनाक है। कल्पना शर्मा का यह कथन झूठ नहीं बिल्कुल सच है–'एक साल में भारत-भर में हजारों स्त्रियों का बलात्कार किया जाता है। भारत के सुरक्षित शहर मुंबई में बलात्कार से संबंधित शिकायत हर रोज की जाती हैं। हमारी राजधानी में हर रोज एक से अधिक नारी बलात्कार से पीड़ित है।'

बलात्कार सिर्फ शरीर से संबंधित नहीं है। शारीरिक पीड़ा चाहे एक हफ्ते में मिट जावें लेकिन उससे उत्पन्न मानसिक पीड़ा जीवनभर मृत्यु तक मृत्यु के बाद भी भूला नहीं जा सकता। स्त्रियाँ अपने सतीत्व को जान से भी अधिक महत्त्व देती हैं। लड़कियाँ सब-कुछ जानकर भी अपने पति के इंतजार में शारीरिक प्यास को कभी प्रकट नहीं कर पाती हैं, ऐसी अवस्था में किसी अजनबी, अल्प परिचित या परिचित व्यक्ति के कारण कौमार्य को खो बैठना जिंदगी को खोना है। बलात्कार स्त्री शरीर के साथ किया गया अपराध नहीं बल्कि उसके मन पर प्रभाव डालनेवाला कुकृत्य है। बाहर नहीं दिखाने पर भी उसके मन में दावाग्नि सदा के लिए जलती ही रह जाती है। ऊपर से समाज की दृष्टि, अपने आसपास के लोगों का उसके प्रति व्यवहार आदि उसके जीवन को नरक तुल्य बना देता है। वह समझने लगती है कि वह कलंकित है, पवित्र नहीं। उसके सारे

 ISSN 0975-735X

जीवन का अस्तित्व मिट गया है और किसी नर के साथ जीने योग्य नहीं है।

नारी की समस्याओं से सबसे खतरनाक समस्या बलात्कार से संबंधी समस्या को कृष्णा जी 'सूरजमुखी अँधेरे के' नायिका रत्ती के द्वारा प्रकाश डालती है। बचपन में ही रत्ती बलात्कार का शिकार हो जाती है जो जीवनभर उसकी प्रगति को रोक डालता है। उसका सारा विकास अवरुद्ध हो जाता है। बलात्कार की पीड़ा को वह कभी भूल नहीं पाती है। हर वक्त उस घटना से उसका मन घुटता रहता है। अपने बारे में उसे कभी उच्च विचार पैदा नहीं होता है। उसकी मानसिक क्षति स्वतंत्र व्यवहार को रोक देती है वह अपने आपको कड़ा आवरण पहना लेती है–'रत्ती अच्छी लड़की नहीं है। रत्ती कोई औरत नहीं। वह सिर्फ गीली लकड़ी है। जब भी जलेगी धुआँ देगी। सिर्फ धुआँ।'[13]

उसका मन पूर्ण रूप से बैठ जाता है वह कभी अपने आप का शांत या सुखी नहीं पाती है। उसके मन में यही विचार कौंधते हैं। वह कभी उनसे दूर नहीं हो पा रही है। उसका व्यवहार पाठकों को एकदम स्पष्ट रूप से समझाता है कि बलात्कार नारी-जीवन पर लगानेवालों ऐसा दाग है जो पूरे जीवन को अभिशप्त करता है। बलात्कार नारी के लिए बहुत बडी विडंबना है। बहुत ही भयंकर दंड है। रत्ती का मन इसे कभी भूल नहीं पाता है। इस संदर्भ में कृष्णा जी कहती है–'हर कदम, कभी देह, कभी मन, कभी अपने से, अपनी अतीत से मुक्ति पा लेने की छटपाटहट कभी दूरारों की अनझपी आँख तले बार-बार वह अकेली लड़की संघर्ष करती है–हथियार डालती है फिर लड़ती है।'[14]

सिर्फ रत्ती ही नहीं, किसी भी नारी के लिए बलात्कार मृत्युदंड से भी भयंकर है। अपराध मर्द के द्वारा किए जाने पर भी नारी को जीवनपर्यंत इस दुख को भोगना पड़ता है। कुछ औरतें तो अपना मानसिक संतुलन खो बैठती हैं। नारी अपने-आपको इस कलंक से कभी मुक्त नहीं कर पाती। मन-ही-मन वह जलती रहती है। नारी-समस्याओं सबसे खतरनाक समस्या बलात्कार की समस्या है।

वैश्या समस्या

वैश्या समस्या नारी से संबंधित समस्या होने पर भी इसका प्रमुख कारण पुरुष है। पुरुष प्रधान समाज में नारी अपने शरीर को विभिन्न मर्द की क्रीड़ा भूमि बनाकर वैश्या नाम अपनाकर जीने लगी। उसकी पुत्री के रूप में जन्म लेने के एक माता कारण से लड़की भी वैश्या का नाम अपनाकर व्यभिचार करने लगी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी वैश्याएँ उत्पन्न होने लगीं। नारी को भूख मिटाने, अपने जीवन को आगे बढ़ाने के लिए शरीर को बेचना पड़ा। वैश्याओं का जीवन सिवाय दुःख-तकलीफ के कुछ नहीं। मनुष्य वैश्या को कामवासना की पूर्ति मात्र के लिए प्रयोग करता है। वैश्याओं की स्थिति के बारे में फ्रेंच लेखिका सीमाबे द बोउवार लिखती हैं–'वैश्या की स्थिति एक बलि के बकरे समान है। पुरुष उसके साथ व्यभिचार करता है और फिर उसे बहिष्कृत कर देता है। चाहे वैश्या वैद्य रूप से पुलिस की देख-रेख में रहे, चाहे अवैध रूप से छिपकर अपना कार्य करे, उसे हमेशा अछूत की तरह देखा जाता है।'[15] थोड़े पैसे के सहारे पुरुष जब चाहे इन स्त्रियों से कुछ भी कर सकता है।

कृष्णाजी ने अपने उपन्यासों में वैश्या के बारे में अधिक नहीं लिखने पर भी वृद्धावस्था में वैश्याओं द्वारा भोगी जानेवाली तकलीफों का वर्णन हृदयस्पर्शी रूप से किया है। 'मित्रो मरजानी'

की माँ बालो इस दर्द को अपनी बेटी के समक्ष प्रकट करते हुए कहती है–'तेरी माँ के जमाने लद गए, री मित्ती! अब कौन इसका मित्र प्यारा और कौन इसका संगी साथी। अब इस ठठरी ठंडी भट्‌टी का कोई वाला वारस नहीं। कोई मरे मनुक्ख का नाम भी नहीं। तेरी अकेली माँ को अब यह घर काटने दौड़ता है, री।'[16]

इस समस्या से पीड़ित नारी अपने-आपको दूसरों के लिए बलिदान करती है। अपने शरीर और आत्मा को दुख पहुँचाकर दूसरों को आनंद तथा चैन प्रदान करती है। जब तक यौवन रहता है, शरीर में ताकत तथा रूप में सौंदर्य भरा रहता है, तब लोग उसके पीछे पड़े रहते हैं। उसकी सुंदरता से कामवासना की तृप्ति करते हैं, लेकिन वृद्धावस्था में कोई भी उसका ध्यान नहीं रखता है। वह अपने-आपमें दुख झेलती रहती है।

अन्य समस्याएँ

लड़की के जन्म से उससे संबंधित समस्याएँ भी शुरू हो जाती है। लाख बात बदल जाने पर भी लड़का, लड़की का भेदभाव अब तक नहीं बदला है। समाज की इस स्थिति पर अरण्या के द्वारा कृष्णाजी यों कहती है–'पुरानी व्यवस्था अब भी कायम है नए बदलाओं के साथ। लड़के और लड़की में भेद परिवार में पुत्री और पुत्र का अनोखा द्वंद्व जारी है। गर्भ में ही पुत्रियों की हत्या और पुत्रों के सरंक्षण साधन। कानून बन चुके हैं मगर उन्हें लागू कौन करेगा?'[17]

नारी के जीवन में यह बात बिल्कुल सही है। हर कहीं नारी होने के मात्र से उसे विशिष्ट समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मातृत्व नारी के लिए वरदान है। ममता तथा मातृत्व से भरी नारी जननी है। नारी में नया जीवन सृजन करने की क्षमता है। नारी मातृत्व को अपना परम सौभाग्य मानने लगती है। 'ऐ लड़की' में अम्मू कहती है–'लड़की, बच्चा बनाना एक तरह का यज्ञ ही है री। इन दिनों औरत पूरे ब्रह्मांड से शक्ति के कण खींचकर अपनी ऊर्जा ज्वलित कर लेती है। अपने में कुछ विशिष्ट ही जीती है। अपने अंदर का आकाश निखारती है। जीवन उत्पन्न करने में उसकी गूँथ-गूँज कुदरत से मिली रहती है।'[18] नारी मुक्ति की गलत धारणा भी नारी को संकट में डाल सकती है। नारी मुक्ति के नाम पर नकारने योग्य बातों को प्रधानता दे तो उससे स्त्री जाति का पतन मात्र संभव है।

निष्कर्ष

कृष्णा सोबती नारी के जन्म से उसकी वृद्धावस्था तक के विभिन्न अवस्थाओं में नारी से भोगी जानेवाली समस्याओं का सही चित्रण अपने उपन्यासों में कर रखी है, जन्म के पहले या जन्म के तुरंत बाद स्त्री शिशु की हत्या उसकी तिरस्कार आदि पर प्रकाश डालती हुई कृष्णा सोबती नारी के विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डालती हैं। पुरुष प्रधान समाज की स्थापना में शोषित नारी की अवस्था का वर्णन यथार्थ रूप से प्रदान करने में कृष्णा सोबती का कार्य सम्माननीय रहा है।

सालों के बाद पीढ़ियों के बाद भी नारी शोषण इस पुरुष प्रधान समाज में खत्म नहीं हुआ। पुरुष-प्रधान समाज में आधुनिकता के छाने पर भी वांछित परिवर्तन अब तक संभव नहीं हुआ है। स्त्री जाति की मुक्ति अब तक नाम मात्र के लिए रह चुकी है। स्त्री आश्रिता ठहर चुकी है। उसे और सम्मान या अधिक स्वतंत्रता अभी तक अप्राप्त है। कृष्णा सोबती अपने उपन्यासों के द्वारा इन सत्यों को बाहर लाने में सफल सिद्ध हुई हैं। सामाजिक यथार्थता को उचित शब्दों में प्रकट करने

में श्रीमती कृष्णा सोबती को पूर्ण सफलता मिली है।

बलात्कार की क्रूरता को रत्ती के चरित्र से दिखाकर बचपन में जो अन्याय उससे सहा गया है, उसका षिंदगीभर दुख भोगना सामाजिक यथार्थ की चरमसीमा है। रत्ती के द्वारा लेखिका ऐसी अनेक लड़कियों के जीवन पर प्रकाश डालती हैं। वैश्या समस्या पर ज्यादा नहीं लिखने पर भी वृद्धावस्था में वैश्या की दुर्गति पर प्रकाश डालकर उसके प्रति पाठकों के मन में दया-भाव उत्पन्न करने के साथ-साथ सामाजिक सत्य पर भी प्रकाश डालकर कृष्णा जी श्रेष्ठ सामाजिक चिंतक सिद्ध हुई हैं।

संदर्भ

1. कृष्णा सोबती, दिलोदानिश, पृ॰ 65
2. वही, पृ॰ 167
3. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ॰ 12
4. कृष्णा सोबती, दिलोदानिश, पृ॰ 84
5. वही, पृ॰ 83
6. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, पृ॰ 63
7. वही, पृ॰ 67
8. कृष्णा सोबती, यारों के यार, पृ॰ 54
9. कृष्णा सोबती, डार से बिछुडी पृ॰ 17
10. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, पृ॰ 12
11. वही, पृ॰ 58
12. कृष्णा सोबती, यारों के यार, पृ॰ 37
13. कृष्णा सोबती, सूरजमुखी अँधेरे के, पृ॰ 17
14. कृष्णा सोबती, सोबती एक सोहबत, पृ॰ 392
15. सीमान द बोउवार, द सेंकड सेक्स, पृ॰ 84
16. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ॰ 97
17. कृष्णा सोबती, समय सरगम, पृ॰ 92
18. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, पृ॰ 57

काशीनाथ सिंह कविता की नई तारीख : एक मूल्यांकन

डॉ॰ ओमप्रकाश (डी॰ लिट्)
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
आर॰के॰एस॰डी॰ कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

काशीनाथसिंह अत्यंत लोकप्रिय कहानीकार हैं। 'कविता की नई तारीख' उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहानी है। काशीनाथसिंह की कहानी-कला, यथार्थ की उनकी समझ, परिस्थितियों और चरित्रों के मध्य संबंध द्वंद्व और चरित्रों के आपसी द्वंद्व को समझने की मेधा का परिचय इस कहानी में मिलता है। आधुनिक पूँजीवाद व्यक्ति को क्रमश: अपनी जड़ों और अपनी जमीन से, अपने जीवन के मूलभूत सामाजिक और संवेदनात्मक आधार से विलग कर रहा है। यह कहानी बहुत ही संवेदनशीलता के साथ इस अलगाव की प्रक्रिया को प्रकट करती है। काशीनाथसिंह द्वारा रचित कहानी 'कविता की नई तारीख' आलोचना के विविध आयाम खोलती है। कहानी दो परिवार जो आपस में निकट संबंधी हैं के बीच संबंधों को दर्शाती है। 'कविता की नई तारीख' कहानी विषय-वस्तु की दृष्टि से नई है। पूरी कहानी नायक कवि और प्रतिनायक सानू जो उसका साढू भाई है की बातचीत पर आधारित है। यह सामान्य-सी बातचीत अनेक परतें खोलती है। कहानीकार ने बीच-बीच में नारी मनोविज्ञान का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। कहानी में ऐसे अनेक अवसर है जहाँ नायक कवि की पत्नी उसे यह घिसी-पिटी नौकरी छोड़ने के लिए प्रेरित करती है, जहाँ ऊपर से कोई आमदन नहीं है। ऐसा सुखी जीवन की लालसा के लिए ही है। पेशे से अध्यापक और सामाजिक जीवन में कवि, कवि अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ जीवन में आई एकरसता को मिटाने के लिए रेलगाड़ी से मौज-मस्ती के लिए यूँ कहें कि हवा-पानी बदलने के लिए अपने साढू भाई के घर जाता है। सानू को बहुत खुशी है, जिस कारण वह अपने मित्रों के साथ उन्हें लिवाने स्वयं स्टेशन जाता है, लेकिन उसे तब धक्का लगा जब वह देखता है कि वे साधारण टिकट से आए हैं, क्योंकि ऐसा उसके स्टेटस के खिलाफ है। इसका अहसास कवि को भी है यही कारण है कि वह स्टेशन पर उतरते ही अपना सारा सामान उठाकर प्रथम श्रेणी के डिब्बे के सामने जाकर खड़ा हो जाता है। घर पहुँचने पर मौसेरे भाई-बहनों के बीच कुछ तुनक-मिजाजी जरूर हुई। ऐसा वातावरण, शिक्षा और संस्कारों की भिन्नता के कारण होना स्वाभाविक भी था, किंतु सानू और रेखा ने किसी प्रकार की कोफ्त नहीं दिखाई बल्कि अनपेक्षित सम्मान किया। महानगरीय संस्कृति में जब मानवीय मूल्यों में गिरावट दर्ज की गई हो कहानीकार ने विपरीत परिस्थिति बोध दर्शाया है अर्थात कवि का पत्नी और बच्चों सहित साढू से मिलने आना उन्हें कहीं भी अखरता नहीं। बेशक कवि अपने साढू भाई की शानों-शौकत और बच्चों के एडिकेट्स देखकर चकित अवश्य है। यही कुछ कारण हैं जो 'कविता की नई तारीख' कहानी को कहानियों की कतार में अलग खड़ा करती है। आमतौर पर बच्चे पढ़-लिखकर महानगरों में नौकरी के लिए निकल जाते हैं। महानगरों की भागदौड़-भरी षिंदगी में संबंधों की आत्मीयता नहीं रह

 ISSN 0975-735X

जाती। इसके विपरीत कहानीकार ने दिखाया है कि सानू जो महानगर में इनकम टैक्स अधिकारी है, पत्नी भी शहर की प्रतिष्ठित अधिवक्ता है, वहीं बच्चे भी आधुनिक विचारों के हैं, बावजूद इसके गाँव से आए अपने माँ-बाप, भाइयों या फिर साढ़ू और साली रेखा के सम्मान में सानू-दंपती ने कोई ढील नहीं दिखाई, जैसा अधिकांश कहानीकार दर्शाने का उपक्रम करते हैं। यह दीगर है कि शहर का माहौल उन्हें रास नहीं आया जिस कारण वह न जाने कब अपना कमंडल उठाकर वापस गाँव लौट गए।

काशीनाथसिंह प्रगतिशील लेखक हैं। आशीष त्रिपाठी द्वारा काशीनाथसिंह की बहुचर्चित कहानियों का चयन 'खरोंच' कहानी-संग्रह में किया गया है। निश्चित रूप से इस संग्रह की कहानियाँ हमें खरोंचती हैं। इसी संग्रह में कहानी 'कविता की नई तारीख' भी संकलित है। यह काशीनाथसिंह की प्रतिनिधि लंबी कहानी है जहाँ एक साथ अनेक समस्याओं का उद्घाटन हुआ है। आमतौर पर लंबी कहानियों को पढ़ने से पाठक उकता जाता है, क्योंकि इतने समय में कुल चार-पाँच कहानियाँ और पढ़ ली जाती हैं। लंबी कहानी की खासियत होती है कि उसमें कथाकार घटना तंतुओं को किस जीवंतता के साथ परोसता है। 'कविता की नई तारीख कहानी' में काशीनाथसिंह ने बड़ी सजगता, तत्परता और नवीनता से अपनी बात कही है। दो परिवारों की यह कहानी किसी चल-चित्र की भाँति एक के बाद एक रहस्योद्घाटन करती है। कहानी का नायक कवि एक साधारण अध्यापक है जो पत्नी और अपने पाँच बच्चों के भरे-पूरे परिवार के साथ गरीबी-तंगहाली में भी सीना तानकर जी रहा है। महँगाई के दौर में डेढ़ हजार रुपए की मासिक पगार पानेवाला निहायत ईमानदार, कर्त्तव्य-परायण अध्यापक अपने पुश्तैनी मकान में बड़ी दयनीय अवस्था में रहता है। वहीं उसके साढ़ू भाई सानू, जिसकी पगार मात्र एक हजार रुपए है उसके पास दिल्ली, मुंबई, इलाहाबाद जैसे महानगरों में अकूत संपति है और वह शानो-शौकत का जीवन जीता है। अवसर-अनवसर अपनी फिएट कार से कवि के यहाँ मौज-मस्ती के लिए आ धमकता है। इसी का खुलासा करते हुए कवि कहता है, 'वह साल में, पता नहीं, क्या कर-कराके पंद्रह-बीस रोज की छुट्टी लेता, गैराज से अपनी कार निकालता, उस पर सारा परिवार लादता और दूसरे शहर के लिए चल देता। और दूसरा शहर भी कहाँ... मेरे घर! यहाँ साला खाने को ठिकाना नहीं और कर्जे ले-लेकर अंडे और मछली और गोश्त और फ्रूट जूस और जैम और ड्रिंक ...! सारी व्यवस्था उलट-पुलट हो जाती और आनेवाले छह महीने के लिए मेरा दिवाला निकल जाता।'[1] उस पर कवि को व्यंग्य-भरी नसीहत देकर चला जाता है। जाहिर है इससे न केवल घर-गृहस्थी का सारा बजट बिगड़ जाता है बल्कि उसकी पत्नी भी हीनता की शिकार हो जाती है। निहायत ही संगीन और गोपनीय एक और मामला है जिसे कवि अपने सीने में छुपाए है। मामला क्या है, वह आते हैं, रहते हैं और कहते जाते हैं, 'कवि जी, जरा इधर भी ध्यान दीजिए। एक तो आपकी छत बेहद नीची है, दूसरे इसकी दो धरने धार से लटककर टेढ़ी हो गई है। सावधानी न बरतिएगा तो मकान ही बैठ जाएगा।'...खैर मनाइए कि हम पतले हैं वरना सीढ़ियाँ ऐसी हैं कि मोटा आदमी बीच में ही अंडस जाए। ...बाथरूम ऐसा है कि इसमें सिर्फ बैठ और खड़े हो सकते हैं..। इसकी खिड़कियाँ और दरवाजे मोहनजोदड़ो कालीन हैं...ऐसे काम न चलेगा। घर में चार-पाँच मच्छरदानियाँ तो रखा कीजिए... कवि जी।' एक तरह से देखिए तो यह हमारे फायदे के लिए दी जानेवाली हिदायतें हैं, लेकिन जरा दूसरी तरह से देखिए तो...तो देखा आपने? यह है हमारी जेब के

सारे पैसे निकलवा लेना, कपड़े उतरवा लेना, फिर गले लगाना और अंत में चूतड़ पर चार लात लगाकर चल देना।'[2]

वर्तमान भौतिकवादी युग में जब महँगाई सुरसा की भाँति मुँहबाए खड़ी हो, सीमित-संसाधनों में इतने बड़े परिवार का बोझ उठाना बेहद मुश्किल है। वैसे भी कवि एक साधारण अध्यापक ही तो है, जिसकी आधुनिक सभ्य समाज में कोई हैसियत नहीं। कवि गोष्ठियों में भाग लेने के कारण समाचार पत्र-पत्रिकाओं में उनके चित्र अवश्य छपते रहते हैं, जिसके कारण उन्हें थोड़ी-बहुत प्रसिद्धि मिलती है। आमतौर पर कवि-गोष्ठियों का आयोजन भी चंदों की बदौलत ही संपन्न हो पाता है। सानू स्वाभिमान से कहता है, 'शहर में गोष्ठियों के नाम पर, पत्र-पत्रिका के नाम पर, संस्था के नाम पर, दवा-दारू के नाम पर, अपील छपवाने के नाम पर कवि लोग चंदे के लिए आते रहते हैं–बड़े साहस के साथ, इस अहाते में घुसते समय बड़ी हिम्मत से काम लेते हैं। और मैं आपसे झूठ नहीं बोलूँगा–उन्हें चंदे देता हूँ, क्योंकि उन्हें चंदे देना मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि इससे मुझे बड़प्पन का एहसास होता है। सेठों के सम्मान से कवियों द्वारा सम्मान कहीं बड़ी चीज है–हर हालत में बड़ी। आप यकीन कीजिए भाई साब, शुरू में चंदा देने से पहले मैं बेमतलब के काम करने के लिए उन्हें ऐसे डाँटता हूँ, जैसे अपने धोबिन को, जैसे सब्जी वाले को, यहाँ तक की रहमतअली को। फिर भी वे मेरी इज्जत करते हैं और इतनी जितनी आपकी भी नहीं करते। माफ करिएगा, विश्वास न हो तो चलिए, किसी भी गोष्ठी में चलिए। देखिए, लोग आपके स्वागत के लिए दौड़ते हैं या मेरे!....'[3]

कवि सम्मेलनों में मनचलों की शोभा बने बड़े-बड़े कविगण सम्मान पाने के लिए नेताओं, धनी वर्गों या अधिकारियों का मुँह तकते हैं। वैसे भी इन लोगों की निगाहों में किराए के मंचीय कवियों का चरित्र इतना महान नहीं होता जितना ये आँके जाते हैं। सानू जो कवि का साढू भाई भी है और इनकम टैक्स अधिकारी भी है समाज में कवि होने के अर्थ को बतलाते हुए कहता है, 'आपको मालूम है, हम अफसरों में कवि का क्या मतलब है? कवि का अर्थ है फटीचर, चूतिया, चिरकुट...बुरा ना मानेंगे आप! आपके लिए दिल में बेहद इज्जत है और यह भी है कि यह अर्थ आप पर लागू नहीं होता। लेकिन मैंने जो कहा वह सच है। इसके सिवा किसी दूसरे रूप में मैं कवि को नहीं जानता।'[4]

सानू कवि सम्मेलनों की पोल खोलते हुए कहता है कि कवि लोग मंचों के माध्यम से व्यवस्था में व्याप्त अनीति, अनाचार, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट और रिश्वतखोरी का भंडा फोड़ते हैं, परंतु कवि लोगों की इन बातों का सरकारी अमले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सरकारी व्यवस्था उसी ढर्रे पर चलती है। 'तो भाई साहब! मैं कह रहा था कि आप इतना लिखते हैं, आप ही क्यों, आप-जैसे सैकड़ों लोग लिखते हैं लेकिन कोई पत्ता हिलता है?...कुछ हिलाया है आप लोगों ने? उसने सिगरेट की राख झाड़ी और मेरी आँखों में देखा।'[5] समाचारपत्रों में सुर्खियाँ बटोरना, पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर सुशोभित होना, कवि-सम्मेलनों में हार पहनकर सुशोभित होना, एक सदाचारी, आत्मसंयमी, व्यक्ति के लिए तो ठीक है, किंतु घर-गृहस्थी के स्वास्थ्य की देखभाल इन उपकरणों से कतई संभव नहीं। इन सबके लिए पैसा चाहिए। एक प्रतिष्ठित कवि होने के बावजूद कवि की पत्नी अपनी अभाव भरी षिंदगी का दुखड़ा सुना रही हैं, जरा कान लगाकर सुनिए, 'आज सवेरे से ही घर की याद आ रही है, वे फिर हिचकियाँ लेने लगी, 'छत से

पानी टपकता होगा, नीचे वाले कमरे में। पिछली बार मीटर उड़ गया था। हम यहाँ हैं। कौन जाने मीटर उड़ गया हो और करंट दीवार में उतर आया हो! आशा, कुसुम, गीता बड़ी बदमाश हैं, उनमें से किसी को कुछ हो गया तो! मैं गर्मी-भर चिल्लाती रही कि बारिश के पहले मरम्मत करवा दो, मरम्मत करवा दो, लेकिन कौन सुनता है मेरी?...आते समय दाल खत्म हो रही थी। ...गेहूँ तो अभी दो-चार रोज के लिए होगा।...पता नहीं, अब भी इन सबों का एडमिशन उसमें होगा या नहीं। कहा था, महीने-भर के लिए ही सही, ट्यूटर तो लगवा दो। यह किया नहीं...तुम मास्टरी छोड़ क्यों नहीं देते? आज सुबह डॉली बता रही थी सानू के क्लर्क के बारे में उसके बेटे सेंट स्टीफंस में पढ़ते हैं और...और.।'[6] कवि महोदय, कवि की इस दुर्दशा का बखान और कितना करें, आप समझ सकते हैं। काशीनाथसिंह ने कवि और उसकी अभावमयी पारिवारिक सामाजिक स्थिति पर असंतोष व्यक्त किया है। एक समय था जब कहा जाता था कि 'सरस्वती और लक्ष्मी में बैर है'। कवि के ऊपर यह बात पूर्णत: चरितार्थ होती है किंतु वर्तमान भौतिकवादीयुग में इस सत्य की धार कुंद पड़ गई है। आज कवि बड़े-बड़े मंचों पर बड़े-बड़े धन्ना सेठों, नेताओं का न्योता स्वीकार कर जीवन का आनंद भोग रहे हैं। यह भी सच है कि अब कवि और उसकी कविता में पूर्व-सा देशानुराग न होकर चापलूसी, छिछलापन, अकारण हास्य का प्रचलन बढ़ गया है। अब कविता में वह गहराई नहीं जिसके लिए उसे जाना जाता है। अधपके मंचीय कवियों ने इसे ठेस पहुँचाई है।

निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए छोटी-छोटी बातों पर होनेवाले लड़ाई-झगड़े, डाँट-डपट, आटा-दाल जैसी जीवन की मूलभूत जरूरतें, चिंताएँ-समस्याएँ जी का जंजाल हैं। काशीनाथसिंह ने इन सभी समस्याओं को बारीकी से उकेरा है। दूसरी और राजनेता एवं अधिकारी वर्ग में फैले भ्रष्टाचार को भी निर्ममता से उजागर किया है। स्वतंत्र भारत मे रिश्वत लेना और देना व्यक्ति का धर्म बन गया है। यह किसी से छिपा नहीं है। आज यही राष्ट्रीय चरित्र बन गया है। आए दिन समाचार पत्रों, मीडिया-संसाधनों में खबरें प्रकाशित होती है कि फलां विभाग का अधिकारी रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया। कथानायक कवि अपनी पत्नी को साफ शब्दों में कहता है, 'यही एक मुल्क है, जिसमें झूठ, फरेब, बेईमानी, धूर्तता, घूसखोरी इतनी हसरत की नजर से देखी जाती है। समझी? हसरत की नजर से!'[7] रिश्वत की यह बेल छोटे कर्मचारी से लेकर बड़े अधिकारी तक खूब फल-फूल रही है। सानू के ऑफिस में चतुर्थ श्रेणी चपरासी इस सत्य को स्वीकार करता है, 'तो जददू भैया, मैं घूसखोर हूँ... यही कहा साहब ने, लेकिन कौन घूसखोर नहीं है? क्या मैंने नया लिया था? वह नहीं जानते थे? मैं उनका अर्दली था—उनसे भेंट कराने या मिलवाने के पाँच रुपए या दस रुपए जैसा आसामी हो! बस! वे मजे में जानते थे। मेरी गलती केवल इतनी ही है कि मैंने उनके भांजे से ले लिया! मुझे क्या मालूम कि कौन भांजा है, कौन मामा? मैंने माफी माँगी, गिड़गिड़ाया, कसमें खाईं...।'[8] कवि के कहने पर सानू रामलाल को बहाल तो कर देता है लेकिन साथ में एक नसीहत भी देता है कहता है कि 'रिश्वत की भी एक मर्यादा होती है। एक रुपए, ... दो रुपए, यह रिश्वत है? बदनाम भी होओ और कोई बात भी न बने। नंबर दो—ऐसा करते समय आदमी पहचानो। मौका-बेमौका भी देखो...सिर्फ पैसा ही नहीं। समझा?... वरना तुम्हारा तो कुछ न होगा, अपना कबाड़ा हो जाएगा!'[9] सानू एक ओर रिश्वत के गुर बताता है वहीं सेठ और नेताओं के रिश्वत देने के फर्क को भी बताता है। 'सेठ और नेता-एक फर्क है इनमें। सेठ पैसा देता है और काम लेता है और कभी अपनी जबान नहीं खोलता। नेता लोग काम भी गलत करवाते

हैं–अपनी नेतागिरी के रौब में। कभी-कभी पैसा भी देते हैं लेकिन हल्ला ऊपर से कि देश में घूसखोरी बढ़ रही है, बेईमानी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, जब तक इन्हें न रोका जाएगा देश की तरक्की नहीं हो सकेगी। क्यों? क्यों ऐसा करते हैं ये? क्योंकि इन्हें चुनाव भी लड़ना पड़ता है। . ..विश्वास कीजिए, सेठ इनसे लाख दर्जे अच्छे होते हैं।'[10]

आज देश में फैले हुए इस भ्रष्टाचार से कहीं निजात नहीं है। यहाँ तक कि देश की सर्वोच्च कही जानेवाली संस्थाएँ न्यायालय, प्रेस भी इससे अछूते नहीं है। आप मीडिया को ही देखिए, प्रश्न यह नहीं है, प्रश्न है लोकतंत्र के अघोषित चौथे स्तंभ मीडिया की कारगुजारी का जो रिश्वत की खबरों को छापता भी है, दिखाता भी है और खुद बेशर्मी से रिश्वत देता भी है। यहाँ तक की छुटभैया पत्रकार तो ब्लैकमेलिंग का अवसर भी हाथ से नहीं जाने देते। चुनावी मौसम में तो यह रंग देखते ही बनता है। काशीनाथसिंह शायद पहले कथाकार है, जिन्होंने मीडिया तंत्र की इस जालसाजी का पर्दाफाश किया है। इनकम टैक्स अधिकारी सानू साफ शब्दों में कहता है, 'क्या कहिएगा इस मुल्क को भाई साहब! जिस अखबार के मालिक से अब तक एक लाख ऐंठ चुका हूँ–दस बीस हजार नहीं, पूरे एक लाख, वही बार-बार अपने अखबार में मेरी ईमानदारी, सेवा, निष्ठा, त्याग और कर्त्तव्यभावना की तारीफ के पुल बाँधता है। बताने की जरूरत नहीं कि वह क्यों बाँधता है। और इससे भी मजेदार बात यह कि उसे एक ईमानदार और निर्भीक पत्रकार के रूप में पदमश्री भी मिल चुकी है।'[11]

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एवं उत्तर आधुनिकतावादी चिंतक अल्विन टॉफलर ने अपनी पुस्तक 'थर्ड वेव' में कहा था यह युग 'उत्तर आधुनिकतावादी युग' पावर और पूँजी का युग है। वर्तमान युग में राजनेताओं और पूँजीपतियों के पास दोनों की ताकत है। मीडिया इन दोनों के हाथों का खिलौना है। कहते हैं 'कोयले की दलाली में सबका मुँह काला' देश की न्याय व्यवस्था समाज की सुदृढ़ आधारशिला है। देखा जाए तो वहाँ भी काले को सफेद करने की प्रक्रिया तीव्र है। कहने का अभिप्राय है की जनविश्वास की डोर में बँधी न्याय व्यवस्था में भी सब ठीक नहीं है घालमेल है। इनकम टैक्स अधिकारी सानू की पत्नी रेखा का यह कथन देखिए, 'अब मेरा ही देखो, मुझे नौकरी या काम की कोई जरूरत नहीं थी लेकिन सानू के कहने पर वकालत पास किया और अब हाईकोर्ट से ज्यादा नहीं तो चार हजार मिल जाते हैं–प्रति मास! और कहीं हमारे सीनियर ओझा बाबू इस सरकार में कानून-मंत्री हो गए तो जज होना मेरा निश्चित है!... चाय ठंडी हो रही है, उसे पियो तो!'[12] सोनू के कथन से भी इसी साक्ष्य की पुष्टि होती है कि कवि, पत्रकार या बुद्धिजीवी वर्ग कितना ही ढोल पीटते रहे वह अधिकारी, कर्मचारी और राजनेताओं की कारगुजारी पर लगाम नहीं लगा सकते। कहने का अभिप्राय है कि नेता कितनी ही धाँधली करे उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, 'अब देखिए! आपके इस वक्तव्य के बाद किसी भी अफसर... किसी भी नेता को पकड़ लिया जाए चूँकि ऐसा लिखा है और तुम भी एक अफसर हो, अत: नौकरी से सस्पेंड। अब चलिए कचहरी। आपके पास क्या सबूत है कि उसने बेईमानी की है? सबूत आपके-मैं कहता हूँ कि आपके बस की बात है ही नहीं। आप क्या खाकर सबूत दे सकते हैं?....अरे, औरों को छोड़िए ...मुझे आप सबसे अधिक जानते हैं–मुझे ही लीजिए। आप कहाँ से सिद्ध करेंगे? सिवाय इसके कि आप घर के अंदर के सामान देखें और समझें कि यह बेईमानी है।...खैर, आगे चलिए! अब वह कचहरी से छूट गया! और छूटेगा भी क्यों नहीं? आखिर कानून भी तो उसी ने बनाया है, जिसे

आप बेईमान और अनैतिक कह चुके हैं! आप समझते हैं कि वह इतनी आसानी से अपना गला आपके पंजे में देने का कानून बनाएगा! अपने से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारेगा!...तो कचहरी से छूट गया और बाइज्जत। मैं कहता हूँ कि बाइज्जत। इसका नतीजा क्या हो सकता है, जानते हैं आप? इसका अर्थ हुआ कि आप झूठे हैं, फरेबी है,आपने शरीफ आदमी की इज्जत पर कीचड़ उछाला है, उसका अपमान किया है, क्यों न आप पर मान-हानि का मुकदमा दायर कर दिया जाए? 'और मुकदमा हो गया। आप हार गए और आप पर पाँच हजार का जुर्माना हो गया। आप कहाँ जाएँगे? और मान लीजिए उसकी इज्जत की कीमत कहीं पचास हजार से ज्यादा हुई तब-तब तो जेल में सड़िए या कुर्की-नीलामी कराइए।'[13] कहने की जरूरत नहीं वरीयता, श्रेष्ठता और प्रतिभा को लाँघकर जब चापलूस एवं अयोग्य व्यक्तियों को न्यायाधीशों के पदों से नवाजा जाएगा तो ऐसा होना स्वाभाविक ही है। आजकल न्यायपालिका में यही हो रहा है।

काशीनाथसिंह ने अपनी इस प्रतिनिधि कहानी में कवि जो कवि और अध्यापक है के संघर्षशील जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। कहानी की भाषा एक नया तेवर लिए है। कथ्य के अनुरूप कहानी में अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है। व्यंग्यात्मक शैली का यह उदाहरण देखिए 'कवि जी, माय रिस्पेक्टेड कवि जी, आप सीधे-सीधे यह क्यों नहीं कहते कि मैं इसलिए नहीं समझ सकता कि आप समझा ही नहीं सकते! आपके पास घिसे-पिटे कुछ पारिभाषिक शब्द हैं। आप कहेंगे कि मेरा वर्ग-चरित्र बदल गया है। यही न? आप डेढ़ हजार रुपए पाते हैं और पाई-पाई को दाँत से पकड़ते हैं और आपका वर्ग नहीं बदला और हजार रुपए मासिक पानेवाले मुझ गरीब का वर्ग बदल गया? अगर मैं किसी हिकमत से ऐशो-आराम की षिंदगी जीना चाह रहा हूँ तो इसमें किसी के बाप का क्या? और कौन नहीं चाह रहा है? क्या मैं सौ रुपए की शराब पी रहा हूँ और आप अठन्नी के चोटटा का रस पी रहे हैं?'[14] कहानी कलात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण है। कहानी के संवाद पूर्णतया चुटीले तथा गति प्रदान करने वाले हैं। नाटकीयता का गुण कहानी के सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है। कहानी में रोचकता लाने हेतु यथास्थान लोक प्रचलित एवं फिल्मी गीतों का प्रयोग हुआ है। आंचलिक शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा का स्वरूप निखर आया है। कहानी में बार-बार प्रयुक्त यह वाक्य 'किस्मत का खेल देखिए' आदि से अंत तक कहीं भी पीछा नहीं छोड़ता। अधिकारी हो, कर्मचारी हो, राजनेता हो, मंत्री हो, कवि हो, पत्रकार हो या आमजन सभी पर पूर्णतया चरितार्थ होता है। वर्तमानयुग में जहाँ चारों ओर भ्रष्टाचार फैला हो, देश की आधी-आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रही हो, वहाँ राजनेताओं में इस बात को लेकर होड़ मची है कि कॉलोनी का नाम किसके नाम पर हो। लेखक कवि के माध्यम से इस समस्या का समाधान बड़ी सहजता एवं बुद्धिमता से कर देता है कि जो पहले मरेगा उसके नाम पर कॉलोनी का नाम और जो बाद में मरेगा उसके नाम पर राजमार्ग का नाम रखा जाएगा। उसी दिन से दोनों राजनेताओं ने बिस्तर सँभाल लिया है। वहीं कहानी में देश-दुनिया की खबरों से बेखबर कंचे खेलते, गुल्ली-डंडा खेलते या फिर बंदर-बंदरिया का नाच देखने के लिए उत्सुकता से निगाह जमाए बैठे मासूमों की अपनी ही अलग दुनिया है, जिनका स्वाभाविक चित्रण कहानीकार ने किया है। काशीनाथसिंह कहानी के प्रारंभ में 'किस्मत में यदि यही है तो जो होना है, हो!' का राग अलापते है तो कहानी के अंत में 'मैदान का आधा हिस्सा छाया में था और आधा हिस्सा धूप में' कहकर कहानी को रोमांचक बना दिया है। वास्तव में कवि और सानू दोनों के परिवारों पर दोनों वाक्य

पूर्णत: चरितार्थ होते हैं। कवि यदि 'छाया' सुख का क्षणिक आनंद अनुभव करता है तो पूरा परिवार 'धूप' अभाव में जीता है। सानू यदि 'छाया' सुख में है तो उसके परिजन पिता, माँ, भाई आदि वापिस गाँव की 'धूप' में ही लौट जाते हैं। यही 'किस्मत का खेल' है जिसकी धुरी पर दोनों परिवार झूलते हैं। इन्हीं दो सार्थक वाक्यों से कहानी का ताना-बाना बुना गया है। कथा नायक कवि के ऊपर इतने मानसिक आघात हुए हैं कि उसे अपना कवि जीवन ही अभिशाप लगने लगा है। वह कविता रचने की नई तारीख के विषय में सोचने पर मजबूर हो जाता है कि कविता लिखकर अभाव का जीवन जीए या फिर पत्नी ने जैसा कहानी के आरंभ में कहा था, 'आप यह नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते?' ऐसा करके वह परिवार को ज्यादा सुखी बनाए। अत: कहानी का शीर्षक स्वत: प्रमाणित हो जाता है।

संदर्भ

1. खरोंच, काशीनाथसिंह, चयन संपादन : आशीष त्रिपाठी, साहित्य भंडार, इलाहाबाद-211003, पृ॰ 29
2. वही, पृ॰ 30
3. वही, पृ॰ 57
4. वही, पृ॰ 57
5. वही, पृ॰ 53
6. वही, पृ॰ 48
7. वही, पृ॰ 41
8. वही, पृ॰ 46
9. वही, पृ॰ 50
10. वही, पृ॰ 50-51
11. वही, पृ॰ 51
12. वही, पृ॰ 61
13. वही, पृ॰ 52-53
14. वही, पृ॰ 56

 ISSN 0975-735X

शमशेरबहादुर सिंह की कविताओं में ऐंद्रिक बोध

डॉ॰ रामस्वरूप कुमार

शमशेर की कविताएँ प्रणय और रोमांस से जुड़ी हैं जिसे छायावादी संस्कार का उत्तर रूपी माना जा सकता है। इनके आगे सुंदरता हर पल हर क्षण अवतरित होती रहती है, जीवन और जगत के चारों ओर अनंत और अपार सौंदर्य की लीला घटित हो रही है। शमशेर इस सौंदर्य को अपनी कला में सजीवता प्रदान करने की चेश्टा करते हैं। नारी सौंदर्य और प्रकृति सौंदर्य को वे कहीं अलग-अलग कहीं एकान्वित रूप में अपनी रचनाओं में चित्रित करते हैं–'दिन किशमिशी रेशमी गोरा' में नारी के सौंदर्य और अस्थिरता जनित आकुलता का चित्र इस प्रकार है–

गोद यह
रेशमीगोरी, अस्थिर
अस्थिर/ हो उठती/ आज
किसके लिए?

जा
ओ बहार/ जा!
मैं जा चुका कबका
तू भी ..../ ये सपने न दिखा।[1]

प्रकृति और नारी-सौंदर्य की मिली-जुली छवि का प्रभावोत्पादक चित्रण निम्नलिखित कविता में दृष्टिगत होता है–

शाम का बहता हुआ दरिया कहाँ ठहरा
साँवली पलकें नशीली नींद में जैसे झुकें
चाँदनी से भरी भारी बदलियाँ हैं
ख्वाब में गीत पेंग लेते हैं
प्रेम की गुइंया झुलाती हैं उन्हें–
उस तरह का गीत, वैसी नींद, वैसी शाम-सा है
वह सलोना जिस्म।[2]

प्रणय का बंधन शमशेर के लिए इंसान से इंसान को बाँधने का एक साधन है। मांसल सौंदर्य-चेतना को रूपायित करते हुए शमशेर की काव्यानुभूति नये बिंबों के कारण परंपरा से भिन्न प्रतीत होती है। वे अपनी प्रेमिका को वक्षस्थल की आग से सुहागिनी बनाना चाहते हैं–

धरोशिर/ हृदय पर
वक्ष-वह्नि से–तुम्हें/ मैं सुहाग दूँ–
चिर सुहाग दूँ।

प्रेम अग्नि से तुम्हें/ मैं सुहाग दूँ।[3]

शमशेर मुख्यतः प्रणयजीवन के रसवादी कवि हैं। इनकी प्रेम-सौंदर्यजनित अनेक कविताओं में राग-रचना व सघन ऐंद्रियता अनुपम है–

चिकनी चाँदी-सी माटी
वह देह धूप में गीली
लेटी है हँसती-सी।[4]

इन पंक्तियों में कवि-व्यक्तित्व का अदृश्य सागर लहरा रहा है। शमशेर का रोमांटिक चेतना सघन ऐंद्रियता का बिंब ले आती है। 'वह देह चिकनी चाँदी-सी माटी' आदि भाव-संवेदनों को एकाकार एवं आत्मसात् करते हुए साकार होती है। 'धूप में गीली' प्रणय विगलित संवेदना का बिंब है, तो 'चाँदी-सी माटी' अतुलित सौंदर्य और नश्वरता को बिंबित करती है।

शमशेर प्रणय चित्रण में नई कविता के अद्वितीय कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे प्रेम का मूल्य समझते हैं, उनके लिए प्रेम अनमोल है। उनके प्रिय कवि निराला हैं इसलिए वे भी निराला की भाँति उदात्त निश्छल प्रेम के उद्गायक हैं। 'प्रेम की वानी' उनके लिए सबसे सच्ची वाणी है। डॉ॰ रंजना अरगड़े के अनुसार–'प्रेम का रंग उनकी कविताओं में गहरा है। यह प्रेम अनेक स्तरों पर उनकी कविताओं में आलेखित हुआ है। निजी संदर्भों में प्रेम, समष्टि के संदर्भों में प्रेम (जहाँ वे देश-प्रेम, मानवता आदि की कविताएँ लिखते हैं) उनकी कविताओं की आत्मा ही है। इसके साथ ही वे प्रेम को सौंदर्य और शांति की तरह एक मानकर उसे अपनी कविताओं में लाते हैं। प्रेम को वे जीने की अनिवार्यता मानते हैं।'[5] प्रेम मनुष्य की आदिम वृत्ति है। उसकी जिजीविषा का केंद्रीय तत्त्व है। प्रेम की दुर्दम्य भावधारा को अनेक प्रयत्नों के बावजूद रोकना असंभव है। कवि के लिए प्रेम और सौंदर्य में निकट का संबंध है। सत्य की तरह ही प्रेम और सौंदर्य का शाश्वत मूल्य है। मनुष्य मात्र के लिए 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का शाश्वत मूल्य है, लेकिन कवि के लिए प्रेम सौंदर्य का विशेष अर्थ है। अनुभूति के स्तर पर प्रेम ही सौंदर्य है–

प्रेम का कँवल कितना विशाल हो जाता है
आकाश में जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौंदर्य हो जाते हैं
मनुष्य की आत्मा में।[6]

यहाँ 'प्रेम का कँवल' आकाश की तरह विस्तार लिए है। प्रेम और सौंदर्य में अविभाज्य संबंध है, जहाँ-जहाँ प्रेम की संभावना होती है सौंदर्य की सृष्टि अपने आप हो जाती है। कवि की प्रणय-संवेदना की बात करें तो उनके प्रेम में समर्पण का भाव है। प्रेम में वे आकंठ डूबे हैं–

मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार
जिसके स्वर गीले हो गए हैं
छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा...
छप्-छप्-छप्।[7]

छप्-छप्-छप करता हृदय वेदना से उमड़कर बह रहा है। यहाँ वेदना नाट्याकार हो गई है। उसी नदी में आर्त-क्रंदन से बनी नाव है जो बाँसुरी रूपी पतवार से खेई जा रही है। यहाँ प्रेम और दुख दोनों की अनंत तीव्रता है–

हाँ तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती है
जिनमें वह फँसने नहीं आती
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पाती
तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।[8]

प्रेम परवान तब चढ़ता है जब हम उसे मुक्त करते हैं। वह प्रिया पर एकाधिकार नहीं चाहता। लहरों में कूदती, उछलती, मचलती स्वच्छंदता प्रिय मछलियों के प्रेम में अद्‌भुत जीवनोत्सव है। यह प्रेम की नई जमीन है, जहाँ स्वतंत्रता है, निश्कलंकता है। प्रेम कवि के लिए जीने का सहारा है और प्रेम तो अनंत है। प्रेम के जिस रूप की कामना है वह उन्होंने अभी तक पाया नहीं है। तभी तो कवि कहता है–चुका भी हूँ मैं नहीं/ कहाँ, किया मैंने प्रेम/ अभी।[9]

वे अपनी प्रेयसी की कठोरता से कितनी बार आहत होते हैं। वैसे 'प्रेम' में आहत होने के लिए किसी गंभीर कारण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 'प्रेमी' के लिए छोटे-से छोटा कारण भी गंभीर हुआ करता है। कवि के प्रेम की मंजिल क्या है? वह है प्रेयसी की कस्तूरी-गंध वाली जुल्फ–

मुश्क बू-ए-जुल्फ उसकी घेर ले जिस जाँ हमें,
दिल से कहता है उसी को अपना काशाना कहें।[10]

प्रेयसी उनकी सर्वस्व है, पर वह इतनी कठोर निकली कि 'कल आने का वादा' भी पूरा नहीं करती। हँसकर आखिर कवि अपने-आप से कहते हैं कि मियाँ तुम तो बड़ी उम्मीद लगाए बैठे हो पर–

वो कल आएँगे वादे पर
मगर कल देखिए कब हो।
गलत फिर, हजरते-दिल
आपका तख्मीना होना है।[11]

इस बार भी अटकल गलत ही निकलेगी कि 'वो कल आएँगे'। कहते हैं कि कठोरता की हद तो यह है कि यहाँ जिंदगी खत्म हुआ चाहती है और आप मानो कोई शेर सुन रहे हैं, इस तरह 'दुबारा' की फरमाइश कर रहे हैं–

हो चुकी जब खत्म अपनी जिंदगी की दास्ताँ
उनकी फरमाइश हुई है इसको दोबारा कहें।[12]

'इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में ही सही,' वे अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए धैर्य का परिचय देते हैं। सब कुछ तो उसी का है; जिंदा इत्रपाश बनकर वही बरसी, और फिर उसी ने मोहित किया, 'उसी ने तो फटे और खुले हुए लिफाफे-से कवि को उलट-पुलटकर देखा, पर पढ़ा नहीं, वहीं पर छोड़ दिया, उनके रंगों में अपनी इच्छा से उसी ने लपेटा, इच्छा होने पर लपेट खोल अलग भी करना चाहा, लेकिन लपेट ऐसे थे कि सरलता से खुले नहीं तो जला भी दिया। फिर वह जलते हुए कवि को बड़ी निष्ठुरता से देखती भी रही–कवि को यह भी मंजूर है–'कोई बात नहीं अगले जन्म में।'

उनकी प्रेयसी तो साँवली है। यह साँवलापन है कत्थई गुलाब का जो अपने में नर्म-नर्म

केसरिया साँवलापन दबाए हुए है। यह वह है—शाम की/ अंगुरी रेशम की झलक।[13]

और ऐसा भी नहीं है कि हर बार उसे छुआ ही जा सकता है। कई बार 'हुआ, कि खोए गए' यू भी तो हो सकता है, क्योंकि—

आकाशीय गंगा की झिलमिली ओढ़े
तुम्हारे/ तन का छंद/ गतस्पर्श।[14]

एक विचित्र संयोग है कि प्रेयसी और शाम, उन्हें दोनों साँवले ही पसंद आए। वे प्रेयसी के घने, लंबे बालों में अकसर घिर जाते हैं। बहुत कुछ बीत गया है दोनों के बीच, पर न जाने ऐसी क्या बात है कि वे उसे भूल नहीं पाते हैं। तभी कहते हैं—

फिर भी क्यों मुझको तुम अपने बादल में घेर लेती हो?
मैं निगाह बन गया स्वयं
जिसमें तुम आँज गई अपना सुर्मई साँवलापन हो
तुम छोटा-सा हो ताल, घिरा फैलाव, लहर हलकी-सी,
जिसके सीने पर ठहर शाम
कुछ अपना देख रही है उसके अंदर/ वह अँधियाला।[15]

तुम्हें देखने के लिए, और देखते-देखते तो मैं पूरा-का पूरा निगाह बन गया, पर तुमने क्या किया, तो: जिसमें तुम आँज गई अपना सुर्मई साँवलापन ही। तुम एक छोटा-सा ताल हो, जिसमें हल्का-हल्का स्पंदन हो रहा है, पता नहीं कैसा। तुम शाम से इतनी मिलती-जुलती हो कि स्वयं शाम ने भी ऐसा अनुभव किया, तभी तुममें वह अपना परिचित अँधियारा ढूँढ रही है। यह 'अंधकार' नहीं जो 'डराए' या 'निराश' करे, अपितु प्यारा-सा 'अँधियाला' है।

तुमने मुझे और गूँगा बना दिया
अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे
चारों तरफ की भाषा ऐसी हो गई
जैसे पेड़-पौधों की होती है।[16]

यह कवि की कैसी अनुभूति है? भाषा मौन हो गई है, भावनाएँ काम करती हैं। कवि में प्रेम की यह तीव्रता पार्थिवता का ज्वार। शमशेर के यहाँ तीव्र ऐंद्रिकता नारी रूप को समर्पित है—

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा
सचमुच?
जंघाएँ दो ठोस दरिया/ ठैरे हुए-से

ठोस वक्ष कपोल उभरे हुए चारों
निमंत्रण देते चैलेंज-सा/ चारों एक साथ
अपनी स्थिरता में, चल/ काल की तरह।[17]

'एक ठोस बदन अष्टधातु कवि-व्यक्तित्व अदृश्य सागर में मिल रहा है। यहाँ कवि ने विरोधाभासी भाव-बिंबों का सृजन किया है। 'जंघाएँ दो ठोस दरिया' 'जो ठैरे हुए-से' हैं। दरिया अपने प्रवाह के लिए जाना जाता है इसे 'दो ठोस जंघाओं से समानता दर्शायी है। यहाँ अष्टधातु के बदन की जंघाएँ, वक्ष, कपोल, सब ठोस हैं, वे आकर्षक हैं। अपने शांत सौंदर्य में प्रणय निवेदन करते से जान पड़ते हैं।

शमशेर अकसर नारी की ठोस प्रतिमा बनाते हैं। इनके लिए नारी पूरी तरह मूर्त्त रूप में प्रकट होती है। शमशेर की नारी-मूर्ति प्रगतिशील कवियों व छायावादी कवियों से भिन्न है। इसे शमशेर ने अपनी सौंदर्य कल्पना के अनुसार गढ़ा है। नारी देह का शिल्प नई कविता में शमशेर के यहाँ सर्वाधिक सटीक है–

प्यारी/ तुम कितनी प्यारी हो।
वह काँसे का चिकना बदन हवा से हिल रहा है
हवा हौले-हौले नाच रही है,
इसलिए/ तुम भी मेरी आँखों में
(स्थिर रूप में साकार रहते हुए भी)
हौले-हौले अनजाने रूप में/ नाच रही हो।[18]

कवि की 'प्रेयसी' का 'काँसे का चिकना बदन' उसकी आँखों में नाच रहा है। यहाँ प्रेम की मादकता उन्मत्तता के साथ-साथ आँखों को चौंधिया देनेवाला सौंदर्य चित्र उपस्थित हुआ है। शमशेर सौंदर्य के उद्‌गाता ही नहीं वरन् रूप के लक्षक भी हैं। उनकी दृष्टि ठोस व गठे हुए पर टिकती है। इनकी एक अन्य श्रेष्ठ कविता है 'सावन'। इस कविता में नारी-देह की अपेक्षा उसकी स्मृति ही छाई है–

ये नीले होंठ/ जो शाम का पूरब हैं आज
क्या कहते हैं?
सावन की पलकें क्यों
भारी होती जाती है?[19]

प्रिया (पत्नी) की याद में सावन की पलकें भारी हो रही हैं और फिर धीरे-धीरे पलकें मुँदने लगती हैं। कवि को सावन में प्रिया की याद बेसुध कर देती है। कभी-कभी बेसुधी की समाधि टूटती है। कवि, स्मृति-दंश से क्रंदन कर उठता है–

ये घटा नाच रही है/ तुम कहाँ हो?
मैं खुद तो नहीं
ये खामोश/ सुलगता हुआ पहरा-
ये फानूश?
तुम कहाँ हो? ये घटा नाच रही है।[20]

यहाँ कवि खामोश सुलग रहा है। प्रश्न पूछता-सा है तुम कहाँ हो? प्रेम में ही सौंदर्य समाया है। सौंदर्य की सृष्टि स्वयमेव हो जाती है और यह कथन तो शमशेर पर शत-प्रतिशत उचित लगता है–

तकिये पे/ सूखे गुलाब मैंने/ समझे ...
दो
सेब मैंने समझे दो.../ क्यों?
वो तो-वो तो/ दो दिल थे।[21]

यहाँ शारीरिक सौंदर्य की अभिव्यंजना में शमशेर का कौशल देखते ही बनता है। बिस्तर पर लेटी नायिका के कपोलों और उरोजों के लिए गुलाब और सेब का उपमान नवीनता बोधक है। दरअसल, शमशेर की कविताएँ स्थिर सौंदर्य की खान है। इनके यहाँ सौंदर्य छायावादी सौंदर्य से

भिन्न है। इसमें यथार्थवादी और आधुनिकतावादी सौंदर्य घुले-मिले हैं।

सुंदर
उठाओ/ निज वक्ष
और -कस-उभर!
क्या भरी/ गेंदा की
स्वर्णारक्त/ क्यारी भरी गेंदा की:
तन पर खिली सारी-
अति सुंदर! उठाओ![22]

इस कविता में कवि की ऐंद्रियता तीव्र रतिभाव को छूती है। कविता स्पष्ट रूप से एक सुंदर नायिका का चित्र उभारती है जिससे कवि अपने वक्ष को और कसकर उभारने की ताकीद करता है। स्त्री-देह पर क्यारी भरी स्वर्णा-रक्त गेंदा की साड़ी खिल उठी है और स्त्री का सौंदर्य निखर आया है। स्त्री से अपने वक्ष को कसकर उठाने की अभ्यर्थना 'निर्भय रत्यात्मक' वर्णन का उदाहरण है जिसमें कवि का प्रेम देह की सुंदरता पर न्योछावर है। पूरी कविता एक सुंदर नायिका की अनावृत देह की उसके गठन सहित एक दृश्य-बिंब में प्रस्तुत करती है। 'टूटी हुई बिखरी हुई' कविता का बिंबलोक एक आश्चर्य से कम नहीं है। प्रेम, सौंदर्य से पूरित ऐंद्रिय सघनता और वेदना की मानवीय उदात्तता की ऐसी समन्विति अन्यत्र विरल है-

मुझे प्यास के पहाड़ों पर लिटा दो जहाँ मैं
एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ
मुझको सूरज की किरणों में जलने दो-
ताकि उसकी आँच और लपट में तुम
फौवारे की तरह नाचो।
मुझको जंगली फूलों की तरह
ओस से टपकने दो,
ताकि उसकी दबी हुई खुशबू से
अपने पलकों की/ उनींदी जलन को तुम भिगो सको,
मुमकिन है तो।[23]

'प्यास के पहाड़ों' पर लेटने की कामना करते शमशेर अपनी 'चिर अतृप्त कामना' को व्यक्त करते हैं। काव्यांश का दूसरा वाक्य उनको 'झरने की तरह तड़पते' हुए दिखाता है। कहाँ पहाड़ जैसी प्यास और कहाँ यह झरने-सी तड़प। इसके आगे शमशेर सूर्य की किरणों में जलने की आकांक्षा करते हैं ताकि उनका प्रिय उनको जलता देख नाच उठे, फौवारे की तरह। उर्दू अदब में प्रेम का यह रूप उस 'वेवफा महबूबा' से जुड़ता है जो आशिक की तड़प पर खुश होती है। कवि जंगली फूलों-सा ओस की तरह टपकना चाहता है ताकि उसकी प्रेमिका अपने पलकों की उनींदी जलन को उसकी दबी हुई खुशबू से भिगो सके। प्रेमिका इतने पर भी निश्छल और शांत दिखती है, मानो कवि की तड़प का उस पर कोई प्रभाव ही न हो। वेदना का यह मानवीय उदात्तीकरण शमशेर की इंद्रियानुभूति की उत्कटता का प्रमाण है जिसमें कवि की तड़प बिना किसी 'शहीदी मुद्रा' के सामने आती है और एक प्रेमी की अंतहीन पुकार बन जाती है।

असल बात यह है कि शमशेर की कविताओं में मानवीय अनुभूतियों के उस विरल क्षणों को पकड़ने की क्षमता है जो आम होते हुए भी हमारे जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। चाह और अकेले रहने की विवशता के बीच शमशेर 'देह' को कोई वासनात्मक रूप नहीं देते, वरन उसे मानवीय आकांक्षाओं में उतारकर उस अनुभूति का हिस्सा बना देते हैं जिसमें हम अपनी चेतना के साथ उपस्थित होते है–

देखा था वह प्रभात
तुम्हें साथ; पुनः रात
पुलकित–फिर शिथिल गात
तप्त माथ, स्वेद स्नात
मौन म्लान पीत पात
पुनः अश्रु–बिंब–लीन
शनैः स्वप्न–कंप वात।[24]

यह पद्यांश शमशेर की कविता की सघन ऐंद्रियता का एक उदाहरण है जिसमें कवि सुबह को शाम यानी नायिका के साथ देखने की बात करता है। यहाँ कवि पुलकित और फिर शिथिल गातों, तप्त माथा और पसीने से तर–बतर देखते हुए उसे 'मिलन' से जोड़ देता है। ऐंद्रियता केवल शमशेर के देह–चित्रणों में ही नहीं होती, उन क्षणों में भी होती है जहाँ वे दृश्यों को आँकते हैं और उसके घटनात्मक विवरणों में जाते हैं। नायिका का एक क्षण पुलकित होना और दूसरे ही क्षण शिथिल गातों के साथ दिखना, बताता है कि वह प्रिय से परस्परता को, उसके लक्षणों से देह को जोड़ते शमशेर 'रति' को नहीं देखाते, वरन बाद के लक्षणों से उसे मिलाते हैं।

ज्योतिश जोषी के अनुसार–'प्रकृति के आरोपण से ऐंद्रियता का यह उत्सव यदि शमशेर ने रचा, तो यह देह राग से अधिक उस प्रेम–राग का परिणाम था जो उनके जीवन में बचपन से मौजूद था। शमशेर अपनी कविताओं में प्रकृति को ठीक उसी तरह बरतते हैं जैसा वे चाहते हैं। प्रकृति के 'स्पर्श' से भी मनचाहा रूप देकर उसे अपने अनुकूल बना लेना और उसमें ऐंद्रियता संभव करना जैसे सिर्फ उन्हीं के वश की बात हो।'[25] कविता अवलोक्य है–

एक फूल उषा की खिलखिलाहट पहनकर
रात का गड़ता हुआ काला कंबल उतारता हुआ
मुझसे लिपट गया।
उसमें काँटे नहीं थे–सिर्फ एक बहुत
काली, बहुत लंबी जुल्फ थी–जो जमीन तक
साया किए हुई थी–जहाँ मेरे पाँव
खो गए थे।[26]

फूल ने उषा की खिलखिलाहट पहन ली है, मायने यह कि फूल में उषा–सी ताजगी, नूतन आशा–भाव और उसकी अलख निरभ्र सुगंध से भरी मुस्कान खिल उठी है। रात का काला कंबल उतारकर कवि उसे किनारे रख देता है जो उसे चुभ रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो फूल को रात की अँधियारी चुभती है और उसके कोमल तन पर गड़ती है। कवि को काले कंबल की चुभन रात के बढ़ने पर अधिक त्रास देती है। लेकिन कविता की इन पंक्तियों में कवि फूल के

बहाने उस 'अदृश्य मुखड़े' की बात कर रहे हैं जो फूल की शक्ल में है या उसका प्रतिरूप है–उसी फूल या मुखड़े की जुल्फों ने कवि को लिपटा रखा था–रात-भर उन्हीं जुल्फों के आगोश में रहा कवि मुखड़े को देख ही नहीं पाया, क्योंकि जुल्फ लंबी थी जमीन तक उसका घना साया पसरा था। इसी घने साए में कवि के पाँव खो गए थे और वह निष्क्रिय-सा हो गया था।

शमशेर की कविता में प्रकृति का अवलंब देह को बरतने और प्रेम को जीने का माध्यम है, कोई भी आरोपित संदर्भ–जो देह से उसे अलगा दे, इस कविता को समझने में कारगर नहीं होगा। 'हम' संयोगवाची शब्द है दो जनों का; जिनके परस्पर संयोग से इस प्रेम का घटित होना और इस प्रेम को जी सकना संभव है। कवितांश दृष्टव्य है–

नायकता की दो भवें
मिलीं; दो पलकें मिलीं;
स्थिर, सोई/ वीतराग जीवन की गहरी
भूलों की अधर-पंखुड़ियों-सी,
मौन-सुप्त/ सिर्फ दो ममियाँ।
हम, तुम...।[27]

स्पष्ट है, शमशेर जी की कविताओं में प्रेम एक भाव की तरह नहीं आता, जीवन के आस्वाद की तरह आता है, इसलिए यहाँ केवल प्रेम कह देने भर से काम नहीं चलता। अपनी कुछ कविताओं में शमशेर शुद्ध रूप से ऐंद्रिय प्रेम के कवि ठहरते हैं और उनकी ऐंद्रियता कविता में रत्यात्मक वर्जनाओं को भी चुनौती देती है। उनकी प्रेम कविताओं में सर्वत्र एक अतृप्ति, असंतोष, और चाह का प्रबल भाव है जिससे इनकार करना शमशेर जी को न समझना है। प्रेम यह अशरीरी अवश्य है, पर केवल भाव तक सीमित नहीं है; इसमें एक कामावेग है और यह ऐंद्रियता उस आवेग के कारण ही इतनी सघन हो पाई है। ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनको उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है जिनमें 'चुका भी हूँ मैं नहीं', 'हार-हार समझा मैं', 'सावन', 'टूटी हुई, बिखरी हुई' आदि अनेक कविताएँ शामिल हैं। 'जमाना तुम हो-जहाँ तुम हो-जिंदगी तुम हो' कहते शमशेर की कविताओं में प्रेम जीवन का कारण बन जाता है और प्रेम को अपने मन-प्राण में बसाता कवि अपनी अन्तरात्मा की आकांक्षाओं में देह को उस प्रेम का आधार बनाकर ऐसी ऐंद्रिय सघनता संभव करता है। ऐसी कविताओं में जहाँ प्रेम है, प्रेम की कामना है या अपने को कहीं विलीन कर देने की निश्छल अधीरता है, उनमें देह को अलग करके देखा ही नहीं जा सकता; प्रकृति भी वहाँ देह या युगल संयोग की क्रियाओं में ही घटित होती है–दरिया, गुलाब, सूर्य, शाम, अँधेरा, भँवर, इत्रपाश, आँख, कनखियाँ, सुबह, चाँद, आकाश, झरना, धूप, उषा, जल प्यास पहाड़ ओस जैसे शब्द महज शब्द नहीं हैं, ये वे प्रतीक हैं जिनके माध्यम से शमशेर प्रेम की ऐंद्रियता को देह और उसकी क्रियाओं में उठाते हैं जहाँ प्रेम तो होता ही है, उसकी अधीर कामना में वह देह भी होती है जिस पर कवि निसार हो जाता है।

संदर्भ

1. शमशेरबहादुर सिंह, टूटी हुई बिखरी हुई, संपादक अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2004, पृ॰ 131
2. वही, पृ॰ 91

3. दूसरा सप्तक, संपादक-अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ॰ 91
4. शमशेरबहादुर सिंह, काल तुझसे होड़ है मेरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002, पृ॰ 102
5. डॉ॰ रंजना अरगड़े, कवियों के कवि शमशेर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011, पृ॰ 24
6. शमशेरबहादुर सिंह, इतने पास अपने, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 2011, पृ॰ 44
7. बहादुर सिंह, टूटी हुई बिखरी हुई, संपादक अशोक वाजपेयी, पृ॰ 155
8. वही, पृ॰ 156
9. वही, पृ॰ 112
10. शमशेरबहादुर सिंह, सुकून की तलाश, संपादक रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1998, पृ॰ 15
11. वही, पृ॰ 29
12. शमशेरबहादुर सिंह, उदिता अभिव्यक्ति का संघर्ष, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2016, पृ॰ 101
13. शमशेरबहादुर सिंह, इतने पास अपने, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2011, पृ॰ 17
14. वही, पृ॰ 17
15. शमशेरबहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, संपा॰ नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2016, पृ॰ 17
16. शमशेरबहादुर सिंह, टूटी हुई बिखरी हुई, संपादक अशोक वाजपेयी, पृ॰ 65
17. वही, पृ॰ 66
18. वही, पृ॰ 69
19. शमशेरबहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, संपा॰ नामवरसिंह, पृ॰ 74
20. वही, पृ॰ 74
21. शमशेरबहादुर सिंह, कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2004, पृ॰ 127
22. शमशेरबहादुर सिंह, टूटी हुई बिखरी हुई, संपादक अशोक वाजपेयी, पृ॰ 160
23. वही, पृ॰ 155-156
24. वही, पृ॰ 138
25. ज्योतिष जोशी, शमशेर का अर्थ, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ॰ 102
26. शमशेरबहादुर सिंह, टूटी हुई बिखरी हुई, संपादक अशोक वाजपेयी, पृ॰ 156
27. वही, पृ॰ 24

ग्राम बड़ी मकंदपुर
पोस्ट अभिया बाजार, वाया नवगछिया
थाना गोपालपुर (भागलपुर) 853204 **बिहार**
मो॰ 9973138614

शमशेरबहादुर सिंह की कविताओं में देशभक्ति का संदर्भ

डॉ॰ रामस्वरूप कुमार

कविवर शमशेर जी की कविताओं में ऐंद्रीयबोध प्रकृति प्रेम, सामाजिकता के साथ-साथ देशभक्ति का भाव भी मिलता है। कविवर शमशेर जी ने 'मैं भारत गुण गौरव गाता' कविता में भारत देश के गुण एवं गौरव को उजागर किया है–

प्रथम स्वप्न-सा आदि पुरातन
नव आशाओं से नवीनतम
प्राणाहुतियों से युग-युग की
चिर अजेय बलदाता!
आर्य शौर्य धृति बौद्ध शांति द्युति,
यवन कला स्मिति प्राच्य कर्म रति,
अमर अमित प्रतिभायुत भारत
चिर रहस्य, चिर ज्ञाता![1]

शमशेरबहादुर जी ने 15 अगस्त 1947 को यानी स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 'भारत की आरती' नामक कविता लिखी है जिसमें उन्होंने भारत का मंगलगान गाया है। वे कहते हैं कि देश को स्वतंत्रता नामक देवी प्राप्त हो जाने पर आज अत्यधिक प्रेम से उतारती है। चारों दिशाओं में इस अपूर्व शुभ क्षण में चाहे लोग घर में हो या युद्ध में सभी जन-गण-मन गाते हैं। देश के स्वतंत्र होने पर आज एशिया, अरब, चीन, मिश्र, इंडोनेशिया तथा उत्तर की लोकसंघ शक्तियाँ गर्व एवं युग-युग की आशाएँ वारती हैं। भारत की गौरवगाथा का वर्णन करते हुए कहते हैं लोगों का विश्वास हिमालय के समान है। भारत का जन-मन ही गंगा है। हिंद महासागर, लोकाशय है। यही शक्ति सत्य को उभारती है। कविता द्रष्टव्य है–

भारत की आरती
देश- देश की स्वतंत्रता देवी
आज अमित प्रेम से उतारती।
निकटपूर्व, पूर्व पूर्व-दक्षिण में
जन-गण-मन इस अपूर्व शुभ क्षण में
गाते हैं घर में हों या रण में
भारत की लोकतंत्र भारती।
गर्व आज करता है एशिया
अरब, चीन, मिश्र, हिंद-एशिया
उत्तर की लोक संघ शक्तियाँ
युग-युग की आशाएँ वारती।

 ISSN 0975-735X

x x x

जन का विश्वास ही हिमालय है
भारत का जन-मन ही गंगा है
हिंद महासागर लोकाशय है
यही शक्ति सत्य को उभारती।[2]

शमशेर जी 'फिर वह एक हिलोर उठी' कविता में 'स्वतंत्रता दिवस' की एक प्रभातफेरी के समय कवि के मन में एक हिलोर उठती है जो देशभक्ति भावना से ओत-प्रोत है। कवि चाहता है कि भारत के जो मजदूर, किसान के स्वर हठी है, उसमें अपना हृदय मिलाए तथा उनके मिट्टी के शरीर में जो अधिक आग तथा ताप हैं उसमें अपने विरह मिलन के पाप को जला दें। काट बूर्जूआ (मार्क्सवादी) भावों की गुमठी को गावें तथा अति उन्मुक्त नवीन प्राण स्वर में अपना हृदय मिलावें। कविता अवलोक्य है–

फिर वह हिलोर उठी–
गाओ!
वह मजदूर किसानों के स्वर कठिन हठी!
कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ!
उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग
है अधिक ताप
उसमें, कवि हे
अपने विरह-मिलन के पाप जलाओ!
काट बूर्जूआ भावों की गुमठी को
गाओ!
अति उनमुक्त नवीन प्राण स्वर कठिन हठी।
कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ।[3]

कवि शमशेर के हृदय में राष्ट्रीय भावना संकुचित न होकर विशाल है। वे पाकिस्तान के सैनिकों को भी अपना ही सैनिक मानते हैं क्योंकि भारत से ही अलग होकर पाकिस्तान बना है। इसलिए कविवर शमशेर जी अपने हाथों मारे गए पाकिस्तान के सैनिकों की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने को कहते हैं–

आओ, उनकी आत्मा के
लिए प्रार्थना करें
जो हमारे हाथों शहीद
हुए थे कल
कल ही तो!
आज उनका फिर एक
खुशी का त्योहार है–
आओ उनके शहीदों के लिए
मातम करें और

उनकी आत्माओं की शांति के लिए
प्रार्थना करें
क्योंकि आज
आज क्या हम
महसूस नहीं करते
कि वो और हम एक हैं?[4]

शमशेर जी 'रूबाई' शीर्षक में (भारत देश की ईद 1980, मुरादाबाद) राष्ट्र महान तथा राष्ट्र के धर्म महान का वर्णन करते हैं–

राष्ट्रीय स्वतंत्रता-दिवस पूर्व की ईद-
आते ही स्वतंत्रता-दिवस पर है शहीद।
है राष्ट्र महान! राष्ट्र के धर्म महान!
ये सब हैं मुरादाबाद में काबीले-दीद।[5]

शमशेर जी कहते हैं कि किसकी नजर लग गई है जो दोनों आपस में लड़-लड़कर हार रहे हैं–

है आसमाने-हिंद के तारे दोनों
हैं सरजमीने पाक के प्यारे दोनों
यह किसकी नजर खाए जाती है उन्हें
आपस ही में लड़ लड़ के हारे दोनों।[6]

शमशेर जी की इन कविताओं में भी राष्ट्रीय भाव-बोध का स्वर सुनाई पड़ता है–

छोड़ दो कश्मीर
वैनाम छियालीस का
तोड़ दो
डोगरे परदेशियों
अँग्रेज के काले गुलामों
छोड़ दो जन्नत हमारी
छोड़ दो कश्मीर।[7]

'शशि बकाया की याद में' शीर्षक कविता में शमशेर जी का राष्ट्रीय प्रेम दिखाई पड़ता है। वे सभ्य भारत की लाज जिस कारण से डूब रही है उसे उजागर कर रहे हैं। कविता अवलोक्य है–

अंधकार-संकीर्ण सांप्रदायिक गलियों में
मृत्यु खेलती सट्टा जहाँ मनुज प्राणों से–
मुक्त आज गुंडों का राज।
डूब रही है जहाँ सभ्य भारत की लाज।[8]

शमशेरबहादुर सिंह द्वारा रचित 'एक पत्र' शीर्षक कविता में देशभक्ति के स्वर के साथ-साथ महँगाई की समस्या दिखाई पड़ती है। देश-प्रेम के कारण वे हर घटनाक्रम पर पैनी नजर रखते हैं–

शिमला और दिल्ली

काँग्रेस औ लीग...
क्रिप्स की वह कूटनीतिक विजय
माउंटबैंटन की सफलता...
हिंद के दो खंड-खंड राज्य!
देश में शरणार्थियों का जन्म:
धर्म संस्कृति लोकतंत्र परंपरा की आत्महत्या
भारतीय चरित्र की इतिश्री:
एक हरिजन महात्मा गांधी शहीद
एक हिंदू गोड्से का न्याय।
एक कॉमनवेल्थ में हम
और फासिस्टी दमन....औरतों पर गोलियाँ
विकट महँगाई...दफाएँ जन-सुरक्षा की..
आदि।[9]

निष्कर्षत: शमशेर जी की कविताओं में देशभक्ति का संदर्भ भी मिलता है।

राजनीति का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ

कविवर शमशेरबहादुर सिंह की कविता वहाँ अच्छी बन पड़ी है जहाँ वे अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ को अपनी कविता का विषय बनाते हैं उनके यहाँ अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ की निम्नांकित कविताएँ प्राप्त होती हैं–

एक होकर सारे अखबारों का हल्ला देखिए!
साथ अमरीका के गोया ये भी दस्ता देखिए।
बह्रि बेड़े औ' हवाई-अड्डे ही काफी न थे
'बेवतन' विस्थापितों का एक रेला देखिए!
साफ हक की बात रक्खी उसने सबके सामने
ये कुसूर ईरान का कितना बड़ा था देखिए!
एकदम तख्ता हुकूमत का पलट देते हैं, ये
काम करते हैं सिफारत खाने क्या-क्या देखिए!
सोवियत फौजी मदद काबुल ने जब माँगी तो आई
था मुनासिब ही कदम ये हस्व-ए-वादा देखिए!
हिंद महासागर के बीचोंबीच डियागोगार्सिया
हिंद, ईरान, अफ्रीका होंगे निशाना देखिए!
ऐटमी बेड़े, हवाईयान हजारों ही जमा
क्या है अमरीका की ताकत का ठिकाना देखिए।[10]

शमशेर जी 'नाविक 'विद्रोहियों' पर बमबारी: बंबई, 1946' शीर्षक कविता अल्जीरियाई वीरों को समर्पित, 1961ई॰ में करते हैं–

लगी हो आग जंगल में कहीं जैसे,
हमारे दिल सुलगते हैं।

हमारी शाम की बातें
लिए होती हैं अक्सर जलजले महशर के; और जब
भूख लगती है हमें तब इंकलाब आता है।
हम नंगे बदन रहते हैं झुलसे घोंसलों-से
बादलों-सा
शोर तूफानों का उठता है–
डिवीजन के डिवीजन मार्च करते हैं,
नए बमबार हमको ढूँढते फिरते हैं।[11]

शमशेर जी ने 'चीन देश का नाम' शीर्षक कविता के माध्यम से भारत और चीन देश के बीच मैत्रीभाव का आषय रूपायित किया है। 'हाशिए पर दिए हुए चीनी संकेताक्षरों का अर्थ चीन देश का नाम है; 'चीनी जनता का लोकसत्तात्मक गणतंत्र राज्य' देशों के बीच मैत्रीभाव का आशय सम्मुख था। उससे प्रेरित होकर इन अलग-अलग संकेताक्षरों के मूल अर्थों की भाव-भूमि पर यह स्वतंत्र रूपक पल्लवित किया गया है।'[12] कविता द्रष्टव्य है–

मैंने/ क्षितिज के बीचोबीच
खिला हुआ देखा/ कितना बड़ा फूल!
देखकर
गंभीर शपथ की एक
तलवार सीधी अपने सीने पर
रखी और प्रण लिया/ कि–
वह आकाश की माँग का फूल
जब तक मैं चूम न लूँगा/ चैन से न बैठूँगा।
और महान संदेश लिए
दौड़ता हुआ संदेश वाहक हो जैसे
मैं दौड़ा–
चार दिशाओं का आलोक/ सिर पर घोर
पाँवों में उत्साह के पर औ'
अक्षुण्ण गति के तीर बाँधे।[13]

कविवर शमशेरबहादुर सिंह की कविताएँ सामाजिक संदर्भों के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों को भी बोध कराती हैं। इसलिए उनकी एक ही कविता विभिन्न संदर्भों में उपर्युक्त हो जाती है। 'अम्न का राग' कविता में शमशेर जी कहते हैं कि कोरियायी बच्चों ने युद्ध को नकार दिए हैं। उससे तंग आ गए हैं इसलिए उन्होंने हथियार की जगह झिलमिली फूलपत्तों की तरह रौशन लैंप बना लिया है तथा स्टील और लोहा से हजारों देशों को एक दूसरे से मिलाने वाली रेलों का जाल बिछ गया है। कविता अवलोक्य है–

युद्ध के नक्शों को कैंची से काटकर कोरियायी बच्चों ने
झिलमिली फूलपत्तों की रौशन फानूसें बना ली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हजारों

 ISSN 0975-735X

देशों को एक-दूसरे से मिलानेवाली
रेलों के जाल में बिछ गया है।[14]

शमशेर जी 'अभाव के व्यंग्य से' कविता में अंतर्राष्ट्रीय शहरों का वर्णन करते हैं–

तब कहाँ था मैं निश्चय ही
भारत में नहीं
इस स्वर्ग में नहीं?
निश्चय ही रूस में नहीं
न ही न्यूयार्क की
नीग्रो बस्ती में।[15]

शमशेर जी की 'लेनिनग्राद' कविता में अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ के भाव दिखाई पड़ते है। सफेद आरोरा यानी सफेद जहाज जिसके नाविकों ने क्रांति की शुरुआत की। नीली-ग्रे रिमझिम में खड़ा है। कान्वेंट स्कूल जिसको लेनिन ने क्रांति-संचालन के लिए अपना कार्यालय बनाया है, वह खामोश है। इस कविता में लेनिन की पावन धरती इमारतों की प्रशंसा की गई है–

सफेद आरोरा नीली-ग्रे रिमझिम में खड़ा है
स्मोलनी खामोश है
कोई मेरे कान में धीरे से कह रहा है
यह पावन धरती है
तमाम इमारतें इतिहास है साँस-सा रोके हुए
यह रिमझिम एक खामोश प्रार्थना है
यह धरती इंकलाबों की माँ है
प्यार से सजग और मौन
एक आशीर्वाद की तरह।[16]

'अफ्रीका' कविता में कवि ने रंगभेद के भाव को व्यंग्य रूप में प्रस्तुत किया है–

एक बराबर के चौकोर/ दो पत्थर
सजाकर उसने रक्खे/ एक के ऊपर एक
सफेद के ऊपर काला
काला लड़का/ वह खेल रहा था
मालिक आया/ है! खेल रहा है।
हो! हो! हो!
ऊपर काला पत्थर/ नीचे सफेद पत्थर!
है! चिढ़ा रहा है?
सैड! सैड! हाय! हाय! हाय!
हाय! आह-आह!
लो मालिक! अब ठीक है?
सफेद पत्थर ऊपर!
हाँ! हाँ! हाँ!अब ठीक है![17]

कविवर शमशेर जी 'शशि बकाया की याद में' शीर्षक कविता में देशभक्ति के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों का भी वर्णन करते हैं–

मानस में विज्ञान दृष्टि से मार्क्सवाद की
नव भारत उगते विहान को देख रहा है–
विश्व शांति का लेकर नया विधान पार्श्व में
मित्र सोवियत संघ नई संस्कृति का लहराता निशान है।[18]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि शमशेर जी अपनी समकालीन अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं एवं परिवर्तनों पर पैनी नजर रखते हैं, उन्हें अपने काव्य का विषय बनाया। उनकी अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों की कविता सुंदर बन पड़ी है।

संदर्भ

1. शमशेरबहादुर सिंह, 'प्रतिनिधि कविताएँ', संपादक नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण-2016, पृ॰ 12
2. वही, पृ॰ 70
3. वही, पृ॰ 27
4. शमशेरबहादुर सिंह, 'काल तुझसे होड़ है मेरी', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2002, पृ॰ 33
5. वही, पृ॰ 26
6. शमशेरबहादुर सिंह 'सुकून की तलाश', संपादक-रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-1998, पृ॰ 55
7. शमशेरबहादुर सिंह, 'बात बोलेगी', संभावना प्रकाशन नई दिल्ली, पृ॰ 38
8. शमशेरबहादुर सिंह, 'उदिता अभिव्यक्ति का संघर्ष', वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2016, पृ॰ 90
9. वही, पृ॰ 16
10. शमशेरबहादुर सिंह 'सुकून की तलाश', संपादक-रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-1998, पृ॰ 68-69
11. वही, पृ॰ 94
12. शमशेरबहादुर सिंह, 'प्रतिनिधि कविताएँ', संपादक नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण-2016, पृ॰ 98
13. वही, पृ॰ 98-99
14. वही, पृ॰ 96
15. वही, पृ॰ 191
16. वही, पृ॰ 175
17. वही, पृ॰ 176-177
18. शमशेरबहादुर सिंह, 'उदिता अभिव्यक्ति का संघर्ष', वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2016, पृ॰ 90

ग्राम बड़ी मकंदपुर
पोस्ट अभिया बाजार, वाया नवगछिया,
थाना गोपालपुर (भागलपुर) 853204 **बिहार**
मो॰ 9973138614

विषयवस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद : कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद

डॉ॰ रविकांत 'रवि'

प्रेमचंद हिंदी के युगप्रवर्तक कहानीकार माने जाते हैं। उनकी कहानी-कला में भाषा का विशेष योगदान है। प्रेमचंद की कहानियाँ भाषा की दृष्टि से बेजोड़ हैं। भाषा पूर्णत: पात्रानुकूल है तथा उसमें लोकोक्ति-मुहावरों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। भाषा के कारण ही उनकी कहानियों की पठनीयता एवं संप्रेषणीयता बढ़ गई है। सरल-सहज, प्रवाहपूर्ण भाषा जिसमें उर्दू, अँग्रेजी के चलते हुए शब्द प्रयुक्त हैं, प्रेमचंद की कहानियों में उपलब्ध होती है।

प्रेमचंद पहले 'नवाबराय' के नाम से उर्दू में लिखते थे। उर्दू में लिखा हुआ उनका कहानी-संग्रह 'सोजे वतन' 1907 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। स्वातंत्र्य भावना से ओतप्रोत होने के कारण इस कहानी-संकलन को सरकार ने जब्त कर लिया था। कालांतर में वे हिंदी में 'प्रेमचंद' नाम से लिखने लगे और उनका यह नाम कथासाहित्य में अमर हो गया। उनकी पहली हिंदी कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 ई॰ में प्रकाशित हुई और अंतिम 'कफन' 1936 ई॰ में। प्रेमचंद ने अपने जीवनकाल में लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो 'मानसरोवर' के आठ खंडों में संकलित हुई हैं। डॉ॰ नगेंद्र का कथन है–'जिस प्रकार प्रेमचंद इस काल के उपन्यास-साहित्य के एकछत्र सम्राट बने रहे, उसी प्रकार कहानी के क्षेत्र में भी उनका स्थान अद्वितीय रहा। उनकी आरंभिक कहानियों में किस्सागोई, आदर्शवाद और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक है। यद्यपि व्यावहारिक मनोविज्ञान का पुट देकर मानव-चरित्र के सूक्ष्म उद्घाटन की क्षमता के फलस्वरूप प्रेमचंद ने अपनी कहानियों को विशिष्ट बना दिया है।'[1]

प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों में आदर्श का पुट है–पंच परमेश्वर, आत्माराम, प्रेरणा, ईदगाह, नमक का दरोगा, बूढ़ी काकी, आपबीती, परीक्षा, बलिदान, हार की जीत, ठाकुर का कुआँ, नशा, बड़े भाई साहब, शतरंज के खिलाड़ी, सुजान भगत, सवासेर गेहूँ आदि कहानियों में हम एक अत्यंत प्रबुद्ध कलाकार को कहानी के सही ढाँचे या शिल्प की तलाश में संघर्षरत पाते हैं। जबकि परवर्ती कहानियों यथा–'पूस की रात' और 'कफन' तक आते-आते उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। अब वे जीवन के यथार्थ से जुड़ गए थे। स्पष्ट है कि उनकी पहले वाली कहानियाँ आदर्शवादी हैं और बाद में लिखी गई कहानियाँ यथार्थवादी हैं।

प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियाँ आदर्शात्मक, इतिवृत्तात्मक एवं घटनाबहुल है। प्रेमचंद की वे कहानियाँ, जिसमें शोषण का विरोध है, एक आक्रोश है द्वितीय चरण की कहानियाँ हैं, जिन्हें विकासवादी काल की कहानियाँ कहा जा सकता है। महाजनी सभ्यता में शोषण का स्वरूप कितना भयावह है इसका प्रमाण 'सवासेर गेहूँ' है।

प्रेमचंद के कथाविकास का तीसरा चरण उत्कर्षकाल है, जिसमें सद्गति, ईदगाह, चरण, नशा, कफन, पूस की रात आदि कहानियाँ को लिया जा सकता है, जो यथार्थवादी कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में विषय-वैविध्य दिखाई पड़ता है। किसी अन्य कथाकार ने जीवन के इतने व्यापक फलक को अपनी कहानियों में नहीं समेटा, जितना प्रेमचंद ने। उनकी अधिकांश कहानियों का विषय ग्रामीण जीवन से लिया गया है, किंतु कई कहानियाँ कस्बे की जिंदगी या स्कूल-कॉलेज से जुड़ी हुई हैं। उनकी कहानियों के पात्र हर वर्ग, धर्म, जाति के हैं। कोई हिंदू है तो कोई मुसलमान, कोई किसान है तो कोई विद्यार्थी। अपनी कहानियों में उन्होंने विविध समस्याओं को उठाया है। यथा—किसानों के शोषण की समस्या, रूढ़ि एवं अंधविश्वास, संयुक्त परिवार की समस्या, भ्रष्टाचार एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याएँ आदि।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने प्रेमचंद द्वारा चित्रित किसानों के दो पुश्तों के मनोवैज्ञानिक प्रभेद को ध्यान में रखकर लिखा है—'किसानों की नई पुश्त के मुकाबले में अक्खड़, निर्भीक तथा समाज को परिवर्तनीय समझने की आदि है अर्थात् क्रांतिकारी है।'[2]

प्रेमचंद का कथाशिल्प भी उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर रहा है। प्रारंभिक कहानियों में इतिवृत्तात्मकता अधिक है तथा चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिकता के स्थान पर व्यक्ति के आचरण का वर्णन अधिक किया गया है। 'पंच परमेश्वर' इसी कोटि की कहानी है। सन् 1930 ई॰ के बाद की कहानियों में कथानक छोटे एवं संश्लिष्ट होते गए तथा कहानी की मूल संवेदना की उभारने वाली दो-तीन घटनाओं पर ही बल दिया जाने लगा।

'प्रेमचंद की इस काल की कहानियों में सच्चाई को उसके नग्नतम रूप में ही देखने का प्रयास नहीं, उसके उस पहलू को भी पकड़ने की चेष्टा है, जिसकी ओर साधारणत: दृष्टि नहीं जाती। 'पूस की रात', 'तावान' और 'कफन' तो प्रेमचंद की ही नहीं हिंदी की बेजोड़ कहानियाँ हैं। इस अवधि की कहानियों में प्रेमचंद का आदर्शवादी दृष्टिकोण भी है, पर वह अधिकतर छिपा हुआ ही नहीं, कहानियों के साथ घुला हुआ भी है। प्रेमचंद की इस काल की कहानियाँ नि:संदेह हिंदी काहनी को एक कसौटी देने में समर्थ हो सकी हैं।'[3]

प्रेमचंद ने 'गोदान' में महाजनों और अन्य वर्गों द्वारा शोषित छोटे किसान को खेतीहर मजदूर बनते देखा फिर उसकी त्रासद दशा का चित्रण किया। 'कफन' में उन्होंने उससे भिन्न भारतीय सर्वहारा को या भूमिहीन मजदूर के ह्रास, दायनीय संवेदनशून्यता और अमानवीयता का चित्रण किया। इस प्रकार ये दोनों रचनाएँ मिलकर प्रेमचंद के सृजन और सोच का पूरा मुखड़ा प्रत्यक्ष करती हैं। 'कफन' यदि अधिक प्रभावकारी है तो इसलिए कि उसका शिल्प और प्रभाव कहानी का है। उसमें यथार्थवादी चेतना और पैनापन और चुभन अधिक है।

'कफन' कहानी में घीसू और माधव की निष्क्रियता, पिता-पुत्र-बहु के संबंधों में अमानवीयता और संवेदनशीलता, घीसू और माधव का आलस्य और निकम्मापन—ये सब एक-दूसरे से इस प्रकार गुँथे हुए हैं कि आप इनमें से किसी को एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते और सबसे अधिक त्रासदायक जो घटना है—कफन के पैसों से शराब पी लेना और धुत्त होकर उछलना-कूदना, नाचना-गाना और दार्शनिक सूक्तियाँ कहना, यह सब लेखक के नुकीले तीर के गहरे तक चुभने की कसक है, जो किसी को गलत और अस्वाभाविक लगे तो लग सकता है, लेकिन लेखक ने शायद ऐसा करके ही अपने सोच को प्रभावकारी बनाना आवश्यक समझा।

सन् 1930 से लेकर 1936 ई॰ तक कालखंड प्रेमचंद की कहानी कला का उत्कर्षकाल है। इस काल का कहानियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं जीवन के यथार्थ का चित्रण किया गया। इन कहानियों में कथानक और घटनाओं को उतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना कहानी की मूल संवेदना को पाठकों तक पहुँचाने की ओर ध्यान दिया गया। कफन और पूस की रात इस वर्ग की कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद की दूसरी कहानी 'पूस की रात' के आधार पर बताने की कोशिश करूँगा कि उसमें एक लेखक के सीखने के लिए कितना मसाला है। 'पूस की रात' में एक जगह हल्कू का सहना को तीन रुपए देने है। ये रुपए उसने कंबल खरीदने के लिए बचा रखे है। पर लाचार होकर उसे देना पड़ता है। इस जगह प्रेमचंद ने लिखा है, 'हल्कू ने रुपए लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा है।' इस वाक्य में प्रेमचंद ने जो विवशता, दर्द, दैन्य आदि व्यक्त किया है उसे व्यक्त करने के लिए किसी दूसरे लेखक को कितना लिखना पड़ता यह आप सोच सकते हैं।' एक जगह एक और वाक्य है, 'रात ने शीत को हवा से धधकना शुरू किया।' इस छोटे से वाक्य में जाड़े के आतंककारी रूप का जो चित्रण है वह अनुभव की चीज है। इसी कहानी में हल्कू जबरा से अत्मीय बातें करता है, या फिर अलाव तापने के बाद अलाव के ऊपर से उछलकर अपनी 'कीड़ा-वृत्ति' का परिचय देता है। कहानी का जो वातावरण है उसमें यह कोई दूसरा लेखक नहीं सोच सकता था। प्रेमचंद भयावह से भयावह परिस्थिति में भी जीवन को जीने लायक सिद्ध होती है। आज के लेखन में भाषा का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। भाषा का महत्त्व तो है, लेकिन उसे समझा अब जा रहा है। इस संदर्भ में प्रेमचंद की भाषा का विशेष महत्त्व और मोल है। प्रेमचंद के शिल्प में भाषा पक्ष का अपना स्थान है। इस प्रकार प्रारंभ हुई कहानियाँ में उच्च मानवतावाद का प्रतिपादन किया गया है, किंतु यह मानवतावाद यथार्थ के सहारे आदर्श की ओर से विकसित हुआ है। समाज के निम्नवर्ग की विविध समस्याओं, उसके जीवन के विभिन्न रूपों आदि को प्रस्तुत करते हुए प्रेमचंद जी अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण का संकेत करते हैं। उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि समाज का कोई रूप उनसे छिपा नहीं है। ताँगेवाला, किसान, श्रमिक, विद्यार्थी, डॉक्टर, वकील, व्यापारी, अधिकारी आदि के विविध रूपों को वे अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित करने में पूर्णतया सफल रहे हैं। 'पंचपरमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'बड़े घर की बेटी', 'इदगाह', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े भाई साहब', 'कफन' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

चरित्र प्रधान कहानियों में कहानीकार का उद्देश्य किसी चरित्र का सुंदर चित्रण करना होता है। वह जिस चरित्र का चित्रण करना चाहता है, उसे विविध परिस्थितियों और प्रसंगों में डालकर उसके, गुण-दोष की सुंदर अभिव्यंजना करता है। घटनाओं, प्रसंगों और परिस्थितियों की सृष्टि केवल इसलिए होती है, जिसमें चरित्र का सुंदर और प्रभावशाली चित्रण हो सके। चरित्र प्रधान कहानियों में एक प्रकार की कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें मुख्य चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है। विशंभरनाथ 'कौशिक' की 'ताई' तथा प्रेमचंद की 'शंखनाद' आदि पात्रों के चरित्र में आकस्मिक परिवर्तन हुआ है। कहानी के महत्त्वपूर्ण तत्वों में भाषा-शैली का महत्त्व अत्यधिक है। चूँकि कहानी लिखने की अपनी एक शैली होती है। प्रेमचंद की भाषा-शैली अपनी थी। लेखक का मुख्य उद्येश्य वातावरण और प्रभाव की सृष्टि करना है।

प्रेमचंद कथासम्राट हैं। कथा सरिता को जन-जीवन की धरती पर उतारने में उन्हें अद्‌भुत सफलता मिली। कल्पना-लोक में विचरण करनेवाली कहानी प्रेमचंद की कृत्तियों में यथार्थ मिट्टी के लेप से अनुप्राणित है। वास्तविक जीवन के यथार्थ स्पंदन और आदर्श जीवन का मंगलमय संयोग इनके कथा-साहित्य के गौरव पक्ष है। वह मूलत: यथार्थवादी आदर्शोंमुखी कथाकार है। यथार्थ जीवन की पीड़ाओं को भोगकर जीवन निष्क्रिय और निराश हो जा सकता है। अतएव प्रेमचंद ने यथार्थ जीवन की पीड़ा और व्यथा को आदर्श प्राप्ति की ओर उन्मुख कर दिया है। उन्होंने जीवन के मंगलमय और आनंदलोक का संकेत कर साहित्य में समाज को जीवंत कर दिया है। वह साहित्य को समाज में खींच लाए हैं और सुपुप्त मानवीय ज्ञान को जाग्रत कर दिया है। सच्चा साहित्यकार ही दिग्भ्रमित और कर्मच्युत मानव को जीवन का अमूल्य संदेश के एकता है। चेतना प्रबुद्ध मानव को कर्मज्ञान की सच्ची प्रेरणा साहित्य से मिलती है। प्रेमचंद गुलाम, निर्धन, असभ्य और अशिक्षित भारत की कराहती हुई वेदनामयी आत्मा की जुबान थे।

प्रेमचंद युग प्रतिनिधि कलाकार हैं। उनकी कहानियों में भारत माता की मिट्टी की सोंधी गंध, आम्रमंजरियों की मीठी महक, पके धान की सुनहली छवि और ढोलक की थाम की गंभीर स्वर मूर्त्तमान हो उठे हैं। दूसरी ओर 'पूस की रात' की कहानी सर्दी में वस्त्रहीन, कृषकों की काँपती हड्डी के भयावह कारुणिक स्वर भी कहानियों में स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। सामाजिक, आर्थिक विषमता और राजनीतिक दासता के कठोर अभिशाप से अभिशाप्त कृषक जीवन का रोदन ही उनकी कहानियों का मुख्य स्वर है। प्रेमचंद इस संसार के सामाजिक दार्शनिक है और उनका प्राथमिक उद्देश्य इस समाज के क्रमिक विकास का प्रदर्शन करता है जो सामाजिक, आर्थिक विषमता और राजनीतिक दासता पर आधारित है।

प्रेमचंद की कहानियों मानव वर्ग की अश्रु-पीड़ा अतीव निष्ठा के साथ मुखरित हुई है। इनके चरित्र आदर्श का विश्वास लेकर यथार्थ जीवन की निर्मम पीड़ा को सहर्ष झेलते हैं। जीवन युद्ध में कर्मठता के साथ युद्ध करते हैं और कर्मवीर की मृत्यु प्राप्त करते हैं। उनके हास, विनोद और व्यंग्य में भी एक अद्‌भुत सजीवता है। भाषा में ग्रामीणता, देहातीपन और भारतीयता की सच्ची गंध मिलती है। इन्होंने अपनी कहानियों में गरीबी का नग्न चित्र दर्शाया है। कथासाहित्य में इनके युग को प्रेमचंदयुग के नाम से पुकारा जाता है। प्रेमचंद जी हिंदी के अमर कथाकार है। यदि हिंदी कथासाहित्य के इतिहास से उन्हें अलग कर दें तो हमारा कथासाहित्य शून्य के बराबर हो जाएगा। प्रेमचंद ने ग्राम्यजीवन के साथ-साथ ग्रामीण कथा कहने के ढंग को भी अपनाया, क्योंकि उनकी बात लोगों तक पहुँचानी थी। भारतीय जनजीवन पर इतना अधिकार करनेवाले कलाकार अकेले प्रेमचंद ही है। प्रेमचंद ने भारतीय समाज के विषम आर्थिक संरचना से उत्पन्न दर्द-भरे जीवन का यथार्थ चित्रांकन किया है।

प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ने हिंदी कहानी को नवीन क्षेत्र प्रदान कर उसके विकास की संभावनाओं के द्वार खोले। पूँजीवाद का बढ़ता हुआ प्रभाव तथा सर्वहारावर्ग की मन:स्थिति के प्रति सहानुभूति ने भारतीय जनता पर भी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव डाला। हिंदी कहानी में एक प्रकार से समसामयिक तौर पर इन दोनों स्थिति के स्वरूपों के दर्शन होते हैं।

हिंदी कहानी में मनोविज्ञान का प्रवेश कराने का श्रेय प्रेमचंद को दिया जाना चाहिए। उन्होंने चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान का समावेश किया तथा पात्रों में मनोविश्लेषण पर ध्यान दिया। 'नशा',

'मनोवृत्ति', 'ईइगाह' मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित कहानियाँ है।

डॉ॰ श्यामसुंदर घोष के श्ब्दों में, ''कफन' प्रेमचंद की रचनाओं में एक अपवाद है ऐसा नहीं है कि प्रेमचंद की बाकी कहानियाँ एक ओर है और 'कफन' एक ओर। 'कफन' को यदि हम प्रेमचंद की मंजिल मान लें तो उस मंजिल की दूरी तय करने के क्रम में, रास्ते में, हमें प्रेमचंद की अनेक कहानियाँ मिलती हैं। इसलिए 'कफन' प्रेमचंद की रचनाओं में आकस्मिक अपवाद हैं, ऐसा नहीं है। यदि अपवाद भी है, जो विकासशील अपवाद है।'[4]

प्रेमचंद के कहानियों में वर्ग-संघर्ष, शोषण, अनमोल विवाह, पूँजीपति सामाजिक एवं नैतिक रूढ़ियों पर आक्रोश उनकी कहानियों के विषय रहे हैं। कवि मधुरेश जी प्रेमचंद का मूल्यांकन एक आदर्शवादी और लक्ष्यवादी लेखक मानकर करते हैं। प्रेमचंद की 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' की अवधारणा से वे अपनी असहमति व्यक्त करते हुए लिखते हैं, 'कोई कलाकार या तो यथार्थवादी ही हो सकता है या आदर्शवादी ही। ये दोनों परस्पर-विरोधी विचारधाराएँ और कला-शैलियाँ हैं। इनका मिश्रण किसी एक रचना में संभव नहीं। साहित्यिक निर्वाण में यथार्थोमुख आदर्शवाद या आदर्शोमुख यथार्थवाद नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती। वास्तव में प्रेमचंद जी अपने विचारों व लेखन में आदर्शवादी है। आपका चरित्र निर्वाण और मनोवैज्ञानिक चित्रण आदर्शवादी हैं। आदर्शवादी चित्रण से तात्पर्य है, मानव की सद्वृत्तियों पर विश्वास रखकर साहित्य-निर्वाण करना। उनकी समस्त कृतियों को देखकर ही हम ऐसा कहते हैं, इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन करने पर उन्हें आदर्शवादी लेखक ही कहना उचित होगा।'[5]

प्रेमचंद ने 'हंस', 'जागरण', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया। कथासाहित्य के अलावा प्रेमचंद ने निबंध एवं अन्य प्रकार का गद्य लेखन भी प्रचुर मात्रा में किया। प्रेमचंद साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम मानते थे। उन्होंने जिस गाँव और शहर के परिवेश को देखा और जिया उसकी अभिव्यक्ति उनके कथासाहित्य में मिलती है। किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति, दलितों का शोषण, समाज में स्त्री की दुर्दशा और स्वाधीनता आंदोलन आदि उनकी रचनाओं के मूल विषय हैं। प्रेमचंद के कथासाहित्य का संसार व्यापक है। उसमें मनुष्य हीं नहीं, पशु-पक्षियों को भी अद्‌भुत आत्मीयता मिली है। बड़ी-से-बड़ी बात को सरल भाषा में सीधे और संक्षेप में कहना प्रेमचंद के लेखन की प्रमुख विशेषता है। उनकी भाषा सरल, सजीव एवं मुहावरेदार है तथा उन्होंने अरबी, फारसी, और अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है।

प्रेमचंद अपने समय में, अपने समय के वामपंथ की अपेक्षा, अपनी जनता से कहीं ज्यादा गहरे जुड़े थे और उनकी समस्याओं और दुख-दर्द से अधिक आत्मीय ढंग से परिचित थे। प्रेमचंद के समय में वामपंथ में जितनी प्रगतिशीलता थी उससे कई गुनी अधिक प्रगतिशीलता प्रेमचंद में थी। डॉ॰ श्यामसुंदर घोष प्रेमचंद के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं, 'उनकी रचनाओं में व्यक्ति के मनोभाव और परिस्थिति की एकता जरूर है। लेकिन यह मनुष्य और प्रकृति की न होकर मुख्यत: सामाजिक व्यक्ति और सामाजिक परिस्थिति की एकता है।'[6] प्रेमचंद अक्सर छोटे-छोटे वाक्य लिखते थे। फिर डॉ॰ श्यामसुंदर घोष कहते हैं, 'प्रेमचंद की रचनाएँ तो हिंदुस्तानी मुहावरों और कहावतों के हीरों की महान और मूल्यवान खान हैं। उन्होंने अनेक उदाहरण देकर

बताया है कि प्रेमचंद इनके प्रयोग से पात्रों के व्यक्तित्व सजीवता से उभारते हुए लेखन में अपनी प्रतिभा और महारत की धाक जमाते चले गए।'[7]

सजीव और अगाध उपमाएँ भी प्रेमचंद की रंग-बिरंगी भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता है। भारतीय जनता को पहले से अच्छी तरह से मालूम उन पात्रों के गुणों और अवगुणों के इस्तेमाल अपने पात्रों के व्यक्तित्व दर्शाने के लिए किया गया है। अलग-अलग यह स्थिति या व्यक्तित्व वाले पात्रों के संवादों की भाषा भी बेहद भिन्नता लिए है। बातचीत के जरिए विभिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण, शब्द, चयन, श्लेष प्रयोग, पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग में महारत आदि प्रेमचंद की कई विशेषताओं के उल्लेख है। प्रेमचंद के साहित्य का विश्लेषण कर हमें एक नई साहित्यिक दुनिया दिखाई है।' उनका मुख्य विषय सिर्फ एक था, यानी परंपरागत कृषि व्यवस्था का अनुमोदन पर परंपरागत नैतिकता का गुणगान करना। उनकी रचनाएँ न तो इतिहास हैं और न ही उन्होंने इतिहास की वास्तविकता और ऐतिहासिक व्यक्तियों की प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति पर जोर दिया, बल्कि उन्होंने भारत की परंपरागत कृषि सभ्यता की पुष्टि करने की प्रेमचंद की चेतना का प्रतिबिंब उनके सबसे प्रिय उपन्यास 'रंगभूमि' में सबसे ज्यादा पाया है। भारत के परंपरा देहाती समाज में व्यक्तिगत शासन को अहमियत देने और विधि व्यवस्था की उपेक्षा करने की विशेषता भी प्रदर्शित है।'[8]

प्रेमचंद द्वारा चित्रित सभी महिला पात्रों में धनिया सबसे अधिक यथार्थ और सबसे अधिक जीवंत है। धनिया में भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व और भारतीय महिलाओं के सद्‌गुण संकेंद्रित रूप में है। घोष कवि कहते हैं, 'संसार प्रेम से जन्मा, प्रेम के सहारे बना रहा, प्रेम की ओर बढ़ रहा और प्रेम प्रवेश कर रहा है। सृष्टि ही प्रेम और जीवन का उद्देश्य भी प्रेम ही है। आनंदमयी इसी प्रेम के आदर्श की एक प्रतीक है।'[9] प्रेमचंद के साहित्य में एक खास किस्म की रोचकता दिखाई देती है। वह उपनिवेशवादी शासन का प्रतिरोध करने के लिए परंपरागत सभ्यता का समर्थन करता है तो वह बहुत ही वीरतापूर्ण, न्योयोचित और पवित्र जान पड़ता है। जब वह परंपरागत सभ्यता को अपनी चिरस्थायी आदर्श मानता है। लेखक धनिया के चरित्र का सकारात्मक व्यावहारिक महत्त्व और गहरा चिंतन मूल्य बताते हुए दोनों रूप में देखते हैं—आदर्शोन्मुख यथार्थवादी ठाकुर ने अपने आदर्श के प्रतीक आनंदमयी की विशाल हृदयता और उदात्त मानसिक अवस्था का उद्‌घाटन करने में जोर लगाया और भारतीय माँ का संपूर्ण चरित्र रचा, तो प्रेमचंद ने एक वस्तुगत यथार्थवादी होने के नाते किसी आदर्श की प्रतिमा के बजाय एक जीवंत तथा साधारण ग्रामीण महिला का चरित्र रचने में शक्ति लगाई।'[10] 'गोदान' भारत के ग्रामीण जीवन को प्रतिबिंबित करने वाला 'महाकाव्य' है।

प्रेमचंद भारतीय जनता को अपने हृदयोद्‌गार प्रकट करने के लिए अपनी कलम की जुबान दी है। आम लोगों की जिंदगी के बारे में प्रेमचंद की कृतियाँ वैचारिक दृष्टि से बहुत ऊँचाईयों को छूती चली गई हैं। भारत के विभिन्न श्रेणियों के अलग-अलग सुखों-दुखों, आशाओं-निराशाओं, चालाकियों, धाँधलियों, कल्पनाओं, कामनाओं, आदर्शों और निडरता, कायरता आदि को बखूबी पेश किया है। ग्रामीण जीवन का रंग-बिरंगा और मिट्टी की सुगंध लिए चित्र विशेष सरस है। प्रेमचंद के अनुभव की जड़ें सामाजिक और ऐतिहासिक भूमि की गहराई में हैं, उनकी ज्यादातर कहानियों में जनवाद, देशभक्ति और प्रगतिशीलता की छाप है।

प्रेमचंद ने रुचिकर और अर्थपूर्ण घटनाएँ चुनकर नाटकीय प्रभाव पैदा करना तथा तीक्ष्ण

 ISSN 0975-735X

लेखनी से यथार्थ चरित्र चित्रण करते हुए सरस जीवन चित्र बनाकर पाठकों को मनमोहक कलात्मक जगत में ले जाना प्रेमचंद के विन्यास की एक और विशेषता है। कहानी में घुमाव-फिराव होने से ही सजीवता तथा रसात्मकता आती है। प्रेमचंद की कहानियों में ईमानदारी, उदारता, सहिष्णुता, परोपकारिता और आत्मसम्मान का दृढ़तापूर्वक रख-रखाव के गुण मुख्य हैं। मनोवैज्ञानिक चित्रण के संदर्भ में सूक्ष्मता तथा सजीवता से संपन्न निजी निराली शैली का सृजन, पाठकों की आत्मा को झकझोरकर कहीं अधिक स्वच्छ बना देने की चेष्टा, मनो-व्यापार के वर्णन से चरित्र का मूल राग प्रस्तुत करना, कवि का मुख्य ध्यान है। 'ईदगाह', 'गुल्ली डंडा', 'रामलीला' और 'कजारी' जैसी कहानियों में बाल मनोविज्ञान का यथार्थ और रुचिकर वर्णन भी प्रेमचंद की खास विशेषता है।

अमृतराय ने 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' में व्यक्त किया कि 'साहित्य प्रेमचंद के लिए अवकाश के समय को भरने का माध्यम नहीं था। जिस कठिन परिस्थितियों में इतने विपुल साहित्य का निर्माण उन्होंने किया, उससे स्पष्ट है कि साहित्य के प्रति उनमें अद्‌भुत लगन थी।'[11] डॉ॰ नगेंद्र ने कहा है, 'हिंदी उपन्यास को प्रेमचंद की देन अनेकामुखी है। प्रथमत: उन्होंने हिंदी कथासाहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया। चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं-पराधीनता, जमींदारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिंदगी, वृद्ध-विवाह, विधवा-समस्या, सांप्रदायिक वैमनस्य, मध्यमवर्ग की कुंठाएँ आदि ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया।'[12]

कवि बालबंधु जी के शब्दों में, 'प्रेमचंद जी की रचनाओं का प्रधान विषय ग्राम-समस्या है और मध्यम श्रेणी के जीवन की तुलनात्मक झाँकी भी हमें उनकी रचनाओं में मिलती है। सारांश यह कि यों तो विषय की दृष्टि से जीवन की सभी स्थितियों के दर्शन इनके कथानक में होते हैं, सभी श्रेणी के पात्रों के चरित्र-चित्रण इन्होंने सफलतापूर्वक किए हैं और अनेकानेक सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक और समस्याओं की मनोरंजक विवेचना की है, तथापि मानव मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाले मनोभावों का जो सरल, भावपूर्ण और द्वंदयुक्त दिग्दर्शन इन्होंने कराया है वह हमारे अधिकांश कहानी लेखकों के लिए भी अनुकरण की चीज है।'[13]

उपर्युक्त विषयवस्तु एवं शिल्प भाषा की दृष्टि से यह कहा सकता है कि प्रेमचंद की कहानी ने अपने स्वरूप को सँवारने एवं निखारने का काम किया। उसके विषय वैविध्य एवं शिल्प सजकता का विकास हुआ। यदि इस काल के कहानीकारों और कहानियों का वर्गीकरण करें तो उन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में अंतर्मुखी परंपरा के कहानीकार हैं जिनका प्रतिनिधि करते हैं—जयशंकर प्रसाद। द्वितीय वर्ग में बहिर्मुखी परंपरा के कथाकार हैं जिनके प्रतिनिधि हैं—प्रेमचंद। प्रेमचंद की भाषा में सरल, सादगी, लोकोत्तियों एवं मुहावरों का सही प्रयोग तथा पात्रानुकूलन जैसे गुण विद्यमान हैं। उनकी कहानियाँ भाषा की दृष्टि से बेजोड़ एवं आदर्शवादी हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 580
2. डॉ॰ श्यामसुंदर घोष, शिखर और सेतु, साहित्य भंडार इलाहाबाद, पृ॰ 96

3. डॉ॰ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 581
4. डॉ॰ श्यामसुंदर घोष, शिखर और सेतु, साहित्य भंडार इलाहाबाद, पृ॰ 82
5. मधुरेश, हिंदी आलोचना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 97-98
6. डॉ॰ श्यामसुंदर घोष, शिखर और सेतु, साहित्य भंडार इलाहाबाद, पृ॰ 122
7. वही, पृ॰ 122
8. वही, पृ॰ 123
9. वही, पृ॰ 125
10. वही, पृ॰ 126
11. वही, पृ॰ 226
12. डॉ॰ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 574
13. श्री बालबंधु, साहित्यलोचन एक अध्ययन, हिंदी साहित्य भंडार लखनऊ, पृ॰ 124

ग्राम-बड़ी मकंदपुर
पो० अभिया बाजार, थाना गोपालपुर
जिला भागलपुर (बिहार) 853204

‘कालिदास-दर्शन’ का उत्कृष्ट निदर्शन-‘राजा प्रकृतिरंजनात्’

डॉ॰ रजनीश कुमार पाठक
प्रवक्ता (संस्कृत)
किशोरी रमण इंटर कॉलेज, मथुरा (उ॰प्र॰)

कालिदास विश्ववंद्य कवि हैं। संस्कृत भाषा के साहित्य की विविध विधाओं को उन्होंने अपनी अनुपम एवं लोकोत्तर प्रतिभा से भरा है। उनकी कविता के स्वर देशकाल की परिधि को लाँघकर सार्वभौम बनकर गूँजते रहे हैं। भारतीय चिंतन-दर्शन को आधार बनाकर उन्होंने अपनी रचनाओं में संपूर्ण मानव-जीवन की विविध छवियों का सम्यक् एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। साहित्य में औदार्य गुण के प्रति विशेष प्रेम रखते हुए भी उन्होंने आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। वे राष्ट्र की समग्र राष्ट्रीय चेतना को स्वर देनेवाले कवि हैं, इसीलिए विद्वानों ने उन्हें ‘राष्ट्रीय कवि’[1] ही नहीं अपितु ‘विश्वकवि’[2] के पद पर प्रतिष्ठापित किया है।

ऐसे कवि विरल होते हैं, जो अपने लौकिक अनुभवों को सामान्य जनजीवन के आदर्श के रूप में छोड़ जाते हैं। कालिदास ऐसे ही कवि हैं, जिन्होंने भारतीय जीवन और दर्शन को संपूर्ण संवेदना के साथ अपने ग्रंथों में निरूपित किया है। जीवन के विविध पक्षों के प्रति कवि की स्पष्ट अवधारणा प्रकट हुई है। कवि के इन्हीं विचारों-दृष्टिकोणों को प्रकृत में ‘कालिदास-दर्शन’ कहा गया है। तीनों नाटकों एवं रघुवंश महाकाव्य का कथानक राजपरिवार से संबद्ध होने के कारण कवि को अपनी राजनीतिक दृष्टि प्रकट करने का पर्याप्त अवसर मिला है। भारतीय राजनीति में राज्य रूपी शरीर के सात अंगों[3] (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग कोष, सेना तथा मित्र) में राजा का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। कालिदास ने उनकी श्रेष्ठता प्रजारंजक स्वरूप में सिद्ध की है। राजा रघु के संदर्भ में उनका स्पष्ट उद्घोष है कि जिस प्रकार चंद्रमा को यह संज्ञा आह्लाद उत्पन्न करने के कारण और सूर्य को तपन-संताप के कारण प्राप्त है, उसी प्रकार प्रजा को प्रसन्न करने (रंजनात्) के कारण राज्य के स्वामी को ‘राजा’ कहा जाता है–

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृति रंजनात्।[4]

वस्तुतः भारतीय साहित्य में निर्वचन की प्रधानता होने से निकटतम अर्थ वाले धातु की खोज होती रही है। कालिदास ने भी ‘रंज्’ धातु से यहाँ राजा का निर्वचन किया है, जो उसके आदर्श स्वरूप को स्पष्ट करता है। वैसे, राजन शब्द की व्युत्पत्ति राज् धातु से की जाती है, जिसका अर्थ दीप्ति या प्रकाशन है। राजा अपने राज्य में प्रकाशित होता है। महाकवि को राजा का प्रजारंजक स्वरूप ही प्रिय है अर्थात् प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का सर्वप्रमुख कार्य है। प्रजा का पालन-पोषण वह अपनी संतान के सदृश समझकर करे। राजा दिलीप के वर्णन में कवि ने कहा है कि पिता जैसे अपने पुत्रों को बुरे कर्मों से रोकता है और अच्छे काम करने की सीख देता

है, सब प्रकार से उनकी रक्षा करता है और उनको पाल-पोसकर बड़ा करता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा को बुरे मार्ग पर जाने से रोकते थे, अच्छे काम करने के लिए उत्साहित करते थे, विपत्तियों से उनकी रक्षा करते थे और उनके लिए अन्न, वस्त्र, धन, शिक्षा का प्रबंध करके उनका पालन-पोषण करते थे। इस तरह वे ही अपनी प्रजा के सच्चे पिता थे, वास्तविक पिता तो केवल जन्म देने के कारण थे–

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतव:।[5]

राजा दुष्यंत के प्रसंग में भी ऐसा ही कहा है–

प्रजा: प्रजा: स्वा इव तन्त्रयित्वा।[6]

कालिदास की दृष्टि में प्रजा की प्रसन्नता ही राजा के लिए सर्वोपरि होना चाहिए। प्रजाहित में उसे सदैव पिता के समान प्रयत्नशील रहना चाहिए।

उसे अपने सुख की चिंता न करते हुए प्रजा की भलाई के लिए निरंतर कष्ट उठाना चाहिए–यही उनका कार्य व्यापार है। जैसे वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप को सहन करता है और अपनी छाया से अपने आश्रितों के संताप को दूर करता है, वैसा ही व्यवहार राजा को प्रजा के लिए करना चाहिए–

स्वसुखनिरभिलाष: खिद्य से लोकहेतो:
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्घ्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।[7]

महाकवि के अनुसार, राजत्व (राजा का पद) की प्रप्ति केवल उत्सुकता को समाप्त करती है किंतु प्राप्त हुए की रक्षा का कार्य उसको दु:खित कर देता है। राज्य छाते के तुल्य है, जिसका अपने हाथ में पकड़ा हुआ दंड थकान को उतना अधिक दूर नहीं करता है जितना (स्वयं और) थकान करता है।[8] वास्तव में मनुष्य को जब तक कोई उच्च पद नहीं मिलता है, तब तक वह उसके लिए बहुत उत्सुक रहता है। परंतु जब वह स्थान मिल जाता है तो उसका उत्तरदायित्व और कार्यभार उसे दु:खित कर देता है। प्रजा-पालन में राजा को कभी विश्राम नहीं मिलता है– अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकार:।[9] यद्यपि राज्य का संचालन प्रजा से प्राप्त धन (कर) से ही होता है तथापि प्रजा से कर संग्रहण का तात्पर्य यह नहीं है कि उसका उपयोग राजा के व्यक्तिगत सुख साधन में ही हो। राजा दिलीप के वर्णन में कवि ने स्पष्ट कहा है कि जैसे सूर्य अपनी किरणों से धरती का जितना जल लेता (सोखता) है, उसका हजार गुणा बरसा देता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा से जितना 'कर' लेते थे, वह सब प्रजा की भलाई में ही खर्च कर दिया करते थे–

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रवि:।।

(रघुवंशम्, 1/18)

कालिदास की दृष्टि में राजा कठोर और कांत दोनों प्रकार के गुणों से युक्त होना चाहिए– 'भीमकान्तैनृपगुणै: (रघुवंश-1/16)। अपने कठोर गुणों से वह निष्पक्ष न्याय एवं तदनुरूप दंड (यथापराधदण्डानाम् (रघुवंश -1/6) देने में समर्थ होता है तथा कंत गुणों के सहारे प्रजा का प्रिय

हो जाता है। राजा को सभी के प्रति यमराज के समान समदृष्टि रखनी चाहिए, उन्हें वरुण के समान दुष्टों को दंड देना चाहिए।[10] वस्तुत:, प्रजा में समुचित न्याय वितरित करना राजा का प्रमुख कार्य है। कवि ने सर्वत्र अपने राजाओं द्वारा शास्त्रानुसार न्याय किए जाने का वर्णन किया है। प्रजा के मामलों की प्रवृत्ति को आलोचनात्मक दृष्टि से समझने के लिए राजा को न्यायासन (धर्मासन)पर विराजमान होकर वादी-प्रतिवादियों को स्वयं सतर्कता पूर्वक सुलझाने चाहिए[11] और अपराधी को समुचित दंड देना चाहिए।[12] इसीलिए कालिदास ने दंडनीति (राजशास्त्र) को राजा की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण विषय बताया है–'चतस्र: विद्या: ततार'

(रघुवंशम्, 3/30) अर्थात् आन्वीक्षिकी (तर्क और दर्शन) त्रयी (तीन वेद), वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) एवं दंडनीति (राजशास्त्र)। साथ ही, कवि ने राजा को परंपरागत दोषों (आखेट, द्यूत, मद्यपान तथा स्त्री-सेवन) से दूर रहने एवं आंतरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर आत्मसंयमी होने की सलाह दी है। राजा अतिथि के वर्णन में कवि ने कहा है कि उन्होंने बाहरी शत्रुओं को जीतने के पहले अपने काम, कोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या एवं पिशुनता (चुगलखोरी) इन छह आंतरिक शत्रुत्रों को पराजित किया, क्योंकि बाह्य शत्रु सदैव नहीं रहते और रहते भी हैं तो बहुत दूर, दूसरी ओर आंतरिक शत्रु सदा शरीर में निवास करते हैं–

अनित्या: शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यत:।
अत: सोऽभ्यन्तरान्निव्यान् षट्पूर्वमजयद्रिपून।

(रघुवंश-17/45)

कालिदास के अनुसार आदर्श राजा को 'त्रिसाधनाशक्ति[13]–प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मंत्रशक्ति से संपन्न होना चाहिए। राजा के राजपद और उसकी आज्ञा के वशवर्ती साधनों से उत्पन्न शक्ति ही प्रभुशक्ति है। राजा के व्यक्तिगत विक्रम एवं बल से प्रकट होने वाली शक्ति उत्साह शक्ति कहलाती है और मंत्रियों की मंत्रणा (परामर्श) ही राजा की मंत्रशक्ति होती है। संमंत्रणा से राज्य सुदृढ़ बना रहता है, इसके विपरीत मंत्रियों के गलत परामर्श से राजा का विनाश हो जाता है। भर्तृहरि में कहा है–दौर्मंत्रयान्नृपतिर्विनश्यति।[14]

इसके अतिरिक्त, कालिदास की दृष्टि में राजा को साम, दान दंड और भेद–इन चार नीतियों से संयुक्त होना चाहिए 'राजनीतिं चतुर्वधाम्'।[15] साथ ही राजा को संधि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वैधीभाव–इन छह राजगुणों (षड्गुण या षड्यंत्र) का समयानुकूल प्रयोग करना चाहिए। (रघुवंशम्, 17/67)। वास्तव में पराक्रम से रहित केवल नीति का आश्रय लेना कायरता है और नीति रहित केवल पराक्रम हिंसक पशुओं की चेष्टा है। अतएव, राजा में नीति और पराक्रम दोनो का समन्वय होना चाहिए। इसीलिए राजा अतिथि ने उन दोनों को मिलाकर उनसे सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा की थी–

कातर्यं केवला नीति: शौर्य श्वापदचेष्टितम्।
अत: सिद्धि समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष स:।[16]

महाकवि तुलसीदास ने भी कहा है–

सोचिय नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।[17]

अर्थात् नैतिकताविहीन राजनीति एवं सिद्धांत से रहित शासक जनता का हित नहीं कर

सकते, इसलिए शासक को नैतिक मूल्यों के प्रति सजग होना चाहिए, तभी वह अपनी प्रजा का कल्याण कर सकेगा। तभी तो कालिदास उद्घोष करते हैं कि राजा की सत्कर्म प्रवृत्ति से इंद्रादि देवता भी उसकी सहायता करते हैं, जिससे राष्ट्र का कल्याण होता है।[18]

वास्तव में 'प्रजारंजन' से राजा का उत्कर्ष होता है तथा प्रजा की उपेक्षा से विध्वंश की प्राप्ति होती है। ऐंद्रियिक सुख राजा को ही नहीं, उसके विमल वंश को भी ध्वस्त कर देता है।[19] रघुवंश के माध्यम से कवि ने यही संदेश दिया है। इसीलिए उन्होंने क्षात्रतेज (राजा)और ब्रह्मतेज (विद्वज्जन)के परस्पर सहयोग से राष्ट्रमंगल की कामना की है–

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्। [20]

निष्कर्षतः प्रजारंजन ही राजा का सर्वप्रमुख कार्य है। अतएव, उसे प्रजाहित के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। नैतिक मूल्यों के प्रति सजग रहकर सिद्धांत पर आधारित राजनीति ही प्रजारंजन के लिए श्रेयस्कर है। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में महाकवि का उद्घोष–'राजा प्रकृतिरंजनात्' सर्वथा समीचीन एवं उपयोगी है।

संदर्भ

1. कवि कालिदास, डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी (द्विवेदी ग्रंथावली), पृ॰ 123
2. विश्वकविकालिदास, आ॰ सूर्यनारायण व्यास, ज्ञानमंडल प्रकाशन, इंदौर
3. कामंदकीयनीतिसार, 4/1 एवं मनुस्मुति-9/294
4. रघुवंशम्, 4/12
5. वही, 1/24
6. अभिज्ञानशाकुंतलम्, 5/5
7. वही, 5/7
8. वही, 5/6
9. वही, 5/4 से पूर्व
10. रघुवंशम्, 9/6
11. वही, 17/39
12. वही, 1/6
13. वही, 3/13
14. नीतिशतकम्, भर्तृहरि, श्लोक सं॰ 42
15. रघुवंशम्, 17/68
16. वही, 17/47
17. श्री रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा-172/4
18. रधुवंशम्, 17/81
19. संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रो॰ उमांशकर शर्मा 'ऋषि', चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी, पृ॰ 213
20. अभिज्ञानशाकुंतलम् का भरतवाक्य।

द्वारा श्री के॰के॰ दीक्षित
अग्रसेन नगर, द्वारिकापुरी
मथुरा (उत्तर प्रदेश) 281004

दलित कहानी और कहानीकार : एक परख

डॉ॰ ओमप्रकाश (डी॰लिट्॰)
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आर॰के॰एस॰डी॰ कॉलेज, कैथल, हरियाणा

हाल ही में हिंदी साहित्य जगत की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'हंस', नवंबर-दिसंबर 2019 में दलित साहित्य विशेषांक प्रकाशित हुआ, जिसमें हिंदी साहित्य के नामचीन दलित कथाकारों की कहानियाँ पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। वैसे तो साहित्य को बाँटने की परंपरा ही स्वस्थ नहीं है, फिर भी देश को दिशा देनेवाली राजधानी दिल्ली से प्रकाशित स्वयंभू पत्रिका 'हंस' के इस कदम की अनदेखी भला कौन कर सकता है? साहित्य को टुकड़ों में बाँटने की परंपरा का ही परिणाम है कि आज दलित-विमर्श, नारी-विमर्श और आदिवासी विमर्श की दुनिया में नए-नए विमर्श जुड़ रहे हैं। यथा—वृद्ध-विमर्श एवं बाल-विमर्श आदि को भी कुछ विद्वान नया विमर्श मानने लगे हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था का आधार ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, और शूद्र चार वर्णों पर आधारित रहा है। ब्राह्मणों का कार्य शुरू से ही जनता का मार्गदर्शन करना रहा है। वेदों-उपनिषदों एवं धार्मिक ग्रंथों में वर्णित नीति एवं आदर्शमूलक कथाओं के श्रवण द्वारा न केवल जनमानस में आचार संहिता का निर्माण करना बल्कि उसके भरण-पोषण का साधन भी रहा है। वैश्य का संबंध वणिक से है, यह संपन्न धनिक वर्ग है, जिसका मुख्य कार्य लाभ-हानि से जूझते हुए सभी वर्गों की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का करना रहा है बेशक इस उपकार के लिए वह निर्मम शोषण भी करता है। क्षत्रिय का कार्य जनरक्षा है। बाह्य आक्रमण एवं आंतरिक समस्याओं से लड़ते हुए दीन-दुखियों की सहायता करना तथा देश एवं समाज की प्रगति में योगदान देना उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है। शूद्र का कार्य सेवा करना रहा है अर्थात् विभिन्न वर्गों के द्वारा किए गए कार्यों में रचनात्मक सहयोग देकर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाना उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है। अधिकांश विद्वान शूद्र वर्ग का संबंध केवल निम्न जातियों से जोड़ते हैं, यह ठीक नहीं। शूद्र से अभिप्राय ऐसे वर्ग से है, जिसका कालांतर से शोषण किया जा रहा हो। कहने का अभिप्राय है कि समाज के अभिन्न चारों वर्गों का अपना वजूद है जब तक चारों वर्णों में सहयोग की भावना नहीं होगी कोई भी देश तरक्की नहीं कर सकता। यह भी सत्य है कि जब देश की उन्नति में चारों वर्णों का सहयोग है तो उत्थान भी चारों वर्णों का एक साथ होना चाहिए था। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण आज वर्ण-व्यवस्था बदल गई है। महानगरों में किसी भी प्रकार का अंतर इन वर्णों के अंदर दिखाई नहीं देता केवल बस्तियों के आधार पर ही इनकी पहचान हो सकती है। महानगरों में ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रिय का कार्य सभी वर्गों के लोग कर रहे हैं, हाँ जहाँ तक बात है शूद्रकर्म की वह भी मैला ढोने जैसे घृणित या सफाई जैसे काम की उसकी जिम्मेदारी आज भी निम्नवर्ग के लोग ही निभा रहे हैं। ऐसा संभवत शिक्षा के अभाव के कारण है अथवा इस पेशे विशेष से जुड़े लोगों में जागरूकता के अभाव के कारण शोषण की यह प्रक्रिया बदस्तूर आज भी जारी है। अब प्रश्न उठता है कि दलित

कौन? अर्थात् जिसके अधिकारों का दलन हुआ वह दलित है। यूँ कहें कि सामाजिक समानता के अधिकारों से वंचित वर्ग ही दलित है। मोटे तौर पर सामाजिक एवं संवैधानिक दृष्टि से दलितों के लिए 'हरिजन' या 'शेड्यूल कास्ट' जैसे शब्द का प्रयोग किया जाता है। तथाकथित दलितों द्वारा सवर्णों पर यह आरोप लगाया जाता है कि सवर्ण जातियों (ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय) द्वारा उनका निरंतर शोषण किया जाता है। 'मीन-मत्स्य-न्याय' सिद्धांत के अनुसार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। ऐसा करते हुए वह उस मछली की प्रजाति को नहीं देखती। भारतीय समाज की व्यवस्था भी कुछ ऐसी ही रही है हमेशा ताकतवर लोगों ने कमजोर के अधिकारों का हनन किया है। इस दृष्टि से हम सब दलित हैं। समाज के हर व्यक्ति का, प्रतिभा का शोषण किसी-न-किसी रूप में हुआ है जो आज भी जारी है। डॉ॰ विजेंद्र स्नातक ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य जन्म से ही शूद्र है। सामाजिक शोषण संबंधी आरोप-प्रत्यारोप का यह सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। हरियाणवी में कहावत है कि 'लड़ाई का अर लस्सी का के बधाणा' सामाजिक शोषण के लिए हर पक्ष के पास स्वयं को सिद्ध करने के लिए सैकड़ों तर्क हो सकते हैं। इस विवाद का हल यही है कि 'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेई'। वास्तविकता यह भी है कि इस हल को मानने वाले भी आटे में नमक के समान ही हैं किंतु सत्य तो स्वीकारना ही होगा।

वर्तमान में दलित कथासाहित्य लेखन में अनेक लेखकों का सक्रिय योगदान रहा है, जिनमें ओमप्रकाश बाल्मीकि, श्योराजसिंह बेचैन, तेजप्रकाश, अजय नावरिया, मोहनदास नैमिशराय, रजतरानी मीनू, जयप्रकाश कर्दम, तुलसीराम मुर्दहिया, पूनम तुषामद आदि उल्लेखनीय हैं। 'हंस' के इस अंक में लगभग सभी दलित कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। समीक्षा के लिए यहाँ केवल प्रथम तीन कहानियों (निजाम–मोहनदास नैमिशराय, चक्रव्यूह–जयप्रकाश कर्दम और आँच की जाँच–श्योराजसिंह बेचैन) का ही चयन किया गया है। दलित-जीवन पर लिखने वाले अधिकांश कथाकारों का यह मानना है कि दलित कथाकार जाति का भी दलित होना चाहिए। आज दलित कथाकारों की यही एक पहचान बन गई है। इन कथाकारों का यह मानना है कि 'जाके पाँव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई' यह कुछ हद तक सही भी हो सकता है, पर वास्तविकता से कोसों दूर भी है। प्रेमचंद की 'कफन', स्वदेश दीपक की 'घुड़चढ़ी', मोहमद आरिफ की 'लू' जैसी असंख्य कहानियाँ इसका उदाहरण हैं जो दलित लेखकों की कहानियों से इक्कीस हैं। मैंने कुछेक दलित आत्मकथाओं और बहुत सी कहानियों को पढ़ा है, जिनके प्लाट लगभग समान हैं। कई बार इन कहानियों को लेकर चिढ़-सी हो जाती है कि क्या इन कहानीकारों के पास सवर्णों को गाली देने के सिवाय कुछ नहीं है अथवा जान-बूझकर ऐसा करके ये अपनी पहचान बनाना चाहते हैं। एक सच्चा साहित्यिक वही होता है जो सामाजिक जुड़ाव के लिए लिखें। साहित्य का धर्म यही है 'बहुजन हिताय, सर्वजन सुखाय' इस साहित्य में सामान्य रूप में एक ही बात को बार-बार दोहराया गया है यथा–महाजनों, दबंगों, अथवा ठाकुरों द्वारा कुओं पर पानी भरने से मना करना, स्कूल में मास्टर द्वारा जातिसूचक गंदी गालियाँ देना, सामाजिक भेदभाव, दलित महिलाओं से छेड़छाड़, मानसिक उत्पीड़न आदि। यह सही भी है। स्कूली शिक्षा में हमने भी कुछ ऐसे उदाहरण देखे हैं, पर उस समय स्कूलों में अध्यापकों द्वारा बच्चों को ऐसे संबोधन सभी जाति के बच्चों के लिए आम थे, किसी दुर्भावनावश नहीं। यहाँ तक कि हमने अपने बुजुर्गों से सुना है, गाँव-देहात में स्वयं देखा भी है कि निम्न जाति के लोगों को पास बैठने तक नहीं दिया जाता था

 ISSN 0975-735X

साथ खाना तो दूर की बात यद्यपि नई पीढ़ी को इसमें आश्चर्य हो सकता है। यह सब व्यवहार उस समाज की एक व्यवस्था थी जिसे हम बुरा कहें या अच्छा...विवाद का विषय है। अब वह समय नहीं है, साहित्यकारों को भी अब नई सोच के अनुरूप लिखना चाहिए किंतु दलित कहानीकार एक कदम भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं हैं। मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित 'निजाम' कहानी इसी सच को बयां करती है–'अब देखो रहमत चाचा, स्कूल में गैरबराबरी, मंदिर में गैरबराबरी और यहाँ तक कि जेल में भी गैरबराबरी। यहाँ आदमी को काम दिया जाता है उसकी जात को देखकर।'[1]

दलित समाज के शोषण को लेकर मेरे मन में एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से खड़ा हो जाता है? यह ठीक है कि सवर्णों ने दलितों का शोषण किया मान लिया, परंतु क्या आज सभ्य समाज में किसी प्रकार का शोषण सहनीय है। दु:ख होता है उस दलित समाज को देखने पर जो अपने शोषण का ढिंढोरा तो पीटता है लेकिन स्वयं अपने दलित भाइयों का गला घोंट रहा है। आज दलित समुदाय का कितना भी बड़ा राजनेता हो, मंत्री हो, राज्यपाल हो, सांसद–विधायक हो,आई॰ए॰एस॰ अफसर हो, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर हो या अन्य महत्त्वपूर्ण सेवाओं में हो कितने अधिकारियों–कर्मचारियों ने अपनी जाति बिरादरी के लिए आरक्षण को छोड़ा है? शायद एक ने भी नहीं। हालात यह है कि जो एक बार जम गया उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपने परिवार का ही पालन पोषण किया। यह है सवर्णों को कोसने वाले दलित सवर्णों की मानसिकता जिसे बदलने की आवश्यकता है ताकि समाज के एक नए स्वरूप की संरचना हो सके। ये सवर्ण दलित अपनों का ही खून चूस रहे हैं, क्यूँ नहीं बराबरी के लिए स्वेच्छा से आरक्षण का त्याग कर देते। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि इन दलितों में भी एक वर्ग जो बेहद उपेक्षित है–'बाल्मीकि वर्ग' जो सफाई और गंदगी उठाने का काम करता है वह आज भी सर्वाधिक उपेक्षित, पीड़ित एवं वंचित है। यदि हम समाज में समानता चाहते हैं तो उन्हें बराबरी का हक देना ही होगा।

दलित कथाकार जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित 'चक्रव्यूह' विषयवस्तु की दृष्टि से एक नए अंदाज की कहानी है। कहानीकार ने उत्तर आधुनिक परिवेश में पाश्चात्य जगत के भारतीय समाज पर होने वाले दुष्प्रभावों को अंकित किया है। भारतीय समाज नारी के प्रति किए जाने वाले अन्याय पूर्ण भेदभाव, दुष्कर्म, यौनाचार एवं हिंसा के कारण निरंतर अपमानित होता रहा है। 'चक्रव्यूह' कहानी की नायिका रूपा सीनियर–सेकेंडरी में पढ़नेवाली अनाथ दलित बालिका है। सुंदरता कभी–कभी अभिशाप बन जाती है, रूपा के लिए भी कुछ ऐसा ही है। स्कूल में आते–जाते अक्सर मोहल्ले के आवारा किस्म के गुंडों, पहलवानों द्वारा छेड़–छाड़ तो कभी नोटों की चमक दिखाकर बहलाने–फुसलाने, कभी अपहरण की धमकियाँ देने जैसी घटनाओं से तंग आकर वह जीवन चक्रव्यूह से निकलने के लिए सोशल मीडिया पर अपना कौमार्य बेचने का विज्ञापन देती है। कौमार्य बेचने की घटना का यह विज्ञापन सोशल मीडिया पर खूब वायरल हो रहा है। यहाँ तक कि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के चैनलों की टी॰आर॰पी॰ बढ़ाने में भी मददगार है। सुबह से शाम तक सभी टी॰वी॰ चैनल पर, अगले दिन प्रिंट मीडिया में सुर्खियाँ बनकर, गली–मोहल्लों, दफ्तरों, चाय, पान–बीड़ी–सिगरेट की दुकानों पर यह खबर सनसनी बनकर फैल गई है। लोग–बाग चटकारे ले–लेकर कानाफूसी कर रहे हैं कि शायद वह लड़की दलित हो...क्योंकि उनमें संस्कार ही ऐसे होते हैं, ऊँचे खानदान की लड़की ऐसा नहीं कर सकती...? किसी मजबूरी के कारण कोई ऐसा

कर रही है, या फिर शानों-शौकत के लिए...तरह-तरह की चर्चाओं को लेकर शहर का माहौल गर्म है। अनूप कहता है, 'बात मेरी या तेरी जरूरत की नहीं है, बात यह है कि एक लड़की अपना कौमार्य बेच रही है और वह भी सोशल मीडिया पर बोली लगाकर। सामाजिक मूल्य और मर्यादाओं का इतना पतन हो गया है। समाज की यह स्थिति हो गई है आज...।'[2] परिहास का रास्ता छोड़ आमोद गंभीरता के रास्ते पर आते हुए बोला, 'अरे भाई, तो इसमें परेशान होने की क्या बात है। तुम तो व्यवसाय करते हो। इतना तो समझते हो कि दुनिया अपने-आपमें एक बाजार है। यहाँ हर चीज एक उत्पाद है और हर उत्पाद बिकने के लिए है। स्त्री का शरीर भी उत्पाद है और उसकी वर्जिनिटी भी। उस लड़की की वर्जिनिटी उसका माल है, वह अपने माल को बेचे या किसी को उपहार में दे, उसकी मर्जी। इसमें कोई क्या कर सकता है।'[3] 'वर्जिनिटी उत्पाद है? तुम भी ना हर बात को मजाक में ले लेते हो। कभी सीरियस होकर भी बात कर लिया करो।'[4] सुदीप ने उसे नसीहत देने के अंदाज में टोका।

भूमंडलीकरण के युग में हर चीज बिकाऊ है यहाँ तक कि नारी-देह भी बिकाऊ है जिसके लिए सोशल मीडिया पर विज्ञापन देखकर रूपा के पास अनेक ऑफर आए हैं जिनमें कॉलेज में पढ़ने वाले युवाओं की भीड़ से लेकर व्यवसायी, डॉन, पत्रकार, राजनेता, गुंडे, बदमाश, तस्कर यहाँ तक कि फिल्म-जगत से जुड़ी हुई हस्तियाँ भी शामिल हैं। चारित्रिक पतन की यह चरम पराकाष्ठा है। वर्तमान उपभोक्तावादी युग में हर चीज बिकाऊ है, यहाँ तक की नारी भी बिकने को तैयार है किंतु हमारा सभ्य समाज नारी के बाजारू होने की गवाही नहीं देता। यहाँ संस्कार और मूल्य आज भी बने हुए हैं ऐसे में कहानीकार ने वर्तमान उपभोक्तावादीयुग में भी हमारे संस्कारों को बचाए रखने का बीड़ा उठाया है। कहानी का पात्र तपन भारतीय मूल्यों की गवाही देते हुए कहता है, 'असली मुद्दा यह नहीं है कि वह लड़की किस धर्म या जाति की है। बल्कि मुद्दा यह है कि उस लड़की ने यह कदम उठाया है तो क्यों उठाया है? क्या हमारा समाज इतना अमानवीय, संवेदनहीन और क्रूर हो गया है कि किसी बेटी को इस तरह सरेआम अपना कौमार्य बेचने के लिए मजबूर कर दे... यह कोई सामान्य बात नहीं है। यह बहुत गंभीर समस्या है और देश के समक्ष एक बड़ी चुनौती है।'[5]

दलित कहानीकार जयप्रकाश कर्दम द्वारा एक ऐसे अनछुए विषय 'कौमार्य के लिए विज्ञापन' के प्रश्न को उठाना निश्चित रूप से सराहनीय है तथा सोचने पर विवश करता है कि आखिर भारतीय समाज में नारी की ऐसी दीन स्थिति क्यों है? क्यों वह अपने वर्चस्व के लिए शरीर बेचने को तैयार है। ऐसे प्रश्न किसी भी सहृदय की आत्मा को क्यों झिंझोड़ते हैं। हिंदी कहानी के लिए यह सुखद संदेश है। दलित कहानीकार श्योराजसिंह बेचैन देश की राजधानी और वहाँ के प्रतिष्ठित दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। हाल ही में 'हंस' नामक पत्रिका मे उनकी उनकी कहानी 'आँच की जाँच' पढ़ने का अवसर मिला। कहानी का प्लॉट अनावश्यक विस्तार ग्रहण किए है। कहानीकार भारतीय समाज में फैले जिस जातीय संक्रमण को उद्घाटित करना चाहता है उसके लिए लंबी जद्दोजहद करता है। ऐसा करते हुए वह अपने समस्त ज्ञानानुभव को उड़ेलना चाहता है। कहानीकार बताना चाहता है कि सरकारी जमीन पर बन रहे मंदिर में चढ़ावे को लेकर दो परिवारों में दंगा इतना बढ़ जाता है जिसमें रोशन को अपने माता-पिता से हाथ धोना पड़ता है। ब्राह्मण परिवार के अनाथ बच्चे रोशन को बकरी पालक एक मुस्लिम परिवार आश्रय

 ISSN 0975-735X

प्रदान करता है परंतु कुछ समय बाद जब अछूतों और मुस्लिम परिवारों का सांप्रदायिक दंगों के कारण गाँव से पलायन हो रहा था उसी समय इस बच्चे को किसी ने ट्रेन में धकियाकर बनारस रेलवे प्लेटफार्म पर फेंक दिया था। तब उसके सिर पर चोट लगने से उसकी याददाश्त चली गई थी। (यह सोचने का विषय है कि उस मुस्लिम परिवार ने बच्चे को ढूँढने का कोई प्रयास ही नहीं किया) यह गुमशुदा बच्चा महानगर के किसी एन॰जी॰ओ॰ और उसके सदस्य मि॰भारद्वाज को मिल गया। असल में कहानी की जड़ यही है कि बच्चा भारद्वाज यानी ब्राह्मण को मिला? दलित कहानीकारों की विवशता कहें या मानसिकता की वह ब्राह्मण को कोसने का कोई अवसर खोना ही नहीं चाहता। आज दलित कहानीकार होने की सही पहचान भी यही है। कहानीकार की दृष्टि में भारद्वाज सनकी किस्म का आदमी है। भारद्वाज मीटिंग में सवाल उठाता है कि 'बच्चे को किस के सुपुर्द किया जाए? किसी एक को या एसोसिएशन की सामूहिक सेवा में लगा दिया जाए?'[6] एसोसिएशन के सदस्यों में बच्चे के रखरखाव की चिंता कम उस की जाति क्या है? यह जानने की चिंता ज्यादा है। भारद्वाज जी कहते हैं, 'मुझे तो सबसे बड़ी व्याधि यानी इसकी जाति का पता करना है। इसकी जाति और धर्म का पता लगाना परम आवश्यक है।'[7] भारद्वाज बच्चे की जाति को जानने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगाता है। यहाँ तक कि देश के बड़े-बड़े डॉक्टरों, मेडिकल इंस्टिट्यूट की खाक छानता है, बच्चे की अस्थि, मज्जा, दिल, खोपड़ी की जाँच करवाने की सोचता है, जानना चाहता है कि उसे कोई बीमारी तो नहीं। इस सारी प्रक्रिया में वह तीस हजार रुपए खर्च भी करता है लेकिन कुछ भी हासिल नहीं हो पाता, क्योंकि मेडिकल साइंस में ऐसा संभव ही नहीं है कि किसी व्यक्ति की जाति या धर्म की खोज हो सके। भारतीय समाज के लिए जाति-धर्म और संप्रदाय का प्रश्न कोढ़ की तरह है। जाति-धर्म विशेष संबंधी यही एक ऐसा प्रश्न है जो सारी कहानी में आतंक की तरह छाया हुआ है। इसी एक जातीय समस्या के निराकरण की तलाश के लिए कहानीकार कभी एन॰जी॰ओ॰ की शरण में जाता है, तो कभी मेडिकल साइंस को चुनौती देता है, कभी साहित्य के किसी प्रकांड पंडित से उसका हल निकालवाना चाहता है तो कभी किसी पुरातन ज्ञानी विद्वान पंडित से इसका निदान पूछता है। उपक्रम में कहानीकार जबलपुर में जोमैटो के मुस्लिम पिज्जा-ब्वॉय से डिलीवरी न लेने, हिमादास द्वारा चार दिन में पाँच-छह पदक जीतने, रैदास वाणी का महिमा मंडन, अंबेडकर जी का संविधान के निर्माण में योगदान, गांधीजी का अंबेडकर की जाति महार के विषय में अपरिचित होना तथा उन्हें एक महान शिक्षाविद मानना, गोलमेज सम्मेलन, एस॰सी॰एस॰टी॰एक्ट, एस॰सी॰ डॉक्टर से अविश्वास के कारण सवर्णों द्वारा इलाज न करवाने, सवर्ण डॉक्टरों द्वारा दलित डॉक्टर मांडवी को प्रताड़ित करने पर उसके द्वारा आत्महत्या करने, आरक्षण द्वारा बने इंजीनियर की प्रतिभा पर सवाल, संवैधानिक इक्विलिटी, संविधान की धारा पंद्रह एवं सत्रह, चाँद मिशन, सफाई कर्मचारियों द्वारा चंद्रमा पर अलग बस्ती बसाने जैसे न जाने कितने प्रसंगों, सवालों को खड़ा कर अपने मन की भड़ास निकालता है। वास्तव में कहानीकार कहानी के विषय को धार देने के लिए तथा अपने दलितवर्ग की अहमीयत बताने के लिए ही इन सब सामयिक एवं ज्वलंत मुद्दों को विषय का आधार बनाता है जिससे कहानी में बोरियत महसूस होने लगती है। मुझे यह कहते हुए तनिक भी गुरेज नहीं है कि आजकल फिल्म-जगत की भाँति साहित्य पर भी माफियाओं का कब्जा है। यह माफिया परस्पर एक-दूसरे का यशोगान करते नहीं थकते। आजकल कहानियों में ट्विस्ट (छोंक)लाने के

लिए कहानीकार एक और हथकंडा अपना रहे हैं अल्पसंख्यक..? विशेषकर मुस्लिम हितैषी होने का। 'आँच की जाँच' कहानी में भी रोशन की जाति क्या है? यह तलाश खातून सलमा और रहमुद्दीन द्वारा रहस्य से पर्दा उठाने पर समाप्त हो जाती है। अभिप्राय है कि इस मुस्लिम परिवार को बड़ा नेक दिखाने का प्रयास कहानीकार ने किया है। इसी अंक में मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'निजाम' को पढ़ने का अवसर भी प्राप्त हुआ। यह सोचकर की जयप्रकाश कर्दम की कहानी की भाँति इस कहानी में भी कुछ नयापन हो, परंतु वही 'ढाक के तीन-पात' अर्थात् वही जात-बिरादरी का रोना-धोना। कहानी का थीम भारतीय जेलों की व्यवस्था को उजागर करना है। अँग्रेजों के जमाने से लेकर अब तक सब-कुछ बदल गया किंतु निजाम नहीं बदला, हालाँकि हुक्मरानों की नस्ल बदल गई थी। कहानी में रहमत चाचा इसी निजाम को बदलने की बात बार-बार करता है। विस्तार में न जाते हुए कहानी के कुछ अंशों को ही उद्‌घाटित करना चाहूँगा उन्हीं से अनुभवी कहानीकार की सोच का अनुमान लगाया जा सकता है। यथा—'हवलदार भी स्वर्ण था और जेलर भी। यहाँ तक वार्डन भी। वे तीनों कैसे सहन कर सकते थे कि सफाई करनेवाले परिवार का कोई आदमी जेल में मैला उठाने से इनकार करे।'[8] इसी प्रकार दूसरा उदाहरण देखिए—'यहाँ कोई ऊँची जात का कैदी नहीं है। लगता है उन्होंने अपराध करना छोड़ दिया है।' उसकी बात सुनकर सभी हँसे थे। पर उनकी हँसी में दर्द था, पीड़ा थी। वे ही क्यों अपराधी बना दिए जाते हैं। यहाँ लगभग पचास कैदियों में जो भी था वह या तो दलित था या आदिवासी, पिछड़ा था या अति पिछड़ा। उनके अलावा अल्पसंख्यक भी। पूरा बहुजन कुनबा था जेल में जिन्हें बिना अपराध के ही यहाँ धकेल दिया गया था। कैसा निजाम था?'[9] पहला उदाहरण देखिए हवलदार, जेलर, वार्डन तीनों सवर्ण? क्या यह महज संयोग है या कहानीकार की सवर्णों के प्रति घृणा। दूसरा उदाहरण जेल में पचास कैदी सभी दलित, आदिवासी, पिछड़े, अल्पसंख्यक? जरा सोचिए यदि इस वाक्य को कोई सवर्ण कथाकार कह देता तो कितना बड़ा बवेला खड़ा हो जाता। आंदोलन की नौबत आ जाती। नए-नए नारे जन्म लेने लगते की यह सवर्णों की दलित वर्गों के प्रति संकीर्ण मानसिकता है। राजनीतिक, सामाजिक आंदोलन हिंसक रूप धारण कर लेते। यहाँ तक की उस साहित्यिक को अपनी जान बचाने के लिए माफीनामा भी देना पड़ जाता।

संदर्भ

1. जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक, हंस, नवंबर 2019, दलित साहित्य, द्वितीय सोपान, प्रतिरोध-अधिकार-समता, अक्षर प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ॰ 11
2. वही, पृ॰ 16
3. वही, पृ॰ 16
4. वही, पृ॰ 16
5. वही, पृ॰ 18
6. वही, पृ॰ 21
7. वही, पृ॰ 21
8. वही, पृ॰ 10
9. वही, पृ॰ 11

मन्नू भंडारी और उनका साहित्य : एक परिचय

डॉ० मिनाक्षी
स्ना० हिंदी विभाग
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

'हिंदी कथासाहित्य में मन्नू भंडारी एक बहुचर्चित नाम है।'[1] उनका जन्म 03 अप्रैल 1931 ई० को मध्य प्रदेश में मंदसौर जिले के भानपुरा गाँव में हुआ था। पिता सुखसंपतराय भंडारी प्रसिद्ध कोशकार थे। जाति मारवाड़ी थी और धर्मजैन, किंतु आर्यसमाज में दीक्षित होने के कारण विद्वान पिता पर तर्क, बाह्याडंबर-विरोध, समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा आदि प्रभाव का होना अत्यंत स्वाभाविक था। माँ अनूप कुँवरी पिता के ठीक विपरीत बेपढ़ी-लिखी व्यक्तित्वहीन महिला थी। 'धरती से कुछ ज्यादा धैर्य और सहनशक्ति थी शायद उनमें।'[2] यही कारण था कि पति की हर ज्यादती को अपना प्राप्य और बच्चों की हर उचित-अनुचित फरमायश और जिद को अपना फर्ज समझकर बड़े ही सहज भाव से स्वीकार करती थीं।

दो भाई एवं तीन बहनों में मन्नू जी सबसे छोटी थीं। उनके बचपन का नाम महेंद्रकुमारी था, किंतु छोटी होने के कारण घर में उन्हें सब मन्नू पुकारते थे।'[3] और वही नाम आगे चलकर उन्होंने लेखन के लिए भी चुना।

मन्नू भंडारी का जन्म तो भानपुरा में हुआ था, किंतु होश सँभाला उन्होंने अजमेर के ब्रह्मपुरी मोहल्ले में, जहाँ उन्होंने 1945 ई० में सावित्री कन्या उच्च विद्यालय से मैट्रिक तथा 1947 ई० में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद वह अपने बड़े भाई-बहनों के पास कलकत्ता चली गईं और उनके पढ़ने का सतत क्रम भंग हो गया और फिर कलकत्ता से बी०ए० और बनारस से एम०ए० किया, लेकिन प्राइवेटली। उनके 'साहित्य का अकादमीय पक्ष कमजोर ही रहा।'[4]

बालीगंज शिक्षा सदन वालों ने आग्रह करके मन्नू भंडारी को अपने यहाँ रख लिया। उत्साह से भरी हुई मन्नूजी ने आगा-पीछा सोचे बिना हामी भी भर दी। तब वर्तमान ही उनके लिए सब-कुछ था। 'भविष्य की बात तो दूर-दूर तक कहीं दिमाग में थी ही नहीं।' यहाँ गुजारे नौ वर्ष मन्नूजी के जीवन के बहुत महत्त्वपूर्ण रहे हैं। 'जिंदगी के सभी महत्त्वपूर्ण मोड़ यहीं तो आए।'[7] यहीं मन्नू भंडारी ने अपनी पहली कहानी 'मैं हार गई' लिखी और साहित्य-संसार में पदार्पण किया। इसी सदन के पुस्तकालय के लिए पुस्तकें मँगवाने के क्रम में राजेंद्र यादव, प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार, आलोचक और संपादक से परिचय हुआ। 22 नवंबर 1959 ई० में विवाह हुआ और गृहस्थ-जीवन में प्रवेश किया तथा यहीं 1961 ई० पुत्री रचना का जन्म भी हुआ।

स्वभाव और संस्कार मन्नू भंडारी को पिता से ही मिला। कठिन परिश्रम, अध्ययन की प्रवृत्ति और जुझारू व्यक्तित्व के साथ ही हीन भावना, संकोच और शंकालु प्रवृत्ति सब-कुछ पिता से होकर उनके हृदय-मन में घर कर गया। न जाने कितने रूपों में-'कहीं कुंठाओं के रूप में

कहीं प्रतिक्रिया के रूप में, तो कहीं प्रतिच्छाया के रूप में।'

पिता के अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व-संघटन में कन्या उच्च विद्यालय की शिक्षिका शीला अग्रवाल का भी बहुत बड़ा योगदान है। 'उन्होंने बकायदा साहित्य की दुनिया में प्रवेश करवाया। मात्र पढ़ने का चुनाव करके पढ़ने में बदला। खुद चुन-चुनकर किताबें दीं...पढ़ी हुई किताबों पर बहसें कीं तो दो साल बीतते-बीतते साहित्य की दुनिया शरत्-प्रेमचंद से बढ़कर जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा तक फैलती चली गई।'[9]

'छठे दशक का नई कहानी आंदोलन, जिसकी बागडोर राजेंद्र यादव, कमलेश्वर एवं मोहन राकेश जैसे दिग्गज कथाकारों ने सँभाली, उसी दौरान उषा प्रियंवदा पहली महिला कथाकार थीं जिन्होंने पाठकों एवं समीक्षकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। तत्पश्चात अनेक महिला कथाकार आईं किंतु उनकी कहानियों की चर्चा यौन संदर्भों से जुड़ी बोल्डनेस को लेकर हुई। ऐसे में तमाम पुरुष एवं महिला कहानीकारों के बीच मन्नू भंडारी की पहचान उनकी सहज रचनाधर्मिता के कारण पृथक बनी। वे आज भी महिला कहानीकारों में सर्वाधिक चर्चित हैं।'[10] उनकी कहानियों में उनके समकालीन महिला कहानीकारों की तरह ख्याली घोड़े नहीं अपितु उनमें अनुभव एवं समय की प्रमाणिकता है। उनकी वैयक्तिक चेतना सामाजिक संदर्भों से संबद्ध होने के कारण उनकी कहानियों को विशिष्टता प्रदान करती है।

मन्नू भंडारी की कम-से-कम एक दर्जन आरंभिक कहानियों के पात्र अजमेर के उसी ब्रह्मपुरी मोहल्ले के हैं, जहाँ उन्होंने अपनी किशोरावस्था गुजारी थी। इतने वर्षों के अंतराल के बाद भी वे बिना किसी विशेष प्रयास के बड़े सहज भाव से अपने रूप-रंग, भावभंगिमा, भाषा-शैली साहित कागज-तल पर उतरते चले गए थे। 'महाभोज' के 'दा साहब' भी उसी समय के थे जो अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए इतने वर्षों बाद एकाएक जीवित हो उठे।

मन्नू भंडारी ने कई कहानियाँ वास्तविक पात्रों और वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखीं, किंतु एक ढर्रे की भावनात्मक कहानियाँ लिखने के बाद उन्हें खुद लगने लगा कि कुछ नया लिखना चाहिए, इसलिए अपनी सीमा और सामर्थ्य के प्रति विशेष सतर्क रहकर भावना की जगह व्यंग्य का पुट देकर नई शैली की जो कहानियाँ उन्होंने लिखीं, उनमें 'त्रिशंकु', 'तीसरा हिस्सा' और 'स्त्री सुबोधनी' को काफी सराहना मिली। उन्होंने 'कुल मात्र पचास कहानियाँ लिखी हैं।'[11]

मन्नू भंडारी आइडिया के क्लिक करते ही लिखने नहीं बैठ जातीं, समय के साथ कहानी जब उनके मानस में पूर्ण आकार ले लेती है, तब वह लिखतीं। कोई घटना तब तक रचना नहीं बन पाती है जब तक उसमें सामाजिक समस्या/संबंध बनने की सामर्थ्य उत्पन्न नहीं होती। 'ऐसा नहीं है कि एक घटना घटी और आपने उस पर कहानी लिख दी, क्योंकि फिर वह साहित्य नहीं, अखबार होगा।'[12]

हिंदीभाषा और साहित्य विशेषकर उसकी कई विधाओं—संस्मरण, आलोचना आदि लेखकीय उत्तरदायित्व के प्रति मन्नू भंडारी सजग, संवेदनशील और चिंतित रहनेवाली लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी यह सजगता, संवेदनशीलता और चिंता अनेक रचनाओं, वक्तव्यों, साक्षात्कारों और पत्र आदि में अभिव्यक्त हो उठी है। मन्नू भंडारी की दृष्टि में बिना तटस्थता के कलम उठाना

लेखकीय कर्म के प्रति बेईमानी है। आलोचना में कीचड़ उछालूँ या दुलत्ती मारने की प्रवृत्ति को वह अत्यंत दुखद बताती हैं–'कोई बेहद घटिया कर्म किसी के खाते में जुड़ा हो तो जरूर प्रहार करना चाहिए...सख्त-से-सख्त भाषा में करना चाहिए।'[13] किंतु असंयत और अशोभनीय भाषा का प्रयोग अथवा अनर्गल प्रलाप नहीं करना चाहिए।

एक अच्छी लेखिका होने के बावजूद मन्नू भंडारी का जीवन काफी संघर्षमय रहा। लेखन, नौकरी, गृहस्थी, सामाजिक सरोकार के साथ-साथ विवाह के कुछ दिनों के बाद से ही राजेंद्र यादव की अनेपक्षित अकर्मण्यता एवं क्रूरता के सीमापर्यंत व्यवहार से वह जूझती रहीं और अंततः स्थायी अलगाव ही समाधान हुआ।

मन्नू भंडारी को अपने लेखन एवं रचनाओं से न केवल स्नेहपूर्ण सहयोग एवं सहृदयों का सान्निध्य प्राप्त हुआ, बल्कि कई पुरस्कार एवं सम्मान भी प्राप्त हुए। 1976 ई० में आपातकाल के दौरान 'पद्मश्री' लेने से मना कर दिया। साहित्य कला परिषद्, दिल्ली का पुरस्कार लेना भी उन्होंने विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया। हिंदी अकादमी द्वारा साहित्य व भाषा की विशिष्ट सेवा का पुरस्कार तो उन्होंने ग्रहण कर लिया, किंतु 21,000/- की राशि समाजसेवी संस्था के नाम भेज देने का आग्रह किया।

मन्नू भंडारी उन लेखिकाओं में नहीं हैं, जो लिखती कुछ और हैं और व्यहवार में लाती कुछ और हैं। उनका लेखन और व्यवहार दोनों अंदर-बाहर से एक जैसा ही है। उतने यश-ख्याति एवं सम्मान के बावजूद उनमें ठेठ सहजता है, माथे पर लगी बड़ी बिंदी के साथ वात्सल्य एवं विनम्रता पूरी सरलता के साथ विद्यमान है।

मन्नू भंडारी का रचना-संसार निम्नांकित है–

(क) उपन्यास–एक इंच मुस्कान, आपका बंटी, महाभोज और स्वामी।

(ख) कहानी संग्रह–मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, एक प्लेट सैलाब, त्रिशंकु, मेरी प्रिय कहानियाँ, श्रेष्ठ कहानियाँ, संपूर्ण कहानियाँ।

(ग) नाटक-एकांकी–बिना दीवारों का घर, महाभोज (नाट्य रूपांतर), प्रतिशोध एवं अन्य एकांकी (संपादित)।

(घ) बाल उपन्यास–आसमाता, कलवा।

(ड) बाल कहानियाँ–आँखों देखा झूठ।

(च) पटकथा–रजनी, निर्मला, स्वामी, दर्पण, अकेली।

(छ) विविध–संकल्प का सौंदर्यशास्त्र (संपादित)।

(ज) आत्मकथ्य–एक कहानी यह भी।

(झ) विधात्मक पुस्तक–कथा-पटकथा।

मन्नू भंडारी हिंदी की उन लोकप्रिय कथाकारों में हैं, जिन्हें लिखने, छपने या समीक्षा कराने की हड़बड़ी में लिखने को विवश कभी नहीं देखा गया। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ निखरती रहीं। अपने सजग आत्मालोचन के कारण ही 'बिना दीवारों का घर' नाटक के तीन-चार प्रदर्शन देखने के बाद उसमें की कमियाँ महसूस होने पर उन्होंने उसका पुनर्प्रकाशन रुकवा दिया। 'कोई घटना, कोई स्थिति अनुभव का हिस्सा बनकर जब तक मन्नू की संवेदनीयता पर दवाब न बनाए वे लिखने के लिए प्रेरित नहीं होतीं।'[14]

हिंदी कथा-लेखिकाओं में मन्नू भंडारी एक विशिष्ट नाम है। कथासाहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कई तरह के आंतरिक प्रयोग किए है, किंतु इन प्रयोगों में मतवादी पूर्वग्रह कतई नहीं है। सामाजिक समस्याओं को तो वे आधुनिक मनोविश्लेषणाशास्त्र की तहों में बैठकर उद्घाटित करती हैं। उनकी रचनाओं की प्रसिद्धि के मूल कारण ये ही हैं। 'उपन्यास हो या कहानी मन्नू शिल्प का प्रयोग नहीं करतीं। वर्तमान जीवन की विसंगतियों और समस्याओं को वे प्रकृत भावभूमि से उठाती हैं और उनका सामाजिक यथार्थ इस ढंग से रचनाओं में व्यक्त होता है कि पाठकीय संवेदनाओं को दीप्त कर देता है।'[15]

'मन्नू भंडारी ने अपने सहज और तीखे लेखन से '55' के बाद की कहानी के सृजन-क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण संभावनाओं का परिचय दिया था। नैतिक संबंधों में पड़ने वाली फाँक या दरार को खरे ढंग से प्रकाशित करने वाली कहानियों के लिए वे विशेष रूप से याद की जाएँगी।'[16]

संदर्भ

1. आजकल, संपादक सीमा ओझा, पृ॰ 14
2. एक कहानी यह भी, मन्नू भंडारी, पृ॰ 18-19
3. आधुनिक समाज की नारी-चेतना, डॉ॰ सुशील वर्मा, पृ॰ 06
4. एक कहानी यह भी, मन्नू भंडारी, पृ॰ 27-28
5. वही, पृ॰ 29
6. वही, पृ॰ 30
7. वही, पृ॰ 34
8. वही, पृ॰ 18
9. वही, पृ॰ 21-22
10. हिंदी अनुशीलन, संपादक वीरेंद्रनारायण यादव, पृ॰ 79
11. वही, पृ॰ 49
12. आजकल, संपादक सीमा ओझा, पृ॰ 14
13. वही, पृ॰ 169
14. कथा-समय में तीन हमसफर, निर्मला जैन, पृ॰ 2
15. हिंदी साहित्य का इतिहास, विजयेंद्र स्नातक, पृ॰ 379-80
16. उपन्यास का पुनर्जन्म, परमानंद श्रीवास्तव, पृ॰ 99

कालिदास और वनस्पतिगत पर्यावरण

डॉ॰ अवधेशकुमार

'पर्यावरण' से तात्पर्य हमारे चारों ओर के परिवेश से है। इसके अंतर्गत सभी प्राकृतिक वस्तुएँ यथा—जड़-चेतन, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, भूमि, जल, वायु, आकाश, पर्वत, नदी, जंगल आदि आते हैं। अत: प्रकृति के वे सारे उपादान जो मानव-जीवन के चारों ओर विभिन्न रूपों में विद्यमान होते हैं, जिससे मानव व जीव-जंतु घिरे हुए तथा प्रभावित होते हैं 'पर्यावरण' कहलाते हैं।

इस वैज्ञानिक युग में मानव के आर्थिक निश्चयवाद और उसकी अतिवादी संकल्पना ने इस प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया को दुष्प्रभावित किया है। प्राकृतिक वस्तुओं का अनियंत्रित रूप में विदोहन होने से मानव और प्रकृति का संबंध असंतुलित हो गया है। ऐसी विकट परिस्थिति में मानव परिवेश या पर्यावरण का प्रदूषित हो जाना स्वाभाविक है। पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास पर्यावरण प्रदूषण है। जनसंख्या विस्फोट, वनसंपदा का अत्यधिक कटाव, औद्योगीकरण आदि पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। अत: पर्यावरण-संरक्षण का मूल उद्देश्य मनुष्य तथा पर्यावरण के बीच सहअस्तित्व के लिए समन्वय स्थापित करना है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति भारतीय जन मानस के उत्कृष्ट प्रेम का अनुमान हम इसी तथ्य से लगा सकते हैं कि यहाँ पशु-पक्षी, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष आदि सभी आस्था के पात्र हैं। साथ ही पीपल, वट, पर्वत, नदी आदि में देवता का वास मानते हुए हम इनकी पूजा करते हैं। हमारी इन सभी आस्थाओं के पीछे वैज्ञानिकता छिपी हुई है जिसे आज के वैज्ञानिकों एवं पर्यावरणविदों ने भी सच्चे दिल और मुक्तकंठ से स्वीकार किया है।

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में इसी चिंतन-परंपरा का सजीव चित्रण पुष्कल रूप में किया है। उन्होंने 'कुमारसंभवम्' महाकाव्य का आरंभ हिमालय-वर्णन से किया है, जो विभिन्न प्रकार के फलदार वृक्षों, बहुगुणमयी लताओं और जड़ी-बूटियाँ का भंडार है। इस काव्य में भोजपत्र और देवदार वृक्ष का वर्णन भी किया गया है। हिमालय वर्णन में कवि कहते हैं कि जब वहाँ के हाथी अपनी कनपटी खुजलाने के लिए देवदार के पेड़ों पर माथा रगड़ते हैं, तो उनसे ऐसा सुगंधित दूध बहने लगता है कि उसकी सुगंध से उस पर्वत की सभी चोटियाँ एक साथ महकने लग जाती हैं। उन्होंने लिखा है कि इंद्रियजयी और गजचर्म धारण करनेवाले भगवान शंकर कस्तूरी की गंध से सुगंधित हिमालय की एक ऐसी सुंदर चोटी पर जाकर तपस्या करने लगे, जहाँ देवदार के वृक्षों को गंगाजी की धारा सींचती थी। नंदनवन के जिन वृक्षों के कोमल पत्ते को देवताओं की स्त्रियाँ बड़ी कोमलता के साथ कर्णफूल बनाने के लिए तोड़ती थीं, उन्हीं वृक्षों को राक्षस निर्दयतापूर्वक काटकर गिरा रहा था—

तेनामरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः।
अभिज्ञाश्छेद्पातानां क्रियन्ते नन्दन द्रुमाः।[1]

तारकासुर के संहार के संदर्भ में देवताओं के द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी की इस उक्ति का

कवि ने बड़ा रोचक वर्णन किया है। ब्रह्माजी कहते हैं कि जिसे मैंने अमर होने का वरदान दिया है उसे तो मैं खुद नहीं मार सकता, ठीक उसी प्रकार से जैसे कोई आदमी अपने द्वारा लगाए हुए विषवृक्ष को भी काटना नहीं उचित समझता है–

इतः स दैत्यः प्राप्त श्रीर्नेत एवार्हति क्षयम्।
विषवृक्षोऽपि सम्वर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।।[2]

यहाँ कवि की वनस्पति संरक्षण की नैसर्गिक भावना दृष्टिगत होती है।

'ऋतुसंहार' में वनस्पति, पेड़-पौधे, फूल आदि का पर्याप्त वर्णन है। कदंब, साल, अर्जुन तथा केतकी के वनों को काँपती हुई तथा उक्त वृक्षों के फूलों से सुवासित करती हुई जलकणों से मिश्रित मेघों के संपर्क से शीतल पवन भला किसे समुत्सुक नही करता–

कदम्ब सर्जार्जुनकेतकीवनं विकम्पयंस्तत्कुसुमाधि वासितः।
ससीकराम्भोधर संगशीतलः समीरणः कं न करोति सोत्सुकम्।[3]

कवि ने चंदन की चर्चा करते हुए लिखा है कि रमणियों द्वारा चंदनरस से युक्त मालाएँ धारण की जा रही हैं–'हारैःसचंदनरसैः स्तनमण्डलानि।'[4]

बसंतऋतु वर्णन में कवि ने अधिकता से वनस्पतियों का चित्रण किया है। उन्होंने लिखा है कि हे प्रिये! फूलों से युक्त पेड़, कमलों से युक्त जल, कामयुक्ता नारियाँ सुगंध से युक्त पवन सुखद सायं-काल, रमणीय दिवस, बसंतऋतु से ये सभी मनोहर मालूम होते हैं–

द्रुमाःसपुष्पाः सलिलंसपद्मम् स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाःप्रदोषादिवसाष्चरम्याः पवनः सुगन्धिः सर्वंप्रिये! चारूतरंवसन्ते[5]

'मेघदूत' में सर्वप्रथम कुटज पुष्प का वर्णन मिलता है। अपनी प्रिया के पास संदेष प्रेषित करने को इच्छुक विरही यक्ष ने कुटज से ही मेघ का अर्घ्य पूजन किया है–'सःप्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्धायतस्मै।'[6]

विंध्याचल के पर्वत पर रेवा नदी का उल्लेख करते हुए यक्ष कहता है कि जामुन की कुंजों में बहता हुआ रेवा का जल पीकर ही आगे अलकापुरी की ओर जाना–'वान्तावृष्टिर्जम्बूकुञ्ज प्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।'[7]

यहाँ कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि जामुन का फल जलशोधन के लिए उपयुक्त है। आगे यक्ष मेघ से कहता है कि देखो मेघ आँधी चलने पर देवदार के वृक्षों के पास में रगड़ से जब जंगल में आग लग जाए तो उसके उड़ते हुए अंगारे चमरी गाय के लंबे-लंबे रोएँ जलने लगे तो तुम जलवृष्टि कर उसे बुझा देना–

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघटजन्मा।
वाधेतोल्काक्षपित चमरी बाल भारो दवाग्निः।[8]

उत्तरमेघ में अलकापुरी की ललनाओं के प्राकृतिकश्रृंगार की विशेषता बताते हुए कवि ने यक्ष के माध्यम से कहा है कि वहाँ की कुल बधुएँ हाथ में कमल, चोटियों में बालकुंद के फूल गूँथा करती हैं, लोध्र के फूलों के पराग से अपने मुख को गोरा करती हैं, अपने जूड़ों में नए कुरवक के फूल खोंसा करती हैं, कानों में सिरस (शिरीष) के फूल लगा रखती हैं और वर्षा में फूलने वाले कदंब के फूलों से अपनी माँग को सजाती हैं–

हस्तेलीला कमलमलके बाल कुन्दानुविद्धं

 ISSN 0975-735X

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामाननेश्रीः।
चूड़ापाशे नवकुरबकं चारूकर्णे शिरीषं,
सीमन्ते च तदुपगमजमं यत्र नीपं बध्नूनाम्।[9]

अलकापुरी की कन्या गंगा नदी के तट पर उत्पन्न होनेवाले मंदार वृक्षों की छाया में विभिन्न प्रकार के खेल खेलती है—'मन्दाराणामनुतटरूहां छायया वारितोष्णां।' यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मंदार, पारिजात, कल्पवृक्ष, संतान ओर हरिचंदन सभी देववृक्ष माने गए हैं। (अमरकोश)

'रघुवंश' महाकाव्य में सर्वाधिक वनस्पतियों का वर्णन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम साल वृक्ष का वर्णन किया गया है—'सेव्यमानो सुख स्पर्शैः शाल निर्यासगन्धिभिः।'[10]

महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में तपस्वी संध्या अग्निहोत्र के लिए कुश लेने के लिए जंगलों में जाते है। राजा दिलीप की परीक्षा लेने हेतु माया रूपधारी सिंह (मायावी शेर) पर्वत के देवदार आदि वृक्षों की रक्षा हेतु नियुक्त किया गया था, ऐसा वर्णन रघुवंश के द्वितीय सर्ग में मिलता है। इस संदर्भ में डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है, जो 'संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना' विषयक संगोष्ठी में दिया था। उन्होंने अपने भाषण में राजा दिलीप और नंदिनी की कथा याद दिलाई, जिसमें कहा गया है कि देवदार की रक्षा के लिए भगवान शंकर (शिव) ने सिंह की सेवा ली।[11]

शेर के द्वारा गो (नंदिनी) की हत्या करने के प्रयास पर राजा दिलीप ने उसे मारने की चेष्टा की तत्पश्चात् सिंह ने कहा—हे राजन! तुम मुझे मारने का प्रयास मत करो, तुम मुझ पर जो भी अस्त्र चलाओगे, वह व्यर्थ हे जाएगा। मैं कोई साधारण शेर नहीं हूँ। यह जो तुम्हारे सामने बड़ा देवदार का पेड़ दिख रहा है, इसे शंकरजी अपने पुत्र के समान मानते है। क्योंकि स्वयं पार्वतीजी ने अपने सोने के घड़े जैसे स्तनों के दूध से सींच-सींचकर इसे पल्लवित किया है। एक बार जंगली हाथी इसके तने में रगड़-रगड़कर अपने कनपट्टी खुजलाने लगा उससे तनिक-सी छाल छिल गई, इतने से ही पार्वतीजी को उतना ही शोक हुआ, जितना दैत्यों के बाणों से घायल कार्तिकेय को देखकर हुआ था—

अभुंपुरः पष्यसि देवदारूं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कंदस्यमातुः पयसांरसज्ञः।[12]

'रघुवंश' महाकाव्य के कई प्रसंगों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की चर्चा महाकवि ने की है। गर्भिणी सुदक्षिणा के मुँह की उपमा लोध्र के फूल से हो गई है। दिलीप के पुत्र रघु प्रजा को इतने प्यारे थे कि धान के खेतों की रखवाली करनेवाली किसानों की स्त्रियाँ ईख की छाया में बैठकर प्रजापालक रघु की गुण गाथाओं का बखान करती थीं—'इक्षुच्छाय निषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुर्णोदयम।'[13]

विजयी राजा रघु पूर्वी राज्यों को जीतते हुए समुद्र के किनारे जा पहुँचे, जो तट पर खड़े ताड़ वृक्षों की छाया पड़ने से काला दिखाई पड़ता था।

हिमालय पर भोजपत्रों में मर्मर करता हुआ, कीचक नाम से बाँसों के छेदों में घुसकर बाँसुरी-सी बजता हुआ वायु रघु को अच्छा लगता था—'भूर्जेषुमर्मरी भूताः कीचक ध्वनि हेतवः।'[14]

इंदुमती की सखी ने इंदुमती से परिहासपूर्वक कहा कि यदि तुम सदा मलय पर्वत की उन घाटियों में विहार करना चाहो, जिनमें पान की बेलों से ढके हुए सुपारी के पेड़ खड़े हैं, इलाइची

की बेलों से लिपटे हुए चंदन के पेड़ लगे हैं और स्थान-स्थान पर ताड़ के पत्ते फैले हुए हैं, तो तुम दक्षिण के राजाओं से विवाह कर लो। दक्षिण के राजा नीलकमल जैसे साँवले और तुम गोरोचन जैसी गोरी हो इसलिए तुम दोनों की जोड़ी खूब जमेगी–'इन्दीवरश्याम तनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौर शरीर यष्टि:।'[15] जीवनदायिनी संजीवनी बूटी की शक्ति से लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा करने की बात भी कवि ने की है।

मालविकाग्निमित्र' के द्वितीय अंक में राजा की प्रेयसी मालविका के हाथों की उपमा महाकवि ने श्याम (प्रियङ्गुलता) की शाखा से दी है। यहाँ पंकच्छिद जल को निर्मल करने का वर्णन उन्होंने किया है। वकुलावलिका का मालविका का पैर अशोक की छाया में बैठकर रंग रही थी। बकुलावलिका अशोक के पत्तों का गुच्छा मालविका के कानों पर रखने के लिए देती है। धारिणी के घायल पैर में 'लाल चंदन' लगाया गया था–'रक्त चंदनधारिणा.... तिष्ठति।'[16]

'विक्रमोर्वशीयम्' में सर्वप्रथम कमलिनी का उल्लेख हुआ है। राजा राक्षसों के चंगुल से उर्वशी को छुड़ाकर लाता है। उर्वशी डर के मारे आँखें बंद की हुई हैं राजा कहता अब तुम उपनी आँखें उसी प्रकार खोल दो जैसे प्रात:काल होने पर कमलिनी अपना मुख खोल देती है। राजा उर्वशी की छाती पर पड़ी मंदार की माला के हिलने से उर्वशी के भय का पता लगता है–'मंदार कुसुमदाम्नागुरूरस्या: सूच्यते हृदयकम्प:।' [17]

कालिदास ने प्रथमवार एक ही पद्य में वसंत की शोभा रूपी नायिका का चित्रण 'विक्रमोर्वशीयम्' में किया है, जिसमें कुरबक के फूल का शिरा स्त्री के नख के समान लाल है, जिसमें दोनों छोर साँवले रंग के हैं। अपनी लालिमा से सुंदर लगनेवाला यह लाल अशोक का फूल ऐसा लगता है कि बस अब खिलने ही वाला है। आम के पेड़ में कुछ-कुछ दिखाई देने वाला पराग के कारण पीला-सा लगने वाला नया बौर फूटने लगा है। इस प्रकार वसंत की शोभा ऐसी लगती है मानो वह अपनी बचपन और जवानी के बीच में आ खड़ी हो–'अग्रेस्त्रीनखपाटलं कुरबकमंश्यामं द्वयोर्मार्गयो:..., सखेमध्येमधुश्रीस्थिता।'[18]

भोजपत्र का उल्लेख करते हुए कवि ने कहा है कि उर्वशी ने भोजपत्र पर लिखकर प्रेमपत्र राजा के सामने गिराया। उस प्रेम-पत्र में वह लिखती है कि जब मैं कोमल पारिजात के फूलों की सेज पर जाकर लेटती हूँ तब मेरा मन क्यों जलता है? 'विक्रमोर्वषीयम' में 'कुमुद' का भी वर्णन है, जो चंद्रमा की किरणों से ही खिलता है।

'अभिज्ञानषाकुन्तलम्' में सर्वप्रथम 'पाटल'(गुलाब) का वर्णन आया है–'सुभगसलिलावगाहा: पाटल संसर्गिसुरभिवनवाता:।'[19] अर्थात् गुलाब के फूलों से सुवासित से वायु मन को खींच लेता है।

प्रथम अंक में नांदी पाठ के बाद कवि ने पूर्णत: जंगल का दृश्य प्रस्तुत किया है। राजा शिकार करते हुए कण्व आश्रम तक पहुँच जाते हैं, जहाँ का वातावरण बिल्कुल हरित एवं मनमोहक है। वैखानस के निवेदन पर राजा ऋषि के आश्रम में प्रवेश करता है। उसी समय राजा दुष्यंत ने शकुंतला और उसकी सखियों को देखकर कहा कि ये तपस्वियों की कन्याएँ अपने-अपने अनुसार घड़े लेकर छोटे-छोटे पौधों को सींचने हेतु इधर ही आ रही हैं–'एतास्तपस्विकन्यका: स्वप्रमाणानुंरूपै: सेचनघटैर्बालपादपेभ्योपयोदातुम्एवाभिवर्तन्ते।'[20]

पुन: कवि ने शकुंतला को चमेली की कली की भाँति कोमल बताते हुए अनुसूया के माध्यम से कहा है कि शकुंतले! पिता कण्व आश्रम के इन पौधों के तुमसे अधिक प्यार करते हैं,

नहीं तो चमेली की कली की तरह कोमल अंगों वाली तुमको वे इन पौधों के थाल्हे भरने का कार्य क्यों सौंप जाते? कवि ने अभिनय आरंभ में ही पुष्प-सिंचन कार्य एवं पेड़-पौधों के प्रति अनन्य अनुराग दिखाकर प्रकारांतर से पर्यावरण संरक्षण की ओर पेक्षकों को अभिप्रेत किया है। शकुंतला का शरीर यद्यपि वल्कल धारण करने योग्य नहीं है फिर भी बल्कल में शकुंतला वैसी ही सुंदर लग रही थी जैसे सेवार से घिरा कमल–'सरसिजमनुविधं शैवलेनापि रम्यम्...।'[21]

कालिदास ने शकुंतला के संपूर्ण शरीर को वनस्पतियों से तुलना कर डाली है–'अधरः किसलय रागः।'[22]

वनज्योत्सना (चमेली) और आम के पेड़ से शादी (स्वयंवर) का वर्णन भी किया गया है। शकुंतला का लावण्य बिना सूँघे हुए फूल एवं नखों से अछूते पत्ते की तरह था–'अनाघ्रातं पुष्पं किसलय मलूनंकररूहै रनाविद्धं रत्नंमधुनवमनास्वादितरसम।'[23]

शकुंतला के शरीर का ताप कुछ कम करने के लिए गौतमी कुश का जल छिड़कती है। जब कण्व तीर्थयात्रा से लौटते हैं तब आकाशवाणी होती है कि जिस प्रकार शमी वृक्ष में अग्नि का वास होता है, उसी प्रकार तुम्हारी कन्या के गर्भ में भी दुष्यंत का तेज है–'अवेहि तनयां ब्रहमन्नग्निगर्भांशमीमिव।[24]

जब शकुंतला की विदाई हो रही थी, तब आश्रम की वनस्पतियों ने शकुंतला को भेंटस्वरूप काफी उपहार दिए। किसी वृक्ष ने शुभ्र मांगलिक वस्त्र दे दिया, किसी ने पैर में लगाने के लिए महावर दे दी। इससे ज्ञात होता है कि शकुंतला प्रकृति की ही कन्या थी। साथ ही कालिदास की वनस्पतियों के प्रति वात्सल्य-भावना अभिव्यक्त होती है। यही कारण है कि कण्व उपवन के वृक्षों से भी शकुंतला के जाने की अनुमति माँगते हैं। आकाश से शकुंतला के मंगलमय यात्रा की शुभकामना की आवाज आती है कि इसके मार्ग के बीच-बीच में नीली कमलनियों से भरे हुए तालाब हो, थोड़ी-थोड़ी दूर पर घनी छाँव वाले वृक्ष हो धूल में कमल के पराग की कोमलता हो–

रम्यान्तरःकमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।[25]

कुल मिलकर यहाँ कवि का अभिप्राय तत्कालीन परिवेश, वातावरण की शुद्धि एवं प्रदूषण रहित एक स्वच्छ धरित्री से था। महर्षि कश्यप के आश्रम में तपस्वी लोग कल्पवृक्ष का वायु पीकर एवं स्वर्णकमल के पराग से सुवासित जल में स्नान कर पूजा-पाठ करते थे–'ध्यानं रत्नशिलातलेषु विवुधस्त्रीसन्निधौ संयमौ।'[26]

अतः कालिदास ने जिस रूप में जिस किसी भी वनस्पतियों फल-फूल, पेड़-पौधों का वर्णन किया है, वह बिल्कुल मानवीय हितों एवं मानवेतर प्राणियों के कल्याण से ओतप्रोत है। किसी भी वस्तु, वनस्पति, पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियों का चित्रण भले ही काव्यात्मक रूप में किया गया हो, किंतु सभी का फलितार्थ वही है, जिससे पर्यावरण-परिवेश, वातावरण आदि का संरक्षण संवर्द्धन हो सके। साथ ही जनमानस में पर्यावरण के प्रति स्वस्थ चेतना का विकास हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वनस्पतियाँ चिकित्सा की दृष्टि से उपयोगी होने के साथ-साथ पर्यावरण को शुद्ध करने में काफी हद तक योगदान करती हैं। इन्हीं कारणों से प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इन लताओं पुष्पों-पादपों एवं वृक्षों के अधिकाधिक रोपण, संवर्द्धन एवं परिरक्षण पर काफी जोर दिया है। जनमानस इस ओर अधिक-से-अधिक आकृष्ट हो सके, इसके लिए उन्होंने इन वृक्षों में

देवत्व की परिकल्पना करते हुए धार्मिक दृष्टि से इन्हें अति महत्त्वपूर्ण बताया है। महाकवि कालिदास ने भी अपनी कृतियों (रचनाओं) में उपर्युक्त विविध प्रकार की वनस्पतियों का प्रचुर चित्रण करके हम सभी सुधी पाठकों को पर्यावरण की स्वच्छता के प्रति सचेष्ट हेने के लिए प्रेरित किया है।

संदर्भ

1. डॉ॰ ब्रह्मानंद त्रिपाठी, कालिदास ग्रंथावली, चौखंभा सुरभारती, पृ॰ 186
2. वही, पृ॰ 187
3. वही, पृ॰ 326
4. वही, पृ॰ 331
5. वही, पृ॰ 331
6. वही, पृ॰ 331
7. वही, पृ॰ 331
8. वही, पृ॰ 307
9. वही, पृ॰ 310
10. डॉ॰ कृष्णमणि त्रिपाठी, रघुवंशम्, चौखंभा सुरभारती, पृ॰ 18
11. हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित राष्ट्रभाषा संदेश, सितंबर 2000
12. डॉ॰ कृष्णमणि त्रिपाठी, रघुवंशम, चौखंभा सुरभारती, पृ॰ 57
13. वही, पृ॰ 112
14. वही, पृ॰ 132
15. वही, पृ॰ 195
16. डॉ॰ ब्रह्मानंद त्रिपाठी, कालिदास ग्रंथावली, चौखंभा सुरभारती, पृ॰ 616
17. वही, पृ॰ 478
18. वही, पृ॰ 492
19. वही, पृ॰ 346
20. वही, पृ॰ 352
21. वही, पृ॰ 353
22. वही, पृ॰ 345
23. वही, पृ॰ 372
24. वही, पृ॰ 397
25. वही, पृ॰ 402
26. वही, पृ॰ 456

संख्या 2 उच्च माध्यमिक विद्यालय
जैतपुर, बड़हिया लखीसराय (बिहार)
मो॰ 8292485279

सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास परंपरा और आधुनिकता

रोहिणी सुरेश कुलकर्णी, शोधछात्रा
डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सैयद, शोधनिर्देशक

आज का भारतीय समाज आधुनिकता तथा परंपरा के सद्‌विचारों में जकड़ा और अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। स्वाधीनतापूर्व का भारत तो फिर भी परंपरावादी था, किंतु आज देश का नागरिक न तो आधुनिक है और न ही परंपरावादी। आधुनिकता बीते हुए को वर्तमान के माध्यम से भविष्य से जोड़ती है। हालाँकि यह भी सत्य है जिस प्रकार संपूर्ण अतीत वर्तमान में सार्थकता प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार संपूर्ण वर्तमान भी भविष्य में सार्थक नहीं हो सकता। आधुनिकता एक प्रक्रिया है, जिसमें नैतिकता, आचरण, व्यवहार और उसके जीवनक्रम के विकास से अधिक जुड़ी है।

साधारणत: अपने समसामयिक संदर्भों के प्रति सजग और विकासशील दृष्टि रखते हुए जब कोई साहित्यकार सृजनात्मक कार्य करता है तो वह आधुनिकता से युक्त साहित्य कहलाता है। इतिहासबोध और भविष्य को ध्यान में रखकर विवेक और मति से विकसित तार्किक दृष्टिकोण ही आधुनिकता-बोध है। सुरेंद्र वर्मा का साहित्य आधुनिक विचारों से प्रभावित है किंतु वर्तमानयुग की भोगवादी संस्कृति का वे पर्दाफाश करते हैं। स्त्री-पुरुष के बदलते रिश्ते नए कोण से परिभाषित करना इनका मूल हेतु प्रतीत होता है। आधुनिकयुग की यांत्रिक प्रगति, पश्चिम के देशों से बढ़ा संपर्क, यातायात एवं संपर्क के अत्याधुनिक साधन के परिणास्वरूप विचारों का संस्कृति का आदान-प्रदान तेजी से हो रहा है। नई पीढ़ी भोग-विलास में लिप्त है। सुरेंद्र वर्मा ने अपने साहित्य के माध्यम से इसी यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

'मुझे चाँद चाहिए' सुरेंद्र वर्मा कृत उपन्यास उत्तर आधुनिकबोध को व्यक्त करता है। इसमें सिलबिल की वर्षा बनने और वर्षा द्वारा चाँद पाने अर्थात् यश पाने की कथा है। अभिनय की ऊँचाइयों से वह अपने चाँद को पा जाती है। इस उपन्यास में कला बनाम व्यवसाय को लेकर बहस उठती रही है। 'यहाँ से कला के महान मूल्यों की जगह उपभोग के मूल्यों का वर्चस्व शुरू होता है, छवियों और ग्लैमर का निर्णायक संसार शुरू होता है, जिसे वर्षा क्या, कोई नहीं ठुकरा सकता।'[1]

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में महानगरीयबोध का आधार लेते हुए पुरानी मान्यताओं और परंपरा में जकड़े हुए पात्रों को मुक्त आदान प्रदान किया है। उपन्यास का परिवेश एवं शिल्प सर्वथा नवीन होने के कारण अधिक चर्चा में रहा। परिवार के सनातन विचारों से संघर्ष तथा रंगमंच के प्रति समर्पण की ही कथा नहीं है, वरन रंगमंच फिल्म इंडस्ट्री तथा उससे जुड़े अनेक लोगों की कथा है। महानगर का जीवन-यापन, ऊँचे वर्ग के लोगों के आपसी संबंध, शराब तथा ड्रग्स आदि व्यसन विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के अनुकरण का ही परिणाम है। मधुरेश का कथन द्रष्टव्य है। 'वर्षा वशिष्ठ के साथ (दिव्या) पहली बार सिगरेट का कश लेती है और निष्ठावान ब्राह्मण परिवार के संस्कारों को तिलांजलि देकर आमिष भोजन शुरू करती है और आगे चलकर

गाहे-बगाहे बीयर और शराब की चुस्की तक आ जाती है।'[2] उपन्यास का कथ्य रंगमंच एवं फिल्म इंडस्ट्री से जुड़ा होने के कारण संपूर्ण उपन्यास में आधुनिकता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

'अँधेरे से परे' उपन्यास का निराश एवं हताश पात्र गुलशन पर भी पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव देखा जा सकता है। गुलशन 'फाइन आर्ट्स' पहुँचता है तो वहाँ उल्लेखित पत्रिकाएँ, उसमें चित्रित घटनाएँ आदि में पश्चिमी वातावरण अर्थात् आधुनिकता का चित्रण हुआ है। आधुनिक भावबोध, महानगरीय जीवन की त्रासदी, पारिवारिक संबंधों के बदलते रूप व अनैतिक संबंधों को उजागर करनेवाला यह उपन्यास है। आधुनिकता के प्रभाव के कारण भारत की सामाजिक विवाह संस्था खतरे में है। रिश्तों का टूटना आम बात हो गई है। पति-पत्नी के बढ़ते संबंध-विच्छेद इसी की परिणति हैं। अनैतिक संबंधों का प्रचलन भी बढ़ा है। विवाहित एक बच्चे की माँ भी बिंदो गैर मर्द अमित को चाहती है। अपनी पत्नी के अनैतिक संबंध ज्ञात होते हुए भी पति जित्तन कुछ करने में असमर्थ है, क्योंकि वह निकम्मा है तथा ससुराल की रोटी का मोहताज। पत्नी बिंदो के सामने वह हताश नजर आता है। आधुनिकयुग में मनुष्य का जीवन अत्यंत संघर्षमय हो गया है। इसका प्रभाव उसकी मानसिकता पर भी पड़ा है। मनुष्य के व्यक्तित्व-गठन में परिवार, समाज एवं परिवेश महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किंतु आधुनिककाल में व्यक्ति को बचपन से ही कई मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ता है। असफलता उसके अस्तित्व की तलाश को और अधिक मुश्किल बनाती है। गुलशन सोचता है—'मेरी परवरिश इस तरह हुई थी कि मैं असफल बनूँ।'[3]

'अँधेरे से परे' उपन्यास के बाद सुरेंद्र वर्मा जी को आधुनिक उपन्यासकारों में गिना जाने लगा। यह उपन्यास अंतर्वस्तु के रूप में एक कलाकार के जीवन का महा आख्यान है। इस उपन्यास के भीतर दो स्तरों पर संघर्ष चलता है। एक स्तर पर कलाकार 'स्व' से टकराता है, जिसमें वह विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में स्वयं को जिंदा रखने के छटपटाता दिखाई देता है।

परंपरागत सनातन मूल्यों को आज नकारा जा रहा है। पाश्चात्य देशों की विभिन्न विचारधाराओं एवं सभ्यता-संस्कृति के अभाव का यह परिणाम है। डॉ॰ राजेंद्रप्रताप लिखते हैं—'समस्त प्राचीन संस्थाओं की सड़ी-गली रूढ़ियों से टक्कर लेने को उद्यत उपन्यासकारों ने स्वच्छंदता का उपयोग केवल पुरुष तक सीमित न रखते हुए नारी को भी परंपरागत शृंखलाओं की संकीर्णता से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है।'[4] सुरेंद्र वर्मा द्वारा रचित बहुचर्चित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' की प्रमुख वर्षा वशिष्ठ रूढ़िवादी मध्यवर्गीय सनातन मूल्यों का निर्वाह करनेवाले परिवार के खिलाफ विद्रोह करती है। बचपन में स्कूल में फार्म भरते समय वह अपना नाम (यशोदा शर्मा) बदलकर वर्षा वशिष्ठ रख लेती है। पिता किशनदास शर्मा यह सुनकर अवाक् रह जाते हैं, क्योंकि उनके वंश की सात पीढ़ियों के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ था। रूढ़िवादी सनातन मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में जन्मी वर्षा परंपरा को नकारती है। उसकी सोच एवं विचारधारा आधुनिकता का समर्थन करती है। शादी, परिवार, बच्चे आदि परंपरागत ढाँचे से जीवन जीने के बजाय वर्षा अपनी कलात्मक प्रतिभा को निखारना चाहती है। इसके लिए वह परिवार के रूढ़िवादी सनातन विचारों का विद्रोह करती है।

फिल्मों में मनोरंजन को प्रभावी माध्यम माना जाता रहा है। फिल्म-क्षेत्र से जुड़े लोगों की व्यक्तिगत जिंदगी सामान्य लोगों के लिए आकर्षक एवं जिज्ञासा का विषय है। सुरेंद्र वर्मा ने 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास के तीसरे खंड में मुंबई की आधुनिक फिल्मी दुनिया का चित्रण किया है।

आधुनिकयुग में महानगरों में तमाम प्रकार की विद्रूपताएँ पनप रही हैं। उच्चवर्गीय समाज में पश्चिमी सभ्यता का अत्यानिक आकर्षण है। सुरेंद्र वर्मा ने 'दो मुर्दा के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में उच्चवर्गीय समाज के एक घिनौने रूप की पोल खोली है। समाज में पनप रही पुरुष वेश्या (जिगौले) विद्रूपता को स्पष्ट किया है, वर्माजी ने अपने उपन्यास में। सुख-सुविधाओं की तलाश एवं भोगवादी प्रवृत्ति ने मनुष्य का मानसिक सुकून छीन लिया है। संपत्ति द्वारा भोग-विलास के साधन जुटाना एवं उसी को सुख मानने की गलती व्यक्ति कर रहा है। इसीलिए नील कहता है कि 'हम जिस पूँजीवादी समाज में जी रहे हैं, उसमें हमारे सामने पेट भरने का एक ही रास्ता है—अपनी किसी काबिलियत को बाजार में बेच पाना।' वर्माजी ने इस उपन्यास के माध्यम से महानगरीय जीवन में यौन-संबंधों की मुक्तता तथा अनैतिक संबंधों को उघाड़ा है।

आधुनिककाल में मनुष्य अकेलेपन की त्रासदी से पीड़ित है। महानगरों भी भीड़ में मनुष्य अकेलापन महसूस करता है। अकेलेपन की पीड़ा से त्रस्त 'अँधेरे से परे' का गुलशन तथा 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा आत्महत्या का प्रयास करते हैं। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव ने हमारे देश की सभ्यता एवं संस्कृति को अत्याधिक प्रभावित किया है। वर्माजी के कथासाहित्य में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है। आज की युवापीढ़ी को आधुनिक जीवनशैली का अधिक आकर्षण है। शराब, डग्स आदि नशे की आदत, बार एवं बारबाला की संस्कृति, समलैंगिकता, पुरुष वेश्या (जिगौले) आदि का प्रचलन इसी की परिणति है। 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में शुरू से अंत तक वर्षा परंपरागत विचारों का विरोध करती हुई आगे बढ़ती है। शर्मा परिवार की सात पीढ़ियों में काम करनेवाली पहली कन्या थी, विवाह के संदर्भ में अपनी बहन को स्पष्ट शब्दों में सुना देती है 'मैं मादा नहीं हूँ।'[5] यहाँ वर्षा नारी होने के पारंपारिक नियम का कड़ा विरोध करती है। खानदान की प्रथम लड़की जिसने फिल्म-जगत में प्रवेश किया। मध्यवर्गीय परिवार में जन्मी वर्षा की विचारधारा आधुनिक एवं स्वतंत्र है। पंकज विष्ट का कथन इसकी पुष्टि करता है—'वर्षा वशिष्ठ शराब पीती है, सिगरेट पीती है, जींस और स्लैक्स पहनती है, यहाँ तक की विवाहपूर्व शारीरिक संबंध स्थापित करती है और कभी भी इस तरह के अपराधबोध से परे।'[6]

सुरेंद्र वर्मा के उपन्यासों में आधुनिक विचार एवं सनातन विचारों का द्वद्व है, उच्चवर्गीय समाज का घिनौना रूप का पर्दाफाश किया गया है। आधुनिककाल में यांत्रिक प्रगति के साथ मनुष्य ने विकास का हर संभव प्रयास किया है। जीवन के साथ मनुष्य के विकास का हर संभव प्रयास किया है।जीवन के साथ मनुष्य के विकास का हर संभव प्रयास किया है। जीवन को सुख-सुविधा संपन्न बनाने के साधन उपलब्ध हुए। किंतु फिर भी अत्यानिक भोगवादी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य का जीवन तनावपूर्ण हो गया है। मनुष्य संवेदनाहीन बनता जा रहा है। आपसी रिश्तों में खासा बदलाव आया है। आपा-धापी एवं अंधी होड़ में मनुष्य का जीवन यंत्रवत् हो गया है। विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव ने हमारे देश की परंपरा एवं सभ्यता को काफी प्रभावित किया जै। उनकी संस्कृति का निरंतर अनुकरण हमारी पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक है। अनैतिक आचरण विवाहपूर्व बाह्य संबंध, अत्यधिक नशे की आदत इसी की परिणति है। परंपरागत आपसी रिश्ते दम तोड़ रहे हैं। व्यक्ति आत्मसंघर्ष करता हुआ अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है।

अतः सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास साहित्य के माध्यम से परंपरा और आधुनिकता का समन्वय

परिलक्षित होता है। जहाँ एक ओर वर्ममानयुग की युवापीढ़ी स्वेच्छाचार के कारण पतन की ओर जा रही है। वहीं दूसरी तरफ मुझे चाँद चाहिए में नारी-जीवन की महत्त्वाकांक्षा, उसके लिए परिवार, सनातन विचारों से संघर्ष तथा रंगमंच के प्रति समर्पण की ही कथा नहीं, वरन् रंगमंच फिल्म इंडस्ट्री तथा उससे जुड़े अनेक लोगों की कथा है।

संदर्भ

1. सुरेंद्र वर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ॰ जिजाबराव पाटील, पृ॰ 16
2. हिंदी उपन्यास सार्थक पहचान, मथुरेश, पृ॰ 325
3. सुरेंद्र वर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ॰ जिजाबराव पाटील, पृ॰ 14
4. सुरेंद्र वर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ॰ भानुभाई रोहित, पृ॰ 150
5. मुझे चाँद चाहिए, सुरेंद्र वर्मा, पृ॰ 45
6. हंस, जुलाई 1994, पृ॰ 81

3 **एम॰जे॰ एवेन्यु**
संजीवन अस्पताल के सामने
पुराना गंगापूर नाका, नाशिक 422 013

ISSN 0975-735X

कनुप्रिया : राधा की विह्वलता का दर्पण

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

प्रेम मनुष्य की सहज एवं शाश्वत भूख है। जीवन से उसके निष्कासन की बात भले ही सोची जाए, परंतु उसे गरदनिया देकर बाहर नहीं निकाला जा सकता। यदि हममें मानवता का अल्पांश भी जीवित है, तो संघर्षरत रहकर भी हम प्रेम की उपेक्षा नहीं कर सकते। सत्य तो यह है कि संघर्ष की थकान को दूर करने के लिए प्रेम-भरा आँचल पाने की बेचैनी होती ही है, जो क्लांत मन को मृगछौने की तरह आँचल में छुपाकर समूची थकान को सोख ले। भारतीजी ने राधा के द्वारा नाट्य एकालाप में भाव-विह्वलता में कुछ भी कहलवाया हो, परंतु माता, भगिनी आदि के रूपों को छोड़कर राधा का प्रेमाकुल और प्रेम-भरा जगत् समर्पित करनेवाली राधा का रूप ही प्रमुख है।

युद्ध के हाहाकार से या तो कोई पागल हो जाएगा या जंगली जानवर बन जाएगा। राधा को ये दोनों ही पसंद नहीं हैं, क्योंकि उनमें से किसी के साथ भी वह तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकेगी। वह समर्पिता की भाँति तैयार है, कृष्ण को अपने स्नेह-भरे आँचल में छुपा लेने के लिए, युद्ध की विभीषिका से उसका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए। राधा का यह रूप रक्तपिपासु विश्व के तिरस्कार के साथ-साथ प्रेमपूरित संसार की आवश्यकता पर बल देता है।

भारतीजी राधा को युगीन संदर्भ देने में पूर्णतः सफल हुए हैं। राधा का लीला-सहचरी या जन्म-जन्मांतर की सखी का रूप पीछे छूट जाता है। रूमानियत भारतीजी की अभिव्यक्ति को नहीं दबा सकी, क्योंकि वह अनायास और स्वाभाविक है। पौराणिक संदर्भ को बार-बार बीच में खींचकर बीच में लाने का प्रयास किया गया, जो असफल रहा, क्योंकि राधा की रागात्मक वृत्ति उसे मानवीय स्तर के अधिक निकट ले आती है, तो अलौकिक स्तर से जोड़ नहीं पाती। इतना अवश्य है कि राधा का रूप कनुप्रिया में देशकाल की सीमा लाँघकर सार्वकालिक और सार्वजनीन हो गया है। कारण, कृष्ण अक्षौहिणी सेनाओं के संचालन में घिरे हैं, तो राधा अपनी माँग को आम के बौर से (कृष्ण की आत्मीयता जिससे जुड़ी है) सजाए प्रतीक्षारत है। कहाँ अक्षौहिणी सेनाओं का संगठन करने वाले कृष्ण और कहाँ एकाकी खड़ी राधा-प्रेम की लघुता। प्रेम की यही लघुता उसके अक्षुण्ण प्रेम की परिचायक है।

राधा मानव-प्रेम की आवश्यकता को जीवन का अनिवार्य अंग मानती है। इसी कारण उसके किसी भी कथन में अनास्था का स्वर नहीं है। प्रेम की पवित्रता अक्षुण्ण है। भारतीजी ने एक मुक्तक में कहा है–

तप्त माथे पर, नज़र के बादलों को साधकर
रख दिए तुमने सरल संगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में
बाँसुरी रखी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर।

1. पूर्वराग में कनुप्रिया के भावबोध और विविध प्रसंगों का मंथन करें, तो उसकी व्यथा सामने आती है। राधा को सहवास-सुख छोड़कर चले आने और समर्पण में न रीतने का अनुताप है, तो कहीं अंशत: ग्रहण कर लेने पर भी संपूर्ण बनकर लौटने में समर्पण की सार्थकता है।

2. मंजरी परिणय–'जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की/ एकांत-संगिनी मैं' प्रणय के इस स्तर में वैष्णव-संस्कार का आभास होता; लेकिन चरम साक्षात्कार के क्षणों में भी जड़ और निष्पंद हो जाना, न तो पृथक् होना है और न विलय होना। राधा इतना तो समझती ही है कि लाज तन की नहीं होती, मन की भी होती है। लाज के कारण मिलन के क्षणों में तन की झिझक से भी बढ़कर मन की झिझक होती है–

'एक मधुर भय एक/ अनजाना संशय/
एक आग्रह-भरा गोपन, एक निर्व्याख्या वेदना, उदासी/
जो मुझे बार-बार चरम सुख के क्षणों में भी
अभिभूत कर लेती है।' (मंजरी-परिणय : आम्र बौर का गीत)

भय, संशय, गोपन, उदासी आदि सभी भावों को कनुप्रिया 'सरचढ़ी सहेलियों' के समान बताती है। संश्लिष्ट बिंबों के माध्यम से भारती ने कनुप्रिया की भाव-संकुल अभिव्यक्ति को चित्रमय कर दिया है। कनुप्रिया के 'नववधू' रूप का सहज चित्रांकन–

'बनघासों की पगडंडी पर/ कृष्ण द्वारा आम्रमंजरी को चूर-चूर करके बिखेरना जैसे उसकी सूनी, पवित्र माँग में सिंदूर भरने का कार्य था–

उस आम के बौर से मेरी क्वाँरी, उजली, पवित्र माँग भर रहे थे साँवरे?

पर मुझे देखो कि मैं उस समय भी तो माथा नीचा कर/ इस अलौकिक सुहाग से प्रदीप्त होकर/ माथे पर पल्ला डालकर/ झुककर तुम्हारी चरण-धूलि लेकर/ तुम्हें प्रणाम करने–नहीं आई, नहीं आई, नहीं आई। (मंजरी-परिणय : आम्र बौर का गीत)

यह निषेध था अपने अस्तित्व को बचाए रखने का, किसी भी तरह विलीन न होना। कृष्ण महावर रचाने के लिए राधा के पैर गोद में रखते हैं, तो वह लजाकर मुँह फेरकर निश्छल बैठ जाती है। घर आने पर वही राधा महावर की बनी उन रेखाओं को एकांत में चूम लेती है–

अपने उन्हीं चरणों को
अपलक निहारती हूँ...
जल्दी-जल्दी में अधबनी महावर की रेखाओं को
चारों ओर देखकर धीमे-से
चूम लेती हूँ। (मंजरी-परिणय : आम्र बौर का गीत)

राधा जब पुकारने पर देर से पहुँचती है, कृष्ण चले जाते हैं। रात भी गहरा आई है और वह कितनी देर तक बाँह से उसी आम्र की डाली को घेरे चुपचाप रोती रहती है। भला उसकी असमर्थता को कनु कैसे जानेगा–

पर तुम्हें यह कौन बताएगा साँवरे/
कि देर से ही सही/
मैं तुम्हारे पुकारने पर आ तो गई (मंजरी-परिणय : आम्र बौर का गीत)

राधा का मन प्रेम से आप्लावित है, परंतु नारी-सुलभ लज्जा उसे अवश कर देती

है–'तुम्हारी भेंट का अर्थ जो नहीं समझ पाती/ तो मेरे साँवरे-लाज मन की भी होती है।'

यह मन की लाज और देर से आना उसकी अवशता है, तो उसे चंदनबाहों में भरकर बेसुध होने से वंचित क्यों करेंगे? भावविभोरता और सहज तन्मयता के क्षणों की अनुभूति केवल सुगंध का रूप धारण कर लेती है। तन का आभास उस समय रह नहीं पाता। राधा की यह तन्मयता स्थूल से ऊपर उठकर है–

'मुझे ऐसा लगा है/
जैसे किसी ने सहसा इस जिस्म के बोझ से मुझे मुक्त कर दिया/
और इस समय मैं शरीर नहीं:
मैं मात्र एक सुगंध हूँ।' (मंजरी-परिणय : आम्र बौर का अर्थ)

राधा के प्रश्नों में सहजता है। वहाँ उसका समाधान भी सहजसाध्य है। बुद्धि के आयाम कृत्रिम और तर्क-वितर्क में गुँथे हुए हैं, जिनसे मानवता की समस्याएँ नहीं सुलझाई जा सकतीं। सहज रागात्मक स्तर पर ही मानवता की समस्याओं का समाधान निकल सकता है। यही राधा की प्रतीक्षा है-लहूलुहान हारे-थके विचारों के लौटने की प्रतीक्षा। कृष्ण का महान विस्मयकारी और इतिहास-प्रवर्तक का रूप राधातत्त्व से रहित होने पर 'शिव' नहीं हो सकता, अत: 'कनुप्रिया' में राधा और कृष्ण के कालातीत और समष्टिवादी रूप (जो देशकाल से परे है) का ही महत्त्व है।

राधा प्रेम के मूल्य का अन्वेषण करती है, तो कभी उसे स्वयं को ही नकार देना पड़ता है, तो कभी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। 'मैं' की पुनरावृत्ति उसे स्वत्व का आभास तो कराती रहती है। रागात्मक संबंधों की पृष्ठभूमि उसके मन में विगत स्मृतियाँ कभी फाँस की तरह गड़ती हैं, कभी उनकी मधुरता से राधा की साँस-साँस सुरभित हो जाती है, तन खिल उठता है। कभी संशय (जो क्षणिक है) उसे झकझोर देता है, असहाय होने का बोध कराने लगता है। इस प्रकार सभी रस भिन्न रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। फिर भी राधा के मादक क्षणों को भारतीजी ने सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। भारतीजी के शब्द-चित्रों में वैष्णव संस्कार खोजना जिस प्रकार की भूल है, उसमें पश्चिमी संस्कार का आरोप करना भी उसी प्रकार की नासमझी है। रक्तरंजित इतिहास को मोड़कर प्रेम के चरणों में बिठाना क्या रोमानी संस्कार है? युधिष्ठिर इतिहास को न बदलकर स्वयं को बदलने के लिए हिमालय पर चले गए। राधा ने मूल समस्या को ही स्पर्श किया है।

कृष्ण ने एक बार आग की लपटों से राधा को दोनों हाथों में फूल की थाली की तरह सहेजकर उठा लिया था और लपटों से बाहर ले आए थे। राधा ने खीझ में भले ही कहा हो कि कान्हा मेरा कोई नहीं है, पर 'घनघोर वर्षा के समय' राधा ने उसी कान्हा को आँचल में दुबका लिया था–

चितवन की छाँह में खड़े होकर/
ममता से मैंने अपने वक्ष में/ उस छौने का ठंडा माथा दुबकाकर/
अपने आँचल से उसके घने-घुँघराले बाल पोंछ दिए।
(मंजरी-परिणय : तुम मेरे कौन हो)

3. सृष्टि-संकल्प–काम जीवन का प्रमुख अंग है। काम की पूर्ति जीवन को नए आयाम प्रदान करती है। दो शरीरों से मन और हृदय की लयात्मकता ही सृष्टि की लयात्मकता है–

जब मैं प्रगाढ़ वासना, उद्दाम क्रीड़ा
और गहरे प्यार के बाद
थककर तुम्हारी चंदन-बाँहों में
अचेत, बेसुध हो जाती हूँ
यह निखिल सृष्टि लय हो जाती है। (सृष्टि-संकल्प : सृजन-संगिनी)

लीन होना निष्क्रियता का प्रतीक नहीं है। प्रगाढ़ तृप्ति के लिए शरीरों से परे की चेतना बार-बार लौटकर आती है–

'तुम फिर, फिर उसी गहरे प्यार को/
दोहराने के लिए/ मुझे आधी रात जगाते हो/
आहिस्ते से, ममता से-और मैं फिर जागती हूँ/
वह आधी रात का प्रलयशून्य सन्नाटा/ फिर/
काँपते हुए गुलाबी जिस्मों/ गुनगुनाते स्पर्शों/
कसती हुई बाँहों/ अस्फुट सीत्कारों/
गहरी सौरभ-भरी उसाँसों/
और अंत में एक सार्थक शिथिल मौन से/ आबाद हो जाता है/
रचना की तरह/ सृष्टि की तरह–/
और मैं फिर थककर सो जाती हूँ/ अचेत-संज्ञाहीन–'

इसके बाद फिर गहन अँधेरा, फिर राधा को जगाया जाना, प्रगाढ़ विलास। यह विलास जुड़ा है अतृप्त क्रीड़ा की अनंत पुनरावृत्तियों से। सभी स्मृतियाँ छन-छनकर आती रहती हैं। राधा की यह आत्मरति प्रवाह में बहती हुई असंख्य सृष्टियों का क्रम है, जो राधा के ही शब्दों में– 'महज हमारे गहरे प्यार/ प्रगाढ़ विलास/ और अतृप्त क्रीड़ा की अनंत पुनरावृत्तियाँ हैं।'

राधा का शारीरिक सौष्ठव धर्मवीर भारती के स्पष्ट और रूपात्मक बिंब-विधान से और अधिक सजीव एवं सार्थक हो गया–

अगर ये उत्तुंग हिमशिखर
मेरे ही-रुपहली ढलान वाले
गोरे कंधे हैं, जिन पर तुम्हारा
गगन-सा चौड़ा और साँवला और
तेजस्वी माथा टिकता है
...हिलोरें लेता हुआ सागर
मेरे ही निरावृत्त जिस्म का
उतार चढ़ाव है। (सृष्टि-संकल्प : आदिम भय)

भारतीजी ने राधा के सौंदर्य को चित्रित करने के लिए लाक्षणिक प्रयोग किया है। उरोजों के लिए 'चंदन फूलों' का प्रयोग नितांत नवीन ही नहीं, बल्कि सार्थक भी है–

अगर ये उमड़ती हुई मेघ-घटाएँ
मेरी ही बल खाती हुई वे अलकें हैं
जिन्हें तुम प्यार से बिखेरकर

 ISSN 0975-735X

अक्सर मेरे पूर्ण विकसित
चंदन फूलों को ढक देते हो। (सृष्टि-संकल्प : आदिम भय)

राधा की देह-गठन सुकुमार और लावण्यमयी है। सूर्यास्त बेला में झरते हुए झरने में जो धाराएँ आरोपित की गई हैं–'अजस्र प्रवाही झरने/ मेरी ही स्वर्णवर्णी जंघाएँ हैं।'

लेकिन राधा के लिए ये सब सौंदर्य के उपादान प्रश्न बनकर रह जाते हैं। यदि ये उस सृष्टिनियामक की क्रीड़ाओं के साधन हैं, तो भय किस बात का। यही आदिम भय का रूप धारण कर लेता है। उसे लगता है–जैसे यह दिगंत व्यापी अँधेरा हो/ मेरे शिथिल अधखुले गुलाब तन को/ पी जाने के लिए तत्पर है।'

यह आदिम भय ही दुगुने आवेग से उसे 'कनु' के, पास खींच लाता है। बाहों के बंधन और संकुल हो जाते हैं, इतना निकट कि–

और निकट और निकट/
कि तुम्हारी साँसें मुझमें प्रविष्ट हो जाएँ।
और यह मेरा निर्मम कसाव है/ और अंधा, और उन्माद-भरा/
और मेरी बाहें/ नागवधू की गुंजलक की भाँति/
कसती जा रही हैं। (सृष्टि-संकल्प : केलि सखी)

मिलन के मादक और मधुर क्षणों में राधा का गुलाबी तन, तन मात्र न रहकर, पिपासाकुल प्रेम की पुकार बन जाता है–'हलका गुलाबी, गोरा रुपहली धूप-छाँव वाली सीपी जैसा जिस्म/ अब जिस्म नहीं है-एक पुकार है।' (सृष्टि-संकल्प : केलि सखी)

4. इतिहास–राधा यौवन की इन उद्दाम लालसाओं से भरी स्मृतियों से यथार्थ के धरातल पर सोचती है, तो उसे अपना तन बीते हुए मेले-सा सुनसान लगता है। कितनी मार्मिक व्यथा है! उल्लास और रस-भरा तन सिर्फ याद बनकर रह गया है। विषाद को अभिव्यक्त करती भारतीजी की उपमा कितनी मार्मिक बन पड़ी है–

मंत्र-पढ़े बाण-से छूट गए तुम तो कनु
केवल शेष रही मैं
काँपती प्रत्यंचा-सी (इतिहास : विप्रलब्धा)

प्रत्यंचा का उपमान खालीपन का सालने वाला प्रतीक है। राधा का संशय उसे और अधिक विषाद से भर देता है। 'कुरुक्षेत्र का कृष्ण' राधा के प्रेम से सिंचित होकर ही बना। उसका वियोग तो राधा के लिए असह्य है–

नीचे की घाटी से
ऊपर के शिखरों पर जिसको जाना था, वह चला गया'
कृष्ण तो महान हो गए;
लेकिन/ हाय मुझी पर पग रख
मेरी बाहों से/ इतिहास तुम्हें ले गया। (इतिहास-सेतु : मैं)

राधा का इतिहास के प्रति यह रुझान ठीक ही है। उनको महान बनाने में जिसका हाथ था, उनकी पीड़ा क्या इतिहास समझ सकेगा। राधा के इस प्रश्न का कृष्ण के पास क्या उत्तर होगा–

सुनो कनु, सुनो!

क्या मैं एक सेतु थी तुम्हारे लिए!
लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र के
अलंघ्य अंतराल में।

कृष्ण के द्वारा उसके जिस्म को सेतु बनाया जाना राधा को जरूर खला होगा। अपने कनु को कुरुक्षेत्र की विभीषिका से दूर खींचने के लिए प्रतीक्षारत राधा 'उसी आम के नीचे' आ खड़ी होती है, जहाँ मधुर मिलन हुआ करता था। राधा के प्रेम की सहजता, उसकी अन्यमनस्कता से प्रकट होती है–

सिर्फ़ मेरी अनमनी भटकती उँगलियाँ
मेरे अनजाने, धूल में तुम्हारा
वह नाम लिख जाती हैं...।
और ज्यों ही सचेत होकर
अपनी उँगलियों की/ इस धृष्टता को जान पाती हूँ
चौंककर उसे मिटा देती हूँ। (इतिहासः उसी आम के नीचे)

कृष्ण के महान बनने में कनुप्रिया का भी बहुत कुछ टूटकर बिखरा है। तन की शक्ति निरंकुश होती है, जो विचारहीनता के भँवर में घिरने से सुंदर को भी नष्ट कर देती है। राधा को आशंका है–

यदि ग्रामवासी सेनाओं के स्वागत में
तोरण नहीं सजाते
तो क्या सारा ग्राम नहीं उजाड़ दिया जाएगा। (इतिहास : अमंगल छाया)

प्रजा का दर्द है महायुद्ध में व्यक्ति की अवशता। पाप-पुण्य, धर्माधर्मवाला होने पर भी युद्ध उसे नहीं जँचता। यह उसकी विवशता है। युद्ध करने वाले कनु का उससे कब परिचय हो पाया! जिस 'जमुना' में राधा अपनी छवि निहारा करती थी, अब वहाँ की स्थिति कितनी विकट है–

वहाँ अस्त्र-शस्त्रों से लदी हुई
अगणित नौकाओं की पंक्ति
रोज-रोज कहाँ जाती है? (इतिहास : एक प्रश्न)

कृष्ण के युद्धविषयक रूप की विद्रूपता गहरे व्यंग्य में प्रकट होती है। फूलों से खिला उपवन, लाशों से पटा रणक्षेत्र-दोनों की अलग-अलग अनुभूतियाँ हैं–

चारों दिशाओं से/ उत्तर को उड़-उड़ जाते हुए
गिद्धों को क्या तुम बुलाते हो !
जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायों को। (इतिहास : एक प्रश्न)

इस प्रश्न में राधा की विवशता और व्यथा साफ झलकती है। अर्जुन को दिया गया उपदेश राधा के भावक्षेत्र से बाहर की अवधारणा है। वे सभी शब्द राधा के लिए अर्थहीन हैं, जो–

यदि वे मेरे पास बैठकर
मेरे रूखे कुंतलों में उँगलियाँ उलझाए हुए
तुम्हारे काँपते हुए अधरों से नहीं निकलते...
अर्जुन ने इनमें चाहे कुछ भी पाया हो

 ISSN 0975-735X

मैं इनको सुनकर कुछ भी नहीं पाती प्रिय! (इतिहास : शब्द : अर्थहीन)

राधा कृष्ण के हर शब्द में तन्मयता का ही आभास पाती है, जो उसके अंतरतम तक उतरता चला जाता है–

हर शब्द को अँजुरी बनाकर
बूँद-बूँद तुम्हें पी रही हूँ
और तुम्हारा तेज
मेरे जिस्म के एक नए मूर्च्छित संवेदन को
धधका रहा है। (इतिहास: शब्द : अर्थहीन)

राधा 'समुद्र स्वप्न' में कनु की युद्ध से खिन्नता की कल्पना करती है–थककर/ इन सबसे खिन्न, उदासीन विस्मित और/ कुछ-कुछ आहत/मेरे कंधों से टिककर बैठ गए हो। (इतिहास: समुद्र स्वप्न)

यह शरीर और मन दोनों ही थके कृष्ण का रूप है। कृष्ण बाँह उठाकर कुछ कहते रह जाते हैं; पर सुनता कोई कुछ भी नहीं। थककर फिर राधा के वक्षस्थल में ही चैन पाते हैं–

'मेरे वक्ष के गहराव में/ अपना चौड़ा माथा रखकर/
गहरी नींद में सो गए हो...और मेरे वक्ष का गहराव/
समुद्र में बहता हुआ, बड़ा-सा ताजा क्वाँरा, मुलायम,
गुलाबी वट-पत्र बन गया है।'

यहाँ 'गहराव' में शब्दचित्र प्रस्तुत किया है। भारतीजी ने वक्ष के गहराव के लिए 'ताजा क्वाँरा, मुलायम, गुलाबी वट-पत्र' के उपमान की प्रस्तुति नूतनता लिए हुए है। सांकेतिक भाषा में उरोजों के लिए विस्तार, नवलता, कवाँरपन, कोमलता और गुलाबीपन सभी विशेषताओं को सँजो दिया है।

कृष्ण का बूढ़े पीपल के नीचे चुपचाप बैठना बाहुबल की सबसे बड़ी पराजय है। बूढ़ा पीपल एक पूरी पीढ़ी की जीत को हार में बदल रहा है। चुपचाप बैठना चिंतन की थकान, व्यर्थता और निश्चितता की ओर इंगित करता है। कृष्ण जैसे योगीराज भी उस बूढ़े पीपल के प्रभाव से नहीं बचे–

'और पहली बार जैसे तुम्हारी अक्षय तरुणाई पर/
थकान छा रही है/ एक गहरी साँस लेकर/
तुमने असफल इतिहास को/
जीर्ण वसन की भाँति त्याग दिया है।' (इतिहास-समुद्र स्वप्न)

इतिहास को त्याग देना, उस पूरी पीढ़ी के अस्तित्व को नकारना है, जो युद्ध के लिए हर समय तत्पर रहती है। चाहे वह दुर्योधन हो, चाहे अर्जुन-रक्त दोनों के कारण बहता है। प्रेम ही वह आश्रय-स्थल है, जहाँ कुछ राहत मिलती है। दर्द से थके हुए 'कनु' को बहुत दिन बाद राधा की याद आती है। साँवरी, शिथिल बाहें, काँपते अधर, सब एक गहरी पुकार है। राधा के ही शब्दों में–'सब त्यागकर/ मेरे लिए भटकती हुई।' (इतिहास : समुद्र स्वप्न)

5. समापन–यह अंतिम और सबसे छोटा अध्याय है। जन्मजन्मांतरों की अनंत पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर राधा प्रतीक्षारत है, कृष्ण में बिना विलीन हुए। फिर आना था; इसलिए विलीन

नहीं हुई। और अब वह सब छोड़-छाड़कर आ गई, क्योंकि–'कि इस बार इतिहास बनाते समय/ तुम अकेले न छूट जाओ।'(समापन)

राधा के बिना कृष्ण को इतिहास का त्याग करने के लिए बाध्य होना पड़ा, इसीलिए राधा कहती है–'प्रगाढ़ केलि क्षणों में अपनी अंतरंग/ सखी को तुमने बाहों में गूँथा/ पर उसे इतिहास में गूँथने से हिचक क्यों गए प्रभु?' (समापन)

राधा ने प्रेमतत्त्व की अनिवार्यता पर बल दिया है। प्रेम के बिना इतिहास अधूरा है, रक्त-पिपासु है–तुम्हारे इतिहास का/ शब्द, शब्द, शब्द, ...राधा के बिना/ सब/ रक्त के प्यासे/ अर्थहीन शब्द।'

राधा कृष्ण के अस्तित्व में विलीन नहीं हुई। वह आद्यंत प्रेमसिक्त है, प्रणय-समर्पिता है, फिर भी अपना अलग अस्तित्व बनाए हुए है। 'समापन' तक कृष्ण से मिल भी नहीं पाई, फिर भी उसका विश्वास अडिग है कि कृष्ण को युद्ध की विभीषिका के बाद उसके आँचल में आश्रय पाना ही होगा। कनु और कनुप्रिया के भावों का सामंजस्य युग की आवश्यकता है। यह सामंजस्य होना बाकी है। सामंजस्य का न होना ही मानवता का अधूरापन है। धर्मवीर भारती ने इस अधूरेपन के द्वारा ही युगचेतना को अभिव्यक्ति दी है। इतिहास के रक्तपिपासु शब्दों की अंत्येष्टि के लिए कनुप्रिया अपनी सहजता, भोलेपन और नासमझी (युगीन आवश्यकता को समझते हुए भी) के साथ कनु की प्रतीक्षा में खड़ी है; ताकि उसकी वेणी में अग्निपुष्प गूँथनेवाली अँगुलियाँ इतिहास के अर्थ ढूँढ सकें, इतिहास को सार्थकता प्रदान कर सकें। यही राधा का आंतरिक संकट भी है, लीन न होना भी।

इतिहास और समापन के अध्याय राधा के प्रणय को एक नए परिप्रेक्ष्य में नई दृष्टि प्रदान करते हैं। पौराणिक संदर्भ आधुनिकयुग की संवेदना को परिपुष्ट करते हैं। भारतीजी ने कनुप्रिया में नाट्य एकालाप के माध्यम से ही राधा के गहन प्रेम से भरे हृदय को भावसिंचित अभिव्यक्ति प्रदान की है। सहज जीवन की तन्मयता, प्रश्नों का उद्‌गम, राधा के कैशोर्य-सुलभ भाव जिस तरह के हैं, उसी के अनुरूप कनुप्रिया का काव्यबोध भी है। राधा के मन में प्रश्न या आग्रह उभरते हैं, वे धीरे-धीरे विकसित होते हैं। दूसरे आयाम बुद्धि के हैं, जिनका सहजता से तालमेल संभव नहीं। अज्ञेय जी का कथन है–'मानवता की समस्याएँ मानव की जिस अखंड एकता के स्तर पर हल की जा सकती हैं, वह विज्ञान अथवा तर्क का स्तर नहीं; बल्कि सहज रागात्मक संबंध का स्तर है।'

इस प्रकार राधा के प्रश्नों का एक ही उत्तर है–कनु उसका सर्वस्व है। यही प्रश्न कभी उसकी व्यथा के कारण भी बन जाते हैं, विशेषतया उस समय, जब वह अंतर्द्वंद्व की गहराई में उतरती है। राधा की इस स्वीकारोक्ति में ही कनुप्रिया का सार निहित है–'कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गंतव्य!'

सी-1702, **जे॰एम॰ अरोमा**
सेक्टर 75, **नोएडा** 201301 (**उ॰प्र॰**)
मो॰ 09313727493
rkkamboj49@gmail.com

 ISSN 0975-735X

हमारी संस्कृति में पर्यावरण-संरक्षण की भूमिका

डॉ॰ नीतूसिंह (पीएच॰डी॰, संस्कृत)

औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैज्ञानिक प्रगति तथा विकास द्वारा सुख-सुविधाओं के अंबार जुटाने में संलग्न जब बीसवीं शताब्दी को श्वाँस लेने के लिए न स्वच्छ वायु मिली, पीने के लिए न निर्मल जल ही उपलब्ध हो पाया, धीमे स्वर में बोलने पर न आवाज सुनाई दी और न कीटनाशक दवाइयों और रासायनिक खादों के अति प्रयोग से शुद्ध खाद्य पदार्थ ही हस्तगत हो पाए, ऊपर से परमाणु-परीक्षण प्राणघातक विस्फोटों के साथ रेडियोधर्मी पदार्थों का उत्सर्जन कर अपंगता का अभिशाप देने पर तुल गए, रही बची कसर मानव के मनोगत भावों—ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, स्वार्थांधता, भ्रष्टाचार और वर्तमान में कोरोना महामारी आदि ने आग में पेट्रोल डालने की भाँति पूरी की तब उसे इनसे अपनी विमुक्ति के उपाय स्वरूप 'अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दिवसों' का सहारा लेना पड़ा लेकिन प्रति फलस्वरूप 'ढाक के तीन पात' और 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की' की तर्ज पर निकला। जिसके कारण उसे अपनी जान से ही हाथ धोना पड़ा। प्रतिफलस्वरूप उसका स्थान इक्कीसवीं शताब्दी को मिला। अब यदि इक्कीसवीं शताब्दी सुधीजनों के माध्यम से 'पर्यावरण संरक्षण' हेतु भारतीय संस्कृति की ओर ताकती और अपने बचाव हेतु विश्वासपूर्ण आशा करती है तो निरर्थक नहीं है क्योंकि विश्व में यही एकमात्र ऐसी संस्कृति है जो 'जिओ और जीने दो' के सिद्धांत पर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' का विश्व-कल्याणकारी मंत्र गुँजाते हुए कार्य करने का धनी है। यहाँ हम पर्यावरण संरक्षण के स्वरूप का अवलोकन करेंगे।

धार्मिक मान्यताओं एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति में धर्म अफीम नहीं, उसका जीवन प्राण है। इसीलिए इसकी आध्यात्मिक धारा के प्रसार और प्रवाह से न नभ बच सका है, न धरा और न पाताल ही। तभी तो इसमें सूर्य, चंद्र, ग्रह-नक्षत्र आदि भी देवता हैं, जल, अग्नि, वायु, नदियों, पहाड़ों, समुद्रों में देवाधिवास मानने की विश्वासमयी भावना है और सहस्रफणी नागराज वासुकि, कच्छप और कामधेनु द्वारा अपने अपने ढंग से फण, कमठ औरशृंग पर इस धरा को धारण करते रहने की मनोरम कल्पना है। वे जन जो भारतीय संस्कृति के तात्विक गूढ़ार्थ को नहीं समझते और प्रकृति-गृहीत इन प्रतीकार्थों की आत्मा को जाने बिना ही भारतीय जनमानस में बसी हुई भारतीय संस्कृति की प्राणस्वरूपा इन धारणाओं और मान्यताओं को कपोलकल्पित और अंधविश्वासों की संज्ञा देकर निरर्थक उपहास करने का दुस्साहस किया करते हैं उन्हें नहीं मालूम कि कृषि-प्रधान देश भारत की कृषि को संरक्षण देने में, धरती माता की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में और उसके निवासियों की आहार संबंधी समस्या को हल करने के साथ-साथ आर्थिक समृद्धि देने में इन तीनों ही प्राणियों का कितना बड़ा हाथ है? यदि ऐसा न होता तो क्या सर्प किसान का मित्र कहलाता? कच्छप कच्छपावतार सृष्टि-पालक भगवान विष्णु का संज्ञक और रक्षक बन पाता? कामधेनु स्वर्ग की गाय होकर भी पृथ्वीवासियों की 'गौमाता' कहलाकर पूजी जाती? ये तीन तो केवल नमूने के तौर पर लिए गए वे नाम हैं जिनकी रक्षा में छिपा है अकथित पर्यावरण

संरक्षण का वह भाव जिसके हेतु पुरातन मानव को अधुनातन वैज्ञानिकों की भाँति सोचना-विचारना नही पड़ता था। 'नागपंचमी', 'कच्छपावतार भगवान विष्णु की पूजा', 'वत्सद्वादशी', 'गोवर्धन (गोधन)' आदि की पूजा इस और इन जैसे ही जगत परिव्याप्त अन्य प्राणियों की महत्ता को स्वीकार कर उनकी रक्षा के निमित्त ही तो किए जानेवाले भारतीय पर्व हैं। यह सर्वविदित है कि भारतीय संस्कृति अहिंसावादी संस्कृति है। इसीलिए इसमें छोटे-बड़े सभी जीवों की रक्षा और बचाव का विधान है। वे जीव, जिन्हें घिनौना, दुर्बल, असहाय, छोटा और त्याज्य समझकर नासमझ-क्रूर मानव मारकर स्वयं को तीसमार खाँ समझता है, नहीं जानता कि पर्यावरण-संरक्षण में इनकी कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है? इन प्राणियों में चींटी, मकड़ी, छिपकली, गिरगिट, दीमक, मेढक, टोड, गोबरैला, केंचुए, मधुमक्खी आदि आते हैं। ये वे प्राणी हैं, जो वन्यजीव होते हुए भी हमारे घरों और उनके आस-पास रहते हैं। छिपकलियों, गिरगिटों, मेढकों, मकड़ियों द्वारा हमारी स्वास्थ्य-रक्षा हेतु हानिकारक कीटों को अपना भोजन बनाकर पर्यावरण संरक्षण की बात तो सभी जानते हैं, महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि परागण-क्रिया कर वृक्षों के फूल और फल निर्माण में सहयोग देती मधुमक्खी धरती को सुगंधित सुमनों वाला परिधान पहनाकर पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में महनीय भूमिका निभाती है। यदि इधर दीमक सड़ी-गली वस्तुओं, पेड़ों के तनों और वनस्पतियों को मिट्टी का रूप देकर पर्यावरण-संरक्षण में योगदान देती है तो उधर चींटी इधर-उधर जमीन में पड़ी छोटी-से-छोटी खाद्य वस्तु से लेकर मृत जीव तक को अपना भोजन बनाकर धरती को प्रदूषण से मुक्त रखने में हाथ बँटाती है। अब यदि क्षुद्र और तुच्छ समझकर मसल दी जानेवाली चींटी की इसी विशेषता को लक्ष्य कर अहिंसक भारतीय आटे और बूरे के मिश्रण को इनके बिलों के आसपास गिराकर इनकी वंशवृद्धि द्वारा (हमारी पहुँच से परे अदृश्य किंतु हानिकारक जीवों से बचाकर) धरती की उर्वरा शक्ति को बढ़ाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने में संलग्न दीखते हैं तो कुछ हास्यास्पद और अनुचित तो नहीं है? इसीशृंखला में वे पक्षी और पशु भी सम्मिलित किए जा सकते हैं जिन्हें हम कौआ, चील, गिद्ध, उल्लू, गौरैया, मैना, चुगद, सारस, बगुला, मोर, नीलकंठ, कठफोड़वा, बुलबुल, किलकिला, खंजन आदि नामों से जानते और पहचानते हैं इनमें से यदि कुछ पक्षी यथा–कौआ, चील, गिद्ध खुले आकाश के नीचे पड़े मृत और सड़े-गले जीवों को खाकर पर्यावरण-संरक्षण में योगदान देते हैं तो उल्लू, चुगद, चील, बाज आदि विशेषकर चूहों और छोटे-छोटे कीट-पतंगों को अपना आहार बनाकर खेतों में खड़ी फसल और खलिहानों में पड़े अनाज को बचाते हुए पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहयोग देते हैं, कहीं इसीलिए तो 'उल्लू' को लक्ष्मी का वाहन नहीं बनाया गया है कि वह अर्थ-प्राप्ति के साधन रूप 'अन्न' को खानेवाले किसान के शत्रुओं–चूहों, गिलहरियों का भक्षण कर अन्न को विनष्ट होने से बचाकर धनागम का मार्ग खोल देता है। भारतीय संस्कृति में यदि कुछेक पशु-पक्षियों की रक्षा का उपाय 'श्राद्ध पितृयज्ञ' और 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' के रूप में खोज लिया गया है तो कुछेक पर देवी-देवताओं के वाहन की मुहर लगाकर उन्हें सम्मानास्पद और अबध्य घोषित कर दिया गया है। यहाँ तक कि विष्ठा तथा अन्य भक्ष्य-अभक्ष्य पदार्थों को खाकर पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखने वाले सुअर की महत्ता को भी यहाँ भुलाया नहीं गया है। तभी तो उसे पृथ्वी के उद्धारक विष्णु के दशावतारों में से एक अवतार 'वाराहावतार' मानकर पूजा और सम्मानित किया गया है। इसी प्रकार अठारह पुराणों में से एक पुराण की रचना इसी सुअर के नाम

 ISSN 0975-735X

पर 'वाराहपुराण' के रूप में की गई है।

यह तथ्य सर्वविदित है कि हमारे ऋषियों ने 'जीवेम् शरद: शतम्' की कामना करते हुए मानव-जीवन को चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में विभक्त किया तथा सब का काल 25-25 वर्ष माना गया। साहचर्य में रहकर प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग और उपभोग करते हुए शुद्ध खाने-पीने, शुद्ध विचारने और शुद्ध क्रिया करने पर ध्यान केंद्रित था। गृहस्थ का उत्तरदायित्व शेष तीनों आश्रमाचारियों की असुविधाओं का ध्यान रखकर उनकी संपूर्ति करना था। संन्यास आश्रम में प्रवेश की अवधि आने पर यही वानप्रस्थी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावनाओं के साथ गृहत्यागी बनकर विश्व-कल्याण का अलख जगाते हुए खुले आसमान के नीचे निकल पड़ते थे। संयम, नियम-पालन, संध्योपासना एवं दैनिक अग्निहोत्र प्रत्येक आश्रम के जीवन-व्यवहार का अनिवार्य अंग था। अत: व्यवस्था के चलते पर्यावरण-प्रदूषण का प्रश्न ही कहाँ था जो उससे भय की बात और चर्चा होती? भारतीय संस्कृति में वर्ण-व्यवस्था कर्मानुसार थी। कर्म के अनुसार वर्ण परिवर्तित होते थे। स्वैच्छिक कर्म करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इसीलिए वर्णों के सामंजस्य में न रैं-रैं खैं-खैं की कोई बात थी न ही सम्मान की कमी का कोई प्रश्न। स्वधर्म पालन प्रत्येक का जीवनोद्देश्य था। इसीलिए जिसका जो कर्म था पूर्णक्षमता, तत्परता, संलग्नता और सुदक्षता के साथ बिना किसी बाहरी दवाब के आत्मानुशासन से संचालित होकर स्वेच्छया निभता और निबटता चला जाता था। यद्यपि शूद्र वर्ण पूर्णतया सेवा और सफाई कर्म से जुड़ा हुआ था तथापि सफाई का सभी को पूरा ध्यान था, क्योंकि भगवद्भजन और यजन कार्य बिना आंतरिक और बाह्य स्वच्छता के संपन्न नहीं होते। वैश्य वर्ण के लोग ऋषि और वाणिज्य के कर्ता थे, लेकिन 'मागृध: कस्य स्विद्धनम्' के पूर्णतया पालनकर्ता भी। इसीलिए वस्तुओं में अपमिश्रण का पूर्णतया अभाव था। प्रकृतिजात वस्तुओं के उपयोग के कारण पर्यावरण संरक्षण को कोई खतरा न था। क्षत्रिय वर्ग के लोग शेष वर्णों तथा देश की रक्षा का भार सँभाले हुए होकर भी रक्षा के अस्त्र-शस्त्रों में ऐसे पदार्थों के प्रयोग से सर्वथा दूर थे, जिनका प्रभाव पर्यावरण प्रदूषणकारी हो। इस प्रकार वर्ण व्यवस्थानुसार भी भारतीय संस्कृति में पर्यावरण पूर्णतया प्रदूषण मुक्त और सुरक्षित था।

भारतीय संस्कृति में कर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:', 'कर्मण्येवाधिकारस्ते', 'कर्मप्रधान विश्व रचि राखा' जैसी बोधात्मक उक्तियों ने भारतीय संस्कृति के पालक कर्मवीरों को उन क्रियाओं से सर्वथा मुक्त रखा, जो असामाजिक, अमानवीय और अलोकहितकारी होकर असद्कर्मों की संज्ञा पाती है। भारतीय संस्कृति की संयुक्त परिवार-प्रणाली से प्राप्त सुरक्षा की भावना ने परिवार के प्रत्येक सदस्य को कर्त्तव्य के प्रति उत्तरदायी बनाकर आत्मीयता, सद्भाव और प्रेम की भावना का ऐसा प्रभामंडल तैयार किया, जिसमें 'असद् विचार की किरण को प्रवेश ही नहीं मिल सकता था। फलत: यहाँ कर्म 'धर्म' का पर्याय बनकर सम्मानित हुआ। उसे और अधिक प्रवृत्त करने के लिए महापुरुषों ने मानव को उस कर्म की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया, जिसे करके मानव व्यक्तिगत और व्यक्तिहित से जुड़ा रहकर भी लोकहित और विश्वहित से स्वत: ही जुड़ जाता है। 'विष्णु धर्मोत्तरपुराण', 'वराहपुराण', 'मत्स्यपुराण' आदि में मानव के उन्हीं कर्मों का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है–

दशकूपसमा वापी दशवापी समो ह्रद:।

हृद्समः पुत्रः दश पुत्र समो द्रुमः।।

अब आप ही बताइए क्या वृक्षों आदि के रहते पर्यावरण में प्रदूषण फटक भी सकता है? यदि वर्णानुसार कर्मों के विवेचन का आँकलन करें तो पाएँगे कि यहाँ भी ऐसा कोई कर्म न होता था जिससे पर्यावरण-प्रदूषण की संभावना भी होती। सुविधा की दृष्टि से कर्म सिद्धांत के अंतर्गत हम उन तीन गुणों पितृ, ऋषि और देव को भी रख लेते हैं जिनकी भूमिका पर्यावरण-संरक्षण में किसी भी प्रकार न्यून करके नहीं आँकी जा सकती। पितृऋण के अंतर्गत पिता का कर्त्तव्य संतान को उत्तम शिक्षा और संस्कारों से विभूषित कर समाज में ऊँचा और प्रतिष्ठित स्थान दिलाना माना गया है। पुत्र के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हुए पुत्र को 'प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं सः पुत्रे' कहकर परिभाषित किया गया है। भारतीय संस्कृति में 'संतति-निरोध 'हेत' 'संयम ही साधन' है की अनुगूँज तो सुनाई देती है लेकिन किसी बाहरी साधन का उल्लेख और समर्थन यहाँ नहीं मिलता। अधिक संतति पर बल देने के स्थान पर संस्कारवान एक पुत्र पर ही बल दिया गया है, जिसकी ध्वनि 'वरं एको गुणी पुत्रो न च पुत्र शतान्यपि' तथा 'कोऽर्थः' पुत्रेण जातेन यो न विद्वान न धार्मिकः आदि श्लोकों मे आज भी सुनाई देती है। अब प्रश्न उठता है कि पर्यावरण-संरक्षण में पितृ-गण की भूमिका कहाँ और कैसे उपस्थित होती है? तो इस संबंध में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य की अपसंस्कृति और सभ्यता की भाँति न सारा ध्यान भोग पर था और न आज भी पॉलीथीन निर्मित उस 'फ्रेंच लैदर' को इसमें कोई स्थान है, जो अपनी अविनाशी गुणधर्मिता के कारण धरती में पड़कर मृदा-प्रदूषण करते हुए धरती माँ की उर्वराशक्ति को प्रभावित ही नहीं, विनष्ट करके पर्यावरण-प्रदूषण में प्रभावी भूमिका निभाता है। वह जगद्विख्यात है कि भारतीय संस्कृति में विद्यार्जन के स्थान गुरुकुल थे। जनसंकुल से दूर वृक्षों-वनस्पतियों से आवृत्त वन्यपशुओं के स्वच्छंद विहार हेतु मुक्त, किंतु अध्ययन-अध्यापन के लिए उपयुक्त, ऋषियों के तपोवन ही गुरुकुल कहलाते थे। ऋषिगण का निर्वाह स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा समाज को ज्ञानकी ज्योति से प्रकाशित करते हुए समाज-कल्याण के रूप में पूर्ण होता था। इस वातावरण में प्राणियों के पारिस्थतिकीय तंत्र और सुविचार पूर्वक तैयार किए गए संस्कार संपन्न नवयुवकों सामाजिकों के कारण पर्यावरण-संरक्षण को पूर्णावकाश था। 'देवगण' यज्ञादि कर्मों से संबद्ध होकर समाज का कल्याण करते हुए पूर्णता को प्राप्त करता था। भारतीय संस्कृति 'यज्ञप्रधान' संस्कृति रही है। अतः किसी भी शुभ कार्य के क्रियान्वयन से पूर्व 'यज्ञ' का विधान आवश्यक है। यदि हम इन संस्कारों में से मात्र अंतिम संस्कार–'अंत्येष्टि' को ही लें, जो व्यक्ति की मृत्यूपरांत उसके शवदाह के रूप में संपन्न किया जाता है तो ज्ञात होगा कि मृतक की देह को सूखी लकड़ियों, सुगंधित द्रव्यों, घृत, शाकल्य आदि से आच्छादित करके मंत्रोच्चरण सहित एक विशेष प्रकार का यज्ञ इसमें भी होता है, जिससे शवदाह से उत्पन्न दुर्गंध से वातावरण-पर्यावरण दूषित होने से सर्वथा मुक्त रह सके। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय संस्कृति में जीवन के अंतिम संस्कार की संपन्नता पर भी पर्यावरण-संरक्षण का पूरा विचार और ध्यान था। जो आज भी बना हुआ है। भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन के कुछ अन्य कर्तव्यों में 'यम-नियम' पालन पर विशेष ध्यान दिया गया है। अहिंसा में 'जियो और जीने दो' का ही भाव नहीं, 'त्याग' की भी भावना समाहित है। डॉ॰ राजेंद्रप्रसाद ने इसीलिए अहिंसा का दूसरा रूप 'त्याग' कहा है। जहाँ तक त्याग द्वारा पर्यावरण-संरक्षण का सुप्रश्न है इस संबंध में इतना कहना ही अलम है कि

त्याग 'भोग' को रोकता और आत्मानुशासन को बल देता है। व्रत, उपवास आदि त्याग की दशा में किये जानेवाले प्रयत्न ही तो हैं। त्याग के साथ भोग 'तेन त्यक्तेन भुजीथा:' भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है, क्योंकि स्वेच्छापूर्वक किया गया। त्याग संघर्ष और कटुता को मिटाकर उदारता का सृजन करता है।

संदर्भ

1. जयोदय, 4/16
2. जयोदय, 23/41
3. सागार धर्मामृत, 2/11
4. शोधार्थी श्रीमती राशि का शोधप्रबंध, पृ० 11, 21, 24,

ए-40, **गोविंदपुरम फेस**-2
आवास विकास, बिजनौर 246701
मो० 9045990442
drneetusinghkamboj@gmail.com

डॉ॰ कैलाश वाजपेयी के काव्य में पर्यावरणीय चेतना

डॉ॰ भावना देवी

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कवि डॉ॰ कैलाश वाजपेयी नई कविता को एक निश्चित आयाम देनेवाले कवियों में से एक हैं। कैलाश वाजपेयी जी की कविताओं में संवेदनाओं के विविध रूप देखने को मिलते हैं। संवेदना के उन्हीं रूपों में से एक है उनकी पर्यावरणीय चेतना। विविध काव्य संकलनों में संकलित उनकी रचनाओं में जीवन के अनेक रंग बिखरे हुए हैं परंतु इस सबके बीच उनकी पर्यावरणीय चेतना मानव और मानवता के प्रति उनकी संवेदनशीलता का प्रमाण है। अपने काव्य संकलन 'भविष्य घट रहा है' में वे लिखते हैं—

मनुष्यता खतरे में है, छपा वाक्य पढ़कर, रुक गया मैं
सोचता हुआ, कागज के बारे में
जो कभी पेड़ हुआ करता
रहा होगा किसी जंगल में
जिसे काटकर जल गिराया गया धड़ाम से
धँस गई जमीन
दिए रहती है जो जकड़न जड़ों को,
जाल जिनका फैला है पृथ्वी के भीतर के कारखाने में
जहाँ एक दूसरा साम्राज्य फैला है
नम ऊष्मों के अदृश्य तारों को
सहयोग देता कि चल सके
ऊपर के दृश्यजगत् का कारोबार
बीज फटकर दो हो
बढ़े ऊपर अधोभाग/ बनकर फसल लहरे
न्योते बादल को, जिनके अर्घ्य से
आए नदियों में जवानी/ बसें तट पर नए नगर
समाज में प्रतिभाएँ, सूझ से अपनी
अधिक सुखद जीवन जीने का
सारा सामान जुटा पाएँ/ कम कर बाधाएँ सब
उड़कर ईंधन के प्रताप से
वहाँ पहुँच पाएँ, कम वक्त में, जहाँ
कभी जल था, जंगल, वनस्पतियाँ, वातावरण
और अब सिर्फ जहाँ

 ISSN 0975-735X

धूसर चट्टान है, निरापद, निर्जन
मर चुकी मनुष्यता
नष्ट हो गई न जाने कब/ और
और अधिक सभ्य होने के/ चक्कर में।[1]

इस कविता में कवि ने अपने मन की व्यथा व्यक्त की है कि सचमुच मनुष्य और उसकी मनुष्यता और अधिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की चाह में पर्यावरण को नष्टकर जीवन के वास्तविक सुखों को ही नष्ट कर रहे हैं।

मनुष्य की स्वार्थपरता के चलते प्रकृति और पर्यावरण की दशा दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही है–

तुम्हारा बना ले गए लोग
छोड़ गए मिट्टी से जुड़ा ठूँठ
पानी की धरती में/ बंद बहती है चादर ओढ़कर
जड़ गाना गाएगी
जल्दी ही घाव पर/ कोंपल आ जाएगी।[2]

कैलाश वाजपेयी जी को यह बात बहुत अखरती है कि स्वच्छ वातावरण में विचरण करते पक्षी, पेड़ों के झुरमुट में चहचहाती गोरैयाँ अब विलुप्त होती जा रही हैं–

सारी गोरैयाँ/ जो किसी दहकी दुपहरियाँ के
शंकित सन्नाटे में मेरी कुश-शय्या तक आई थीं
तिनके ले-लेकर चली गईं
अब उनका नीड़/ कहीं और/ कहीं और है...[3]

सृष्टि में जीवन का आधार पेड़-पौधे ही हैं परंतु आज विकास और समृद्धि की होड़ में मनुष्य ने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है। सृष्टि की रक्षा के लिए जीवन की रक्षा के लिए, वृक्षों की रक्षा किया जाना अति आवश्यक है। एक बार फिर से हम सबको अपने अंदर बदलाव लाने की आवश्यकता है। प्रबंध रचना 'डूबा-सा अनडूबा तारा' में कैलाश वाजपेयी जी ने लिखा है–

पहले भीतर जरूरी है/ बदलाहट भिक्खुओ!
इसलिए नमनशील रहना
सेवा में रहना वृक्षों की
वृक्ष जिंदगी के पहरुवे हैं।
प्रतीक सब तरह के उछाह के/ हरेरे विकास के
वृक्ष ही बुलाते हैं बादल को
वर्षा की एक-एक बूँद
अन्न का दाना भर नहीं
पृथ्वी में बूँद अदृश्य संसार
जीव जंतुओं का भी सहारा है
हिलमिल कर गाना ही हो तो

तरुदेवो भव दोहराना।[4]

बदलते समय ने पर्यावरण में अविश्वसनीय परिवर्तन ला दिए हैं। अब पहले से कहीं अधिक गरमी बढ़ गई है। ग्लेशियर पिघलने लगे हैं। ऐसे समय में आवश्यकता है कि हम सब जागरूक होकर अपने पर्यावरण का संरक्षण करें। अपनी पुरस्कृत कृति 'हवा में हस्ताक्षर' की एक कविता में कैलाश वाजपेयी जी लिखते हैं–

तुम अगर परिवर्तन के/ पक्षधर हो
मिट्टी से शुरू करना/ जो बाँझ हो रही है।
धान से शुरू करना/ जो गोरे पंजों के चंगुल में जा रहा।
वृक्षों से शुरू करना
जिनका वध हो रहा है बेरहमी से।
वायु से शुरू करना जिसका/ दम घुटा जा रहा।
नदियों से शुरू करना/ जिनका यौवन रोज लुट रहा
यही सब तो हो तुम
अपनी जड़ों के बिना पड़ताल कहाँ?[5]

कैलाश वाजपेयी जी की संवेदना उनकी पर्यावरणीय चेतना इतनी गहन है कि वे स्वयं पेड़ होना चाहते हैं–

पता नहीं मैं/ पेड़ कब हूँगा
हरा और खुरदरा
कब तू/ चिड़िया
आएगी झूलने/बातें करने
मेरी शाख पर।[6]

उनके काव्य से झाँकती उनकी पर्यावरणीय चेतना प्रकृति और स्वच्छ पर्यावरण को जीवन का आधार मानती है। जीवन और संसार को पेड़-पौधों के अभाव में ठूँठ होते जाने और विरस होते जाना उन्हें असहनीय प्रतीत होता है। वे किसी भी प्रकार से इसे जितने भी दिन के लिए संभव हो, बस बचा लेना चाहते हैं–

इस कुछ-कुछ पीले/ पड़ते संसार को
क्या खाद पानी मैं दूँ
फूट पाना/ याद आ जाए कोंपलों को
चिड़ियाँ तो आती चली जाएँगी
बावजूद
सूखती टहनियों/ दर्राती शाखों के
न आएँ फूल/ कोई काँटा ही हरियाकर
उग आए
कौनसी जमीन/ उठा लाऊँ कहाँ जाकर मैं
जो धीरे-धीरे
ठूँठ होने में व्यस्त/ विरस होता यह वृक्ष

कुछ और सावन झेल जाए
कौनसी जमीन/ उठा लाऊँ कहाँ जाकर मैं।[7]

हरे-भरे पेड़-पौधे इस पर्यावरण का जीवंत आधार हैं। वे न केवल प्राणीमात्र के जीवन का आधार हैं, अपितु उनका लहलहाना इस बात का भी प्रतीक है कि धरा पर अभी जीवन के साथ-साथ मनुष्यता भी शेष है।

आलोचक ओम निश्चल जी ने कैलाश वाजपेयी और उनके साहित्य को बहुत निकट से देखा था। वेब पत्रिका 'समालोचन' के 'सबद भेद : कैलाश वाजपेयी' में उन्होंने लिखा है– 'कैलाश वाजपेयी की चिंता ध्वस्त होती जा रही परिस्थितिकी और पर्यावरण असंतुलन को लेकर रही है। वध हो रहे वृक्षों, बाँझ हो रही पृथ्वी को क्षीण हो रही नदियों को लेकर थी। वे अकारण नहीं कहते थे कि भविष्य घट रहा है। कपिल के सांख्य का आखिरी भोजपत्र फँसा फड़फड़ा रहा–अंत हो रहा था पुनर्जन्म पस्त पड़ी क्रांति का। उनकी कविता भारतीय और पाश्चात्य विचार सरणियों, आर्ष ग्रंथों, मिथकों और आख्यायिकाओं के विपुल अध्ययन चिंतन का परिणाम है। उनकी प्रज्ञा बहुवस्तुस्पर्शिनी है।'[8]

संसार की नश्वरता को देखकर नष्ट होते हुए पर्यावरणीय उपादानों को देखकर वे कभी-कभी स्वयं को बहुत निराश अनुभव करते थे। उस समय उन्हें अपनी स्वयं की सृजना भी निरर्थक प्रतीत होती थी। 'देहांत से हटकर' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए–

किसके लिए सृजना करूँ/ और क्यों करूँ
ये तमाम पेड़, पहाड़ नदियाँ
बार-बार जो नष्ट हो चुका है
क्यों? आखिर क्यों
वही-वही मूर्खताएँ करूँ
किसके लिए क्यों रचना करूँ!
यह सब जो निकलेगा धरती तोड़कर
नगरों में बदल जाएगा
पेड़-फर्नीचर/ पहाड़-सड़क या और कुछ...[9]

कैलाश वाजपेयी जी की रचनाओं में स्पष्टत: दीख पड़नेवाली यह पर्यावरणीय चेतना केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं अपितु भावनात्मक स्वर पर भी कवि की संवेदनशीलता को दर्शाती है। यह उनके पाठकों को बारंबार न केवल नष्ट होते पर्यावरण के प्रति सचेत करती है अपितु उन्हें इसकी रक्षा के लिए प्रेरित भी करती है। एक पेड़ अपने मूल रूप में केवल कल्याणकारी है और था भी–

अपने ऊपर बिछी/ खुदकुशी आग–
कुहराम, राख लीला/ लेकर आया हूँ।
मैं जानता हूँ
नींद धुला साफ/ जागा अभी-अभी
तुम्हारा दिमाग

मेरे जहर से/ काला पड़ जाएगा।
ऐसा नहीं था मैं/ कल जब पेड़ था।[10]

कैलाश वाजपेयी जी ने अपनी साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कृति 'हवा में हस्ताक्षर' में पृथ्वी पर सब तरफ फैले, विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों द्वारा पर्यावरण पर आए संकट के वास्तविक विध्वंसक दयनीय स्तर का उल्लेख किया है–

नदी बह रही पता नहीं/ कहाँ क्या-क्या छूकर
दुबली पड़ती नदी/ एक दिन गायब हो जाएगी
मगर सिर्फ नदी क्यों
पहाड़, पुल सब बूढ़े हो रहे
बहे चले जा रहे और मैं
दुनिया को सच माने बैठा/ ठिठुर रहा हूँ।[11]

प्रदूषण ने जैसे धरा से सब-कुछ धूमिल कर मिटा देने की ठान ली है। उसके विध्वंसक रूप ने धीरे-धीरे पृथ्वी से नदी, पहाड़, पुल सब-कुछ का अस्तित्व ही मिटाने की ठान ली है। इस पर भी मनुष्य चेतता नहीं वह विकास की दौड़ में आँखें बंद करके इस प्रकार दौड़ा जा रहा है कि अपने ही दोनों हाथों से अपना ही संसार नष्ट किए जा रहा है। मनुष्य इतना भी नहीं समझ पाता कि यह प्रकृति और इसका स्वच्छ वातावरण ही तो उसके जीवन को सँभाले हुए है–

आकाश, जल, धूप, वनस्पतियाँ सब
तुम्हें सँभाले हैं
एक-एक कोशिश तुम्हारी बेहाल
....
दोबारा धरती पर आने को
क्या कोई पेड़ या चिड़िया
क्या कोई पोखर या सागर
क्या कोई जर्रा या भूधर
क्या ऐसा है जो सेवारत न हो
अस्तित्व की शर्त ही
एक-दूसरे पर भरोसा है।[12]

प्रकृति और पर्यावरण की मुनष्य के लिए जो उपादेयता है, वह उसे उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी उसे देती है परंतु मनुष्य ने अब पर्यावरणीय उपदानों का केवल दोहन करने की ठान ली है। उनकी रक्षा और संरक्षण के दायित्व से उसने मुँह मोड़ लिया है। अपने मिथ्या विकास के नाम पर वह अब सर्वनाश करने को आतुर है। देहांत से हटकर की एक कविता में कैलाश वाजपेयी लिखते हैं–

उठा हुआ हाथ/ मत रोको कसाई का
पृथ्वी का चेहरा / सभ्य बनाने में लगे हैं वे
रुकेंगे नहीं/ उन्हें जाने दो
मिट्टी की कोख तक पटाखा छुड़ाने।

 ISSN 0975-735X

जहर घोलने दो समुद्र में
मरीनों को।[13]

इस कविता में कवि ने प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट करते मनुष्य के वे दुर्लभ चित्र प्रस्तुत किए हैं, जो हिंदी साहित्य में बहुत कम देखने को मिलते हैं। प्रकृति और पर्यावरण के प्रति कवि का प्रेम उन्हें देश-विदेश की सीमाओं से ऊपर उठा देता है–

पृथ्वी तो किसी की नहीं है
तुम अपनी मर्जी से कुछ भी कहते रहो
घर मेरा दर, मेरा देश
सब सतही है।
गिरती लुढ़कती फँसी अपनी ही कक्षा में
पृथ्वी तो किसी की नहीं है
रोएँ की तरह तुम उगते हो
मिट्टी के गर्भ में छिपे कारखाने से
रोते-चिल्लाते हवा की धौंकनी चल पड़ती है।
तार उगलते हो तुम ऊर्णनाभ की तरह
चक्कर दूर चक्कर
जाल बुनते हो शिकार की तलाश में
खुद खाए जाने का सिलसिला
चलता जाता है
होती नहीं जीत मेघ आते हैं
होकर दिवालिया जाते हैं मेघ
यहाँ करो कुछ नहीं करो
होती ही चलती है यात्रा
पहियाए पैरों वोले तुम–
तुमको लगता है तुम कहीं पहुँच रहे हो।[14]

कैलाश वाजपेयी जी की पर्यावरणीय चेतना का विस्तार इतना ही नहीं है। वे मनुष्य की विध्वंसक गतिविधियों पर प्रकृति की जीत दिखाते हैं–

जिंदगी का बहना
निस्सीम स्वायत्व तंत्र का करिश्मा है
जो हर हाल में खुद को बचाता है
ये जो करोड़ों हजार बीज
प्रकृति बनाती/बिछाती है
यह सिर्फ इसलिए/ क्षय न हो
महामूल्य बनते यों ही नहीं
टुच्ची कोशिश अगर न चले/ दूसरा मरे गले
तंत्र का अपना बचना जरूरी है

कोशिश मैं भी नहीं करूँ/ या करूँ मैं
स्वायत तंत्र, जिंदगी का यंत्र
खुद-खुद को बचाएगा।[15]

इस कविता में कैलाश वाजपेयी ने मनुष्य से प्रकृति और पर्यावरण के साथ एक सकारात्मक संबंध स्थापित करके चलने की अपील की है। इसी में ही मनुष्य का हित है। अन्यथा पकृति के विस्तृत स्वरूप के समक्ष मनुष्य इतना छोटा है कि उसके विकराल रौद्र का सामना कर पाना भी उसके लिए असंभव है।

कवि की पर्यावरणीय चेतना उसे बार-बार पेड़-पौधों के निकट ले जाती है और वह फिर-फिर किसी न किसी रूप में कवि की रचनाओं में उतर पाते हैं। देखिए–

जो अपनी जड़ से नफरत करता हो
ऐसा कोई वृक्ष मुझे अब तक नहीं मिला
पतझर के दिनों में विलाप
प्रमाद वसंत आने पर
जो व्यंग्य करता हो/ पास उगी घास पर
अथवा फिर बैर बिना बात
पड़ोस में फैली बेल से
ऐसा कोई वृक्ष मुझे अब तक नहीं मिला
कोयल पर मुग्ध/ क्रुद्ध कौवों पर
ग्रस्त जातिभेद से
हत्या कर देता हो/ जो छाँह में सोए राहगीर की
ऐसा कोई वृक्ष मुझे अभी तक नहीं मिला
मैं गिरता-पड़ता आदमी पस्त हो चुका हूँ
जनजीवन की कड़ुवाहट झेलते
ओ धरती माँ! मुझे वृक्ष बनाना अगली बार
जैसे ही बंद-बंद सी आँख बंद हो![16]

कवि का तात्पर्य यही है कि वृक्ष सदैव सबका कल्याण ही करते हैं उनमें मनुष्य की भाँति विभिन्न प्रकार के विद्वेषों का भाव नहीं होता तथापि मनुष्य स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझता है तथा वास्तव में स्वयं से कहीं अधिक श्रेष्ठ वृक्षों को अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए नष्ट कर देता है। कैलाश वाजपेयी जी के एक साक्षात्कार की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

'डॉ॰ कैलाश वाजयेयी सभ्यता के ध्वंस मानवीय लोप, बंजर होते संवेदन और संताप से झुलसते आँसुओं पर विलाप, रुदन करती हुई प्रकृति और क्षय हो रही जलवायु और निम्न स्तर पर पहुँचती हुई पर्यावरणीय स्थिति को प्रभावी और स्पष्ट रूप में व्यक्त करनेवाले कविता जगत के एक वरिष्ठ नागरिक के रूप में दिखाई देते हैं। भले ही हिंदी के बड़े आलोचकों, कवियों के मध्य में खास स्थान न प्राप्त हो तथा प्रशस्ति-पत्र से लदे-फँदे आलोचकों की सूचियों में उनका नाम न हो, पर उनकी आवाज इतनी प्रखर और वेधक तथा सत्वग्राही है कि वह अपने

अनहद से निष्करुण होती हुई पृथ्वी को भी कँपा देती है।'[17]

प्रकृति के प्रति मनुष्य की उदासीनता ने उसे पर्यावरण का शत्रु बना दिया है। मनुष्य के इस शत्रुतापूर्ण रवैये के कारण आज उसका एवं समस्त प्राणीजगत का जीवन वर्तमान और भविष्य संकट में है। कवि प्रकृति, पर्यावरण और जीवन को बचाना चाहता है, परंतु प्रदूषण रूपी इस विष का क्या करे! वह अकेले ही इस पूरे विष का पान भी तो नहीं कर सकता। कवि की यह दुविधा और विवशता इन पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई दे रही है—

कैसे पी लूँ सारा विष/ विलय से पहले
मुझ नगण्य के लिए यह/ पेचीदा सवाल है।
सब फेंके दे रही सभ्यता
धरती की कोख/ दिन-ब-दिन खाली
पानी हवा आकाश/ हरियाली धूप
धीरे-धीरे बढ़ती चली जा रही/ कंगाली सब्र की
समझ कैद/ बड़बोले वालों की कारा में
त्वरा के चक्कर में/ सब इंतजार हो गया है
काल को पछाड़कर/ तेज रफ्तार से
सब-कुछ होते हुए/ होना बदल गया है
समृद्धि के अकाल में।[18]

पृथ्वी पर मनुष्य से युगों पहले केवल पेड़-पौधों और प्रकृति का ही अस्तित्व था। एक कविता में कवि ने लिखा है—

पहले पहल धरती पर वे हुए
उनका घराना/नस्ल उनकी
उनका अपना सबसे पुराना है।
'यहोवा' ने उन्हें सब-कुछ दिया
तेज भागती नदियाँ, हिरनियाँ
कई-कई रंगों की पोशाक पहने
सजी-धजी खिले फूलों की क्यारियाँ
समय पर बरसती बदलियाँ
पुरवा बयार, फुहार फसल धानों की/ यव गेहूँ की
सब-कुछ जो चाहिए/ सभी लोगों को
सब दिया यहोवा ने/ एकसार।[19]

पर्यावरण का प्राकृतिक स्वरूप जो मूल रूप में ही सबसे अधिक कल्याणकारी था उसमें मनुष्य का हस्तक्षेप जितना अधिक बढ़ता गया, यह वस्तुतः उतना ही अधिक विकृत और अमंगलकारी होता गया—

सब कुछ चुपचाप/ घटता चला गया
बँटता गया आकाश
नदियों की कमर तोड़/ कैद कर लिया गया पानी को।

पहाड़ों को चूर-चूर कर नगर बसे
हरे-भरे जंगल बदल गए दरवाजों में
मेज, कुर्सी, ग्रंथ, अखबारों में
बिना गर्भ के भी शिशु गढ़ने की/ युक्ति प्रचलित हुई
सारे के सारे संबंध/ छुई मुई।[20]

पर्यावरण के प्रति मनुष्य की नकारात्मक विचारधारा से निराश होकर कैलाश वाजपेयी लिखते हैं–

पृथ्वी का एक ही भविष्य है
बाँझ हो गए निर्जन
जल-जलकर राख हो ले
बेगानी या रो-रोकर पानी-पानी
सूरज से कोई/ छुटकारा नहीं।[21]

अंततः वे मनुष्य को चेताते भी जाते हैं कि अभी भी उसके पास समय है अवसर है कि वह धरती को बचा सकता है। जीवन को बचा सकता है–

अभी हवा इतनी फटेहाल नहीं
न धरा उतनी कंगाल
बादल आ ही जाते हैं बजाने/ जलतरंग
शेष बचे पक्षी/ बुनते ही रहते हैं नीड़
मोर पपीहे/ अब भी गा ही लेते हैं
बावजूद क्लेश देहदाह के/ होते ही रहते स्वयंवर
मीठी किलकारियाँ/ सुन पड़ती यहाँ-वहाँ
रतजगा होता है/ तमाम व्यवधानों के बावजूद
बंद कब किया/ फूलों ने खिलना
दृष्टि बदलने से बदला जाता दृश्य
तब समझना वह अध्याय है।[22]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कैलाश वाजपेयी जी की पर्यावरणीय चेतना अपने समकालीन कवियों से कहीं अधिक गहन एवं व्यापक है। उन्होंने प्रकृति एवं पर्यावरण को न केवल निकट से देखा था अपितु वे भावनात्मक स्तर पर भी उसके साथ गहरे जुड़ाव का अनुभव करते थे। उनके काव्य से झलकती उनकी पर्यावरणीय चेतना उनके इसी जुड़ाव का प्रमाण है।

संदर्भ

1. अनेकांत (भविष्य घट रहा है), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 27
2. फटे पेड़ के पास (सूफीनामा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 72
3. उपसंहार मैं (संक्रांत), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 83
4. तरुदेवो भव (डूबा सा अनडूबा तारा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 86
5. नवक्रांति (हवा में हस्ताक्षर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 13
6. पेड़ (तीसरा अँधेरा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 49

7. हास का अहसास (महास्वपन का मध्यांतर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 21
8. सबद भेद (वेब पत्रिका-समालोचन), ओम निश्चल, 11 मई 2015
9. सिकता मंथन (देहांत से हटकर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 97
10. अख़बार (तीसरा अँधेरा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 46
11. मेजर ली (हवा में हस्ताक्षर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 84
12. देशना-4 (डूबा-सा अनडूबा तारा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 92
13. विधेयवादी की चीख (देहांत से हटकर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 25
14. मिट्टी (सूफीनामा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 30
15. मेरी शह (महास्वपन का मध्यांतर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 97-98
16. तरु देवो भव (हवा में हस्ताक्षर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 31
17. है कुछ दीखै और (कैलाश वाजपेयी का साक्षात्कार), ओम निश्चल, अप्रैल 2015
18. भविष्य घट रहा है (भविष्य घट रहा है), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 12-13
19. दो डालियाँ' (हवा में हस्ताक्षर), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 70
20. अंधकूप–1 (डूबा-सा अनडूबा तारा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 158
21. क्षेत्रज्ञ (भविष्य घट रहा है), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 55
22. अंधकूप–2 (डूबा-सा अनडूबा तारा), कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 161

मकान सं॰ 70 **(निकट काली मंदिर)**
गाँव हल्दुखाता तल्ला, डाक कलालघाटी
जिला पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखंड) 246149
मो॰ 8076778931, 9105709598

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ वैशिष्ट्य और उपलब्धियाँ

डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया

फणीश्वरनाथ रेणु में बाह्य परिवेश और सामाजिक राजनीतिक यथार्थ के प्रभावशाली अंकन की दुर्लभ प्रतिभा तो थी ही पर उससे कहीं अधिक उनमें अपने पात्रों-चरित्रों के अंतर्मन में पैठने तथा उनका तद्वत् चित्रण कर देने की सम्मोहक कला थी। रेणु की अगाध संवेदना, सहानुभूति की बंकिम भंगिभा, दृश्यों और चरित्रों में अव्यक्त लय और संगीत को शब्दों में बाँध लेने की सिफत उन्हें एक महान कलाकार बनाती है। रेणु की कला सहृदय और रसिक पाठकों को तटस्थ नहीं रहने देती, बरबस उन्हें अपने सम्मोहन में बाँध लेती है, अपने साथ बहा ले चलती है। रेणु अपने समय के उन कुछ दुर्लभ कहानीकारों में है, जिनकी कहानियों में जीवन के संगीत का अंतर्व्याप्त गुण है, लोकसंस्कृति का स्वर-स्वरित हुआ है।

रेणु की कहानियों में सामाजिक जवाबदेही के साथ-साथ जनसाधारण की आकांक्षाओं और उसके मृदु कटु अनुभवों को पूरी ईमानदारी से कलात्मक रचाव देने की प्रवृत्ति मुखर है, ग्रामांचल के अनेक परिचित और विश्वसनीय संदर्भ आ गए हैं। रेणु ने 'ठेस', 'तीसरी कसम', 'जलवा', 'आत्मसाक्षी' जैसी कहानियाँ लिखीं, जिनमें सामाजिक जीवन के बहुत संघर्षमय चित्र भले ही न हो, समाज-संपृक्ति का भाव कमोवेश सबमें है। उन्होंने अपने अनुभव-संसार से आए चरित्रों की मन:स्थितियों, उनके अभावों और आंतरिक-बाह्य संबंधों को बगैर उग्रता और आक्रामता के साथ सँजोया है।

रेणु की प्रेम कहानियों में भी समाज संपृक्ति का एकदम अभाव नहीं है। 'तीसरी कसम' अर्थात् 'मारे गए गुलफाम' एक प्रेम कहानी है। अपरिचय की जमीन पर परिचय-अंकुर फूटता है, पौधा बन जाता है। इसके बावजूद यह केवल हीराबाई-हीरामन के अपनत्व की कथा भी नहीं है। इसमें परिवेश की विसंगतियाँ और ग्रामीण जीवन के कई विशिष्ट संदर्भ भी सहजता के साथ उभरे हैं। कहानी के शुरू में ही 'कंट्रोल' के जमाने की चर्चा है। हीरामन की बैलगाड़ी मोमबत्ती और विराटनगर के बीच सीमेंट और कपड़े की चोरबाजारी में सहयोग देती है और एक दिन सीमा के उस पार तराई में पकड़ ली जाती है। रेणु ने माल पकड़े जाने पर मुनीमजी और दारोगा की सौदेबाजी की ओर भी संकेत किया है। गाड़ीवालों की जिंदगी का एक बड़ा हिस्सा इस कहानी में है। गाँव के भोले-भाले मेहनती गाड़ीवान, कंपनी के नाम से 'सटक-दम' हो जानेवाले गाड़ीवान, नौटंकी देखने के पहले 'गुरु-कसम' खानेवाले गाड़ीवान। सबसे बड़ी बात तो यह कि वे अभाव को ढकती हुई आत्मीयता से भरपूर हैं। लालमोहर हीराबाई से कहता है, 'चार आदमी के भात में दो आदमी खुशी से खा सकते हैं। बासा पर भात चढ़ा हुआ है। हैं-हैं-हैं। हम लोग एकहि गाँव के हैं। गौवा-गरामित के रहते होटिल और हलवाई के यहाँ खाएगा हीरामन।' यह मुँह देखी बात नहीं है, ग्रामजीवन की अलिखित आचारसंहिता है, जो आज बुरी तरह आहत होती जा रही है। अपनी बोली में बोलने-बतियाने की व्यावहारिकता इस कहानी में बहुत दृढ़ता और निष्ठा से प्रतिपादित

हुई है–'कवराही बोली में दो-चार सवाल-जवाब चल सकता है, दिल की बात तो गाँव की बोली में ही की जा सकती, किसी से।'

समाज संपृक्ति आंशिक तौर पर 'रसप्रिया', 'लालपान की बेगम' और 'सिर पंचमी का सगुन' आदि कहानियों में भी है। 'रसप्रिया' में पंचकौड़ी मिरदंगिया की कहानी कहते-कहते कहानीकार गाँव के जीवन से दूर भागते उल्लास और मेहन-मजूरी में खँट रहे बचपन पर भी अँगुली रख देता है। झर जामुन की छाया में बैठकर मिरदंगिया सोचता है, 'जेठ की चिढ़ती दुपहरी में खेती में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं। कुछ दिनों बाद कोयल भी कूकना भूल जाएगी क्या? पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था। अब तो दुपहरी नीरस करती है, मानो किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है। अभाव में जीते हुए मोहना जैसे बच्चों के रोगग्रस्त होने और अंत में दिवंगत होने की विडंबना की ओर भी इसमें संकेत है, 'मिरदंगिया जानता है, मोहना जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है। क्या होगा पूछकर, कि दवा क्यों नहीं करवाते।'

'लालपान की बेगम' में उन सामाजिक बदलाव की ओर हल्का-सा संकेत है जो सर्वे के बाद गाँव के उस वर्ग में आया है जो शोषित और अभावग्रस्त है। बिरजू का बाप सर्वे के समय अपनी कुर्मा टोली के एक-एक आदमी को लाठी कड़ी करने और जमीन हासिल करने के लिए प्रोत्साहित करता है लेकिन जमींदार के खिलाफ लोग खाँस भी नहीं पाते। बिरजू के बाप के पास पाँच बीघे जमीन क्या आती है, दब्बू और कायर-जाति भाई-ईर्ष्या में फुँक जाते हैं। ईर्ष्या का कारण शुद्ध आर्थिक है। बिरजू की माँ के अनुसार सब उससे जलते हैं क्योंकि 'वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है। है किसी के पास एकपूर जमीन भी अपनी इस गाँव में? जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी।'

औरतों की बात में आकर मन-मुटाव कर लेने और 'सगुन' बनने-बिगड़ने की कहानी के समांतर 'सिरपंचमी का सगुन' में गाँव के भोलेपन और आत्मीयता से शहरी चालाकी और बेईमानी के संघर्ष की कहानी भी चलती है। सेंधाय समझता है कि मिस्त्रियों के प्रभाव में आकर उसकी पत्नी शहर में रहना चाहती है। माधो की माँ का उत्तर अप्रत्याशित है और गाँव की जमीन के प्रति आसक्ति का परिचायक भी–'शहर ही जाना था तो सिरपंचमी का सगुन किसलिए? मुझे क्या लक्का कबूतर समझ रहे हो, उड़ने के लिए छटपटाता है, जी मेरा?' सेंधाय अपनी बुद्धि को बैल की बुद्धि की संज्ञा देता है और माधो से कहता है, 'बबुआ! तू फाल खुरपी छोड़, सिलेट-पेंसिल धर! हम लोग बैल होकर रहे।' यह खेती छोड़ने का आह्वान नहीं है, अपितु किसान के शिक्षित होने की आवश्यकता का प्रतिपादन है क्योंकि शिक्षा के बिना गाँव आपसी मनमुटाव या मतभेद से मुक्त नहीं हो सकता।

रेणु की 'जलवा', 'आत्मसाक्षी' आदि कहानियाँ राजनीतिक छल, हिंसा और बेईमानी को निर्ममता के साथ उघाड़ती है। आजादी के बाद की राजनीति किस तरह अवसरवादियों की गिरफ्त में आकर गंदी होती गई और लोगों ने गद्दी के लिए ईमान, धर्म यहाँ तक कि देश को भी भुला दिया, यह किसी से छिपा नहीं है। 'जलवा' में इस प्रश्न को मुस्लिम सांप्रदायिकता से जोड़कर पेश किया गया है। फातिमादि के शब्दों में आजादी के बाद की स्थिति यह है कि 'बदाम की कसमें खाने वाले टुकुर-टुकुर देखते रहे और फिरकापरस्त अजदहों ने पूरी कौम को लील लिया।'

इस जड़ता के माहौल में नाम से जुड़ी हुई राजनीति की एक सक्रिय और सही भूमिका हो सकती थी, लेकिन प्रगतिशील शक्तियों की आपसी फूट और उनमें भी अवसरवादी तत्त्वों की घुसपैठ ने इस संभावना को न केवल धूमिल बनाया अपितु निराशा की सृष्टि भी की।

'आत्मसाक्षी' में रेणु इस सत्य को रेखांकित करते हैं कि जन आंदोलन की बागडोर गलत हाथों में है, गनपत जैसे समर्पित कार्यकर्ता अपमानित होते हैं, नेता जब चाहे पार्टी में दरार डाल देते हैं। शोषित-पीड़ित जनता में जोश खूब है, लेकिन उसे दिशा नहीं मिल रही है। रेणु की अधिकांश कहानियों की धुरी प्रेम या सेक्स है। प्रायः ग्रंथि-मुक्त और दो किनारों को जोड़ने वाली है। सेक्स या प्रेम से उत्पन्न आकर्षण उनमें सेतु के रूप में उभरा है। 'तीसरी कसम' में दो बिल्कुल अपरिचित स्त्री पुरुष कुछ घंटों की यात्रा में बेहद आत्मीय बन जाते हैं। 'तीन बिंदिया' की गीतावली अकरम के सुर में बँध जाती है। 'आत्मसाक्षी' में गनपत कुसुमी से जुड़ता है। जीवन के उत्तरार्ध में इस जुड़ने के पीछे देह की भूख तो निश्चय ही नहीं है। रेणु की कहानियों में संबंधों की सहजता और आत्मीयता है। इनका मूल स्वर यह है कि तमाम मनमुटाव के बावजूद किसी संबंध को तोड़ा न जाए। भले ही उस संबंध का आधार क्षीण हो।

'ठोस' कहानी में कलाकार के मन और उसकी संवेदना का ही चित्रण किया गया है। कलाकार अपने मन का बादशाह होता है। सिरचन जो आज गाँव का सबसे नाकारा आदमी प्रतीत होता है, उसे कोई मजदूरी पर भी बुलाने को तैयार नहीं होता है, उसका कारण सिरचन आरंभ से ही ऐसा नहीं था। वह भूखा रहकर भी बाँस की शीतलपारी, रंगीन मोढ़े, झिलमिलाती चिक, भूसी-चुन्नी रखने के लिए मूंज की रस्सी की बड़ी-बड़ी सतरंगी जातियाँ, हलवाहों को गर्मी से बचाने के लिए ताल की टोपियाँ न जाने कितनी चीजें बनाता था कि देखने वाले दाँतों तले उँगली दबा जाते थे। वह बहुत ही मेहनती तथा स्वाभिमानी कलाकार था–'दूध में कोई मिठाई न मिले कोई बात नहीं किंतु बात में जरा भी झाल वह बर्दाशत नहीं कर सकता। एक बार उसे ऐसी ठेस लगी कि उसने अपनी कला से ही संन्यास ले लिया।' रेणु ने कलाकार की संवेदना को केंद्रबिंदु बनाया है। चाची और मझली भाभी की कटुक्तियों से आहत सिरचन शीतलपाटी न बुनने की कसम खाता है लेकिन उसकी कसम टूट जाती है। अपनी मानू दीदी के लिए वह बिना कुछ लिए ही अपनी ओर से शीतलपाटी, चिक और आसनी को लेकर स्टेशन पहुँचता है।

'लालपान की बेगम' की शुरुआत बिरजू की माँ, जंगी की पतोहू और मखनी बुआ के वाग्युद्ध से होती है और परिणति सम्मिलित आमोद-प्रमोद और हँसी ठट्ठे में। 'तीर्थोदक' में लल्लू की माँ पंडाजी की लड़की अन्नपूर्णा से बेटी जैसे लगाव का अनुभव करती है। पति से हुई तकरार की समाप्ति भी कहानी के समापन के साथ हो लेती है। संबंधों के विघटन के मूल्यों पर भी आँच आती है और वे टूटने लगते हैं। संबंधों की सुरक्षा पर जोर देकर लगता है, रेणु मूल्यों के विघटन को रोकना चाहते हैं। अपनी मूल्यगत विरासत को गँवा देना, उन्हें अभीष्ट नहीं है। पारस्परिक सौहार्द, प्रेम, ईमानदारी, श्रम, परोपकार, श्रद्धा आदि मूल्यों के प्रति उनके कलाकार-मन में गहरी आसक्ति है।

कहीं-कहीं इन परंपरागत किंतु प्रासंगिक मूल्यों के टूटने का दर्द भी रेणु की कहानियों में उभरा है उन्हें आशंका है कि इनके अभाव में मनुष्य आधुनिक भले हो जाए, उसका मनुष्यत्व संदिग्ध हो जाएगा। 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में रेणु ने स्पष्ट लिखा है कि अपनी

कहानियों में मैं अपने को ही ढूँढता फिरता हूँ, अपने को अर्थात् आदमी को। आदमियत की यह तलाश वस्तुत: स्वरूप और आंतरिक जीवनमूल्यों की तलाश है। अनास्था, निराशा और स्वार्थ के लंबे-चौड़े संसार में वे अक्सर ऐसा व्यक्ति या व्यक्ति समूह खोज निकालते हैं, जो बुराई पर अच्छाई की, झूठ पर साँच की और व्यक्तिवादी जीवनमूल्यों पर सामाजिक मूल्यों को तरजीह देता है। रेणु रूढ़ परंपरावादी कतई नहीं हैं। अपनी कहानियों में उन्होंने खुदगर्जी, सांप्रदायिकता, पारस्परिक वैमनस्य, जातिवाद आदि अस्वस्थ प्रवृत्तियों और रूढ़ियों को एकदम नकार दिया है।

रेणु की कहानियों में शोषित और पीड़ित जनसामान्य प्रतिष्ठित हुआ है। उनकी अधिकतर कहानियों के पात्र उस तबके के हैं, जो श्रमजीवी हैं और भरपूर श्रम के बावजूद खाली पेट रहना या अभावों से जूझते रहना जिसकी नियति है। रेणु की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता मानवीय संवेदनशीलता, मानव-संबंधों का उद्घाटन एवं नवीन मूल्यों का अन्वेषण है। रेणु का स्वर मानवता का है और चित्रण यथार्थवादी है। रेणु का शिल्प एक कैमरामेन की भाँति है। वे छोटे-छोटे स्नैप शाट्स उतारते चलते हैं और व्यक्तियों आदि के बारीक से बारीक रेशे उतारकर भाव प्रवणता के साथ प्रस्तुत कर देते हैं। इस दृष्टि से उनका शिल्प प्रचलित परंपरा-शिल्प के प्रति एक सायास पर सफल विद्रोह कहा जा सकता है।

इस प्रकार फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों का स्थानीय रंग इतना गहरा और प्रभावशाली है कि पाठक के समक्ष बिहार का पूर्णिया जिला स्पष्ट हो जाता है। रेणु की घटनाएँ अँचल की सहायिका के रूप में प्रयुक्त हुई हैं। रेणु ने परिवेश को केंद्र में रखा है और घटनाओं तथा मानव को धुरी पर ही रखा है।

सहायक ग्रंथ

1. डॉ॰ गणपतिचंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय खंड, पृ॰ 465
2. डॉ॰ देवीशरण रस्तोगी, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 316-318
3. श्यामनंदन प्रसाद सिंह, हिंदी साहित्य : सर्वेक्षण और समीक्षा, पृ॰ 576-77
4. डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य का इतिहास : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ॰ 583
5. डॉ॰ गणपति चंद्र गुप्त, हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, खंड 3, पृ॰ 919

मंगलकश
394, **सर्वोदय नगर,**
आगरा रोड, अलीगढ़ 202001 **(उ॰प्र॰)**
मो॰ : 9897144022

भारतीय रंगमंच : एक संक्षिप्त परिचय

डॉ॰ कुमार चैतन्यप्रकाश

नाटकीयता भारतीय जीवन में नैसर्गिक रूप से गुंफित है। ऋग्वेद के कुछ सूत्रों में यम और यमी पुरुरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं। इन संवादों में नाटक के विकास के चिह्न हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के क्रमिक विकास में नाटक का योगदान सर्वोपरि है। सैंधव सभ्यता में भी रंगमंच के प्रमाणिक अवशेष पाए जाते हैं।

भारत में रंगमंच की परंपरा सदियों से चली आ रही है। नाट्यशास्त्र में भी नाटक की उत्पत्ति का संदर्भ है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, 'ब्रह्मा के आदेश पर भरतमुनि ने सभी वेदों से कुछ प्रधान वस्तुएँ लेकर नाट्यशास्त्र की रचना की, जिसे पंचम वेद की संज्ञा दी जाती है।'[1]

अन्य शास्त्र सिर्फ उच्चवर्ण के व्यक्तियों के लिए ही थे। इसके ठीक विपरीत नाट्यशास्त्र सभी वर्णों के लिए प्रयुक्त रचना थी। 'नाट्य परंपरा पहले भी विकसित रही होगी, क्योंकि नाट्य शास्त्र में सैकड़ों ऐसी रूढ़ियाँ बताई गई हैं जो बिना दीर्घकालीन परंपरा के नहीं बन सकती।'[2]

भारतीय संस्कृति में संग्रह करने की प्रवृत्ति कम थी। इसी कारण नाट्य प्रस्तुति के उपरांत प्रेक्षागृह को और व्यक्ति की मृत्यु के उपरांत शरीर को भी पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाता था। प्राचीन संस्कृत श्लोकों की रचनाएँ भी गेय अर्थात् गाई जा सकने वाली होती थीं। जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी गीतों के माध्यम से जीवित रहती थी। भारतीय संस्कृत ग्रंथों यहाँ तक कि नाट्यशास्त्र की खोज भी पश्चिमी विद्वानों ने की।

'विलियम जोन्स ने कालीदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की खोज की और 1789 ई॰ में इसका अनुवाद प्रकाशित किया।'[3]

संस्कृत नाटक शास्त्रबद्ध हुआ करते थे, जिसमें कठिन उपक्रमों के उपरांत ही नाटक की प्रस्तुति संभव थी। प्रेक्षागृह निर्माण हेतु भूमि का चयन और पात्रों की भूमिका निभाते समय पूरी तरह से संस्कृत नाटकों के व्याकरण को आत्मसात करना इत्यादि जैसे सभी कार्यव्यापार कठिन थे। हर्ष, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त आदि संस्कृत के उल्लेखनीय नाटककार थे। हालाँकि, कालीदास के पूर्ववर्ती नाटककार भाष ने कई बार संस्कृत नाटकों के व्याकरण का उल्लंघन किया। हजारवीं सदी तक संस्कृत रंगमंच का अवसान हो गया था। जिसके कई कारण थे—संस्कृत का जनसाधारण की भाषा न होना, अप्रभंश का तेजी से विकास होना और लोकनाटकों का फलना-फूलना इत्यादि। भारतीय रंगमंच की दूसरी परंपरा लोकनाटकों की है।

'भारतीय रंगमंच की परंपरा में मूलतः दो प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। पहली है—धार्मिक प्रवृत्ति जिसमें परंपराशील शैलियों की प्रधानता है। जैसे—रासलीला, यक्षगान इत्यादि तथा दूसरी है—लौकिक प्रवृत्ति अथवा लोकरंगमंच की प्रवृत्ति जिसमें रामलीला, स्वांग और नौटंकी जैसी लोकशैलियाँ हैं।'[4]

अँग्रेजों के आगमन के बाद भारतीय जनजीवन और परंपराओं के साथ ही भारतीय

 ISSN 0975-735X

रंगमंचीय शैलियों पर भी प्रभाव पड़ा। अँग्रेज अपने साथ अपने मनोरंजन के लिए एक नितांत भिन्न रंगमंच को लेकर आए, जिसे भारतीय विद्वानों ने आयातित रंगमंच की संज्ञा दी है। अँग्रेजों द्वारा आयातित इस भिन्न रंगमंच की परिकल्पना भारतीय रंगमंच में पहले नहीं थी। विलियम शेक्सपियर जैसे नाटककारों के नाटक अब प्रोसीनियम पर प्रस्तुत होने लगे। भारतीय रंगमंच के लिए शेक्सपियर और प्रेसीनियम स्टेज बिल्कुल नया था। अब छपे हुए नाटक को याद करके अभिनेता प्रोसीनियम मंच पर प्रस्तुत करने लगे थे। नाटक देखने के लिए शुल्क निर्धारित थे। दर्शकों और अभिनेताओं के बीच जो संबंध भारतीय रंगमंच में स्थापित थे, वह खत्म हो गया था। दोनों के बीच एक निश्चित दूरी आ गई थी। अब नाटकों को केवल सामने से देखा जा सकता था। जिस प्रकार संपूर्ण वैश्विक रंगमंच को टेलीविजन ने प्रभावित किया है, ठीक उसी प्रकार भारतीय परंपराशील रंगमंच को आयातित विदेशी रंगमंच ने प्रभावित किया था।

भारतीय परंपरा में नाटक रातभर चलते थे, जिसमें अलग से हास्य-विनोद और नृत्य की भी व्यवस्था होती थी और नाट्य-उत्सव के बहाने दर्शक पूर्ण रात्रि तक रंगमंच का आनंद लेते थे।

'परंपराशील रंगमंच में नाटक इंप्रोवाइजेशन के जरिये खेले जाते थे और रातभर चलते थे।'[5]

वहीं आयातित विदेशी रंगमंच में प्रदर्शनों की समय-सीमा निर्धारित थी। इसी विदेशी आयातित रंगमंच के नकल स्वरूप भारत में भी व्यावसायिक पारसी रंगमंच का उदय हुआ। भारत में रहनेवाले पारसियों ने इस रंगमंच का निर्माण किया, जिसकी वजह से इसे पारसी रंगमंच की संज्ञा मिली। पारसी रंगमंच की कई कंपनियाँ बनीं, जो देश में विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर नाट्य प्रस्तुतियाँ किया करती थीं। इन प्रदर्शनों का मूल उद्देश्य था–अर्थोपार्जन। इन प्रदर्शनों में ध्यानाकर्षण के लिए तमाम तरह के लटकों-झटकों का खूब इस्तेमाल किया जाता था। पारसी नाटकों में हास्य-विनोद, गीत-संगीत और साज-सज्जा की प्रधानता थी।

'मुनाफे के मुख्य ध्येय को अर्जित करने के लिए यह तमाम तरह के लटकों-झटकों पर आश्रित होती चली गई और सवाक सिनेमा के आगमन के बाद इसका अवसान हो गया। क्योंकि इसकी बहुत सारी विशेषताएँ सिनेमा ने अपना ली।'[6]

एक तरफ पारसी रंगमंच का अवसान हो रहा था, वहीं दूसरी तरफ मराठी और बांग्ला रंगमंच का उदय हो रहा था। तेजी से कई रंगमंडलियों का निर्माण हो रहा था। बांग्ला और मराठी रंगमंच ने आयातित विदेशी रंगमंच के सौंदर्यबोध को आत्मसात कर लिया था। ये रंगमंडलियाँ व्यावसायिक स्तर पर भी देशव्यापी प्रभाव छोड़ रही थी। नवजागरण का पूर्ण प्रभाव इन मंडलियों पर भी पड़ा था। इसलिए यहाँ के रंगमंच ने स्वयं को भी इस आंदोलन से जोड़ लिया था। इन रंगमंडलियों के कई नाटक समकालीन समय को मुखरता के साथ व्यक्त कर रहे थे।

'हिंदी में और संभवत: भारतीय रंगमंच में पहली बार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने विधिवत् रूप से साहित्यिक रंगमंच की स्थापना का प्रयास किया और इसे राष्ट्रीय चेतना से जोड़ने का आह्वान किया। लेकिन मराठी की तरह हिंदी में ऐसी परंपरा स्थापित नहीं हो सकी।'[7]

औपनिवेशिक आधुनिक रंगमंच की शैली यथार्थपरक थी, जिसमें संघर्ष केंद्रीय तत्त्व था। ज्यादातर नाटक तीन अंक के थे। गीत-संगीत नाममात्र का था। हालाँकि पारसी और मराठी रंगमंच में संगीत की उपस्थिति थी। जयशंकर प्रसाद ने हिंदी में अपने नाटकों में यथार्थपरक नाटकों का विकल्प खोज निकाला और भारतीय प्रदर्शन शैली को समाहित करके नाटकों की रचना की,

लेकिन नृत्य, गीत एवं संगीत का नितांत अभाव यथार्थवादी रंगमंच में हमेशा बना रहा।

भारतीय जननाट्य संघ 'इप्टा' के उदय से एक बार फिर भारतीय रंगमंच परंपराशील नाट्य शैलियों की ओर उन्मुख हुआ। इप्टा ने अपने अखिल भारतीय प्रयासों से स्वतंत्रता के पूर्व ही बंगाल के अकाल में नाटक खेलकर धन इकट्ठा कर अकाल पीड़ितों की सहायता की, फलस्वरूप रंगमंच प्रोसीनियम से बाहर निकला और राजनीतिक एवं जनसरोकारों से युक्त नाटक धड़ल्ले से प्रस्तुत होने लगे। कई वरिष्ठ रंगकर्मी इप्टा के साथ आए और इप्टा के आंदोलनात्मक रवैये को उन्होंने साथ मिलकर आगे बढ़ाया। इसके साथ ही रंगमंच में भारतीय रंग परंपराशीलता का खास अंग फिर से सम्मिलित हुआ, जिससे रंगमंच और दर्शकों के बीच की आभासी दीवार खत्म हुई और नुक्कड़ नाटकों का जन्म हुआ।

मूलत: शहरों के अभिजात्य वर्गों में आयातित रंगमंच की परंपरा आजादी के बाद भी बनी ही रही, जो वैश्वीकरण के इस दौर में आज भी फल-फूल रही है। आज भी पश्चिम के नाटककारों के अनुदित नाटक खूब प्रदर्शित हो रहे हैं। उस समय यह माना गया कि शहरी विसंगतियों की अभिव्यक्ति को यथार्थवाद ही व्यक्त कर सकता है। आगे चलकर के॰एम॰ पणिक्कर, हबीब तनवीर, शंभु मित्र और रतन थियम जैसे निर्देशकों ने साथ ही विजय तेंदुलकर और गिरीश कर्नाड जैसे नाटककारों ने यथार्थवाद से इतर अलग रास्ता निकाला। उन्होंने स्वीकार किया कि यथार्थवाद भारतीय रंग परंपरा को व्यक्त करने का साधन कभी नहीं हो सकता। क्योंकि भारतीय परंपराएँ मूल रूप से ही बिंबों, लक्षणों और संकेतों पर आधारित हैं। इसलिए परंपराशील प्रदर्शन शैली से ही रंगमंच व्यापक जन-समूह तक पहुँच सकता है। वास्तव में यह टैगोर और भारतेंदु का दिखाया हुआ रास्ता था। दूसरी तरफ मोहन राकेश, महेश एलकुंचवार जैसे बड़े लेखक यथार्थवाद के पक्षधर थे। उनका मानना था कि रंगमंच की यह नई शैली (नुक्कड़) एक खास विचारधारा से प्रभावित है। इसके आलंकारिक इस्तेमाल से एक नकली रंगमंच विकसित होगा और यह रंगमंच को आधुनिक मूल्यों की ओर जाने से रोकेगा। यथार्थवाद की परंपरा भी सौ सालों की है और यथार्थवादी नाटकों का भी एक लोक विकसित हो चुका है। इसलिए यथार्थवाद ही रंगमंच के आधुनिक मूल्यों के लिए सफल सिद्ध होगा। उस समय 70 के दशक में यथार्थवादी उपकरणों को अभारतीय बताते हुए 'जड़ों के रंगमंच' का नारा सामने आया था और परंपराशीलता ने यथार्थवादी रंगमंच को अपदस्थ कर दिया था। लेकिन शनै: शनै: यथार्थवादी रंगमंच भी आज अपने विकास के चरम अवस्था में पहुँच चुका है।

भारतीय रंगमंच उत्सव प्रधान था और सामाजिक जीवन की परंपराओं से जुड़ा हुआ था। दूसरी तरफ आधुनिक या आयातित रंगमंच में व्यावसायिक मूल्य हावी रहा। रंगमंच की तीसरी नई धारा जो कमोबेश दोनों प्रकारों का मिश्रण थी। यह रंगमंच अँग्रेजी शासन के प्रतिरोध स्वरूप उभरा था, जिसको दबाने के लिए अँग्रेजी राज्य ने 1876 का ड्रामेटिक परफॉर्मेन्श एक्ट लागू किया था। इस नई धारा के रंगमंच ने अँग्रेजी राज्य और आजाद भारतीय राज्य दोनों की आलोचना की। इप्टा का जन्म ही साम्राज्यवादी गतिविधियों के प्रतिरोध के लिए हुआ था। आगे चलकर कई और शैलियाँ भारतीय रंगमंच में शामिल हुईं। जिसमें रंगमंच ही जनता तक पहुँचता था। 70 के दशक में समकालीन स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए इस लोकप्रिय शैली में काफी गति आई। यहीं से तीसरे रंगमंच की अवधारणा विकसित हुई और मुखर होने लगी। सफदर हाशमी जैसे रंगमंच के

 ISSN 0975-735X

पुरोधा व्यक्तित्व ने नुक्कड़ नाटकों को राजनीतिक ओज दिया और अपना जीवन इस विधा को और अपनी विचारधारा को समर्पित कर दिया।

भारतीय रंगमंच इस तरह से विविध छवियों का कोलाज है, जिसमें भारतीय रस की केंद्रीयता है, तो पाश्चात्य संघर्ष भी है। भारतीय रंगमंच में स्तानिस्लावस्की, ब्रेख्त, रिचर्ड शेखनर, ग्रोडोवस्की जैसे प्रख्यात वैश्विक रंग मनीषियों के वैचारिक प्रभाव को साफ-साफ देखा जा सकता है। इसमें अभिजात मनोरंजन है, तो जन-प्रतिरोध का स्वर भी है और रंगमंच के सौंदर्यशास्त्र को व्यक्त करता हुआश्रृंगार भी है।

संदर्भ

1. राधाबल्लभ त्रिपाठी, संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम् वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 11
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 21
3. वी॰ राघवन, संस्कृत ड्रामा इट्स एस्थेटिक्स एंड प्रोडक्शन, मद्रास, पृ॰ 37
4. जगदीशचंद्र माथुर, परंपराशील नाट्य, बिहार, राजभाषा परिषद् पटना, बिहार, पृ॰ 4, 5, 12
5. अभय दुबे, समाज विज्ञान विश्वकोश अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय और राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 329
6. वही, पृ॰ 330
7. वही, पृ॰ 331

द्वारा श्री मनोजकुमार सिंह,

हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सेक्टर-3,

मकान नं॰ 4, **बरारी, भागलपुर (बिहार)** 812003

मो॰ 9546278531, 9304463992

रीतिपरक औचित्य की दृष्टि से विक्रमांकदेवचरितम्

डॉ॰ नीतूसिंह (पीएच॰डी॰, संस्कृत)

काव्य में गुण एवं रीतियों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्वनि, रस, अलंकार, वक्रोक्ति इत्यादि की भाँति इन पर भी साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने पर्याप्त विमर्श किया है। रसात्मक वाक्य को काव्य मानने वाले साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज स्पष्ट रूप से गुण, अलंकार और रीतियों को रसात्मक वाक्य रूपी काव्य के उत्कर्षक हेतु मानते हैं।[1] अपने पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रज्ञों के सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि शब्द और अर्थ काव्य के शरीर है, रस-भाव आत्मतत्त्व है, माधुर्यादि गुण शौर्यादि की भाँति रस-रूप आत्मतत्त्व के अपृथक सिद्ध धर्म हैं। श्रुति-दुष्ट आदि दोष काणत्व (काना होने) आदि की भाँति रसरूप आत्मतत्त्व के सौंदर्यापकर्षक हैं, वैदर्भी आदि रीतियाँ शरीर-संस्थान (अंग रचना) के समान काव्य-संस्थान हैं और अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार कटक, कुंडल आदि आभूषण की भाँति शब्द और अर्थ के सौंदर्यवर्धक हैं।[2]

साहित्यशास्त्र में रीति तत्त्व को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करने वाले आचार्यों में वामनाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने 'रीतिरात्माकाव्यस्य'[3] लिखकर रीतितत्त्व को काव्य की आत्मा मानने का अभिमत व्यक्त किया है। रीति क्या है? इसका विवेचन करते हुए उन्होंने 'विशिष्ट पदरचना रीति'[4] अर्थात् विशिष्ट पद-रचना का नाम रीति है, यह लक्षण प्रतिपादित किया है। आगे उस विशेष की व्याख्या करते हुए 'विशेषो गुणात्मा'[5] को रीति नाम दिया। यही कारण है कि 'रीतिसंप्रदाय' को 'गुणसंप्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है।

वामनाचार्य ने 'काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा:'[6] तथा 'तदतिशयहेतवस्त्वलकांरा:'[7] इन दो सूत्रों को लिखकर गुण तथा अलंकारों का भेद प्रदर्शित करते हुए अलंकारों की अपेक्षा गुणों के विशेष महत्त्व को प्रदर्शित किया है। गुण काव्यशोभा के उत्पादक होते हैं। अंलकार केवल उस शोभा के अभिवर्धक होते हैं। इसीलिए काव्य में अलंकारों की अपेक्षा गुणों का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए वामनाचार्य ने अंलकारों की प्रधानता को समाप्त कर गुणों की प्रधानता का प्रतिपादन करने वाले रीति संप्रदाय की स्थापना की। मम्मट आदि उत्तरवर्ती आचार्यों ने 'रीति' की उपयोगिता तो स्वीकार की है, किंतु उसे काव्य का आत्मा नहीं माना है। उनके मत में 'रीतयोवयवसंस्थानविशेषवत' अर्थात् काव्य में रीतियों की स्थिति वैसी ही है, जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों की। इन अवयवों की रचना शरीर के लिए उपयोगी भी है और शरीरशोभा की जनक भी है, फिर भी उसे आत्मा का स्थान नहीं दिया जा सकता है। इसी प्रकार काव्य में रीति का महत्त्व तथा शोभाजनकत्व होने पर भी उसे काव्य का आत्मा नहीं माना जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में रीतिपरक औचित्य की दृष्टि से विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य का अध्ययन करना है, अत: सर्वप्रथम गुणों और रीतियों का स्वरूप-विवेचन आवश्यक है।

वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट ने गुण का लक्षण करते हुए लिखा है कि 'आत्मा के शौर्य आदि गुणों के समान काव्यात्मभूत प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं, वे

 ISSN 0975-735X

'गुण' कहलाते हैं।[8]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज के अनुसार, 'जिस प्रकार प्राणि-शरीर में सारभूत आत्मतत्त्व के धर्म औदार्यादि गुण होते हैं उसी प्रकार काव्य-शरीर में सारभूत रस-तत्त्व के धर्म माधुर्य, ओज आदि को गुण कहा जाता है।'[9]

वस्तुत: गुण को रस का धर्म मानने वाला सिद्धांत ध्वनिवादी आचार्यों का परिनिष्ठत काव्यसिद्धांत है। आचार्य आनंदवर्धन ने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में स्पष्ट लिखा है–

तमर्थमवलम्बते येऽङ्गिनं ते गुणा: स्मृता:।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या: कटकादिवत्।।

ये तमर्थ रसादिलक्षणमाङ्गानि ये पुनस्तदाश्रितास्तेलङ्कारा मन्तव्या: कटकादिवत्।[10]

आचार्य मम्मट और विश्वनाथ कविराज ने 'गुण' के तीन भेद निर्धारित किए हैं–1. माधुर्य, 2. ओज और 3. प्रसाद[11]। वामानाचार्य द्वारा मान्य दस गुणों को इन आचार्यों ने उक्त तीन के अंर्तगत ही समाहित किया है।[12] उल्लेखनीय है कि आचार्य वामन ने दस प्रकार के शब्दगुण तथा दस प्रकार के अर्थगुण माने हैं। इन शब्दगुण तथा अर्थगुण के नाम तो दोनों जगह एक ही हैं परंतु उनके लक्षणों में भेद है। इसीलिए वामन के मतानुसार गुणों की संख्या दस है। परंतु मम्मट उन दस गुणों को न मानकर उनके स्थान पर केवल तीन ही गुण मानते हैं। वामनाचार्य को मान्य दस गुण हैं–1. ओज, 2. प्रसाद, 3. श्लेष, 4. समता, 5. समाधि 6. माधुर्य, 7. सौकुमार्य, 8. उदारता, 9. अर्थव्यक्ति और 10. कांति। वामन ने शब्दगुण तथा अर्थगुणों का जो विभाग किया है, वह आचार्य मम्मट और विश्वनाथ को मान्य नहीं है। ये आचार्य गुणों को शब्द या अर्थ का धर्म न मानकर उसे रस का धर्म मानते हैं। इसलिए इनके मतानुसार शब्दगुण अथवा अर्थगुण का विभाग बन ही नहीं सकता है।

'रीति' क्या है? इसका लक्षण करते हुए साहित्यदर्पणकार ने लिखा है कि 'रीति अंग रचना की भाँति पद-रचना अथवा पद-संघटना है, रसभावादि की अभिव्यंजना में सहायक हुआ करती है।[13]

रीति को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करनेवाले आचार्य वामन इसके तीन भेद निर्धारित करते हैं–1. वैदर्भी, 2. गौड़ी और 3. पाञ्चाली[14]। आचार्य विश्वनाथ इनके अतिरिक्त 'लाटी' नामक चौथा भेद भी मानते हैं। रीति का लक्षण करते हुए उन्होंने इसके भेदों को भी गिनाया है। यथा–

पदसङ्घटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनाम् सा पुन: स्याच्चतुर्विधा।।
वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा।[15]

उक्त रीतियों में से 'वेदर्भी' और 'गौड़ी' रीतियों की मान्यता भामह और दण्डी से भी प्राचीन है। आचार्य दण्डी की निम्नलिखित उक्ति–

इति मार्गद्वयं भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात्।
तद्भेदास्तु न शक्तन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिता:।।
इपुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत्।
तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्यापि पार्यते।।[16]

वैदर्भ और गौड़ मार्गों (वैदर्भी और गौड़ी रीतियों) के स्वरूप-विवेक को अलंकारशास्त्र की एक बहुत बड़ी कसौटी सी मानती है। रीतिसंप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन 'पाञ्चाली' रीति के प्रथम उद्भावक हैं। वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली के अतिरिक्त 'लाटी' अथवा लाटिया को चौथी रीति के रूप में स्वीकार करने वाले सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट हैं। इस रीतिचतुष्ट्य को काव्य के एक तत्त्व के रूप में अपनाकर साहित्यदर्पणकार ने आचार्य रुद्रट का समर्थन किया है। इस आचार्यों से भिन्न आचार्य मम्मट आदि ने केवल वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली–इन तीन रीतियों को ही मान्यता प्रदान की है। इस तीन रीतियों को आचार्य उद्भट ने वृत्ति नाम दिया है और आचार्य आनंदवर्धन इन्हें 'सङ्घटना' नाम प्रदान करते हैं। वस्तुत: सभी का तात्पर्य एक ही है। उद्भट की 'वृत्तियाँ, वामन की 'रीतियाँ', दण्डी और कुन्तक के 'मार्ग' तथा आनंदवर्धन की 'सङ्घटना' सभी एक ही भाव को व्यक्त करते हैं।

वृत्ति शब्द का प्रयोग आचार्य उद्भट ने किया है। उन्होंने अपने 'काव्यलंकारसारसंग्रह' नामक ग्रंथ में उपनागरिका, परुषा तथा कोमला नाम से तीन प्रकार की वृत्तियों का वर्णन करते हुए उनके लक्षण आदि निर्धारित किए हैं।[17] उद्भट ने इन तीनों वृत्तियों में वर्ण के साम्य को वृत्यानुप्रास कहा है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट भी इनको वृत्यनुप्रास मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि उद्भट की अभिमत ये तीनों वृत्तियाँ ही वामन आदि आचार्यों के मत में वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली आदि रीतियाँ मानी गई हैं।

रीति-संप्रदाय के संस्थापक आचार्य वामन वेदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली तीनों के लक्षण सहित उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। वैदर्भी आदि का लक्षण करते हुए उन्होंने लिखा है कि विदर्भ आदि प्रदेशों के कवियों में विशेष रूप से प्रचलित होने के कारण इनके वैदर्भी आदि देशजज्ञामूलक नाम रख दिए गए हैं। इनमें ओज, प्रसाद आदि समग्र गुणों से युक्त रचना को 'वैदर्भी रीति' कहते हैं। ओज और कांति गुणों से युक्त रीति 'गौड़ी रीति' कहलाती है। इसमें माधुर्य और सौकुमार्य का अभाव रहता है, समासबहुल उग्र पदों का प्रयोग होता है। माधुर्य और सौकुमार्य से युक्त रीति 'पाञ्चाली रीति' कही जाती है।

वस्तुत: 'रीति' शब्द का प्रयोग आचार्य वामन से पूर्व नहीं मिलता। आचार्य दण्डी ने इसी को 'मार्ग' नाम से व्यवहृत किया है, परंतु अधिक प्रचलित न होने से इसका लक्षण नहीं किया है। दण्डी से पूर्ववर्ती साहित्यशास्त्र के आचार्य भामह ने न तो मार्ग अथवा रीति शब्द का उल्लेख ही किया है और न कोई लक्षण आदि प्रतिष्ठापक वामनाचार्य ही ठहरते हैं। दण्डी उसको 'मार्ग' नाम से व्यवहृत करते हैं। आधुनिक हिंदी में उसी को 'शैली' का नाम दिया जाता है।

आचार्य आनंदवर्धन ने रीति के लिए 'सङ्घटना' शब्द का प्रयोग किया है और उसे तीन प्रकार का बतलाया है–1. सर्वथा समासरहित, 2. मध्यम श्रेणी के छोटे-छोटे समासों से विभूषित और 3. दीर्घ समासयुक्त। स्पष्ट है कि सङ्घटना का उक्त प्रथम भेद 'वैदर्भी' द्वितीय भेद 'पाञ्चाली' और तृतीय भेद 'गौड़ी' रीति के लक्षण से संबंधित है।

वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली नामक त्रिविध रीतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य रीतियाँ भी साहित्यशास्त्रीय आचार्यों द्वारा मानी गई हैं यथा–आचार्य राजशेखर द्वारा कर्पूरमञ्जरी की नांदी में 'मागधी रीति' का उल्लेख किया गया है, भोजराज ने इन चार के अतिरिक्त 'अवंतिका रीति' नाम से एक अन्य रीति का नामोल्लेख किया है इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ कविराज 'लाटी' नामक

 ISSN 0975-735X

रीति भी मानते हैं, जो लाटदेशवासियों द्वारा प्रचलन में लाई गई है। आचार्य विश्वनाथ कविराज 'मागधी' और 'अवंतिका' जैसी रीतियों का नामोल्लेख नहीं करते वे वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी–ये चार प्रकार की रीतियाँ बतलाते हैं। ध्यातव्य है कि रीतियों के रूप में केवल वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली–इन्हीं तीनों रीतियों को साहित्यशास्त्र में अधिकाश विद्वानों ने माना है, अन्य को उतना महत्त्व नहीं दिया है। संप्रति प्रस्तुत अध्याय में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों तथा वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली रीतियों का विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य में औचित्य की दृष्टि से अध्ययन अपेक्षित है। सर्वप्रथम गुणौचित्य का प्रतिपादन किया जा रहा है।

औचित्य तत्त्व के प्रतिपादक आचार्य क्षेमेंद्र गुणौचित्य को चतुर्थ स्थान पर परिगणित करते हैं। इसके स्वरूप का निरूपण करते हुए वे कहते हैं कि 'प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप ही ओज, प्रसाद आदि गुण काव्य में उसी प्रकार सौंदर्य के वर्धक होते हैं, जिस प्रकार संभोगकाल में उदित चंद्रमा आनंददायक हो जाता है।

महाकवि बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरितम् में गुणौचित्य का भलीभाँति निर्वाह किया है। उन्होंने वर्णनीय अर्थ के अनुरूप ही माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों को स्थान दिया है, जो रस के उत्कर्षाधायक बनकर सहृदय पाठकों के अंत:करण को आह्लादित करते हैं। क्रमश: इन गुणों का औचित्यपरक विवेचन अग्रलिखित रूप में किया है–

1. माधुर्यपरक औचित्य
2. ओजपरक औचित्य
3. प्रसादपरक औचत्य
4. पाञ्चाली रीतिपरक औचित्य
5. वैदर्भी रीतिपरक औचित्य
6. गौड़ी रीतिपरक औचित्य

इसप्रकार महाकवि बिल्हण संस्कृत-साहित्य के एक विलक्षण रचनाकार के रूप में समालोचकों के मध्य समादृत होने के अधिकारी हैं। अपने काव्य को उन्होंने सभी दृष्टियों से परिपूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया है। माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों तथा वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली रीतियों का वर्णनानुकूल सन्निवेश उनकी औचित्य निर्वाहकता को प्रमाणित करता है। अपने पदों को लंबे-लंबे सामासिक पदों के प्रयोग से बचाकर काव्यानुरागियों के लिए सुगम बना दिया है। वस्तुत: काव्य को क्लिष्ट बनाना उन्हें स्वीकार्य नहीं था, क्योंकि क्लिष्ट काव्य सर्वजनसंवेध नहीं हो सकता। इस पद्धति में महाकवि बिल्हण कविकुलगुरु कालिदास के मार्ग का अनुवर्तन करते हैं। यही कारण है कि उनका यह महाकाव्य सहृदयजनों का कंठहार बनकर संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधि के रूप प्रतिष्ठित हुआ है।

संदर्भ

1. वाक्यं रसात्मकम् काव्यं दोषास्तस्यापकर्षका:।
   उत्कर्षहेतव: प्रोक्ता गुणालङ्काररीतय:।। –साहित्यदर्पण 1/3
2. उक्तं हि–'काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणा: शौर्यादिवत्, दोषा: काणत्वादिवत् रीतयोवसवसंस्थान- विशेषवत्, अलंकारा: कटककुण्डलादिवत्, इति।
   –साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ॰ 11

3. काव्याअलंकार सूत्र 1/2/6
4. काव्याअलंकार सूत्र 1/2/7
5. काव्याअलंकार सूत्र 1/2/8
6. ये रसस्याङिनों धर्मा: शौर्यादय इवात्मन:।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयों गुणा:। (काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, सू॰सं॰)
7. विक्रमांकदेवचरितम् 6/74
8. विक्रमांकदेवचरितम् 17/24
9. साहित्यदर्पण 9/1
10. काव्यादर्श 1/101,102
11. काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, सूत्र सं॰ 89, 93
12. शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधका: श्रुतिमात्र:।। (साहित्यदर्पण 8/8)
13. साहित्यदर्पण, नवम् परिच्छेद, पृ॰ 660
14. साहित्यदर्पण, नवम् परिच्छेद, कारिका संख्या-3
15. डॉ॰ रामजी उपाध्याय कृत 'संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ॰ 429
16. वही
17. माधुर्यव्यज्जकेर्वर्णैंरूपनागरिकोच्यते। (काव्यप्रकाश, नवम् उल्लास, सूत्र सं॰ 107)

ए-40, **गोविंदपुरम फेस**-2
आवास विकास, बिजनौर 246701
मो॰ 9045990442
drneetusinghkamboj@gmail.com

महिलाओं की उच्चशिक्षा का समाज पर प्रभाव

कुँवर भीमसिंह, शोधार्थी
डॉ॰ करनसिंह चौहान, शोध निर्देशक
पूर्व प्राचार्य/एसो॰ प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
गुलाबसिंह हिंदू कॉलेज
चाँदपुर (बिजनौर) उ॰प्र॰

स्वस्थ और सुखी जीवन के लिए महिलाओं को शिक्षित करना जरूरी है। एक शिक्षित महिला एक श्रेष्ठ इंसान, सफल माँ और एक जिम्मेदार नागरिक हो सकती है। महिलाएँ इस समाज की आत्मा हैं; यह आत्मा प्रगतिशील होनी चाहिए। एक शिक्षित पुरुष समाज को बेहतर बनाने के लिए बाहर जाता है, जबकि एक शिक्षित महिला; चाहे वह बाहर जाए या घर पर रहे, घर और उसके रहने वालों को बेहतर बनाता है। महिलाओं को शिक्षित करने से निश्चित तौर पर जीवनस्तर में और घर के बाहर भी वृद्धि होती है। एक शिक्षित महिला अपने बच्चों को आगे पढ़ाई करने के लिए मजबूर करेगी जिससे बेहतर जीवन जीने की इच्छाशक्ति को भी बढ़ावा मिलेगा।

महिलाओं को शिक्षित करने से उनका आत्मसम्मान बढ़ता है और उनकी प्रतिष्ठा में भी वृद्धि होती है। एक उच्च शिक्षित महिला अगर किसी नए कारोबार या व्यवसाय की शुरुआत करती है तो उससे रोजगार के नए नए आयाम खुलते हैं। यह समाजसेवा का एक अनुकरणीय जरिया है। एक शिक्षित महिला अपने अधिकारों के बारे में खुद जागरूक होती है साथ ही औरों को भी जागरूक करती है। यह जागरण सामाजिक बुराइयों जैसे घरेलू हिंसा, दहेज माँग, कम मजदूरी आदि जैसे कारणों का विरोध करता है।[1]

यह एकदम सच है कि किसी देश की महिलाओं के शिक्षित हो जाने पर वह देश अपने–आपमें ही शिक्षित हो जाता है। महिला शिक्षा एक ऐसा शब्द है, जो लड़कियों और महिलाओं में प्राथमिक, माध्यमिक, तृतीयक और स्वास्थ्य शिक्षा की स्थिति को दर्शाता है। भारत सरकार द्वारा जारी किए जा रहे प्रमुख कार्यक्रमों में से एक है–'सभी के लिए शिक्षा'। इसके बावजूद भी भारत में महिलाओं की साक्षरता दर सबसे कम है। दरअसल, हमें खुद नहीं पता है कि हमें क्या करना चाहिए। जब हमें ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता मिली तब सिर्फ 2 से 6% तक महिलाएँ साक्षर थीं। सन् 1961 में साक्षरता दर 15.3% और सन् 1981 में साक्षरता दर 28.5% तक हो गई थी। सन् 2001 में साक्षरता–दर 50% से अधिक जा पहुँची। सन् 2011 में भारत में महिलाओं की साक्षरता दर 65.46% तक हो गई है। यद्यपि महिला साक्षरता दर में वृद्धि तो हुई है, लेकिन वैश्विक स्तर पर अन्यदेशों की तुलना में भारत इस मामले में अभी भी बहुत पीछे है। देश के सभी राज्यों की साक्षरता दर अलग–अलग है। केरल में 86% महिलाएँ साक्षर हैं, जबकि बिहार और उत्तर प्रदेश में महिलाओं की साक्षरता दर सिर्फ 55 से 60% के बीच में है। यह अफसोस की बात है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की साक्षरता–दर बेहद कम है। ग्रामीण राजस्थान में

तो महिलाओं की साक्षरता दर 12% से भी कम है।

वुड्स डिस्पैच आन एजूकेशन

भारतीय महिलाओं की शिक्षा में सन् 1854 के 'वुड्स डिस्पैच' का बेहद योगदान है। इसे 'भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा भी कहते हैं। दरअसल, सर चार्ल्स वुड उस समय ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष थे। उन्होंने भारत की भावी शिक्षा के लिए एक विस्तृत योजना बनाकर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी को उसी साल अपना सुझाव-पत्र भेजा, जिसे 'वुड का घोषणापत्र' या 'वुड्स डिस्पैच ऑन एजुकेशन' कहा गया। इसे भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह पहला इतना व्यवस्थित, संतुलित, विस्तृत व बहुआयामी शिक्षा प्रस्ताव था, जिसने ब्रिटिश शासन की शिक्षा नीति को एक नवीन दिशा दी।[2] इसमें सरकार से कहा गया कि वह आमजनों की शिक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें। इसमें उच्चशिक्षा का माध्यम अँग्रेजी तथा स्कूल स्तर की शिक्षा का माध्यम देशी भाषाओं को बनाए जाने का सुझाव था। प्रत्येक प्रांत में एक 'लो शिक्षा विभाग' की स्थापना हो।

गाँवों में देशी-भाषाई स्कूल खोले जाएँ। उनसे ऊपर जिलास्तर पर आंग्ल-देशी भाषाई हाईस्कूल तथा लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर तीनों प्रेसीडेंसी शहरों–बंबई, कलकत्ता और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किए जाएँ। इसकी सबसे खास बात यह रही कि इसमें महिला शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया तथा तकनीकि विद्यालयों एवं अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की सिफारिशें की गई। वुड्स डिस्पैच में धर्मनिरपेक्ष शिक्षा पर भी बल दिया गया। शिक्षा क्षेत्र में निजी प्रयत्नों को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान की पद्धति चलाने की सिफारिश भी इसमें की गई।

महिला शिक्षा की शुरुआत

'वुड्स डिस्पैच' में भारत की महिलाओं को रोजगार और शिक्षा की मान्यता मिलने के बाद सन् 1857 में कलकत्ता, बंबई व मद्रास में विश्वविद्यालय खोले गए तथा कुछ समय बाद सभी प्रांतों में शिक्षा विभाग का गठन भी कर दिया गया। इससे पहले स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में 'बेथुन स्कूल' की स्थापना भी एक सार्थक परिणाम रही। कोलकाता फीमेल स्कूल के रूप में बेथूनकालीजिएट स्कूल की स्थापना सन् 1849 में जान इलियट डिकवाटर बेथुन ने की थी। इसके लिए दक्षिण रंजन मुखर्जी ने पैसा दिया था। इसके पहले बैच में सिर्फ 21 लड़कियाँ थी। इनकी संख्या अगले साल 80 हो गई। यह पूरे एशिया का पहला महिला स्कूल था। चार्ल्स वुड द्वारा अनुमोदित विधियाँ व आदर्श लगभग 50 वर्षों तक प्रभावी रहे। इस प्रकार 'वुड्स डिस्पैच' भारत की भावी शिक्षा के विकास हेतु एक क्रांतिकारी दस्तावेज साबित हुआ। शुरुआत में इसमें केवल समाज के अमीर वर्ग और प्राथमिक स्तर की महिलाएँ ही इस शिक्षा के कार्यक्रम से जुड़ी थीं। इस कार्यक्रम की सहायता से, भारत में महिलाओं की साक्षरता दर सन् 1872 में 0.2% से बढ़कर सन् 1882 में 6% हो गई थी।

आजादी के बाद की स्थिति

देश को आजादी मिलने के बाद केंद्र सरकार ने जीवन व समाज के सभी क्षेत्रों में प्रगति करने की योजना बनाई। इसमें महिला शिक्षा भी एक प्रमुख क्षेत्र था। 'स्वतंत्रता के बाद, सुझावों के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन

किया गया था, लेकिन यह महिलाओं की शिक्षा के खिलाफ था और महिलाओं को शिक्षित करने के लिए अप्रासंगिक बताया गया था। दुखद बात तो यह है कि केंद्र सरकार की भावना के प्रतिकूल इस आयोग ने महिलाओं को शिक्षित करना समय की बर्बादी माना था।'[3] तो भी शिक्षित महिलाओं की संख्या उस समय लगातार बढ़ रही थी। ये शिक्षित महिलाएँ खुद अपनी प्रतिबद्धता से प्रगति के सोपान तय कर रही थीं। ऐसे में महिला शिक्षा को बहुआयामी बनाने के लिए एक समिति की आवश्यकता हुई और सन् 1958 में सरकार ने महिलाओं की शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय समिति काका गठन किया। इस समिति ने अपनी सिफारिशों के जरिए महिलाओं और पुरुषों की शिक्षा को एक समान रखने पर जोर दिया। तत्पश्चात ऐसी कई समितियों के बाद सन् 1964 में शिक्षा आयोग बना। वैसे तो देश में महिलाओं के शिक्षा स्तर में सुधार के लिए कई कदम उठाए गए थे, लेकिन 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 में एक सराहनीय पहल की गई। इस अधिनियम के तहत 6 से 14 वर्ष की आयुवर्ग के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य कर दी गई थी। जिसे सर्वशिक्षा अभियान के रूप में शुरू किया गया। एस॰एस॰ए॰ एक समयबद्ध और सामान्य तरीके से प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त करने का मुख्य कार्यक्रम है।

महिला समाख्या कार्यक्रम

अब यहाँ पर बात करते हैं महिला समाख्या कार्यक्रम की। सन् 1968 में बनी नई शिक्षा नीति ने सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग से संबंधित ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए सन् 1988 में महिला समाख्या कार्यक्रम शुरू किया था। यह कार्यक्रम महिला शिक्षा की दिशा बदलने वाला कार्यक्रम साबित हुआ। फिर आई कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना। इसमें महिलाओं को प्राथमिक स्तर पर माध्यम से शिक्षित किया जाता है। यह मूल रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में काम करती है जहाँ महिलाओं की साक्षरता दर कम होती है। प्राथमिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम भी बनाया गया। जिन लड़कियों को सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से प्रोत्साहित नहीं किया जाता है उन्हें उपरोक्त राष्ट्रीय कार्यक्रम द्वारा कवर किया गया है। इस बारे में महिला साक्षरता के लिए साक्षर भारत मिशन भी महत्त्वपूर्ण है। यह मिशन भारत में महिलाओं की निरक्षरता को कम करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था।

महिला सशक्तीकरण नीति

यहाँ पर हम थोड़ी चर्चा राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति-2001 की भी करेंगे। दरअसल, लैंगिक समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्त्तव्यों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में ही प्रतिपादित है। हमारा संविधान महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा प्रदान करता है अपितु राज्य को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय करने की शक्ति भी प्रदान करता है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के ढाँचे के अंतर्गत हमारे कानूनों, विकास-संबंधी नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों में विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की उन्नति को उद्देश्य बनाया गया है। पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974-78) से महिलाओं से जुड़े मुद्दों के प्रति कल्याण की बजाय विकास का दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। हाल के वर्षों में, महिलाओं की स्थिति को अभिनिश्चित करने में महिला सशक्तीकरण को प्रमुख मुद्दे के रूप में माना गया है। महिलाओं के अधिकारों एवं कानूनी हकों की रक्षा के लिए वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। भारतीय संविधान में 73वें और 74वें

सशोधनों (1993) के माध्यम से महिलाओं के लिए पंचायतों और नगरपालिकाओं के स्थानीय निकायों में सीटों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है, जो स्थानीय स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है।

पढ़ी-लिखी लड़की रोशनी घर की

कहते हैं कि पढ़ी-लिखी लड़की रोशनी घर की। यह बात तो सामान्य शिक्षा की हुई कि लड़की को हम पढ़ा लिखाकर अपने घर को प्रकाशवान बना सकते हैं। पर जरा सोचिए कि यही लड़की या महिला अगर उच्चशिक्षा प्राप्त कर लेती है तो उसका हमारे समाज पर कितना सकारात्मक प्रभाव पडेगा। चारों तरफ उजाला फैलना ही फैलना है।

सेहत व परिवार कल्याण

स्वास्थ्य महिलाओं के जीवन का अधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यदि वे शिक्षित होंगी, तो वे स्वयं की देखभाल के साथ पूरे परिवार को भी सेहतमंद रख सकती हैं। यही परिवार कल्याण है। महिलाओं में साफ-सफाई की बहुत समझ होती है। यहाँ तक कि कामकाजी महिलाएँ अपने परिवार के स्वास्थ्य के बारे में लगातार चिंतित रहती हैं और किसी भी कीमत पर इससे समझौता नहीं करती हैं।[4]

जिम्मेदार नागरिक

शिक्षा एक महिला को जिम्मेदार नागरिक के रूप में तैयार करती है। उत्तर प्रदेश में आर॰ बी॰ मिश्र सामाजिक संस्थान के एक सर्वे में पाया गया कि महिलाएँ अगर थोड़ी भी शिक्षित रहती हैं तो वे परिवार, समाज व देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन संवेदनशीलता से करती हैं। जबकि उच्च शिक्षित महिला तो इस मामले में हमेशा जागरूक रहती है।[5]

आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा

उच्च शिक्षा महिलाओं की आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी करती है। एक महिला एक घर की गरिमा है, और एक समाज का न्याय इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है और उन्हें कितना शिक्षित किया जाता है। यह केवल तभी है जब एक महिला अपनी गरिमा और सम्मान की रक्षा करने में सक्षम है कि वह अपने परिवार की गरिमा और सम्मान की रक्षा करने में सक्षम होगी। एक अशिक्षित महिला को अपनी गरिमा के लिए बोलने की हिम्मत की कमी हो सकती है जबकि एक शिक्षित महिला इसके लिए लड़ने के लिए पर्याप्त आश्वस्त होगी।

रोजगार सृजन व समाजसेवा

यह खुशी की बात है कि उच्चशिक्षा संस्थानों में लड़कियों की संख्या बढ़ रही है। एम॰बी॰ए॰, एम॰बी॰बी॰एस॰, बी॰एड॰ और एल॰एल॰बी॰ जैसे कुछ प्रोफेशनल कोर्सों में कुल नामांकन भले ही अभी बहुत ज्यादा नहीं है लेकिन विषय के आधार पर देखें तो कई जगहों पर लड़कियों की संख्या लड़कों से ज्यादा है। इस बात की ताकीद करते हैं उच्चशिक्षा के नए आँकड़े जो केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उच्च शिक्षा विभाग के अखिल भारतीय सर्वे (ए॰आई॰एच॰ई॰एस॰) ने जारी किए हैं। उसके मुताबिक बी॰टेक॰ एम॰टेक॰ के दाखिलों में रिकॉर्ड गिरावट है लेकिन उच्चशिक्षा की कुल नामांकन दर में उछाल आया है। लैंगिक विभेद इंडेक्स

(जीडीआई) बहुत मामूली सा बढ़ा है, लेकिन लड़कियों की संख्या में अपेक्षाकृत वृद्धि भी हुई है। कला, मानविकी और विज्ञान विषयों में लड़कियाँ ज्यादा हैं और कॉमर्स में लड़के ज्यादा। इन आँकड़ों का असर महिलाओं द्वारा रोजगार सृजन व समाजसेवा पर भी पड़ता है।[6]

आत्मनिर्भरता

शिक्षा एक महिला को आत्मनिर्भर बनाती है फिर वह अपने अस्तित्व के साथ-साथ अपने बच्चों के अस्तित्व के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहती है। वह जानती है कि वह शिक्षित है और पुरुषों की तरह समान रूप से नौकरी कर सकती है और अपने परिवार की जरूरतों को पूरा कर सकती है। एक महिला, जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र है, अन्याय और शोषण के खिलाफ अपनी आवाज उठा सकती है। उसे इस मामले में भी किसी के सहारे की जरूरत नहीं रहती।

बेहतर जीवन

परिवार के लिए बेहतर जीवनस्तर महिलाओं की शिक्षा के फायदों में से एक है। वह जितनी ज्यादा शिक्षा प्राप्त करेगी, उतना ज्यादा उसे वेतन या मानदेय मिलेगा। उस रकम से वह अपने परिवार का जीवनस्तर ज्यादा ऊपर उठा सकती है।

अस्तु, दुनियाभर में स्कूल से बाहर वर्तमान समय में 65 मिलियन लड़कियों के होने का अनुमान है। उनमें से अधिकांश भारत जैसे विकासशील और अविकसित देशों में हैं। दुनिया के सभी देशों, विशेष रूप से विकासशील और अविकसित देशों कोअपनी महिला शिक्षा की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए, ताकि समाज का आमूलचूल परिवर्तन किया जा सके। समाज-उत्थान के लिए महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।[7]

हमें महिला आबादी को शिक्षित न करने से होने वाले परिणामों के बारे में सोचना चाहिए। जब एक महिला अशिक्षित होती तो, अशिक्षा के कारण केवल वह ही नहीं, बल्कि उसके पूरे परिवार के साथ-साथ देश भी प्रभावित होता है। कई अध्ययनों में यह पाया गया है कि निरक्षर महिलाओं की प्रजनन-क्षमता उच्च के साथ मृत्यु-दर भी अधिक होती है। यह देखा गया है कि निरक्षर महिला की तुलना में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं के मामले में शिशु मृत्यु दर आधे से भी कम हो जाती है। इसके अलावा, अशिक्षित महिलाओं के कारण बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। निरक्षरता परिवार की संभावित कमाई की क्षमता को कम कर देती है।

यह जान लीजिए कि शिक्षा एक महिला के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस कारण महिला शिक्षा किसी भी देश के विकास के लिए जरूरी है। इसके बावजूद ग्रामीण परिवेश की लड़कियों को अभी तक उच्चशिक्षा से वंचित रखा जा रहा है। दरअसल, भारत में लिंग आधारित भेदभाव प्रचलित है। ऐसा आपने देखा या सुना होगा कि समाज के निचले स्तर वाले कई माता-पिता अपने लड़के को स्कूल भेजते हैं, लेकिन लड़की को नहीं। यह भी एक समस्या है, जहाँ माता-पिता अपनी बेटियों को स्कूल नहीं भेजते हैं। दूसरी जगह में, आपने यह भी देखा होगा कि आमतौर पर शहरी इलाकों के माता-पिता अपने लड़के को बेहतर स्कूल में भेजते हैं। यहाँ तक कि अगर लड़कियों का बेहतर स्कूल में नाम आ जाता है, तो भी उनको माता-पिता की वजह से स्कूल छोड़ना पड़ता है।

देश में महिला उच्चशिक्षा का प्रतिशत बढ़ाने के लिए महिलावर्ग को स्वयं आगे आना चाहिए। उन्हें ग्रामीण इलाकों में रैलियाँ निकालकर महिला शिक्षा के प्रति जागरूक करने में मदद

देनी चाहिए। सामाजिक स्तर पर शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विशेष पहल किए जाने की आवश्यकता है। गाँव के प्रबुद्ध लोगों को अपने स्तर पर आगे आकर महिला शिक्षा की पहल करनी चाहिए। घर से थोड़ा-सा प्रोत्साहन मिलने से लड़कियाँ स्वयं ही शिक्षा के लिए आगे आ जाती हैं। बस, उन्हें घर से सहयोग मिलने की आवश्यकता है। आसपास के गाँवों में जाकर प्रधान, मुखिया, सरपंचों को अधिक-से-अधिक छात्राओं को स्कूल कालेजों में भेजने के लिए प्रेरित किया जाए। इस जागरण अभियान के लिए छुट्टियों में प्राध्यापकों की ड्यूटी लगाई जाए ताकि वे गाँवों में जाकर लोगों को उनकी लाडलियों को शिक्षित करने के लिए प्रेरित करें।

वैसे तो बालिका शिक्षा के लिए सरकार की तरफ से मध्याह्न भोजन, यूनीफार्म और किताबों के मुफ्त वितरण की योजनाएँ हैं, लेकिन फिर भी हमें कई बुनियादी सुविधाओं, शिक्षक छात्र अनुपात, स्कूल में महिला बच्चों की सुरक्षा, बेहतर पाठ्यक्रम, स्वच्छता जैसे मुद्दों के लिए काम करना है ताकि अधिक-से-अधिक महिलाओं को शिक्षित किया जा सके। इसके अलावा माता-पिता को शिक्षा के महत्त्व को समझना चाहिए और शिक्षा के लिए पुरुष और महिला के मध्य अंतर नहीं करना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि एक शिक्षित महिला अपनी सभी भूमिकाओं की जिम्मेदारियाँ उठाने में एक अशिक्षित महिला से अधिक सक्षम होती है।

संदर्भ

1. भारतीय समाज मुद्दें और समस्याएँ, वीरेंद्रप्रकाश शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 53
2. नगरीय समाजशास्त्र, वी॰एन॰ सिंह, जनमेजयसिंह, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ॰ 98
3. आउटलुक (पत्रिका), अंक-15 जनवरी 2019, पृ॰ 31
4. नरूल्स आफ सोशियोलाजिकल मेथड, इस्माईल दुर्खीम, पृ॰ 142
5. इंडिया टूडे (पत्रिका), अंक- 22 सितंबर 2019, पृ॰ 8
6. माडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन, प्रो॰ योगेंद्र शुक्ल, जयहिंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ॰ 47
7. हम किसी से कम नहीं, एच॰एल॰ त्रिपाठी, रिया पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, पृ॰ 19

प्रगतिशील कविता का विकास और हिंदी कविता में प्रगतिवाद

अल्पना कुशवाहा
एम॰ए॰ (हिंदी, संस्कृत), नेट, शोधरत

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन जारी था, तब सन 1930 के आसपास इस आंदोलन में नया मोड़ आया। देश में किसानों, मजदूरों के आंदोलन तेज हुए, रूस में समाजवादी राज्य की स्थापना हो गई थी तथा मार्क्सवादी विचारों की लहर एशिया के देशों में भी चल रही थी। काँग्रेस में समाजवादी विचारधारा प्रभावशाली हो रही थी। सन् 1936 में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ। जवाहरलाल नेहरू, रवींद्रनाथ ठाकुर आदि प्रसिद्ध व्यक्ति भी इसके सभापति बने।

प्रगतिशील चेतना का प्रादुर्भाव आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु के साथ ही हो गया था, लेकिन अब एक सुसंबद्ध विचारधारा के प्रति आकर्षण जगा। इस विचारधारा ने स्वाधीनता के स्वप्न को और भी अधिक प्रबल किया। इसके बाद विभिन्न मोड़ों के होते हुए प्रगतिशील काव्यधारा हिंदी की प्रमुख काव्यधारा बनीं। इस काव्यधारा में व्यापक संवेदनशीलता है। वर्तमान के प्रति आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि अपनाती है। यह काव्यधारा अपना संबंध हिंदी की जातीय परंपरा से जोड़ती है, इसके साथ ही भावी समाज से भी।

प्रगतिशील काव्यधारा में कवियों का प्रमुख स्थान है, जिनमें नागार्जुन, जिनका जन्म 1911 और मृत्यु 1998 में हुई। इनकी कविता में परंपरा की मूल्यवत्ता तथा आधुनिक जीवन की विडंबना दोनों का योग है। ये प्रकृति चित्रण के अच्छे कवि हैं। इनकी कविताओं में व्यंग्य की प्रमुखता रहती है एवं कविताएँ इनके मूल जनपद मिथिला से प्रभावित हैं। इनकी रचनाओं में 'सतरंगों पंखों वाली', 'हजार-हजार बाँहों वाली', 'युगधारा', 'भस्मांकुर', 'पुरानी जूतियों का कोरस', 'खिचड़ी', 'विप्रलभ देखा हमने' आदि प्रमुख हैं।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख हैं जिनका जन्म सन् 1911और मृत्यु 2000 में हुई थी। इनकी कविताओं में जनसंघर्ष को वाणी मिली है। प्रकृति, नारी-सौंदर्य, श्रम-सौंदर्य के अनोखे बिंब प्रस्तुत किए हैं। इनकी रचनाओं में निराला का प्रभाव देखने को मिलता है। ये बुंदेलखंड की धरती से जुड़े हुए हैं। इनकी रचनाओं में 'युग की गंगा', 'नींद के बादल', 'लोक और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' आदि प्रमुख हैं।

प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन का जन्म 1911 ई॰ में हुआ इनकी रचनाओं में अवध जनपद की छटा दर्शनीय है। इनकी कविताओं में जनजीवन की मार्मिक स्थितियों का आडंबरहीन सहज भाषा में व्यक्त किया जाता है। त्रिलोचन हिंदी कविता में व्याकरण सम्मत वाक्य गठन और शौर्य (छंद विधान) के लिए लोकप्रिय हैं। इनके काव्य-संग्रह, मैं उस जनपद का कवि हूँ, धरती, गुलाब

और बुलबुल, दिगंत आदि हैं।

प्रगतिवादी कवियों में शिवमंगलसिंह 'सुमन' को भी लोकप्रियता प्राप्त है। इनका जन्म 1917 और मृत्यु 2002 ई॰ में हुई। सहजता और उद्‌बोधन इनकी कविताओं का गुण है। वक्रता इनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता है। इनकी रचनाओं में हिल्लोल, विश्वास बढ़ता ही गया, जीवन के गान आदि प्रमुख हैं।

इसके साथ ही गजानन माधव मुक्तिबोध भी प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख कवि थे। इनका जन्म 1917 में और मृत्यु 1964 में हुई है। ये मध्यमवर्गीय जीवन के आधुनिक कवि हैं। मध्यवर्ग का व्यक्ति सुविधा, जीविका और आदर्शवादिता के द्वंद में जीता है, मुक्तिबोध इसी द्वंद के तनाव के कवि है। इनकी कविता में असुरक्षा एवं अनिश्चियता की भावना की प्रधानता है, जिसका समाधान वे प्रगतिशील दृष्टिकोण से ढूँढने का प्रयत्न करते हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में 'चाँद के मुँह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल' आदि है। प्रगतिवादी कविता ने स्वाधीन भारत की स्थितियों में भी विकास किया और इसकी धारा बिना विघ्न प्रवाहित होती रही। इसमें योगदान देने वाले भारतभूषण अग्रवाल, सोम ठाकुर, रांगेय राघव आदि भी प्रमुख प्रगतिशील कवि हैं।

प्रगतिवादी काव्य की विशेषता यह है की यह शोषण का विरोध करता है, उसके अनुसार किसान और मजदूर एक होकर अपने ऊपर होनेवाले सामंतों और पूँजीवादियों के अत्याचारों का अंत करेंगे। प्रगतिवादी कवि शोषित में शक्ति देखते हैं, क्योंकि शोषण इतिहास की गति और सामाजिकता का विरोधी है। ये श्रम में सौंदर्य देखते हैं उनका सौंदर्यबोध सामाजिक मूल्यों से युक्त है वह सहज और सामान्य जीवन स्थितियों में भी सौंदर्य देखते हैं। व्यंग्य के द्वारा विषमता का चित्रण एवं विरोध करना इन कवियों की प्रमुख विशेषता है। प्रगतिवादी कवियों ने प्रेम, प्रकृति और ग्राम्य जीवन के अनोखे चित्र उपस्थित किए हैं।

प्रगति का शाब्दिक अर्थ है—आगे बढ़ना। जब साहित्य अपनी प्राचीन परंपराओं और रूढ़ियों को तोड़कर समय के साथ कदम बढ़ाता है तब उसे प्रगतिशील साहित्य कहा जाता है, कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिवादित द्वंदात्मक भौतिकवादी की साहित्यिक अभिव्यक्ति ही प्रगतिवाद है। कार्ल मार्क्स के अनुसार इतिहास के प्रत्येक कालखंड में समाज में दो वर्ग प्रमुख रहे—पहला शोषकवर्ग जिनमें पूँजीपति, शासक, धर्माचार्य आदि थे और दूसरा शोषितवर्ग जिनमें मजदूर, किसान, दलित तथा नारी आदि हैं। इन दोनों वर्गों में संघर्ष अवश्य संभव है, इसी द्वंद्व से समानता का आदर्श प्राप्त किया जा सकता है। कार्ल मार्क्स की इसी विचारधारा से प्रेरित होकर जेम फास्टर द्वारा सन् 1935 में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स असोसिएशन' की स्थापना की तथा इसकी एक शाखा के रूप में सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रादुर्भाव हुआ। इस अधिवेशन के प्रथम अध्यक्ष मुंशी प्रेमचंद थे। प्रथम अधिवेशन के समय से हिंदी में प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत होती है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रगतिवाद के प्रारंभ का श्रेय सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत को जाता है। प्रेम, सौंदर्य को कोमल कल्पनाओं और प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन जनसामान्य की पीड़ा का स्पर्श पाकर 'ताज' को धिक्कारने लगता है और हृदय उदबोध कर उठता है—

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन,
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।

 ISSN 0975-735X

मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति,
आत्मा का अपमान, प्रेत और छाया से रति।।[1]

इसी प्रकार निराला की 'राम की शक्ति पूजा' कृति में भी राम ईश्वरीय अवतार न होकर पराधीन राष्ट्र के विवश-निराश मनुष्य के प्रतीक हैं, जो विदेशी सत्ता के विरुद्ध स्वयं को असहाय पाता है। उसका हृदय कह उठता है–

फिर सुना–हंस रहा अट्टहास, रावण खल-खल।
भावित नयनों से गिरे, सजल दो मुक्तादल।।[2]

निराला की 'भिक्षुक' कविता में भिक्षुक साहित्य के पन्नों में आकर प्रत्यक्ष हो उठा–

वह आता दो टूक कलेजे के करता,
पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ मिलकर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक।
मुट्ठी-भर दाने भूख मिटाने को,
मुख फटी-पुरानी झोली का फैलाता।[3]

कवि निराला की वाणी शोषकवर्ग के प्रति घृणा से भर जाती है तब 'कुकुरमुत्ता' कविता के माध्यम से वंचित वर्ग की व्यथा को अभिव्यक्त करते हैं–

अबे! सुन बे ओ गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगो-आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट। [4]

प्रगतिवादी कवियों में रामधारीसिंह दिनकर ने शोषित-उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए दीन-हीन भारतीय जनता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है–

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र भूखे बच्चे अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक जब इत्र-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।[5]

प्रगतिवाद के प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल ने हिंसा और अहिंसा को इस प्रकार व्यक्त किया है–

काटो-काटो जल्दी काटो साइत और कुसाइत क्या है?
मारो-मारो हँसिया मारो हिंसा और
अहिंसा क्या है?[6]

कवि की दृष्टि में कर्म क्षेत्र में संघर्षरत श्रमिक महिला व्योम कुंजों में विचरण करनेवाली अप्सराओं की तुलना में अधिक सुंदर है–

श्याम तन भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय कर्मरत मन।
गुरु हथौड़ा हाथ करती बार-बार प्रहार,

सामने तरु मालिका, अट्टालिका प्राकार।[7]

समाज में समानता के आदर्श को प्राप्त करने के लिए पंत और निराला दोनों ने आवाज उठाई है। निराला के शब्दों में–'तुझे बुलाता कृषक अधीर ऐ विप्लव के वीर।' पंत के काव्य-संग्रह युगांत, युगवाणी, ग्राम्या एवं निराला के कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नए पत्ते आदि रचनाओं का प्रगतिवादी काव्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। केदारनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा', 'नींद के बादल', 'आग का आइना'; शिवमंगलसिंह सुमन की 'विंध्य हिमालय', 'प्रलय-सृजन', 'हिल्लोल'; नागार्जुन की रचनाओं में 'अकाल और उसके बाद प्रेत का बयान', 'चना जोर गरम' तथा रामधारीसिंह दिनकर की 'रेणुका', 'हुंकार', 'द्वंदगीत', 'सामधेनी', 'कुरुक्षेत्र' आदि रचनाएँ प्रगतिवाद की निरंतर नींव रखती रहीं। इस प्रकार प्रगतिवादी काव्य सहज भाषा-शैली और नवीन बिंब प्रतीकों से सुशोभित साहित्य की दीर्घ परंपरा में मजबूत रहेगा।

संदर्भ

1. रश्मिबंध, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, (ताज), पृ॰ 70, युगांत 1935
2. महाकवि निराला कृत राम की शक्ति पूजा एवं सरोज-स्मृति, डॉ॰ अजीज अंकुर, पृ॰ 78
3. आधुनिक कवि निराला संपादक, डॉ॰ रघुवंश, पृ॰ 33
4. अनामिका, निराला, पृ॰ 3
5. हुंकार, रामधारीसिंह दिनकर, पृ॰ 32
6. आधुनिक कवि 16, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 111
7. आधुनिक कवि निराला, संपादक डॉ॰ रघुवंश, पृ॰ 50

B-201, Kamdhenu Jasmine, Pimple Saudagar,
Pune, Maharastra - 411027
मो॰ 9739824047

नासिरा शर्मा का धार्मिक चिंतन

मीनाक्षी उपाध्याय
शोध छात्रा, हिंदी विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

'धारयते इति धर्म:' जो धारण करने योग्य है वही धर्म है, अर्थात् मानव समाज के जीवनानुभवों से परीक्षित, भली-भाँति मनन के पश्चात नि:सृत एक उचित धारणा जो सर्वसाधारण के द्वारा धारण की जाए वही धर्म है। वास्तविक धर्म सदैव सकारात्मक होता है। यह मात्र अशुभ व असद् कार्यों से मनुष्य की रक्षा ही नहीं करता, अपितु उसे शुभ एवं सत्कार्यों हेतु प्रेरित भी करता है। धर्म शब्द संस्कृत भाषा में 'धृ' धातु से बना है, जो धारण करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। संपूर्ण मानव जाति के हितार्थ 'हम क्या धारण करें' इस प्रश्न का उत्तर जिन गुणों व कर्त्तव्यों को हमारे समक्ष उद्घाटित करता है वही धर्म है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों को उद्घाटित किया गया है–

धृति:, क्षमा, दमोस्तेयम् शौच इंद्रिय निग्रह:।
धी, विद्या, सत्यमक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम्।

धैर्य, क्षमा, कुप्रवृत्तियों का दमन, चोरी ना करना, पवित्रता, इंद्रियों पर नियंत्रण, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध न करना, यह धर्म के दस लक्षण हैं। 'रिलीजन' शब्द धर्म का अँग्रेजी रूपांतरण है, इसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के Re + Legar शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'टू बाइंड बैक' (संबंध स्थापित करना)। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन के विचारकों के अनुसार धर्म दोहरी संबंध स्थापना का एक प्रमुख साधन है जिसका प्रथम संबंध ईश्वर और मनुष्य के मध्य तथा द्वितीय संबंध मनुष्य और मनुष्य के मध्य है।

धर्म मनुष्य को मनुष्य बनाने की एक सहज जीवन शैली है। धर्म मानव-समाज के करणीय व अकरणीय कार्यों के निर्णयन का वह मापक यंत्र है जिसके द्वारा हम क्षोभ रहित एवं प्रसन्नता से पूर्ण सात्विक जीवन का निर्वाह कर सकते हैं। मानव समाज की प्रारंभिक अवस्था में समाज के बुद्धिजीवी लोकनायकों द्वारा समाज की गतिशीलता को अक्षुण्ण बनाने के लिए कुछ नियमों की आवश्यकता का अनुभव किया, जिसके द्वारा मनुष्य किसी भी सामान्य व विशिष्ट परिस्थितियों में अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा वैश्विक कर्त्तव्यों का उचित निर्वाह कर सकें। भिन्न-भिन्न लोकनायकों द्वारा अपनी विचारधारा, चिंतन, कल्पनाशीलता तथा दृष्टिकोणों के आधार पर भिन्न-भिन्न जीवन शैलियों की स्थापना की गई तथा उन व्यवहार प्रणालियों में विहित और निषिद्ध नियमों व कार्यों को अपने-अपने अनुयायियों में प्रसारित किया। वास्तव में धर्म की संकल्पना मनुष्य के जीवन को सहजता व नैतिकता प्रदान करने के लिए की गई थी। कालांतर में यही व्यवहार प्रणालियाँ विभिन्न धारणाओं के रूप में परिवर्तित हुई और धारणाएँ दृढ़ विश्वास बन गईं।

सामाज एक परिवर्तनशील संस्था है। इस गतिशील समाज के नियम, व्यवहार, प्रणाली, जीवनशैली, तथा आवश्यकता में भी परिवर्तन आवश्यक है। परंतु इन धारणाओं का इतना दृढ़ता से निर्वहन किया जाने लगा कि यह रूढ़ियों में परिवर्तित होने लगी। मनुष्य बिना चिंतन-मनन के इन रूढ़ियों का अनुकरण करने लगा। भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के आधार पर विभिन्न समूहों व दलों का संगठन होने लगा और कुछ विशिष्ट संप्रदाय और धर्मसमूहों की स्थापना हुई। इन सभी धर्मसमूहों ने अपनी अपनी जीवनशैली नियम व चिंतनधारा का प्रचार-प्रसार किया और उसे धर्म की संज्ञा दी। इस प्रकार धर्म शब्द जो व्यापक परिप्रेक्ष्य में विकसित मानव-जीवन की एक सात्विक और व्यवस्थित जीवनशैली थी, उसका संकुचन हो गया और धार्मिक अंतर्द्वंद्व का प्रारंभ हुआ। अलग-अलग धर्म प्रवर्तकों ने इसे विशिष्ट नामों से विभूषित करते हुए सर्वोच्च सिद्ध करने का प्रयास किया तथा मानव धर्म जो समष्टि का सूचक था वर्तमान में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी आदि कई धार्मिक संप्रदायों में विभक्त हो गया। धर्म के वास्तविक रूप में परिवर्तन आने लगा तथा उसे जड़ता व रूढ़िवादिता का बोझिल कलेवर पहना दिया गया। इस नवीन व्याख्यायित धर्म में धैर्य व सहिष्णुता का स्थान नगण्य था।

नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य में धर्म के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित किया है। वे धर्म की मूल संकल्पना की पक्षधर हैं। उनका मानना है कि 'धर्म केवल योजनाबद्ध तरीके से जीवन जीने का एक रास्ता है। आज धर्म को समझना हमारे लिए बेहद जरूरी हो जाता है क्योंकि उसका गलत प्रयोग इंसानों की जिंदगी को दुश्वार बना रहा है।'[1] धर्म अपनी प्रारंभिक अवस्था में मानव का आत्मिक बल था, जो उसकी आध्यात्मिक सोच में वृद्धि करके उसके मानवीय संबंधों को प्रगाढ़ बनाता था। व्यक्ति को शांति व सुरक्षा प्रदान करता था। परंतु आधुनिक समाज में धर्म इन्हीं सारे तत्त्वों को चुनौती दे रहा है। बाल्यावस्था में ही नासिरा जी धर्म के प्रति विशेष श्रद्धान्वित नहीं थीं। धार्मिक अनुष्ठान पर्व व परंपराओं से उन्हें एक अनूठी विरक्ति थी। वे कहती हैं–'मैं ऐसी क्यों थी आखिर मजहबी रिवायतें मुझे क्यों नहीं बाँध पाई, मेरे संस्कार में नौहा, मरसिया, मजलिस, मुहर्रम क्यों नहीं गुँथ पाया।'[2]

नासिरा जी की इस धार्मिक विरक्ति का कारण तत्कालीन धार्मिक कट्टरता, बाह्याडंबर, फसाद व धार्मिक कार्यों से जुड़े उनके तमाम कड़वे अनुभव थे। इनका मानना था कि धार्मिक पर्वों व अनुष्ठानों का आयोजन मात्र एक हसीन प्रदर्शन है। उसकी उपयोगिता व छिपे हुए सद्‌गुणों की पहचान तथा आत्मसातीकरण किसी व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाता। हम धर्म के वास्तविक संदेशों को न समझकर उनके स्थूल तत्त्वों की ही अभिव्यक्ति करते हैं। विजयादशमी के अवसर पर रावण दहन की धार्मिक परंपरा पर कटाक्ष करते हुए नासिरा शर्मा लिखती हैं कि 'रावण को नकारते हुए भी रावण कृत्य अपनाने की छिपी लालसा आज का सबसे बड़ा यथार्थ है।'[3]

नासिरा जी के मन में धर्म एक भय के रूप में व्याप्त था। बाल्यावस्था में नासिरा जी ने अधिकतर धार्मिक आयोजनों का प्रत्यक्ष दर्शन किया। मुहर्रम और चेहल्लुम के अवसर पर हुसैन साहब के लिए सोग करना, उनकी शहादत को याद करना, इमामबाड़े बनाना, नौहा, मर्सिया पढ़ना, उनको मात्र एक रूढ़िबद्ध परंपरा और बाह्याडंबर प्रतीत होता था। यह मात्र परंपरा की औपचारिकता हेतु कट्टरता से निभाए जाते थे। इनकी औदात्य की भावना, वास्तविकता तथा इनकी सद्‌गुणों का पूर्ण ज्ञान लुप्त हो गया है। शहीद हुसैन की नेकी व शहादत का प्रभाव मात्र चेहल्लुम

के अवसर पर दृष्टिगोचर होता है, तत्पश्चात पुन: वही कट्टरतापूर्ण हिंसा व स्वार्थपूर्ण जीवनशैली। इसी प्रकार हिंदू धर्म में भी नवरात्रि, विजयदशमी, होली, दीपावली आदि पर्व मात्र धार्मिक कट्टरता और प्रदर्शन का एक साधन हैं। नवरात्रि के अवसर पर एक तरफ मंदिरों और पांडालों में दुर्गादेवी की प्रतिमा स्थापित कर नारी शक्ति की उपासना होती है और वहीं दूसरी तरफ बाल हिंसा, कन्या-भ्रूण हत्या, बलात्कार, घरेलू हिंसा और शोषण की घटनाएँ होती रहती हैं।

दीपावली, होलिका दहन, विजयादशमी, जो प्रेम, सौहार्द, सत्य की प्रतिष्ठापना व रामराज्य की महत्ता को दर्शाने वाला एक औदात्य पर्व है उसकी ओजस्विता और भातृत्व के संदेश नष्टप्राय: हो गए हैं। इन उत्सवों की आड़ में तमाम दुर्व्यसनों और धार्मिक हिंसा में वृद्धि हो रही है। धर्म की मूल मानवीय संवेदनाएँ विलुप्त हो चुकी हैं। धर्म अपने मूलत्व को खो चुका है तथा धार्मिक ग्रंथों का मिथ्या उदाहरण देकर समाज मे शोषण, अराजकता, कट्टरता, हिंसा एवं अन्य दुर्व्यवस्थाओं को प्रश्रय दिया जा रहा है, जो मानवता का क्षरण करने को तत्पर है। नासिरा शर्मा प्रारंभ में इन्हीं मिथ्याडंबरों को अपने धार्मिक विरक्ति का आधार बताते हुए कहा है कि 'मेरी एक मानसिकता भी है जो मेरे गहरे संताप को इंगित करती है, जो मेरे अंदर बचपन से ही एक खौफ के शक्ल में घर कर गया है, जिसने मुझे धार्मिक अनुष्ठानों से दूर रखा क्योंकि मेरे लिए धर्म का अर्थ था—फसाद, घुटन, जड़ता, आडंबर और कठमुल्लापन।'[4]

कार्ल मार्क्स का कथन है कि 'धर्म जनता की अफीम है'। यह कथन आज वैश्विक स्तर पर फलीभूत होता दिख रहा है। धर्म जो एक सर्वहितकारी विचारधारा थी आज युवाओं को अफीम के समान परोसी जा रही है। धार्मिक कट्टरता के मद में हमारी युवापीढ़ी हिंसक और अशांत हो गई है। धार्मिक उन्माद विश्वपटल पर व्यापक रूप से पैर पसार रहा है। धर्म की अनुचित व्याख्या द्वारा हमारे तथाकथित धर्मज्ञों, मुल्लाओं व पंडितों ने उन समस्त अनैतिक तथ्यों को धर्म में सम्मिलित कर दिया, जिसके विरोध में धर्म का अस्तित्व आया था। धार्मिक उन्माद की इस अहितकर व दानवीय स्थिति के निवारण और मानवता की पक्षधर नासिरा शर्मा के मंतव्य को प्रकाशित करते हुई डॉ॰ सुदेश बत्रा कहती हैं—'नासिरा जी ने धर्म को एक अफीम की तरह नहीं, बल्कि एक सिद्धांत, एक दर्शन की तरह देखा है, जो मनुष्य को सद्वृत्तियों की ओर ले जाता है किंतु जब धर्म कट्टरता, रूढ़िबद्धता और कर्मकांडों की ओर धकेलता है तो इंसानियत का खून होने लगता है।'[5]

आधुनिक राजनीतिक समूह धार्मिक उन्माद की इसी भट्टी पर अपने तवे गर्म कर रहे हैं। वोट बैंक की रोटियाँ सेकी जा रही हैं और सत्ता की भूख मिटाई जा रही है। हमारी युवापीढ़ी को तथा धार्मिक आस्था वाली जनता को धर्मांधता व धार्मिक संकीर्णता का पाठ पढ़ाया जा रहा है। धर्म प्रतीकों व वाक्यों के अनुचित प्रस्तुतीकरण द्वारा सांप्रदायिकता का जहर घोला जा रहा है। धार्मिक दंगे भड़काए जा रहे हैं। मनुष्य की रक्षा के लिए अस्तित्व में आया धर्म आज उसी मानवता का संहार करने को सज्ज है।

नासिरा जी धार्मिक उन्माद की इस तलवार से मानवधर्म की बलि होते देख क्षोभ एवं पीड़ा से भर जाती हैं। मानव की इस दिशाहीन धार्मिक भटकन में उन्हें धर्म की वास्तविकता का क्षरण दिखाई देता है। जीरो रोड में नासिरा जी ने सिद्धार्थ के माध्यम से इस धार्मिक हिंसा के लिए पश्चाताप कराया है—'वह एक मनहूस घड़ी थी जब मैं धर्म के उन्माद में या फिर दिशाहीन

छटपटाहट में उस झुंड में जा मिला जो वे सारे काम करते थे, जो सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं थे।'[6] स्वयं के धर्म को श्रेष्ठ मानने व एक-दूसरे के धर्म के प्रति गहन अविश्वास रखनेवाले ही इस सांप्रदायिकता के जनक हैं और यह सांप्रदायिकता हमारे मानवता की धरोहर को क्षतिग्रस्त कर हमारी धार्मिक एकता, अखंडता, धैर्य व सहिष्णुता पर तीव्र कुठाराघात कर रही है। सर्वधर्म समभाव व मानवीय धर्म की पक्षधर नासिरा जी का पारिवारिक वातावरण धर्मों की संगम स्थली-सा प्रतीत होता है। मुस्लिम धर्म के सहज वातावरण में पली-बढ़ी नासिरा जी का प्रेम-विवाह हिंदूधर्म के संस्कारों से पुष्ट डॉ॰ रामचंद्र शर्मा से हुआ। इनकी पुत्री का विवाह मुस्लिम धर्म के प्रसिद्ध लेखक व बदी उज्जमां से तथा पुत्र अनिल का विवाह क्रिश्चियन धर्म की 'स्टेफनी' से हुआ। इनका पौत्र एलेग्जेंडर अली शर्मा इनकी धर्मनिरपेक्षता का प्रत्यक्ष दर्पण है।

नासिरा जी की मान्यता है कि 'धर्म की जड़ता और रूढ़िवादिता से व्यक्ति मुक्त हो जाता है, पर समाज नहीं।'[7] हमारा समाज धार्मिक अविश्वास, कर्मकांड, परंपरावादी रीति-रिवाज की गुत्थी में इस प्रकार उलझा है कि वह उसके विचारों में रच-बस गई है। यह मानसिकता कितनी ही अमानवीय क्यों न हो, परंतु इसे नकारा नहीं जा सकता। इन्हीं तथ्यों की कट्टरता के संदर्भ में नासिरा जी ने एक इंटरव्यू में कहा है कि 'मजहब फसाद करवाता है।' धर्म की मूल संकल्पना को समझना होगा। धर्म के प्रति एक नवीन मानवीय दृष्टिकोण को विकसित करने और धार्मिक बोसीदेपन को नष्ट करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक होना पड़ेगा। हर व्यक्ति चाहे वह स्त्री या पुरूष, उच्चवर्ग का हो या दलित, चाहे वह किसी धर्म का हो उसे धार्मिक ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन करना होगा। समाज में धर्म के नाम पर चलायमान स्त्री-शोषण, दलित-शोषण, उन्मादक हिंसा, आपसी वैमनस्य, घृणा, क्रोध इन समस्त अमानवीय कृत्यों का निवारण धर्म की वास्तविकता के ज्ञान के अभाव में नहीं हो सकता।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक समाज में धर्म की वास्तविकता को धार्मिक कट्टरता के परदे के पीछे छिपा लिया गया है। नासिरा जी ने धर्म और संप्रदाय के आधार पर मानव विभाजन को अनुचित माना है। वह धर्म वास्तव में धर्म नहीं है जो मानवीय संवेदनाओं को हानि पहुँचाए और मानव को पशु बना दे। उसकी मानवीयता का क्षरण करके उसे दानवीय कार्यों हेतु प्रोत्साहित करे। धर्म का मूल करुणा है, जो मनुष्य व संपूर्ण सृष्टि के समन्वय का प्रमुख सेतु है। धर्म एक आध्यात्मिक दृष्टि है जो मनुष्य को स्वयं से ऊपर उठकर विचार करने की प्रेरणा देता है। धर्म के पाँच आधार हैं—ज्ञान, प्रेम, न्याय, समर्पण और धैर्य। इन सभी आधारों से रहित धर्म मूलत: धर्म नहीं है। संसार में किसी विशेष धर्म के निमित्त हुआ संघर्ष या युद्ध मानवता का संहारकर्ता है। अंतत: मानव के वास्तविक धर्म को परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि वास्तव में धर्म मनुष्य को मनुष्य के साथ एवं संपूर्ण सृष्टि के साथ सुखपूर्वक व संघर्षरहित जीवन जीने का उपदेश देनेवाली एक शैली है, जो संपूर्ण वैश्विक संघर्षों को नष्ट कर हृदय में सहज प्रेम की उत्पत्ति करता है। इसके अतिरिक्त समाज में व्याप्त अंधविश्वास, कट्टरता, धार्मिक हिंसा जैसे अमानवीय कृत्य समाज को प्रभावित करने वाली एक अनैतिक विचारधारा है, जो धर्म नहीं अधर्म है।

संदर्भ

1. खुदा की वापसी (कहानी समग्र), नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 385
2. नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, एम॰ फिरोज अहमद, सामयिक बुक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण

2017, पृ॰ 26
3. अक्षय वट, नासिरा शर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण 2011, पृ॰ 24
4. खुदा की वापसी (कहानी समग्र), नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 384
5. एक अनवरत सुलगती लौ : नासिरा शर्मा, डॉ॰ सुदेश बत्रा, साहित्य भंडार प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ॰ 9
6. नासिरा शर्मा : शब्द व संवेदना की मनोभूमि, ललित शुक्ल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2012, पृ॰ 109
7. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ॰ 58

द्वारा श्री दीनदयाल उपाध्याय
ग्राम उदयभानपुर
पो॰ कोल्हुआ (जौनपुर) 222145
मो॰ 7800549384, 8840585888

मालती जोशी का रचना-संसार

डॉ॰ कृष्णा शर्मा
उप-प्राचार्या, पी॰जी॰डी॰ए॰वी॰ महाविद्यालय

अतीत की स्त्री रचनात्मकता से समकालीन स्त्री विमर्श का गहरा तार जुड़ा हुआ है। आधुनिक स्त्री विमर्श का निर्माण नवजागरण कालीन दौर में हुआ तो उसका एक सिरा इतिहास के उन छोरों पर मिलता है जहाँ स्त्री समाज की धुरी थी, वह समाज मातृसत्तात्मक था। डॉ॰ सुमन राजे ने 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में वैदिककालीन स्त्री रचनाकारों की उपस्थिति को सामने लाने का जो श्रमसाध्य कार्य किया है वह स्त्री लेखन की ऐसी अजस्त्र परंपरा का उदघाटन है जो अब तक एक मायने में अनचीन्ही ही रही है। महिला लेखन की एक अविच्छिन धारा रही है, आवश्यकता है उसे खोज निकाल आकार देने की। ऋग्वेद में शमेशा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी, यमी वैवस्ती, गार्गी, सूर्या आदि ऋषिकाओं के नाम मंत्र दृष्टा के रूप में प्राप्त होते हैं।

इन वेद मंत्रों में ऋचाओं का महत्त्व केवल इस रूप में ही नहीं है कि ये ऋषिकाओं की रचनाएँ हैं बल्कि इस रूप में भी हैं की इन ऋचाओं में स्त्री की आत्मशक्ति का गौरव भी परिलक्षित होता है। वैदिक साहित्य के पश्चात पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में भी स्त्री रचनाकारों की लंबी पाँत है। थेरी गाथाओं में भी स्त्रियाँ उपस्थित हैं।

भक्ति आंदोलन के दौर में पहली बार स्त्री स्वर पुरुष सामंती ढाँचे से टकराता है। संत स्त्री कवियों ने पुरुष वर्चस्व और शोषण को चुनौती दी। मध्यकाल में समूचे भारत में व्याप्त भक्ति आंदोलन में स्त्री रचनाकारों की रचनाएँ इतिहास में न्यूनाधिक रूप में सम्मिलित करना साहित्येतिहासकारों की विवशता रही है। आंडाल और लल्लेश्वरी की चाह कर भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। मीराबाई के पद तो इतिहासग्रंथों से भी ज्यादा वाचिक परंपरा में आज तक जनमानस की जुबान पर चढ़े हैं। मीरा को तो 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' कहने के कारण मिलने वाले कष्टों की अपार गाथा भी किंवदंतियों और जनश्रुतियों में सुरक्षित हैं। मीरा जब कहती हैं, 'जहर का प्याला राणा जी भेजयों पीवत मीरा हाँसी रे' तो यह केवल एक स्त्री, एक राजपूताने की महारानी का सत्य भर नहीं है। यह युगसत्य है, समय का एक ऐसा सत्य जो समाज के एक-एक पर्दे को उघाड़कर रख देता है।

हिंदी में स्त्री लेखन की सशक्त आवाज और स्त्री स्वाधीनता का प्रखर स्वर महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान के सृजन के रूप में रूपायित हुआ। जिस स्त्री लेखन पर उत्तर आधुनिकता के व्यामोह में इस तरह के तंज भी कसे गए कि 'आज भी लेखिका को मान्यता लेखक देते हैं तो लेखिका यह समझ धन्य होती है।'[1]

राजेंद्र यादव मानते हैं कि स्त्री की मुक्ति का मतलब उसकी देह की मुक्ति है। वे कहते हैं, 'पुरुष की अपेक्षा स्त्री अपनी देह में ज्यादा कैद है वह अपने शरीर से ऊपर उठना या उसे भूलना भी चाहे तो न प्रकृति उसे ऐसा करने देगी, न समाज। उसका सारा सामाजिक मूल्यांकन सबसे

 ISSN 0975-735X

पहले उसके शरीर का मूल्यांकन है। गुण तो बाद में आते हैं। वह एक ऐसी दृश्य वस्तु है, जिसे अपनी सार्थकता पुरुष की निगाह से सुंदर और लगने में भी मानी है।'[2]

स्त्री की मुक्ति के संदर्भ में राजेंद्र यादव के विचार पर्याप्त उत्तेजक और भड़काऊ थे पर स्त्री लेखन नें इन व्यंग्योक्तियों का जवाब तर्कों से नहीं अपने लेखन से दे दिया है। स्त्री की दुनिया भी इसी दुनिया में बसती है और वह आधी नहीं बल्कि मुकम्मल दुनिया है जिसे स्त्री को न केवल देखने का, बल्कि अपनी नजरों से देखने का हक है। दूसरों की नजर और अपनी नजर से अपनी दुनिया को देखने का अंतर जब अनुभव हुआ तो बहुत सी हिचकिचाहट दूर हुई, भ्रम टूटे और ऐसी दुनिया नजर आई जिसकी वे अब तक आकांक्षा भर पालती थीं।

नारी मन की स्थिति को जिस विशिष्टता एवं सुघड़ता से महिला लेखन ने अभिव्यक्ति दी, वह एक गर्व की बात है। यद्यपि कथा लेखिकाओं ने शुरुआत मानवीय संबंधों पर केंद्रित कहानियों से की थी किंतु सामाजिक परिस्थितियों ने नए सिरे से समाज और परिवार में स्त्री की परंपरागत भूमिका को परिभाषित करने के लिए बाध्य किया। मानसिकता में बदलाव आया और रिश्ते बदल गए। भावुकता का स्थान व्यावहारिकता ने ले लिया। उपर्युक्त समस्याओं पर मनोवैज्ञानिक ढंग से अस्मिता एवं अस्तित्वबोध की प्रबल वकालत करते हुए चंद्रिकरण, सौनरेक्सा, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, दिनेश नंदिनी डालमिया, मृदुला गर्ग, शशिप्रभा शास्त्री, ममता कालिया, मंजुल भगत, मन्नू भंडारी, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, कुसुम खेतान, सुषम बेदी, मनीषा कुलश्रेष्ठ इत्यादि अनेक चर्चित कथा लेखिकाओं ने अपनी लेखनी चलाई। उनके कथा सर्जन में जहाँ नारी के स्व के प्रति स्वतंत्र व्यक्तित्व, आत्मनिर्भरता, अस्मिता के प्रति एक संचेतना का उदय हुआ है, वहीं उच्चशिक्षा ने उसकी आकांक्षाओं को नए क्षितिज दिए हैं। किंतु घर और बाहर दोनों जिम्मेदारियों को निभाते हुए सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास में वह मानसिक एवं शारीरिक रूप से टूट जाती है और तनाव ग्रस्त रहती है। आर्थिक मोर्चे पर बराबरी पर रहने के बावजूद आज भी नारी दोहरी चक्की में पिस रही है।

यहाँ पर डॉ॰ राममनोहर लोहिया की एक बात कौंधती है कि 'भारतीय नारी द्रौपदी जैसी हो, जिसने कभी किसी पुरुष से दिमागी हार नहीं खाई। नारी को गठरी के समान नहीं बनाया है, परंतु नारी इतनी शक्तिशाली होनी चाहिए कि वक्त पर पुरुष को गठरी बनाकर अपने साथ ले चले।'[3] यह बात डॉ॰ लोहिया जाति अध्ययन और विनाश संघ के घोषणा पत्र में नए ढंग से कहते हैं कि 'अगर औरत की जगह रसोईघर में हो तो आदमी की जगह पालने के पास होनी चाहिए। भारत की प्रतिनिधि नारी सीता सावित्री नारी है, द्रौपदी है।'[4]

स्त्री को यदि पूज्य देवी न बनाकर केवल मानवी के रूप में ही स्वीकार किया जाता तो शायद स्त्री से इतनी अपेक्षा न कर पाते। साधारण मानवी होने पर उसकी भी इच्छाएँ होती, आवश्यकताएँ होती जिनके कारण पुरुष को उसे अपना सहभागी बनाना पड़ता। भारतीय समाज में कभी धर्म के नाम पर, कभी परंपरा के नाम पर और कभी त्याग और समर्पण की देवी बनाने के नाम पर स्त्री को पुरुष ने इस्तेमाल किया। स्त्री विमर्श अपनी मूल चेतना स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का विश्लेषण करता है।

इन्हीं समस्याओं को लेकर हिंदी साहित्य के साठोत्तरकाल में जिन लेखिकाओं का साहित्य अपने वैविध्यपूर्ण विषयों और नवीनता के कारण नए क्षितिजों को छू रहा था, उनमें शिवानी, चित्रा

मुद्गल, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मंजुल भगत, निरुपमा सोवती, राजी सेठ, दीप्ति खंडेलवाल प्रमुख हैं।

मालती जोशी इस कालखंड में इन सभी लेखिकाओं के मध्य अपनी पहचान बनाने में सफल हुई हैं। उन्होंने अपनी समकालीन लेखिकाओं की भाँति सिर्फ सेक्स तथा प्रेम आदि को बाँधकर नहीं रखा बल्कि मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखने के कारण नारी को मर्यादा में बाँधकर और परिवार की एकता और प्रभुता के मध्य में रखा है। यूँ भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र अलग-अलग इकाइयाँ कहाँ हैं? एक-दूसरे से काटकर क्या एक को भी समग्रता में जाना समझा जा सकता है।

मालती जोशी का रचनाकर्म कविता लेखन से आरंभ होता है परंतु स्वयं लेखिका के अनुसार, 'मैंने सप्रयास कभी नहीं लिखा। कभी मैं अपने को मीरा और महादेवी की उत्तराधिकारिणी समझती थी। आज कविता की दो पंक्तियाँ लिखना मेरे लिए कठिन है।'

मालती जी का एकमात्र गीत-संग्रह 'मेरा छोटा सा अपना मन' है। मालती जोशी को 'मालवा की मीरा से विभूषित किया गया पर सबके जीवन में वसंत एक बार अवश्य आता है। मेरे जीवन में भी आया, पर अकेला नहीं आया था। कविता एक फागुनी बौर लेकर आया था, गीतों का एक झरना-सा फूट पड़ा था' पर उन्हीं के अनुसार कालांतर में यह स्त्रोत अपने आप ही यथार्थ की रेतीली धरती में कहीं सूख गया।

वर्ष 1952 में उनकी पहली कहानी कानपुर की पत्रिका अरुण के वर्षा अंक में छपी थी शीर्षक था 'माँ'। तब से आज तक वह निरंतर रचनाकर्म में रत हैं। बालसाहित्य भी लिखा, संस्मरण और उपन्यास भी। पर कहानी लिखने में ही उनका मन अधिक रमा और वह इसका कारण भी बताती हैं—'जो भी कहना, वह मैं जल्दी से कह सकती हूँ उपन्यास का ताना-बाना लेना होता है इसे अंतिम छोर तक बाँधकर ले जाना पेशेंस का काम है। इसलिए मुझे कहानी लेखन अधिक भाया।'

मालती जी की कहानियों में मध्यवर्गीय परिवारों की ही दास्तान है, क्योंकि यह मालती जी की जानी-पहचानी दुनिया है। मध्यवर्ग ही वास्तव में नैतिकता की रक्षा करता है। सारे सामाजिक और धार्मिक रस्मोरिवाज निभाता है। मध्यवर्ग के छोटे-छोटे दुख, छोटी छोटी समस्याएँ उनकी कहानियों में अनायास हैं। उनसे जब पूछा गया कि अन्य वर्गों के बारे में वह कभी नहीं लिखतीं तो उन्होंने कहा, 'इसका उन्हें अनुभव नहीं है। उधार के अनुभवों से वह कभी नहीं लिखतीं।'

मालती जोशी की कहानियों का घरेलूपन ही उनकी शक्ति है। उनकी दुनिया घर-आँगन में ही सिमटी है, परिवार ही उनकी कहानियों का केंद्र है। उनके कथासाहित्य को पढ़ते हुए एक ऐसी लेखिका से मुलाकात होती है जो बोलती कम हैं पर उनका आशय यह कतई नहीं है कि वह समझौतावादी हैं। वह बेटी हैं, बहन हैं, पत्नी हैं, माँ हैं और न जाने क्या क्या हैं और उसकी उपलब्धि यह भी है कि अपने सभी रूपों में, उसने खामोशी से अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने का निरंतर प्रयास किया है। लेखिका स्वयं को एक आम मध्यवर्गीय महिला के रूप में ही समझती है। उन्हें अपने बारे में कोई मुगालता नहीं है कि वह कोई बड़ी साहित्यकार बन गई हैं। यह कहना उचित होगा कि जीवन के इस मोड़ पर भी लेखिका के पाँव जमीन पर ही हैं। आज एक अक्षर

लिखना शुरू करने से पूर्व कलम सँभालते ही स्वयं को श्रेष्ठता की दौड़ में शामिल करने की जुगाड़बाजी और पुरस्कारों के लिए जोड़तोड़ करने की पैंतरेबाजी बहुत आम है। इस दृष्टि से मालती जोशी भीड़ में होते हुए भी अपने आचरण और व्यवहार की बदौलत स्वयं को भीड़ से अलग साबित करने में पूरी तरह सफल रही हैं।

यदि परिवार उनकी प्राथमिकता रही है तो परिवार भी उनकी उपलब्धियों से हमेशा गौरवान्वित अनुभव करता रहा है। वह किसी भी राजनीतिक दल, सामाजिक संस्था या लेखकीय संगठन की सदस्य नहीं हैं। उनका मानना है कि जिसके पास संवेदनशील मन है वह किसी भी दुख, अन्याय, अत्याचार को अनदेखा नहीं कर सकता। उन्हें कथा बीज ढूँढने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता।

मालती जोशी के विवेचनात्मक गद्य का एक उज्ज्वल अंश यह है कि जहाँ उन्होंने नारी की समस्याओं पर विचार किया है, वहाँ पुरुषों को भी खलनायक नहीं दिखाया है। स्त्री और पुरुष के बीच सहयोग की आकांक्षा रही है। दोनों के व्यक्तित्व की गरिमा बनी रहे, कोई किसी को आहत न करे। आज भी नारी के अन्याय केकारण खोजने पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान नारी के गलत समाजीकरण पर जाता है। माता आज भी पुत्री को पुरुष से दबकर रहने का संदेश देती है। लड़की के जन्म से ही उसकी हीनता की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस गलत समाजीकरण के कारण नारी मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह वास्तव में पुरुष से भिन्न है। अपराधबोध उसका पीछा कभी नहीं छोड़ता है। मध्यवर्ग अपनी सम्पूर्ण शिक्षा के बावजूद समर्पिता नारी बनने के लिए विवश है। एक सुनियोजित षड्यंत्र द्वारा मध्यवर्गीय नारी की व्यक्तित्वहीनता बनाई जाती है। एक तरह से मनोवैज्ञानिक तरीके से उसका रूपांतरण किया जाता है। 'और यह एहसास आपके भीतर किसने पैदा किया? आपके पति परमेश्वर ने ही न? आपके रूप रंग को लेकर उन्होंने इतनी तरह से इतनी बार कोंचा होगा कि आप कभी भी सिर न उठा सकीं। मुझे बताइए क्या रूप ही सबकुछ है? आपके सारे गुण, शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार का कोई महत्त्व नहीं है? कोई मूल्य नहीं है? क्या चेहरे की सुंदरता से चरित्र के अवगुण छुप जाते हैं?'[5]

मालती जोशी जी की प्रतिरोध कहानी में स्त्री में अभाव का भाव, कमतर का भाव भी पुरुष ही भरता है जिससे स्त्री आजन्म हीनग्रंथि से ग्रस्त रहे। नारी उत्पीड़न के प्रश्न को बारीकी से देखने पर यह अनुभव होता है कि समाज में सभी वर्गों में शिक्षित या अशिक्षित, कामकाजी या घरेलू महिलाओं में महिलाएँ भी नारी को प्रताड़ित करने में बराबर की हिस्सेदार हैं। 'बिशन रे, मेरी माने तो इस छोकरी को भी लगे हाथ निबटा दे। आजकल की लड़कियों का कोई ठिकाना है। कब किसका हाथ पकड़कर चल दे और फिर तेरे यहाँ तो कोई देखने वाला भी नहीं है। इन वाक्यों में व्यंग्य की दोहरी मार होती मम्मी पर। पर वे किसी बात का उत्तर नहीं देती।'[6]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में नारी के संबंध सीता और सावित्री के संबंधों से युगों आगे बढ़ गए हैं। अब न तो पुरुष राम है और न ही स्त्री सीता। नवीन आयामों में नए रिश्ते बनाए जा रहे हैं—कहीं दोस्ती, कहीं पारस्परिक पहचान और कहीं कुछ कदम का साथ। इन नए संबंधों में पर्याप्त विविधता है। कृष्णदत्त पालीवाल जी ने 'उत्तर आधुनिकता की ओर' में लिखा 'रामायण-महाभारत ने जो मूल्य हमें दिए थे और जिनके बल पर यह समाज और साहित्य न जाने कब से शक्ति पाता आ रहा था उस मूल्य-प्रेरणा का ही अंत दिखाई दे रहा है। उपेक्षिता नारियों पर उनके तप, त्याग

पर नारी के सतीत्व भाव पर टिकने वाले तुलसीदास, जायसी, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद का पूरा चिंतन देखते देखते बेदम हो रहा है। कामायनी का पूरा शक्ति दर्शन आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के बनावटी दर्शन के चलते अप्रासंगिक हो गया है।'[7]

यह भी विडम्बना है कि स्त्री से अभी भी रामायण और महाभारत में वर्णित चरित्रों की अपेक्षा की जाती है। पुरुष मानसिकता उससे आगे सोच ही नहीं पाती, बढ़ ही नहीं पाती। सुप्रसिद्ध महिला कथाकार चंद्रकांता के शब्दों में, 'स्त्री विमर्श को वृहत्तर अर्थों में परिभाषित करना चाहें, तो वह घर-परिवार, समाज-नीति और राष्ट्रनीति में नारी की अस्मिता, अधिकार और उन अधिकारों के संघर्षचेतना से जुड़े संवाद की संकल्पना है।'[8]

यदि हम इतिहास पुराण के पुनर्पाठ के तहत रामायण की सीता और महाभारत की द्रौपदी का आँकलन करें तो ये दोनों ही चरित्र पुरुष वर्चस्वता के तमाम दबावों के बावजूद स्त्री चेतना की अद्भुत मिसालें रचते हुए दिखाई देते हैं। द्रौपदी और सीता एक आदर्श स्थापित करते हुए भी अपने व्यक्तित्व के स्वाभिमान की रक्षा करती दिखाई देती हैं।

'अवसान एक स्वपन का' कहानी में दोनों बहने पल-पल अपने स्वाभिमान को बचाए रखने के लिए प्रयासरत हैं। समाज से उन्हें केवल सम्मान चाहिए। तुम चुप रहो दीदी, हर बात में क्षमा-याचना की मुद्रा में खड़े होने की जरूरत नहीं है। इस बार मैंने दीदी को डपट दिया और फिर भाभी से मुखातिब हुई। 'हाँ तो किस दान की बात कर रही थी आप दीदी कोई आलू बैंगन है कि उन्होंने माँगा और आपने उठा कर दे दिया।'[9]

आधुनिकयुग में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण व्यक्ति अपने वृद्ध माता, पिता के प्रति संवेदनशील और निर्मम हो उठा है। पति के मरने के बाद स्त्री की स्थिति पूरी तरह संतान पर निर्भर हो जाती है, विशेष रूप से बेटे पर। बेटियाँ फिर भी माँ को लेकर चिंतित रहती हैं। 'पिया पीर न जानी' कहानी-संग्रह की कहानी में जीवनभर उपेक्षा का दंश झेलती रसिका क्षण-भर में अपना जीवन तय कर लेती है पर वह फिर भी माँ के विषय में सोचती है कि पिता के सहारे वह अपनी माँ को नहीं छोड़ सकती और कहती है, 'खास बात जो कहने आई थी वह तो रह ही गई। सुनो जिस दिन तुम्हें ऐसा लगा कि अब उस घर में तुम्हारा गुजारा नहीं हो सकता, तुम मुझे सूचित करना। मैं तुम्हें पता दे जाऊँगी।'[10]

स्त्री का संबंध जिस प्रकार से गृहस्थी, बच्चे, परिवार, चूल्हा-चौका से जोड़ा गया और पुरुष का अहं, शक्ति, सत्ता से जिसके कारण भाषा में लोकमर्यादा, प्रेम, पासत्व, ममता जैसे शब्द स्वत: ही स्त्री के लिए रूढ़ होते चले गए। स्त्री लेखन के माध्यम से किसी की पत्नी, किसी की माता के रूप में पहचानी जाने वाली स्त्री ने अपने नाम से पहचान का प्रश्न सामने रखा और पहली बार ऐसे पात्र के रूप में सामने आई जो अपना नाम चाहती है। अत: आवश्यकता है तो समाज में स्त्री के प्रति रूढ़ मानसिकता को बदलने की।

संदर्भ

1. आलोचना में सहमति असहमति, मैनेजर पांडेय, पृ॰ 156
2. वही, पृष्ठ 176
3. उत्तर आधुनिकता की ओर, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ॰ 100
4. वही, पृ॰ 99

5. वो तेरा घर, ये मेरा घर, मालती जोशी, पृ॰ 16
6. मालती जोशी प्रतिनिधि साहित्य, संपा॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, डॉ॰ कृष्णा शर्मा, पृ॰ 30
7. उत्तर आधुनिकता की ओर, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ॰ 99
8. स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिंदी साहित्य, चंद्रकांता, पृ॰ 17
9. औरत एक रात, मालती जोशी, पृ॰ 58
10. पिया पीर न जानी, मालती जोशी, पृ॰ 38

एफ-2201, **सनशाईन, हिलियूस,**
सेक्टर 78, **नोएडा**
उत्तर प्रदेश 201301
मो॰ 9871726471
krishnasharmapgdav@gmail.com

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा संसाधनों का भौगोलिक विश्लेषण

डॉ० मुकेशकुमार सिंह
एम०ए० (भूगोल) पीएच०डी०
प्रभारी भूगोल विभाग
डी०पी० महाविद्यालय, सहसवान (बदायूँ)

ऊर्जा संसाधन आर्थिक क्रिया-कलापों के मुख्य आधार हैं, जिनके अभाव में मानवीय जीवन निराधार है। खाना पकाने, वस्तुओं को गरम करने, परिवहन सेवाओं, उद्योग, संचार, कृषि कार्य, मशीनों को चलाने व अनेक कार्यों के लिए प्रत्येक व्यक्ति को ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा तथा समृद्धि में पारस्परिक संबंध है। इसकी झलक विकसित एवं विकासशील देशों के जीवन स्तर को देखने में मिल सकती है। विकसित देशों में बिजली की प्रति व्यक्ति खपत 5 से 10 किलोवाट है, जबकि विकासशील देशों में यह केवल 1 से 2 किलोवाट है। ऊर्जा की खपत विश्वस्तरीय 2 किलोवाट है। यह ऊर्जा बिजली ताप, प्रकाश यांत्रिक, ऊर्जा आदि के रूप में प्रयोग की जाती है। लेकिन जैसे-जैसे विकास क्रम आगे बढ़ा उन्नत प्राविधिक के लिए अधिक और विशिष्ट ऊर्जा की आवश्यकता हुई जब से कोयला, तेल, बिजली और गैस का प्रयोग मानव जीवन का आधार बना। कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस और विद्युत के व्यावसायिक उत्पादन और उपयोग के साथ मानव इतिहास का आधुनिकयुग शुरू हुआ। इन ऊर्जा संसाधनों से उद्योग, यातायात, संचार, कृषि और व्यापारिक गतिविधियों में क्रांतिकारी बदलाव लाकर विकास को एक नवीन दिशा दी जिससे ऊर्जा की माँग में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी हुई ऊर्जा संसाधनों पर ही किसी क्षेत्र को आर्थिक समृद्धि के मापन में प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग एक सूचक के रूप में उपयोग किया जाता है। उच्च और सतत आर्थिक विकास हेतु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अनिवार्यताओं में से एक है, बेहतर बुनियादी संरचना यह मानते हुए सतत आर्थिक विकास के लिए सरकार ऊर्जा संसाधनों के विकास के लिए सदैव तत्पर रही है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोधपत्र का अध्ययन क्षेत्र जनपद बदायूँ है जो गंगा-रामगंगा दोआब में स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार 270-25/ उत्तरी अंक्षाश से 280-20/ उत्तरी अक्षांश एवं देशांतर विस्तार 780-40/ पूर्वी देशांतर से 790-20/ पूर्वी देशांतर के मध्य है। इसका क्षेत्रफल 4234 वर्ग किलोमीटर है। जनपद बदायूँ की उत्तरी सीमा रामपुर एवं बरेली जनपदों, दक्षिण सीमा कासगंज एवं फर्रूखाबाद जनपदों पूर्वी सीमा जनपद शाहजहाँपुर एवं पश्चिमी सीमा पर संभल जनपद का विस्तार है।

प्रशासनिक दृष्टि से 01 जनपद मुख्यालय (बदायूँ), 05 तहसील मुख्यालय, 15 विकास

 ISSN 0975-735X

खंड एवं 136 न्याय पंचायत, 885 ग्राम पंचायत, 1476 ग्राम आबाद हैं। स्थानीय निकायों एवं प्रशासन की दृष्टि से 06 नगर पालिका परिषद एवं 08 नगर पंचायत हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जनपद बदायूँ की जनसंख्या 31.27 लाख व्यक्ति एवं जनधनत्व 738 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है।

इंपीरियल ऑफ गजेटियर इंडिया के लेख के अनुसार 905 ई॰ में बदायूँ को अहीर राजा बुद्ध ने बसाया था। मुस्लिम इतिहासकार फिरोज खाँ लोदी के कथनानुसार 256 ई॰ में अशोक के अधीनस्थ शासक बुद्ध ने बौद्धधर्म के प्रचारार्थ यहाँ कुछ बौद्धविहार और एक किला बनवाकर इसे बुद्धमऊ नाम दिया था। बाद में यही बुद्धमऊ, बुद्यामऊ, बुदाम, बंधाँऊ से परिवर्तित होते-होते बदायूँ नाम से जाना जाता रहा है। प्राचीनकाल में बदायूँ का क्षेत्र पंचाल राज्य का अंश था।

उद्देश्य

जनपद बदायूँ की वर्तमान ग्रामीण ऊर्जा उपयोग की स्थिति विषम ऊर्जा संसधानों की समस्या, बढ़ता हुआ ईंधन संकट, सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं, मनोवैज्ञानिक बाध्यताएँ जो ग्रामीण समुदायों को नए वैकल्पिक ऊर्जा के साधनों को ग्रहण व प्रयोग में बाधक है। ग्रामीण क्षेत्र विभिन्न प्रकार के ऊर्जा संसधानों का घरेलू, कृषि एवं पशुपालन, लघु उद्योग, हस्तशिल्प अवखंडों में उपभोग के प्रतिरूप दिशा एवं स्तर का अध्ययन करना तथा विद्युत उपयोग की प्रवृत्ति को ज्ञात करना मुख्य उद्देश्य है।

विधि-तंत्र

प्रस्तुत शोधपत्र को पूर्ण करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकडों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आँकडों का एकत्रीकरण सर्वेक्षण एवं साक्षातकार के माध्यम से किया गया है, जबकि द्वितीय आँकडों का एकत्रीकरण विभिनन विभागों से प्राप्त अभिलेखों से किया गया है।

प्राकृतिक स्वरूप

जनपद बदायूँ एक मैदानी भू-भाग है जो गांगेय मैदान में फैला हुआ है। इसका ढाल उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूरब को है तथा इसकी औसत ऊँचाई 48 मीटर है। गंगा, महावा, वर्दमार, टिकटा, बमरा, भैंसोर, सोत, रामगंगा, बजहा, अरिल मुख्य नदियाँ है। वर्षाऋतु में दक्षिणी एवं पूर्वी भाग बाढ़ प्रभावित है, यहाँ पर परतदार अवसादी चट्टानों का विस्तार है, जिनकी गहराई 1000-1500 मीटर तक है, तथा इनका निर्माण गंगा-रामगंगा व इनकी सहायक नदियों द्वारा लाए गए हिमालयन अवसाद के निक्षेपण से हुआ है। यह चट्टानें प्रवेश्य रंध्रयुक्त व मुलायम हैं। यहाँ की जलवायु ऊष्णतर मानसूनी प्रकार की है। यहाँ का वार्षिक औसत तापमान 25.75 डिग्री सेंटीग्रेट वार्षिक वर्षा 110 सेंटीमीटर, सापेक्ष आद्रता 70 प्रतिशत एवं वायु की औसत गति 5.7 किलोमीटर है। मानसूनी पतझड़ी प्राकृतिक वनस्पति वनों का क्षेत्र 1.62 प्रतिशत, सामाजिक व कृषि वानिकी में सड़कों, नहरों, मेढों पर वृक्षारोपण मुख्य है। उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी की उपलब्धता के कारण यह क्षेत्र कृषि प्रधान है। यहाँ पर चिकनी, बलुई, दोमट, भूड मिट्टी देखने को मिलती है। नदियों के समीपवर्ती क्षेत्र में ही वन्यजीव दिलखाई पड़ते हैं। खनिज की पर्याप्तता शून्य है। अवमृदा जल की दृष्टि से यह क्षेत्र उत्तम है। यहाँ पर जलस्तर की औसत गहराई 5.75 मीटर है, जो वर्षा जल पर निर्भर है।

आर्थिक स्वरूप

जनपद बदायूँ आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा है। यहाँ की प्रमुख आर्थिक क्रिया कृषि एवं पशुपालन है। कुल कार्यशील जनसंख्या का 55 प्रतिशत भाग कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र में कार्यरत है। यहाँ पर सकल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 81.33 प्रतिशत भाग पर कृषि की जाती है, जो दो फसली भूमि 81.67 प्रतिशत है। सकल बोए गए क्षेत्रफल में 48.46 प्रतिशत रबी, 44.17 प्रतिशत खरीफ एवं 7.37 प्रतिशत जायद के अंतर्गत है। कृषि गहनता 182 प्रतिशत है। यहाँ पर गेहूँ 38 प्रतिशत चावल 36 प्रतिशत, दहलन 4 प्रतिशत, तिलहन 5 प्रतिशत, गन्ना 5 प्रतिशत, आलू 3 प्रतिशत एवं फल व सब्जियाँ 4 प्रतिशत भाग पर उगाई जाती है। यहाँ पर कुल पशु संपदा 14.25 लाख है, जिसमें गौवंशीय पशुधन 5.17 लाख, महिषवंशीय पशुधन 7.10 लाख एवं अजात वंशीय पशुधन 2.05 लाख है। यहाँ पर चीनी विनिर्माण, मैंथा घास से आयल आसवन व बोल्ड क्रिस्टल निर्माण, कागज व गत्ता विनिर्माण, आटा, मैदा, चावल, वनस्पति घी, हथकरघा उद्योग जैसे कुटीर व वृहद उद्योगों का विकास हुआ है, जो मुख्यत: कृषि क्षेत्र पर आधारित हैं। बदायूँ, बिसौली, सहसवान, बिल्सी एवं दातागंज मुख्य औद्योगिक एवं व्यापारिक केंद्र हैं। यहाँ पर दिल्ली-बदायूँ-बरेली मुख्य सड़क मार्ग, बरेली-बदायूँ-मथुरा रेल मार्ग एवं बरेली-अलीगढ़ रेल मार्ग गुजरता है। इस प्रकार जनपद बदायूँ आर्थिक दृष्टि से प्रगतिशील अवस्था में है।

ऊर्जा संसाधनों का विवरण

ऊर्जा संसाधन सर्वांगींण विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। वर्तमान सांस्कृतिक भूदृश्य के उद्‌भव एवं विकास में ऊर्जा के स्रोत, साधनों के अन्वेषण विकास और उपयोग का मुख्य योगदान है। जनपद बदायूँ में प्रयुक्त ऊर्जा संसाधनों का विवरण इस प्रकार है–

कोयला

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में कोयले का उपयोग ईंट-भट्टों, हस्तशिल्प, मिलों, भोजन पकाने, ढाबा पर चाय एवं खाना तैयार करने में किया जाता है। यहाँ पर कोयले की आपूर्ति बाहरी क्षेत्रों से की जाती है। आज भी ऊर्जा संसाधनों की आपूर्ति बाहरी क्षेत्रों से की जाती है। आज भी ऊर्जा संसाधनों में कोयले का स्थान मुख्य है। यहाँ पर कोयले की वार्षिक खपत 1.5 मीटरी टन है।

मिट्टी का तेल

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में मिट्टी के तेल का उपयोग प्रकाश हेतु किया जाता है। निम्नस्तरीय परिवारों में मिट्टी का तेल ही ऊर्जा उपभोग का मुख्य स्रोत है। मिट्टी का तेल आपूर्ति करनेवाली दुकानों की संख्या 890 है। जिसके माध्यम मे 2000 हजार लीटर तेल की आपूर्ति होती है। वर्तमान में मिट्टी का तेल आपूर्ति पर रोक लगा दी गई है।

डीजल

कृषि, परिहवन एवं औद्योगिक गतिविधि के साथ-साथ मशीनरी को चलाने के लिए डीजल का प्रयोग किया जाता है। डीजल की आपूर्ति पेट्रोल पंप के माध्यम से होती है। जिनकी संख्या 45 है जिनके माध्यम से प्रतिदिन 25 लाख लीटर डीजल विक्रय किया जाता है। वर्तमान में इसकी कीमतों में बढ़ोत्तरी के कारण इसके प्रयोग में कमी आई है।

पेट्रोल

 ISSN 0975-735X

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में आवागमन हेतु मोटर साईकिल एवं कार का प्रयोग किया जाता है जिसकी संख्या में अधिक वृद्धि हुई है इसकी आपूर्ति पेट्रोल पंप के माध्यम से की जाती है, साथ ही साथ फुटकर रूप में बेचा जाता है। यहाँ पर औसत रूप से 75 हजार लीटर पेट्रोल प्रयुक्त होता है।

विद्युत

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा प्राप्ति में विद्युत का स्थान मुख्य है। कृषि, औद्योगिक एंव घरेलू स्तर पर विद्युत का प्रयोग सर्वप्रमुख है, लगभग प्रत्येक ग्राम तक विद्युत आपूर्ति की जा चुकी है। यहाँ पर विद्युत आपूर्ति मुरादाबाद-बदायूँ, विद्युत लाइन एवं बरेली-बदायूँ लाइन के माध्यम से की जा रही है। जनपद बदायूँ में कुल विद्युत उपयोग 590117 हजार किलोवाट घंटा है, जिसमें घरेलू प्रकाश एवं लघु विद्युत शक्ति 165720 हजार किलोवाट घंटा है। कृषि विद्युत शक्ति में 190875 हजार किलोवाट घंटा है, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है।

तालिका-संख्या-01

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत उपयोग 2017-2018

क्रम	**मद**	**उपयोग हजार किलोवाट घंटा**	**प्रतिशत**
1.	घरेलू एवं लघु विद्युत शक्ति	165720	28.08
2.	वाणिज्यिक प्रकाश एवं लघु विद्युत शक्ति	13715	2.32
3.	औद्योगिक विद्युत शक्ति	17690	3.00
4.	सार्वजनिक प्रकाश, जल मल एवं उर्द्धन व्यवस्था	2117	0.36
5.	कृषि विद्युत शक्ति	390875	66.24
	योग	590117	100.00

स्रोत : जिला सांख्यिकी पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बदायूँ 2018

गैस

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में गैस का उपयोग खाना पकाने, प्रकाश करने, मशीनरी संचालित करने एवं वाहनों को चलाने में किया जाता है। गैस की आपूर्ति गैस एजेंसी के माध्यम से होती है। यहाँ पर इनकी संख्या 40 है। जिनके माध्यम से 1 लाख गैस सिलेंडरों की आपूर्ति प्रत्येक माह की जाती है।

मानव शक्ति

मानव स्वयं ऊर्जा संसाधनों में प्रमुख है। यहाँ पर कृषि कार्य, पशुपालन, भवन निर्माण, सड़क निर्माण एवं ग्रामीण क्षेत्र में इस प्रकार के कार्यों को संपादित करने में मानवीय ऊर्जा की विशेष खपत होती है। कुल कार्यशील जनसंख्या 6.83 लाख व्यक्ति है।

पशु शक्ति

ऊर्जा संसाधनों में पशुधन का विशेष योगदान है। पशुओं के द्वारा खेतों की जुताई एवं फसल तैयार होने पर फसल की उठावनी हेतु एक निश्चित स्थान पर भारवाहक के रूप में पशु

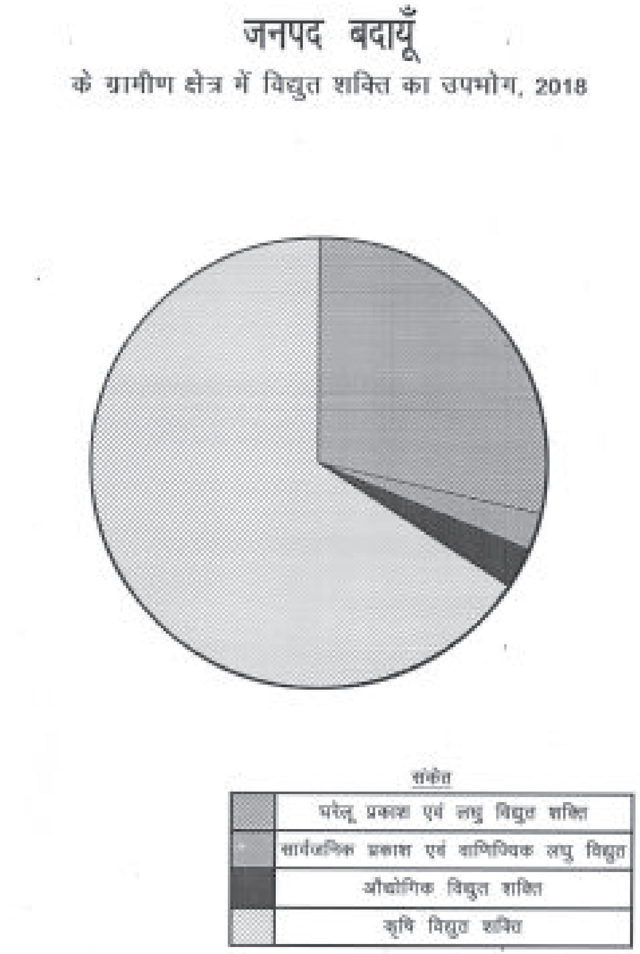

शक्ति का प्रयोग किया जाता है। कुल पशु शक्ति की संख्या 2.25 लाख है।

काष्ठ ईंधन

काष्ठ ईंधन का उपयोग मुख्यत: भोजन पकाने में किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में ऊर्जा संसाधनों में काष्ठ ईंधन का विशेष महत्त्व है। आज भी 35 प्रतिशत परिवार काष्ठ ईंधन पर निर्भर है। इसके अलावा शीतऋतु में ठंडक दूर करने में काष्ठ ईंधन का प्रयोग मुख्य है। ग्रामीण क्षेत्र में तीव्र गति से वनों के कटान के फलस्वरूप काष्ठ ईंधन की समस्या बढ़ रही है।

उपला

ग्रामीण क्षेत्रों में उपला ऊर्जा शक्ति का मुख्य स्रोत है। भोजन पकाने, ठंडक दूर करने, पशुओं के लिए दाना पकाने में इसका प्रयोग हेता है। उपला सर्वाधिक सर्वसुलभ एवं सस्ता साधन है जो ग्रामीण क्षेत्र में पशुधन की पर्याप्तता पर निर्भर है। आज भी कुल ईधन का 20 प्रतिशत भाग की पूर्ति उपला के प्रयोग से होती है।

सौर ऊर्जा

सौर ऊर्जा की प्राप्ति के लिए सूर्य मुख्य स्रोत है। यह अक्षय ऊर्जा का विकल्प है। हमारे देश में 2000 मेगावाट की क्षमता वाले सौर्य ऊर्जा संयंत्र लगाए गए हैं। हाल ही में गुजरात एवं मध्य प्रदेश में सोलर सिटी को स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के माउंट आबू में विश्व की सबसे बड़ी सौर वाष्प प्रणाली स्थापित की गई है। बदायूँ जनपद के ग्रामीण क्षेत्र में सौर ऊर्जा प्राप्ति की पर्याप्त संभावनाएँ विद्यमान हैं। यहाँ पर प्रकाश, रिचार्ज एवं जल प्राप्ति के लिए सोलर पैनल लगाए हैं। जो अन्य साधनों की तुलना में सस्ते हैं तथा यहाँ पर वर्ष भर सूर्य की प्राप्ति होती है। वर्तमान में सरकार द्वारा सोलर पैनल की अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है।

 ISSN 0975-735X

पवन ऊर्जा

वायु प्रकृति द्वारा उपलब्ध ऊर्जा का मुख्य स्रोत्र है। वायु से प्राप्त ऊर्जा एक आरंभिक ऊर्जा है जो घूर्णी स्थानांतरीय अथवा दोलन यांत्रिकी गति है। जिसका प्रयोग द्रवित पदार्थों को उठाने में होता है। हमारे देश में गुजरात राज्य में मांडवी स्थान जो कच्छ जिला में स्थित है। देश ही नहीं वरन एशिया का सबसे बड़ा पवन संयंत्र रखता है। जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ स्थानों पर वायु द्वारा संचालित पानी के कुए स्थापित किए गए थे, किंतु वायु गति कम होने पर यह निष्क्रिय साबित हुए हैं।

बायो गैस

गोबर, मानवमल, जल कुंभी, पक्षियों का मल, शहरी एवं औद्यौगिक नालों में प्राप्त होने वाले सड़ने योग्य पदार्थों आदि को हवा की अनुपस्थिति में विशेष परिस्थितियों में सड़ाकर प्राप्त की गई गैस को बायोगैस कहते हैं। यहाँ पर बायो गैस संयंत्रों की संख्या 6125 है किंतु वर्तमान में इनका प्रयोग अब न के बराबर है।

बायो मास

बायो मास बहुत रूपों में मिलता है। लकड़ी, वनस्पति, अन्य पशु विष्ठा, मानव मल तथा सीवेज आदि। इनको सड़ाकर गैस तैयार कर ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। जनपद बदायूँ में जैव मास संसाधन के विशाल भंडार है, यहाँ पर वृक्षों, कृषि अपशिष्ट, सिंघाडा उपलब्ध है।

अध्ययन क्षेत्र में पड़ी बंजर, ऊसर, एवं बीहड़ की भूमि में बायो मास की मात्रा सामाजिक वानिकी के द्वारा बढ़ाई जा सकती है। यहाँ पर बायो मास से प्राप्त ऊर्जा इकाई स्थापित की गई है, जो अभी कार्यरत नहीं है।

ऊर्जा संसाधन संबंधी समस्याएँ

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में ऊर्जा संसाधनों का योगदान सर्वोपरि है। ऊर्जा स्रोतों के अविवेकपूर्ण दोहन के कारण ऊर्जा संकट भयावह रूप धारण करता जा रहा है। ऊर्जा के विभिन्न परंपरागत एवं गैर परंपरागत साधनों की कमी की समस्या बहुत गंभीर है। यहाँ पर उपलब्ध समस्याओं का विवरण इस प्रकार है–

काष्ठ ईंधन की कमी

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में कृषिभूमि के विस्तार, बाग-बगीचों का सफाया, वन अधिनियम, अन्य कृषिकार्यों में प्रयुक्त भूमि के फलस्वरूप जलावनी लकड़ी की उपलब्धता में कमी आई है। इसके अलावा सरकार द्वारा वृक्ष काटने पर रोक लगा देने से काष्ठ ईंधन की उपलब्धता में कमी हो गई है। इसके साथ ही पशुधन की कमी के कारण गोबर की पर्याप्त उपलब्धता न होने के कारण उपले भी तैयार नहीं हो पा रहे हैं।

मिट्टी का तेल आपूर्ति की समस्या

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में मिट्टी के तेल की आपूर्ति सरकारी राशन की दुकानों के माध्यम से की जाती है। सरकारी स्तर पर प्रत्येक माह राशन की दुकानों पर जनसंख्या के अनुसार तेल आपूर्ति होती है किंतु अधिकारियों से साँठ-गाँठ कर राशन डीलर तेल की ब्लैक करते हैं,

जिससे ग्रामीण परिवारों को तेल की आपूर्ति नहीं हो पाती है।

एल॰पी॰जी॰ गैस संकट

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में एल॰पी॰जी॰ गैस की सर्वाधिक समस्या आपूर्ति की है तथा वितरण हेतु कनेक्शन होना आवश्यक है। गैस एजेंसी संचालकों द्वारा भारी मात्रा में गैस सिलेंडरों को ब्लैक करके बाजार में अधिक कीमत पर गैस आपूर्ति की जाती है, जिससे गैस उपभोक्ताओं को गैस प्राप्ति में दिक्कत का सामना करना पड़ता है।

विद्युत आपूर्ति की समस्या

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति होने से विद्युत कनेक्शन की संख्या में वृद्धि हुई है। ग्रामों में ट्रांसफार्मर एवं विद्युत पोल की कमी बनी रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में जर्जर लाइनों की व्यवस्था के कारण विद्युत आपूर्ति में अधिक कठिनाई आती है तथा कभी-कभी उपभोग से अधिक विद्युत बिल आता है।

डीजल आपूर्ति की समस्या

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में डीजल प्रयोग की समस्या मूल्यवृद्धि की है जिसके कारण मशीनरी को संचालित करने में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अधिकतर परिवहन के साधन डीजल पर ही आश्रित है जिससे भविष्य में उनके बढ़ते हुए उपभोग के कारण डीजल की समस्या और गंभीर होगी।

ऊर्जा संसाधनों के विकास संबंधी सुझाव

जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में ऊर्जा के विभिन्न अवखंडों में उपभोग के प्रतिरूपों का अध्ययन, ईंधन आपूर्ति, चयन, साहचर्य सचेतना तथा इन स्थानों का अवलोकन करने के उपरांत मुख्य सुझाव इस प्रकार है–

1. जनपद बदायूँ के ग्रामीण क्षेत्र में आटा चक्की, धान मिल्स, कच्ची तेल घानी के संचालन के लिए सौर ऊर्जा के प्रयोग पर बल देना आवश्यक है।
2. अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत लाइनों को ठीक किया जाना चाहिए तथा उच्च तकनीक आधारित ट्रांसफार्मर लगाना आवश्यक है।
3. ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति सुनिश्चित करना तथा विद्युत दरों में कटौती करना आवश्यक है।
4. परिवहन की अभिगम्यता भी ग्रामीणों को ईंधन के एकत्रित करने में सहायक है किंतु परिवहन साधानों के अभाव में ईंधन की पूर्ति असंभव है। इससे ईंधन सस्ता एवं सुलभ हो सकेगा।
5. ग्रामीण क्षेत्र में वैकल्पिक ऊर्जा विकास संस्थान के माध्यम से सौर उर्जा के प्रयोग के लिए जागरूक एवं प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।
6. ग्रामीण क्षेत्र के कृषि क्षेत्र में डीजल की उपयोगिता को देखते हुए कीमतों पर अंकुश लगाना आवश्यक है।
7. ग्रामीण क्षेत्र में डीजल एवं पेट्रोल की उपलब्धता के लिए पेट्रोल पंप की संख्या में बढ़ोत्तरी आवश्यक है।
8. कृषि भूमि की सिंचाई हेतु सौर ऊर्जा पंप ग्रामीणों को विशेष छूट पर वितरित करना

चाहिए। इस प्रकार के कार्यक्रम का संचालन विकास खंड स्तर से किया जाना आवश्यक है।

9. वन विभाग द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जलाऊ लकड़ी की उपलब्धता के लिए क्रय केंद्र खोलने चाहिए।

10. जैव मास का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए, क्योंकि लकड़ी से गैस बनाने हेतु स्टीम फ्लाशिंग, कोयले के चूर्ण से निर्मित होनेवाली ईंट बनाने हेतु तथा अन्य रूपांतरण तरीकों के लिए यह एक वैकल्पिक साधन है।

संदर्भ

1. प्रेमप्रकाश राजपूत, ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा उपयोग संकट एवं समाधान वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर, प्रथम संस्करण 2001, पृ॰ 2-3
2. डी॰ अग्रवाल, ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत योजना, मासिक पत्रिका अंक मई 1991, पृ॰19
3. डी॰ आर॰ बीना, रूरल इनर्जी कंस्यूमसन प्रॉब्लम एवं प्रोसवेक्टस, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988, पृ॰ 136
4. सत्संगी एस॰ प्रेम, मैनैजमेंट ऑफ रूरल इनर्जी सिस्टम, गलगौटिया पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1983
5. राव हेमलता, रूरल इनर्जी क्रिसीस ए डाइगनोंस्टिक एनालाइसिंस, आशीष पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1990, पृ॰ 171
6. टी॰एन॰ खुश, जैव ऊर्जा : संभावना और सीमाएँ, पृ॰ 214
7. श्रीकांत के॰ प्राणिग्रही, ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा नियोजन के तौर तरीके, योजना मासिक पत्रिका अंक जून 1993, पृ॰ 50-51
8. एस॰एल॰ श्रीवास्तव, ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा उपभोग कटियारगंज विकास खंड का प्रतीक अध्ययन उत्तर भारत भूगोल गोरखपुर, अंक 24 1988, पृ॰ 7
9. जिला विकास पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग, जनपद बदायूँ, 2015
10. जिला सांख्यिकीय पत्रिका, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, जनपद बदायूँ, 2018

समकालीन मनुष्य का दस्तावेज : रेहन पर रग्घू

डॉ॰ संजयभाऊसाहेब दवंगे
हिंदी विभाग
के॰जे॰ सोमैया महाविद्यालय, कोपरगाँव

'रेहन पर रग्घू' यह प्रसिद्ध कथालेखक काशीनाथसिंह द्वारा लिखित उपन्यास है। यह उपन्यास सन् 2008 में प्रकाशित हुआ और इसे 2011 में साहित्य अकादमी सम्मान से पुरस्कृत किया गया। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास वर्तमान भारतीय समाज और समय की सच्चाई का ज्वलंत चित्रण करता है। वर्तमान भागदौड़ भरी जिंदगी में आज हर व्यक्ति यशप्राप्ति और अर्थप्राप्ति के पीछे भागते हुए अपने घर-परिवार, गाँव, तथा समाज को अनदेखा करता हुआ नजर आता है। आज आदमी पद-प्रसिद्धि के सिलसिले में कई बार नैतिकता को भी खोने के लिए तैयार है। भूमंडलीकरण के इस दौर में जनसंचारों के बढ़ते साधनों और नई-नई टैक्नोलॉजी ने जहाँ मनुष्य ने पूरी दुनिया को अपनी मुट्टी में समेट लिया वहीं इसी बाजारीकरण ने मनुष्य-मनुष्य के बीच की पारिवारिक संवेदना खो दी है। परिणामस्वरूप घर-परिवार बिखरने लगे हैं। इसलिए लेखक ने आनेवाले समय की भयावहता की ओर इशारा करते हुए घर-परिवार को महत्त्व देने की सलाह दी है–'अगर 'काशी का अस्सी' मेरा नगर था तो 'रेहन पर रग्घू' मेरा घर है और शायद आपका भी।'[1]

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास के प्रमुख पात्र तथा कथानायक इकहत्तर वर्षीय रघुनाथ हैं जो पहाड़पुर गाँव में डिग्री कॉलेज में अध्यापक हैं, साथ ही अपने पूर्वजों से प्राप्त भूमि पर खेती भी करते हैं। जितना प्रेम वे अपने परिवार से करते हैं उतना ही प्रेम उन्हें अपनी खेती पर है। विनम्रता, मित्भाषिता और मुस्कान इन तीन चीजों से अपनी जीवनयात्रा शुरू करनेवाले रघुनाथ ने जीवन की अनेक बुलंदियों को हासिल किया है। घर में पत्नी शीला, दो बेटे संजय और धनंजय, बेटी सरला यह रघुनाथ का छोटा और सुखी परिवार है। यह परिवार आज के भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी सीधी-सादी जिंदगी जीनेवाले रघुनाथ अपने घर-परिवार का कर्त्तव्य और भूमिका निभाते-निभाते अपने जीवन का आनंद या वास्तविक सुख को भी नहीं भोग पाते और बुढापे में चिंतामग्न होकर विचार करते हैं कि 'वह दिन दूर नहीं जब वे नहीं रहेंगे और यह धरती रह जाएगी। वे चले जाएँगे और इस धरती का वैभव, इसका सौंदर्य, ये बादल, ये धूप, ये पेड़-पौधे, ये फसलें, ये नदी-नाले, कछार, जंगल पहाड़ और यह सारा कुछ यहीं छूट जाएगा। वे यह सारा कुछ अपनी आँखों में बसा लेना चाहते हैं।'[2]

उपन्यास में रघुनाथ का परिवार एक मध्यमवर्गीय परिवार दिखाया है, जो छोटा और सुखी परिवार है परंतु बाजारीकरण और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव रघुनाथ के घर-परिवार पर पड़ता है और परिवार के सदस्यों का जीवन अर्थकेंद्रित बन जाता है परिणामत: परिवार बिखरने लगता है। स्वाभिमान और अपने सिद्धांत पर अड़े रहनेवाले रघुनाथ भी इसी अर्थ की लोभ-लालच में आकर बेटे संजय की शादी कॉलेज के मैनेजर तथा पूर्व विधायक की बेटी के साथ करना चाहते हैं–

 ISSN 0975-735X

'गोरी, लंबी, सुंदर, आकर्षक, एम॰ए॰। अच्छी हाऊस वाइफ! मैनेजर पुराने जमाने जमीदार, अथाह संपत्ति के स्वामी! रघुनाथ की कोई हैसियत नहीं थी उनके आगे।...यह संबंध सपने से भी आगे की चीज था रघुनाथ के लिए। फायदे ही फायदे थे इससे! जनपद में पहचान और प्रतिष्ठा जो मिलती, सो अलग! वे क्या-से-क्या होने जा रहे थे!'[3] रघुनाथ का बड़ा बेटा संजय जो पढ़-लिखकर स्वाफ्टवेअर इंजीनियर बना वह अपने पिता की हर बात मानता है, पर स्वार्थ और पैसों के लालच में पिता की इच्छा के विरुद्ध सोची-समझी चाल के अनुसार सोनल से शादी करके रांची से कैलिफोर्निया तक पहुँच जाता है। सोनल के प्रति संजय का प्यार अर्थकेंद्रित ही है-'संजय ने प्यार किया था सोनल को! यह प्यार किसी सड़कछाप टुच्चे युवक का दिलफेंक प्यार नहीं था, इसमें गुणा-भाग भी था और जोड़-घटाना भी था! जितना गहरा था, उतना ही व्यापक! सोनल संजय के प्रोफेसर सक्सेना की इकलौती बेटी थी! थ्रू आऊट फर्स्ट क्लास, नेट और दर्शन से पीएच॰डी॰। नौकरी तो पक्की थी बनारस के विश्वविद्यालय में जहाँ उसके मामा कुलपति थे।'[4] रघुनाथ नहीं चाहते की संजय सोनल से शादी करे फिर भी संजय सोनल के साथ कोर्ट में अंतर्जातीय विवाह कर लेता है और अपने विवाह खबर वह अपने पिता रघुनाथ को भी नहीं देता है। संजय के इस व्यवहार से रघुनाथ दु:खी हो जाते हैं। जिस संजय के कारण उनके मन को ठेंस पहुँची, गाँव में इज्जत चली गई उस संजय को रघुनाथ मरा हुआ समझते हैं परंतु जब संजय राजू के हाथ ब्रीफकेस भेजता है तो वही रघुनाथ रात के समय में राजू से नंबर लेकर ब्रीफकेस खोलते हैं तो संजय के प्रति उनकी नाराजगी दूर होती है-'रघुनाथ ने ब्रीफकेस खोला तो भावविभोर! बेटे संजय के प्रति सारी नाराजगी जाती रही! रुपयों की इतनी गड्डियाँ एक साथ एक ब्रीफकेस में अपनी आँखों के सामने पहली बार देख रहे थे और यह कोई फिल्म नहीं, वास्तविकता थी।'[5] यह वास्तविकता रघुनाथ की भी है जो पैसों की ओर आकर्षित होकर अपने बेटे की गलती को भूल जाते हैं। यहाँ उनका अर्थकेंद्रित व्यवहार दिखाई देता है।

उपन्यास के सभी पात्र चाहे वह रघुनाथ के परिवार के हों या अन्य सभी अपने लोभ लालच में जुड़े हैं। कोई पैसे, पद-प्रसिद्धि, जमीन, प्रमोशन के पीछे है तो कोई शादी के। नि:स्वार्थ प्रेम, अपनापन, त्याग का यहाँ कोई मायना नहीं रखते। पैसों का यह लालच संजय को सोनल से तलाक लेने और आरती के प्रति आसक्त होने का उदाहरण है-'लालच? आरती गुर्जर के साथ संजय की दोस्ती के पीछे सिर्फ आरती गुर्जर हैं या उसके एन॰आर॰आई॰ माँ-बाप, जिनका गुजराती हस्तशिल्प का चमकदार व्यवसाय है जिसकी वह इकलौती संतान है?'[6] इसी अर्थ को ध्यान में रखकर रघुनाथ का दूसरा बेटा धनंजय बिना शादी के विधवा विजया के साथ रहना पसंद करता है। उपन्यास के अंत में जब रघुनाथ हताश होकर अपने खेत के बारे में दोनों-बेटे संजय और धनंजय से फोन पर संवाद करते हैं तो इन संवादों में भी अर्थकेंद्रितता दिखाई देती है। रघुनाथ जब संजय से कहते हैं कि 'मैं अशक्त हो गया हूँ! जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं, कब क्या हो? अब खेती नहीं होगी।'[7] तो उत्तर में संजय खेती बेचकर बनारस में फ्लैट लेने की बात करता है, तो धनंजय खेती बेचकर आए पैसे दोनों भाईयों में बाँटने की सलाह पिता को देता है।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने दलितवर्ग में आए बदलाव तथा आधुनिकता के कारण गाँवों में हो रहे परिवर्तन को भी लेखक ने उपन्यास में दिखाया है-'आंबेडकर गाँव हो जाने के बाद पहाड़पुर तेजी से बदल रहा था। गाँव में बिजली आ गई थी, केबुल की लाइनें बिछ गई थीं,

अखबार लेकर आने लगे थे! कुछ घरों में टी॰वी॰, पंखे और फोन भी लग गए थे!'[8] हलवाहों की चल रही हड़ताल दलितवर्ग में आई चेतना का उदाहरण है। लेखक ने इस उपन्यास में यह बताने की कोशिश की है कि जब व्यक्ति का जीवन अर्थकेंद्रित बन जाता है तो उनके लिए घर-परिवार, रिश्ते-नाते, पारिवारिक प्रेम, अपनत्व कोई मायना नहीं रखता। जब रघुनाथ का परिवार अर्थकेंद्रित जीवन जीने लगता है तो पूरी तरह बिखर जाता है कोई किसी से लगाव नहीं रखता। रघुनाथ भी बुढापे में अकेले रह जाते हैं। संजय अमेरिका में, धनंजय नोएडा में, सरला मिर्जापुर तो शीला बेटी के घर। जैसे एक-दूसरे का किसी से लगाव नहीं, रिशता नहीं। रघुनाथ का यह वाक्य विचार करने के लिए मजबूर करा देता है—'महीनों हो रहे थे और कहीं से कोई खबर नहीं—न मिर्जापुर से, न नोएडा से, न अमेरिका से, न पहाड़पुर से। शायद इन सबको पता चल गया था कि रघुनाथ इन्हें हमेशा के लिए भूल चुके हैं, भूल ही नहीं चुके हैं, मरा मान चुके हैं। माया-मोह त्यागकर।'[9]

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में लेखक काशीनाथसिंह ने दिखाया है वर्तमान शिक्षित युवा-पीढ़ी किस प्रकार अपनी स्वतंत्र सोच रखती है और माता-पिता सहित अन्य बूढ़ों को किस प्रकार अपमानित करती है। रघुनाथ अपने घर-परिवार के लिए जी-जान मेहनत करता है, बच्चों के भविष्य के लिए जीवनभर करता है, संजय को स्वाफ्टवेयर इंजीनियर बनाता है परंतु वही संजय स्वतंत्र सोच से सोनल के साथ कोर्ट में शादी करके रघुनाथ के मन को ठेस पहुँचाता है। रघुनाथ अभी संजय का अंतर्जातीय विवाह भूले भी नहीं थे कि बेटी सरला भी अंतर्जातीय विवाह का प्रस्ताव रखकर माता-पिता को अपमानित करती है। जो रघुनाथ सात-आठ साल से जिस बेटी के लिए अच्छा लड़का ढूँढते-ढूँढते थक चुके थे उन्हें सरला का यह वाक्य सुनना पड़ता है—'मैंने तो कभी नहीं कहा कि आप दौड़ें! फालतू में दौड़ा करें तो इसके लिए मैं क्या करूँ?'[10]

हर माँ बाप अपने बच्चों का उज्ज्वल भविष्य देखते हैं। कभी उनके बारे में बुरा विचार नहीं करते। वे बच्चे जब अपने स्वतंत्र विचार से माँ-बाप को अपमानित करते हैं तो दु:ख होना स्वाभाविक है। उपन्यास में सरला माँ-बाप की सबसे प्यारी दुलारी बेटी है। जो बात रघुनाथ कभी बेटो से नहीं करते थे वह बात सरला से करते हैं। सरला को उन्होंने पढ़ा-लिखाकर नौकरी के काबिल बनाया था। वह शादी के संदर्भ में अपना तर्क देते हुई रघुनाथ को निरुत्तर कर देती है—'आप दूसरों की शर्त पर शादी कर रहे थे, यहाँ मैं करूँगी लेकिन अपनी शर्त पर। आप मेरी स्वाधीनता दूसरे के हाथ बेच रहे थे, यहाँ मेरी स्वाधीनता सुरक्षित है। आप अतीत और वर्तमान से आगे नहीं देख रहे थे, हाँ मैं भविष्य देख रही हूँ जहाँ स्पेस ही स्पेस है।'[11] धनंजय भी अपनी स्वतंत्र सोच को रखते हुए विधवा विजया के साथ रहता है। सोनल द्वारा जब इस बारे में पूछा जाता है तो धनंजय कह देता है—'भाभी मामला कुछ नहीं, बात सिर्फ इतनी है कि उसे मेरी जरूरत है और मुझे उसकी! जब तक जॉब नहीं मिल जाती!'[12] संजय सोनल के साथ शादी रचकर अमेरिका जा बसता है, पर कुछ ही दिनों में परिणाम का विचार न करते हुए सोनल को तलाक देकर आरती गुर्जर के साथ शादी कर लेता है। बनारस में सोनल भी संजय के इस व्यवहार से दु:खी नहीं होती बल्कि अपने पूर्व प्रेमी समीर को ढूँढकर उसके साथ जीवनयापन शुरू कर देती है। भारतीय संस्कृति में जहाँ विवाह को पवित्र संस्कार माना जाता हैं, वहाँ संजय, सोनल, धनंजय, सरला आदि पात्रों के लिए विवाह केवल अपनी तरक्की का साधन लगता है।

नारी को जीवन का आधार माना जाता है। भारतीय समाज में नारी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान

हैं परंतु प्राचीनकाल की नारी की तुलना में आधुनिक नारी में अनेक स्तरों पर बदलाव देखा जाता है। आज की स्त्री ने हर क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई ली है। वह पुरुष के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर सफलता प्राप्त कर रही है। लेखक ने इस उपन्यास में स्त्री के विकासशील दृष्टिकोण को भी दिखाया है। उपन्यास की हर स्त्री पात्र अपना स्वतंत्र विचार रखती है। रघुनाथ की बेटी सरला पढ़ी-लिखी युवती है, जो आज के स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। वह दुनिया को अपनी आँखों से देखना चाहती है, इसलिए विवाह के संदर्भ में अपने पिता से स्पष्ट कह देती है–'आप तो बाजार के नियम के विरुद्ध काम कर रहे हैं। जब कोई अपनी जींस बेचता है तो बदले में खरीदार से उसकी कीमत वसूलता है। और आप हैं कि अपनी जींस भी बेच रहे हैं और उसकी कीमत भी अदा कर रहे हैं।'[13] वर्तमान दहेज पद्धति और जाति-व्यवस्था का बंधन तोड़ते हुए वह अपने पिता से कह देती है कि वह निम्न जाति के सुदेश भारती के साथ शादी करेगी–'माँ, ये तो सात साल से लोगों के दरवज्जे-दरवज्जे घिघियाते फिर रहे हैं और इतने ही सालों से वह मेरी आरजू मिन्नत कर रहा है–पूरे सम्मान और इज्जत के साथ! कोटे में ही सही, लेकिन पी०सी०एस० है। देखने-सुनने में भी किसी से कम नहीं। मेरी नौकरी से भी एतराज नहीं। कभी कोई बदतमीजी भी नहीं की मेरे साथ! कोई ऐसा वैसा ऐब भी नहीं उसमें। मैंने अब तक हाँ नहीं की है लेकिन सोच लिया है कि करूँगी तो उसी के साथ।'[14] उपन्यास में सरला, सोनल, मीनू तथा आरती गुर्जर स्वतंत्र विचारों वाली आधुनिक महिला हैं। सोनल का पति संजय आरती गुर्जर के साथ संबंध रखता है, पर सोनल को इसकी कोई भी शिकायत नहीं है। वह भी बनारस में पूर्व प्रेमी समीर के साथ रहती है। सरला कौशिक सर के साथ घूमने जाती है तो विजया विधवा होकर भी खुलेआम धनंजय के साथ रहती है। सरला, सोनल, आरती गुर्जर, मीनू और विजया के माध्यम से लेखक ने आधुनिक स्त्री के दृष्टिकोण दिखाया है।

हर माता-पिता की यही अपेक्षा होती है कि हमारे बच्चे बुढ़ापे में हमारा सहारा बनें। इसी अपेक्षा से हर माता-पिता जीवनभर यातनाएँ भोगकर अपने बच्चों को बड़ा करते हैं उन्हें समाज में रहने योग्य बनाते हैं, पर जब इस आयु में उन्हें अकेला रहना पड़े तो जीवन निरर्थक लगने लगता है। उपन्यास के नायक रघुनाथ को बुढ़ापे में विवश होकर सोनल के साथ रहना पड़ता है। रघुनाथ का यह कथन अंतर्मुख कर देता है–'जब वे अशक्त हो जाएँगे तो ये बच्चे उनकी आँखें बनेंगे, उनके हाथ-पाँव बनेंगे। कि वे बीमार होंगे तो यही बच्चे उनकी सेवा करेंगे, दवा-दारू करेंगे, अस्पताल में भर्ती कराएँगें। कि मरने लगेंगे तो मुँह में गंगाजल तुलसीदल डालेंगे, अर्थी सजाएँगे, श्मशान ले जाएँगे, क्रियाकर्म कराएँगे।'[15] रघुनाथ का शीला के साथ का संवाद मन को व्यथित करा देता है–'शीला, हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है–मेरी औरत बाँझ है और मैं नि:संतान पिता हूँ! माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने! हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटी की! न बहू देखी, न होने वाला दामाद देखा।'[16] जो माता पिता अपने बच्चों के लिए जीवनभर संघर्ष करते हैं। बुढ़ापे में वही बच्चे माता पिता से दूर चले जाते हैं। उपन्यास में पहाड़पुर गाँव से, वहाँ के लोगों से खेती-खलियान से लगाव रखनेवाले और स्वाभिमान से जीनेवाले रघुनाथ को अपनों द्वारा प्रताड़ित होकर सोनल के साथ रहने के लिए विवश होना पड़ता है तब उपन्यास का यह वाक्य हर माता-पिता को विचार करने के लिए बाध्य करा देता है–'रघुनाथ भी चाहते थे कि बेटे आगे बढ़ें! वे खेत और मकान नहीं हैं कि

अपनी जगह ही न छोड़ें! लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा भी मौका आए जब सब एक साथ हों, एक जगह हों—आपस में हँसे, गाएँ, लड़ें, झगड़ें, हा-हा हू-हू करें, खाएँ-पिए, घर का सन्नाटा टूटे। मगर कई साल हो रहे हैं और कोई कही हैं, कोई कहीं। और बेटे आगे बढ़ते हुए इतने आगे चले गए हैं कि वहाँ से पीछे देखें भी तो न बाप नजर आएगा, न माँ!'[17]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार काशीनाथसिंह ने वर्तमान विकास के दौर में भारतीय मध्यमवर्गीय परिवारों के टूटने-बिखरने और उनके नैतिक मूल्यों में आई गिरावट को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। पुरानी पीढ़ी जहाँ नैतिक मूल्यों का निर्वहन करते हुए अपना जीवन चला रही है, वहीं आज की नई पीढ़ी पद-प्रसिद्धि और धन को ही सर्वस्व मानते हुए नैतिकता का अनादर करती नजर आती है। भारतीय संस्कृति में विवाह को एक पवित्र संस्कार के रूप में माना जाता है परंतु उपन्यास में संजय, सोनल, धनंजय, सरला जैसे आधुनिक पात्र उसे अपनी तरक्की का साधन मानते हैं। प्राचीनता और आधुनिकता के बीच पिसनेवाला रघुनाथ जैसे मध्यमवर्गीय परिवार का आदमी आज एकाकीपन का जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाता है। संक्षेप में 'रेहन पर रग्घू' यह उपन्यास समकालीन मनुष्य का दस्तावेज है।

संदर्भ

1. रेहन पर रग्घू, काशीनाथसिंह, पृ॰ 7
2. वही, पृ॰ 12-13
3. वही, पृ॰ 20-21
4. वही, पृ॰ 20
5. वही, पृ॰ 26
6. वही, पृ॰ 110
7. वही, पृ॰ 142
8. वही, पृ॰ 61
9. वही, पृ॰ 161
10. वही, पृ॰ 50
11. वही, पृ॰ 54
12. वही, पृ॰ 130
13. वही, पृ॰ 44-45
14. वही, पृ॰ 52
15. वही, पृ॰ 149
16. वही, पृ॰ 89
17. वही, पृ॰ 133

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संचार-माध्यम और हिंदी की भूमिका

रामबिलास यादव, शोधछात्र
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुना (म०प्र०)

आज के वैश्वीकरण के दौर हिंदीभाषा विश्व के लगभग 137 देशों में किसी-न-किसी रूप में बोली या पढ़ाई जा रही है। इन देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदीभाषा अध्ययन और अध्यापन किया जा रहा है। विश्व में चीनी भाषा बोलने की संख्या अधिक है, लेकिन चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र सीमित है, वहीं अँग्रेजी भाषा का प्रयोग-क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा अधिक है, किंतु हिंदी बोलने वालों की संख्या अँग्रेजी से अधिक है।

वैश्वीकरण की धुंध-भरी आँधी में सभी देश एक-दूसरे से एक गाँव के रूप में जुड़ते जा रहे हैं। वैश्वीकरण की अवधारणा ने विभिन्न देशों को बाजारवाद के रूप में एक-दूसरे के समानांतर लाकर खड़ा कर दिया है। तकनीकि रूप से भारतीय भाषा (हिंदी) की स्थिति उतनी सुदृढ़ नहीं है जैसी की अँग्रेजी या चीनी भाषा की स्थिति है। जिस भाषा की वैश्विक स्थिति जितनी अधिक मजबूत होगी, वह भाषा सभी देशों को बाजारीकरण के रूप में अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक स्थिति की जानकारी आसानी से लोगों के बीच में पहुँचा सकेगी।

वैश्वीकरण के रूप में बाजारवाद संचार माध्यमों, आयात-निर्यात, व्यवसाय, शैक्षणिक संस्थानों के मध्य समन्वयक की भूमिका निभा रहा है। इस स्थिति में हिंदी को अपनी पहचान बनाने के लिए बाजारवाद का रूप धारण कर चुके सभी देशों के एक जगह पर आसानी से संपर्क का माध्यम बनाना पड़ेगा। हिंदी आज भी सिर्फ भारतीय जनमानस की भाषा के रूप में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जानी जाती है। क्योंकि हिंदी को वह स्थान हम नहीं दिला पाए जो स्थान अँग्रेजी, चीनी या स्पेनिश भाषा का है। ये भाषाएँ संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यों में विभिन्न देशों के मध्य स्थापित की जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र में हिंदी का स्थान दोयम दर्ज है। भूमंडलीकरण या बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव का आकालन किया जाए तो हिंदी आज भी अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष कर रही है। जिस तरह वैश्विक पटल पर अँग्रेजी की स्थिति है, वैसी हिंदी की नहीं है। भले ही बोलने की संख्या के आधार पर हिंदी विश्व की दूसरी या तीसरी भाषा हो। अगर हिंदी को वैश्विक धरातल पर अपनी पहचान स्थापित करनी है तो सबसे पहले दृढ़ इच्छाशक्ति की जरूरत होगी, क्योंकि बढ़ते बाजारवाद के दौर में हिंदीभाषा को अपनी अंतर्राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए भारतीयों को आपसी एकता व दृढ़संकल्प के साथ सर्वसम्मति से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दिलानी होगी। भारतीय जनमानस के रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा, भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दिखाए या पढ़ाए जा सकते हैं। इसके लिए हिंदी में सभी भारतीय भाषाओं के सरल शब्दों को सम्मिलित करके भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं और धरोहर को हिंदी के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित किया जाना चाहिए।

वैश्वीकरण के दौर में स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं के विश्वस्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया या विश्व में घटित होनेवाली घटनाओं, कार्यक्रमों का प्रभाव या फैलाव ही वैश्वीकरण के रूप में जाना जाता है। वैश्वीकरण के माध्यम से विभिन्न देशों को एक मंच पर लाने की तैयारी की जा रही है, जिससे किसी भी घटनाक्रम या सूचना का आदान-प्रदान आसानी से हो सके। बाजारवाद वर्तमान समय में विश्वपटल पर अपनी पकड़ मजबूत कर रहा है।

भूमंडलीकरण एक ऐसा जहरीला कीड़ा है, जिसके अनेक पैर होते हैं। आधुनिक समय में समाज का कोई भी व्यक्ति या सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक क्षेत्र का कोई भी कोना इससे बच नहीं पाया है। 90 के दशक में भारत में उदारीकरण बाजारीकरण और भूमंडलीकरण अपने साथ संचारक्रांति लेकर आया।[1]

भूमंडलीकरण के समय में इन्हीं संचार-माध्यमों के द्वारा बाजारवाद ने भारत में अपनी जड़ें मजबूत की हैं। वैश्विक पटल पर इन्हीं संचार-माध्यमों के द्वारा एक नई तरह की हिंदी का विकास किया जा रहा है, जिससे कि भारत में आसानी से विचार-विनिमय किया जा सके। एक तरह से देखा जाए तो टेलीविजन, वेब ब्राउजर, इंटरनेट, प्रिंट मीडिया या टी॰वी॰ चैनलों के द्वारा हिंदी में जो विज्ञापन दिया जाता है या रेडियो के माध्यम से सुनाया जाता है, हिंदी की स्थिति अच्छी दिखाई दे रही है।

हिंदी को विश्वपटल पर अँग्रेजी के समान सुदृढ़ करने के लिए जरूरी है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में स्थापित किया जाए। भारत की जो भी संधि या समझौते दूसरे देशों से हों, वह पहले हिंदी में तैयार हों और उसकी अनुदित प्रति अँग्रेजी में तैयार की जाए। रूस एकमात्र ऐसा देश है, जिससे होनेवाला समझौता रूसी और हिंदी में तैयार होता है।[2]

भाषा सिर्फ भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति का ही माध्यम नहीं है, बल्कि वह मानवीय संवेदनाओं, विचाराधारा, प्रिंट मीडिया, वेब ब्राउजर से लेकर कला-जगत एवं प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए नाटक एवं रंगमंच के माध्यम से मनुष्य को मनुष्य से एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। वर्तमान दौर में हिंदीभाषा विश्व में अपनी अभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय की सशक्त भाषा बनकर स्थापित हो रही है। देश-विदेश से लेकर इक्लैट्रॉनिक मीडिया, समाचार-पत्रों, संगोष्ठियों, संयुक्त राष्ट्र में बढ़ता हिंदी का प्रभाव एवं फिल्म-जगत की मनोरंजन कहानियों में हिंदीभाषा ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ संपूर्ण विश्व एकसूत्र में बँधकर आचार-विचार विनिमय के माध्यम से भावनाओं एवं संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है, उन्हीं सबके बीच में हिंदीभाषा को भी अपना वर्चस्व स्थापित करना होगा।

वैश्वीकरण के दौर से हिंदी को विश्वभाषा बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर एक सकारात्मक पहल की आवश्यकता है। भूमंडलीकरण की जद में जहाँ विश्व एक गाँव के रूप में स्थापित हो रहा है, उस स्थिति में संचार-माध्यम हिंदी के प्रचार-प्रसार के मजबूत आयाम हो सकते हैं। संचार माध्यमों के द्वारा सभी देशों में हिंदी वेबसाइटों का प्रचार किया जाना चाहिए। आयात-निर्यात के समझौतों का मसविदा पहले हिंदी में फिर विदेशी भाषा में तैयार करना चाहिए। मनोरंजन जगत में जहाँ अँग्रेजी फिल्में अनुवादित होकर हिंदी में भारतीय बाजार में उपलब्ध हो रही हैं, उसी प्रकार भारतीय रीति-रीवाज, रहन सहन परंपराओं को विश्वफलक पर हिंदी में प्रदर्शित करना चाहिए।

आज इलैक्ट्रॉनिकयुग में मोबाइल, इंटरनेट से लेकर तमाम ऐसी योजना-परियोजना जो

अँग्रेजी में लिखी या पढ़ी या दिखाई जाती हैं उसे आज इन्हीं माध्यमों (वेब इंटरनेट) से हिंदी में प्रदर्शित करने की जरूरत है। उच्चतम या उच्च न्यायालयों में जो कार्य अँग्रेजी में किए जाते हैं, उन्हें अब हिंदी में किया जाना चाहिए।

भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण जहाँ सभी देश एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं, ऐसी स्थिति में अँग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदीभाषा को जनसंपर्क के रूप में अपनाने की जरूरत है। इसके लिए हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में एक भाषा के रूप में मान्यता दिलानी है। जिस तरह संयुक्त राष्ट्र में अँग्रेजी या चीनी मान्यता-प्राप्त भाषा है और सभी कामकाज अँग्रेजी में होते हैं उसी तरह हिंदी को भी दृढ़संकल्प के साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने की जरूरत है।

वैश्विक परिदृश्य में आज भारत उभरता हुई आर्थिक महाशक्ति बन रहा है। इस स्थिति में जो भी विदेशी कंपनियाँ भारत में निवेश करने आएँगी, उनसे संपर्क के रूप में अँग्रेजी की जगह हिंदीभाषा को प्राथमिकता देनी होगी, फिर उसके बाद अँग्रेजी को।

महात्मा गांधी प्रांतीय भाषाओं के पक्षधर थे, वे शिक्षा का माध्यम भी प्रांतीय भाषाओं को बनाना चाहते थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के संदर्भ में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था कि 'सारे देश के लोग हिंदी का इतना ज्ञान प्राप्त कर लें ताकि देश का राजकाज उसमें चलाया जा सके और सभी भारतवासी एक सामान्य भाषा में संवाद कायम कर सकें।'[3] हिंदी के विकास को लेकर प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा गांधीजी के कार्यों में हिंदीभाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने तथा उसके विकास पर कहते हैं, 'सत्य, अहिंसा स्वराज, सर्वोदय किसी भी अन्य विषय पर आज उनके लिए उपादेय नहीं है, जितनी भाषा समस्या पर। अँग्रेजी, भारतीय भाषाओं, राष्ट्र, हिंदी और हिंदी-उर्दू की समस्या पर उन्होंने जितनी बातें कही हैं, वे बहुत ही मूल्यवान हैं। किसी भी राजनेता ने इन समस्याओं पर इतनी गहराई से नहीं सोचा, किसी भी पार्टी और उसके नेताओं ने भाषा-समस्या के सैद्धांतिक समाधान को नित्य प्रतिदिन की कार्रवाई में इस तरह अमलीजामा नहीं पहनाया जैसे गांधी ने। उनकी नीति के मूल सूत्र छोड़ देने से यह समस्या दिन-प्रतिदिन उलझती जा रही है।'[4]

विश्वमंच पर हिंदी को सशक्त बनाने के लिए संचार-माध्यम अहम भूमिका निभा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी, विज्ञान के क्षेत्र में हिंदीभाषा का प्रयोग, विश्व में हिंदीभाषा के विकास के लिए विश्व हिंदी संस्थान की स्थापना, वैश्विक मंच पर हिंदी सम्मेलनों का आयोजन, जिससे विश्व के समाने हिंदीभाषा को संपर्कभाषा के रूप में स्थापित किया जा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्व हिंदी कांफ्रेंस के आयोजनों को करना, साथ ही साथ विज्ञान, चिकित्सा, अनुसंधान, न्यायालयों एवं सरकारी कामकाज में हिंदी को अनिवार्य रूप से लागू करना। हिंदी समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संचार-माध्यमों के द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित करना, विश्व हिंदी शब्दकोश की स्थापना, सूचनाओं के आदान-प्रदान में हिंदी को अनिवार्यता, भारतीय दूतावासों में समय-समय पर हिंदी सम्मेलनों का आयोजन एवं हिंदी के प्रचार के लिए टेलीविजन, इंटरनेट, फिल्म-जगत, हिंदी वेब ब्राउजर की स्थापना, हिंदी को विश्वभाषा के रूप में स्थापित करने के लिए विश्व में स्थापित भारतीय दूतावासों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों में हिंदी का उन्नयन एवं समर्थन जुटाना, जिससे कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित किया जा सके। महात्मा गांधी ने सभी भारतवासियों से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप विकसित करने लिए आह्वान किया था-'हिंदी के भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय महत्त्व की बात छोड़ दें तो भी यह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक आवश्यक

मालूम होता जा रहा है कि तमाम राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं को हिंदी सीख लेनी चाहिए और राष्ट्र की तमाम कार्यवाही हिंदी में ही की जानी चाहिए।'

वर्तमान समय में हिंदी का विस्तार इंटरनेट पर ज्यादा हो रहा है। इंटरनेट पर हिंदी ब्लागों की भरमार है। इंटरनेट पर कई सरकारी एवं गैरसरकारी वेबसाइट मौजूद हैं। हाल ही में ट्विटर की तरह हिंदी का 'मूषक' भी आ गया है। हिंदी 'एप' लांचिंग की तैयारी में है। 'गूगल के मुताबित 20 प्रतिशत भारतीय उपभोक्ता हिंदी में इंटरनेट सर्फिंग को पसंद करते हैं। गूगल इंडिया के अनुसार गूगल ने 'हिंदी' वेब कॉम' से एक ऐसी सेवा प्रारंभ की है, जो इंटरनेट पर हिंदी में उपलब्ध समस्त सामग्री को एक जगह ले आएगी। वर्तमान में इंटरनेट व संचार-माध्यमों में हिंदी की स्थिति बेहतर नजर आ रही है।

हिंदी को विश्व मंच पर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने एवं हिंदीभाषा के विकास में संचार माध्यम एक कड़ी के रूप में अपनी भूमिका निभा रहे हैं। विभिन्न देशों में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलनों का प्रसारण हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा आसानी से उपलब्ध हो पाया है। विश्व में हो रहे वीडियो कांफ्रेसिंग के जरिए हिंदी में सूचनाओं का प्रसारण, संगोष्ठियों का आयोजन, विदेशी कंपनियों का भारतीय बाजार में निवेश जनसंचार-माध्यमों के द्वारा हिंदी में किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की तमाम शाखाओं में हिंदी सूचना प्रौद्योगिकी इंटरनेट, वेब ब्राउजर के जरिए आसानी से पढ़ाई या सिखाई जा रही है। 'माइक्रोसाफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी-प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। यह स्थापित सत्य है कि अँग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख- दुख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्वमन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।'[6] संचार माध्यम यदि आज के मनुष्य को विश्व के साथ जोड़ रहे हैं तो वह ऐसा भाषा के द्वारा ही करते हैं। संचार-माध्यम की भाषा के रूप में प्रयुक्त होने पर हिंदी समस्त ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक विषयों से सहज ही जुड़ गई है। अत: कहा जा सकता है कि विश्व के समक्ष बाजारवाद, भूमंडलीकरण के समय हिंदी को एक सशक्त भाषा के रूप में स्थापित करने में संचार-माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

संदर्भ

1. भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी (लेख), अरविंद दास
2. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी, सुभाष शर्मा, आजकल, अक्टूबर 2017, पृ॰ 15
3. हिंदीभाषा के प्रबल पक्षधर, कुमार कृष्णन, आजकल, अक्टूबर 2015, पृ॰ 7
4. वही, पृ॰ 7
5. वही, पृ॰ 9
6. हिंदी का वैश्कि परिदृश्य (लेख), डॉ॰ करुणाशंकर उपाध्याय, सितंबर 2011

262-**ई, नई बस्ती, सोहबतिया बाग**

प्रयागराज 211006 **उ॰प्र॰**

मो॰ 9984418102, 8005338092

भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य

डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
एम॰एम॰ (पीजी) कॉलेज, मोदीनगर

भारतीय संस्कृति विशिष्ट प्रकार की रही है, जहाँ मानवता का विकास विभिन्न प्रजातियों के विकास की कहानी है। यहाँ अनेक मानव-प्रजातियाँ विकसित हुईं। यथा–प्राक् आर्य, भारतीय आर्य, शक, हूण, यूनानी, तुर्क, मंगोल आदि। इन समुदायों ने भारतीय सभ्यता के विकास में अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार एक खास भौगोलिक क्षेत्र में विकसित धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कार, कला, भाषा, विचार एवं जीवन-दर्शन ही उस क्षेत्र की संस्कृति कही जाती है। 'संस्कृति' शब्द बड़ा ही व्यापक है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत भाषा के दो शब्दों (सम+कृति) से मिलकर मानी जाती है। इस शब्द का मूल 'क' धातु में है, जो क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अब संस्कृति का शाब्दिक अर्थ 'भली प्रकार' (अच्छी तरह) से किया गया कार्य होता है। जो परिष्करण और परिमार्जन का द्योतक है। दूसरे शब्दों में 'संस्कृत' शब्द का अर्थ संस्कार भी होता है। 'इस प्रकार मानव-संस्कृति का संबंध ज्ञान, कर्म अथवा रचना से है किंतु इसके लिए यह भी आवश्यक है कि संस्कृति संस्कार-संपन्न अथवा विभूषित हो।'[1]

मिस्र मेसोपोटामिया की सभ्यताओं की भाँति भारतीय सभ्यता का भी विकास हुआ, जिनकी ये विशेषताएँ विचारणीय हैं–निरंतरता और चिरस्थायित्व, आध्यात्मिकता, ग्रहणशीलता, समन्वयवादिता, सहिष्णुता, सर्वांगीणता, अनेकता में एकता आदि। प्रकृति ने भारत को एक विशेष भौगोलिक पहचान प्रदान की है। इसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में विशाल समुद्र लहरा रहा है एवं उत्तर में हिमालय एक प्रहरी की तरह रक्षा कर रहा है। भारत की इन प्राकृतिक सीमाओं ने यहाँ के निवासियों को अपनी मातृभूमि पर गर्व का भाव लाने में मदद की है, जिसे भारतीय वाङ्मय में भी देखा जा सकता है–

उत्तरं यत समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं।
वर्ष तद् भारतं, नाम भारती यत्र संतति।[2]

मनुस्मृति एवं भागवतपुराण में भारत को देवनिर्मित देश कहा गया है। महाकवि कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा कहा है–'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:।'[3]

विष्णुपुराण में भारतभूमि की प्रशंसा करते हुए यह बताया गया है कि वे लोग धन्य हैं, जिन्होंने भारतभूमि में जन्म लिया है। यहाँ की भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है, क्योंकि यहाँ स्वर्ग के साथ-साथ अपवर्ग अर्थात् मोक्ष का भी प्रयोजन प्राप्त है। यहाँ तक देवता भी स्वर्ग-सुख भोगने के बाद मोक्ष की प्राप्ति के लिए यहाँ जन्म लेते हैं–

गायन्ति देवा: किल गीतकानि, धन्यास्तुते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते, भवन्ति भूय: पुरुषा: सूरत्वाद्।[4]

भारतभूमि की विभिन्न प्रस्फुटित धाराएँ, जो अंतत: एक संस्कृति रूपी समुद्र में विलीन हो जाती हैं, इसे ही हम मातृभूमि-प्रेम कह सकते हैं। संस्कृति एक बहती हुई नदी की तरह है। न जाने कितने जलस्रोत, झरने एवं वर्षाजल अपनी अस्मिता खोकर इस महासमुद्र में विलीन हो जाते हैं। भारतीय चिंतनधारा ने यहाँ की संस्कृति में अनोखा रस घोल दिया है। भक्ति की त्रिवेणी एवं अहिंसा को परमधर्म माननेवाले तत्त्वों को आत्मसात किए हुए इस भारतभूमि की संस्कृति ने संपूर्ण विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया है। भारतीय संस्कृति वस्तुत: आदिकाल से लेकर आज तक वह एकत्रित निधि है, जो संस्कारों एवं विचारों द्वारा परिष्कृत होकर निरंतर प्रगति-पथ पर अग्रसर है। इस 'संस्कृति' शब्द को कई विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं, 'संस्कृति अपने सदस्यों को विपरीत दिशाओं में क्रियाशील बलों को अत्यंत सूक्ष्म असंतुलन के फलस्वरूप उत्पन्न संतुलन और दृढ़ता प्रदान करती है। सभ्यता का कठोर हो जाना ही संस्कृति है।'[5]

हिंदू-संस्कृति की पाचनशक्ति बड़ी ही प्रचंड है। इसका कारण शायद यह है कि जब आर्य इस संस्कृति का निर्माण कर रहे थे, तब उनके सामने अनेक जातियों को एक संस्कृति में पचाकर के समन्वित करने का सवाल था, जो उनके आगमन के पहले से ही इस देश में बस रही थीं। अत: उन्होंने आरंभ से ही हिंदू-संस्कृति का ऐसा लचीला रुख पसंद किया, जो प्रत्येक नई संस्कृति से लिपटकर उसे अपना बना सके। सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर डॉडवेल ने भारतीय संस्कृति के संबंध में टिप्पणी की है कि 'भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है, जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती रही हैं।'[6]

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति को परिभाषित करते हुए इतिहासकार ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, 'संस्कृति मानव की दशा व दिशा का बोध कराती है। संस्कृति को मानव की समस्त उपलब्धि माना जा सकता है। संस्कृति के गुणों के वशीभूत होकर ही मनुष्य उन क्रियाओं को करता है, जो उसे ज्ञान, विज्ञान, समानता, धर्म, साहित्य, कला, दर्शन और चिंतन की ओर अग्रसर करती हैं। समस्त मानव-सभ्यता के विकास की कहानी संस्कृति के रूपों का ही बखान करती है। मानव की समस्त क्रियाओं, व्यवहारों, उत्पादन, परिष्कार एवं उन्नति का मिला-जुला रूप ही संस्कृति है।'[7]

ए॰एल॰ वासम ने अपने 'अद्भुत भारत' में यह तथ्य दिया है कि 'भारतीय संस्कृति का पूरा विश्व ऋणी है। यदि भारतीय शास्त्रों का अन्य यूरोपीय भाषा में अनुवाद नहीं होता तो कई पश्चात्य सिद्धांत आज हमारे बीच नहीं होते। यद्यपि यूरोप और अमेरिका की समसामयिक दार्शनिक विचारधारा में अंतिम शताब्दी के ब्रह्मवाद एवं आदर्शवाद का बहुत कम महत्त्व है, यद्यपि उनका प्रभाव अत्यधिक रहा है और वह सब किसी-न-किसी रूप में प्राचीन भारत के ऋणी हैं। वे ऋषि जिन्होंने ईसा से 600 वर्ष पूर्व अथवा उससे भी ज्यादा वर्षों तक गंगा की घाटियों में तपस्या की थी, अब भी विश्व में शक्तिसंपन्न हैं।'[8]

भारतीय संस्कृति सार्वभौमिक संस्कृति है। इसमें मनुष्य अपने साथ-साथ पूरे विश्व के कल्याण की कामना करता है। वैदिक वाङ्मय से ज्ञात होता है कि यहाँ संपूर्ण विश्व को एक गृह मानकर विश्वबंधुत्व एवं वसुधैव कुटुंबकम् जैसे उदार सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। भारतीय संस्कृति न केवल मनुष्य-जाति की चिंता करती है, अपितु प्राणिमात्र के कल्याण की चिंता भी व्यक्त करती है। इस संस्कृत में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे ईश्वर इस विश्व को

अंधकार से प्रकाश, असत् से सत् तथा नश्वरता से अमरता की ओर ले जाएँ–'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृत गमय।' इस संस्कृति में सबके कल्याण की भावना व्यक्त की गई है सभी सुखी हों, विघ्नरहित हों, कल्याण का दर्शन करें, किसी को कोई दुख (दैहिक, दैविक, भौतिक) ना हो सके–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चित् दुःखभाग्भवेत्।

इसी प्रकार की भावना महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामराज्य की परिकल्पना करते हुए व्यक्त की है। उन्होंने रामराज्य में किसी प्रकार के दुख, दरिद्रता और असमय मृत्यु से रहित सहअस्तित्व वाले समाज की परिकल्पना की है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।[9]

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद जी ने 'आँसू' का समापन करते हुए इसी भारतीय संस्कृति की ओर संकेत किया है और अपनी पीड़ा को विश्वशांति और विश्वसमृद्धि पर निछावर करते हुए लिखा है–

सबका निचोड़ लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात हिमकण-सा, आँसू इस विश्व-सदन में।

इस प्रकार संस्कृति एक उच्च आदर्श है, जो मानव-सभ्यता के सतत विकास के हजारों वर्षों के बाद विकसित होता है। अब हमें सभ्यता और संस्कृति पर भी प्रकाश डालना उचित प्रतीत हो रहा है। सभ्यता का संबंध उपयोगितावाद से होता है, मनुष्य केवल वही कार्य करता है, जो उसके लिए उपयोगी हो। सभ्यता या सभ्य जीवन का प्रारंभ क्रियाशीलता द्वारा उपयोगिता की प्राप्तिस्वरूप हुआ है। बर्बरता की स्थिति से ऊपर उठकर जब मानव अपनी भौतिक उन्नति कर सामाजीकरण की ओर अग्रसर होता है, तो उसे सभ्य की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार सभ्यता, बर्बरता के विरुद्ध जीवित रहने की दशा है। अतः इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है–सभ्यता जीवित रहने की दशा है, तो संस्कृति इस दशा का दिशाबोध कराती है अर्थात् संस्कृति का संबंध उपयोगिता से न होकर उपयोगिता से प्राप्त मूल्यों से है। जब मानव अपनी उपलब्धियों को पाने के उपक्रम में लगा रहता है तो सभ्यता का जन्म होता है। जब मनुष्य को लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है तो उसके हाव-भाव, विचार एवं संस्कार परिष्कृत हो जाते हैं। यह परिष्कार ही संस्कृति कहलाता है। इस प्रकार एक भौगोलिक परिवेश में मानवसमूह द्वारा सैकड़ों वर्षों तक खान-पान, रहन-सहन, आचार विचार में एकरूपता के साथ सतत विकास ही सभ्यता है। जब यह सभ्यता अपनी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर लेती है तो संस्कृति का जन्म लेती है। यह संस्कृति 2-4 वर्षों में न तो बनाई जा सकती है, न ही कुछ दिनों में इसे नष्ट किया जा सकता है। यह वर्षों के परिष्कार का प्रतिफल होती है।

संदर्भ

1. भारत की संस्कृति तथा कला, कृष्णचंद्र श्रीवास्तव, पृ॰ 3
2. विष्णुपुराण 3/3/24
3. विष्णुपुराण 3/4/24, संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर, पृ॰ 90

4. प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म-दर्शन, ईश्वरीप्रसाद, पृ॰ 2
5. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर, पृ॰ 115
6. वही, पृ॰ 116
7. प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म-दर्शन, ईश्वरीप्रसाद, पृ॰ 3
8. अद्‌भुत भारत, ए॰एल॰ वसम, पृ॰ 414
9. रामचरितमानस, उत्तकांड, 1/21

2, **प्रोफेसर लॉज, मोदीनगर**
निकट सी॰एम॰डी॰
गाजियाबाद (उ॰प्र॰) 201204
मो॰ 9415289273

 ISSN 0975-735X

तुलसी के काव्य में लोकपक्ष

डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
एम॰ एम॰ (पीजी) कॉलेज, मोदीनगर

यदि भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हैं तो हमें भारतीय समाज परंपरावादी और सामंती प्रभावों से ओतप्रोत रूढ़िवादी समाज ही मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी शास्त्रसम्मत वैष्णव पद्धति में विश्वास रखते थे। जिसे वह आदर्श भी मानते थे। उन समाजविषयक मान्यताओं का प्रभाव उनके लेखन पर पड़ना स्वाभाविक था। जब तुलसी के लोकपक्ष पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें व्यक्ति, परिवार और वृहद् समाज, इन तीनों पर उनका ध्यान निरंतर रहता है। मानस में जिस समाज का अंकन तुलसी ने किया है उसमें व्यक्ति और समष्टि दोनों एकीकृत समाज अपने संपूर्ण परिवेश के साथ उभरकर सामने आते हैं। समाजशास्त्र यह कहता है कि व्यक्ति से समाज एवं समाज से एक बृहत समाज का निर्माण होता है। अत: व्यक्ति के चरित्र का प्रभाव समाज पर पड़ना आवश्यक है। सामाजिक संबंधों का प्रभाव राष्ट्रीय जीवन पर दृष्टिगत होता है। तुलसी ने रामचरितमानस की रचना द्वारा व्यक्ति और समष्टि दोनों को प्रवृत्तिमार्ग से कर्त्तव्यरत होने का अकाट्य संदेश दिया है। वस्तुत: भारतीय समाज को जिस आस्था और विश्वास की आवश्यकता थी, वह मानस के माध्यम से तुलसी ने प्रदान किया था। पराजित जाति को विवेक के आश्रय से, आस्था के संबल से, स्वावलंबन के सहारे से पुनर्जीवित किया। अन्याय के प्रतिरोध का नवीन मार्ग प्रशस्त किया। 'एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवतभक्ति का उपदेश देते हैं, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक व सामाजिक कर्त्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करते हैं। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उनमें वर्तमान है।'[1] व्यक्ति के स्तर पर तुलसी ने उन्हीं मर्यादाओं का पोषण और समर्थन अपने काव्य में किया है, जो श्रुति-स्मृतिसम्मत परंपरा से स्वीकृत रही हैं। यह मर्यादा एकांत साधना में न होकर, सामाजिक संबंधों से जुड़ी हुई चरित्र-निर्माण की नैतिक पद्धति-मात्र है। तुलसी के पात्र साधु-संन्यासी, योगी-यति बनकर गिरि-गुफा में तपस्या नहीं करते, जीवन-संघर्ष से पलायन नहीं करते, वे योग साधना में लीन नहीं रहते, मृगछाला पहनकर भस्म नहीं रमाते, बल्कि व्यक्ति के स्तर पर वे कर्त्तव्य को भलीभाँति पहचानते हैं। चरित्र-निर्माण के लिए वे समाज के भीतर रहते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष उनका कर्त्तव्य स्पष्ट है, जिस भी आश्रम में वह हैं, चाहे वह ब्रह्मचर्य हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो या संन्यास हो, चारों आश्रमों का निर्वहन करते हुए तुलसी ने प्रत्येक आश्रम में व्यक्ति की कर्त्तव्यपरायणता पर बल दिया है। यदि व्यक्ति मर्यादा का पालन करता है तो निश्चित ही समाज में स्वस्थ परंपरा स्थापित होगी। समाज में मुख्यत: तीन तत्त्व प्रधान हैं—कर्म, ज्ञान और उपासना। ये तत्त्व सामंजस्य बनाते हैं तो समाज संतुलित रहता है। इनकी प्रतिष्ठा आदिकाल से मानी गई है। दूसरे शब्दों में कहें तो जब कर्मकांड

बढ़ जाता है तो ज्ञान की सत्ता की ओर लोक का रुझान अनायास दिखाई देता है और जब ज्ञान की सत्ता का समावेश होने लगता है तो लोक में भक्ति का तत्त्व प्रसारित होने लगता है। इस प्रकार समाज में तीनों के संतुलन से गतिशीलता आती है। 'कर्म, ज्ञान और उपासना लोकधर्म के ये तीन अवयव समाज की स्थिति के लिए बहुत प्राचीनकाल से भारत में प्रतिष्ठित हैं। मानव-जीवन की पूर्णता इन तीनों के मेल के बिना नहीं हो सकती।'[2] परिवार के स्तर पर मानस में अनेक परिवारों का वर्णन मिलता है। परिवार का मूल विवाह-संस्कार है, जो 8 प्रकार के होते हैं उनमें भी सर्वोत्तम विवाह ब्रह्मविवाह है। विवाह का प्रतिफल संतान-प्राप्ति है, साथ ही पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन, बंधु-बांधव तथा अन्य संबंधी इसी परिवार की सीमा से बँधे हैं। परिवार का विस्तार परिजन, कुटुंबीजन, सेवक, इष्ट मित्र आदि हैं। तुलसी की परिकल्पना संयुक्त परिवार-पद्धति पर टिकी है। परिवार का मुखिया पिता या पितामह होता है। उसी पर परिवार के भरण-पोषण का दायित्व होता है। दशरथ, जनक, रावण आदि इसके उदाहरण हैं। रामचरितमानस में वर्णित अयोध्या का परिवार सबसे विशाल है और उसके मुखिया हैं राजा दशरथ, जिनकी आज्ञा का पालन ईश्वर की आज्ञा का पालन है। इसी विशेषाधिकार का परिणाम है राम का वनवास! आज तो उसका प्रतिकार भी किया जा सकता है और व्यक्ति-स्वतंत्रता की दुहाई भी दी जा सकती है। इसे अन्याय या सामाजिक न्याय के विरुद्ध कहा जा सकता है। यदि मानस में लोकतंत्र का समर्थन है तो कैकेई के आदेश को कौशल्या या सुमित्रा द्वारा चुनौती क्यों नहीं दी जा सकती थी? कामांध दशरथ के आदेश को जनता क्यों नहीं पलट देती? राम के वनगमन पर जनमत-संग्रह क्यों नहीं कराया गया? इन सभी प्रश्नों का उत्तर मर्यादा में छिपा हुआ है। परिवार की मर्यादा से सभी बँधे हुए हैं। मानस में इसी को धर्म नाम दिया गया है–

सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरखि श्रुति नीति।[3]

धर्म का मानस में विस्तार से वर्णन है यथा–पुत्रधर्म, पितृधर्म, पतिधर्म, मातृधर्म, स्वामीधर्म, सेवकधर्म, पत्नीधर्म, प्रजाधर्म, राजधर्म आदि, जो किसी अन्य रामायण में नहीं मिलता। रामचरितमानस का यह पारिवारिक समाज विशिष्ट परंपरा और लोकधर्म का संवाहक बनकर आया है, जिसमें सामाजिक दायित्व की झलक मिलती है। 'इसमें संदेह नहीं है कि तुलसी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह से संघर्ष किया है, उनकी कविताओं में जिस संघर्ष का वर्णन मिलता है, उसका एक भाग आंतरिक है, परंतु उसका एक दूसरा भाग भी है, जिसका संबंध लोक या साधारण जनता से है। इस लोकसंघर्ष का मतलब साधारण जनता का संघर्ष है। एक सुखी समृद्ध जीवन के लिए उसका संघर्ष है। यह संघर्ष भी गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में मिलता है। ध्यान देने की बात यह है कि गोस्वामीजी ने जिन नैतिक मूल्यों के लिए संघर्ष किया है, उसका लोकसंघर्ष से बड़ा संबंध है।'[4] रामचरितमानस में जिस समाज का वर्णन है, वह वर्णाश्रम धर्म पर आधारित परंपरागत समाज है, जिसमें बहुविवाह, स्वयंवर-प्रथा, जेष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार की प्रथा प्रचलित है। तुलसी ने राम के माध्यम से इस प्रथा पर प्रश्नचिह्न लगाया है। यथा–

जनमे एक संग सब भाई, भोजन सयन केली लरिकाई।
करनबेध उपबीत बिआहा, सँग-सँग सब भए उछाहा।

विमल बंस तह अनुचित एकू। बंधु बिहाई बड़े अभिषेकू।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई, हरउ भगत मन कै कुटिलाई।[5]

 ISSN 0975-735X

राम के इस मनोभाव से स्पष्ट है कि यह मर्यादा थी, जिसे राम ने अनिच्छा से स्वीकार किया, किंतु राजा के अयोग्यता के संबंध में मानस में जो लिखा गया है, वह राज्यतंत्र की स्वीकृति के बावजूद उदार भावना का निदर्शन कराता है। तुलसी ने राजा को न्यायपरायण, विवेकवान, सत्यनिष्ठ, शीलवान, धर्मात्मा और अवगुणों से रहित माना है, इसे प्रजापालक होना चाहिए। जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी हो, वह राजा नरक का भागी होता है–

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, हो नृप अवसि नरक अधिकारी।
सोचिय नृपति जो नीति न जाना, जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।[6]

राम वनगमन करते समय प्रजा को आदेश देते हैं कि तुम सब भरत की आज्ञा का पालन करना और भरत को आदेश देते हैं कि आप मन, वचन, कर्म से प्रजा की सेवा करना–

कहब सँदेसु भरत के आएँ, नीति न तजिअ राजपदु पाएँ।
पालेहु प्रजहि करम, मन, बानी, एसेहु मातु सकल सम जानी।[7]

तुलसी ने राजा को राजमद से दूर रहने के लिए बार-बार चेताया है। उनका मानना है कि प्रभुता पाकर मद होना स्वभाविक है–

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं, प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।[8]

बाल्मीकि रामायण में अंगद विद्रोह करते हैं और राम राजनीति के द्वारा उनके विरोध को विनय में परिवर्तित करते हैं। रामचरितमानस में राजनीति की गंध नहीं है बल्कि मर्यादा का पालन दिखाई देता है। बालि-वध के औचित्य को समाज, नीति, धर्म के विरुद्ध मानकर राम कहते हैं–

अनुज बधू भगिनी सुत नारी, सुन सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई।[9]

इस प्रकार प्रतिकूल प्रकरण को भी गोस्वामीजी ने भक्तिरूपी मंदाकिनी में निमज्जन कराकर समरसता में समाहित कर दिया है। मानस में तुलसी ने रामराज्य का एक आदर्श चित्र खींचकर समाज को एक सपना दिखाया है, रामराज्य में चंद्रमा अपनी अमृतमयी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं तो सूर्य उतना ही तपते हैं, जितना आवश्यकता होती है और मेघ माँगने पर आवश्यकतानुसार ही जल देते हैं, जो उच्च आदर्शों पर आधारित होकर प्रकृति का रक्षक रूप भी है–

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज।[10]

तुलसीदास ने राजा को यह उपदेश दिया है कि उसे प्रजा से इस प्रकार कर लेना चाहिए जैसे सूर्य पृथ्वी से पानी ग्रहण करता है और किसी को इस बात का एहसास भी नहीं होता–

बरसत हरषत लोग सब, करषत लखे न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होइ।[11]

रामराज्य में राजा ईश्वर का प्रतिनिधि के रूप में प्रकारांतर से माना गया है। वहीं प्रजा का पालक रूप भी दृष्टिगोचर होता है। तुलसी ने रामराज्य की तुलना शरदऋतु से की है। वर्षा के बाद शरदऋतु का वातावरण न ऊष्ण होता है, न शीत होता है। सभी वस्तुएँ शुद्ध-स्वच्छ प्रतीत होती हैं। यद्यपि गोस्वामीजी द्वारा वर्णित रामराज्य धर्मनिरपेक्ष नहीं है, उनका शासन राजतंत्र है किंतु वाणी और विचार की जैसी स्वतंत्रता मानस के रामराज्य में वर्णित है, वैसी किसी प्रजातंत्र या लोकतंत्र में दुर्लभ है। विचार-स्वातंत्र्य का पूरा अधिकार जिस राज्य में हो, वही सही अर्थों में प्रजातंत्र होता

है। मानस में हर प्रकार के विद्वेष से मुक्त प्रजा हितकारी (लोककल्याणकारी) राज्य, रामराज्य का वर्णन मिलता है। राम अपनी प्रजा से कहते हैं–

जौं अनीति कछु भाषौं भाई, तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।[12]

जनता को यह अधिकार था कि यदि राजा अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाए तो प्रजा उसके कर्त्तव्य का एहसास अवश्य कराए। राजा के परिवारिक और व्यावहारिक जीवन को देखने के साथ ही उस पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार भी प्रजा को था। राजा अपने पारंपरिक जीवन में भी यदि कोई ऐसी बात पावे जो प्रजा को देखने में अच्छी न लगती हो तो उसका सुधार आदर्श रक्षा के लिए कर्त्तव्य माना जाता था। सती सीता के चरित्र पर दोषारोपण करने वाले धोबी का सिर नहीं उड़ाया गया। घोर मानसिक व्यथा सहकर भी उस दोष के परिहार का यत्न किया गया।[13]

रामराज्य में या तुलसी के समाज में ऊँच-नीच में भेद था। यह भेद आज भी है और कल भी रहेगा, क्योंकि कार्य-विभाजन में सदा ही कुछ कार्य उच्च तो कुछ कार्य निम्न होते हैं, जैसे राजा का कार्य, किसान का कार्य, सेवक का कार्य, उपदेशक का कार्य। इन कार्यों में विविधता है। तुलसी के समाज में ऊँच-नीच अवश्य है, पर जलन का भाव या बैरभाव किसी में भी नहीं मिलता। सभी अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं–

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक सँग गज पंचानन।
खग-मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।[14]

जिस वर्णाश्रम धर्म का पालन प्रजा करती थी, उसमें ऊँच-नीच की शैलियाँ थीं, उसमें कुछ काम छोटे माने जाते थे कुछ बड़े। फावड़ा लेकर मिट्टी खोदने वाले और कलम लेकर वेदांत सूत्र लिखने वाले के काम एक ही कोटि के नहीं माने जाते थे। ऐसे दो काम अब भी एक दृष्टि से नहीं देखे जाते हैं। लोकदृष्टि इसमें भेद कर ही लेती है। इस भेद को किसी प्रकार की चिकनी-चुपड़ी भाषा या पाखंड नहीं मिटा सकता–

बरनाश्रम निज-निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय, सोक, न रोग।[15]

छोटे समझे जाने वाले काम करने वाले, बड़े काम करने वालों से ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से क्यों नहीं देखते थे।[16] पाश्चात्य विद्वान बेंथम ने अपने सुखवादी आकलन में समाज के सुख के कई स्तर बताए हैं। उनका कहना है कि स्वार्थवाद से अच्छा पदार्थवाद होता है। अर्थात् एक सूकर को विष्ठा भक्षण में जो सुख है और एक विद्वान को साहित्य-लेखन में जो सुख है, दोनों सुखों में अंतर है। दोनों को एक कोटि में नहीं रखा जा सकता। दूसरे शब्दों में कर्म, ऊँच-नीच हो सकता है सबके अपने सुख होते हैं, परंतु आकलन करने पर उनकी कोटियाँ निर्धारित होती हैं। समाज में सभी राजा बन जाएँगे तो सेवक का कार्य कैसे चलेगा! अत: किसी को तो सेवा का कार्य अवश्य मिलेगा। तुलसी का रामराज्य, ऊँच-नीच की इसी कोटि की ओर इशारा करता है और वर्णाश्रम धर्म के पालन की बात करता है। इसके साथ-साथ सामाजिक न्याय और समानता जैसे आदर्श को भी अनिवार्य मानता है। एक स्थान पर तुलसी ने दरिद्रता को रावण माना है और उसके नाश के लिए शासकवर्ग को ललकारा है। इस स्थान पर समाज की दशा का मार्मिक चित्रण है–

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।

 ISSN 0975-735X

जीविकाबिहीन लोग सीद्यमान सोचबस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।
बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत
साँकरे सबै पै राम रावरें कृपा करी।[17]

इस छंद में गोस्वामीजी ने दरिद्रता को रावण कहा है और दिखलाया है कि यह रावण सिर्फ उन्हें या किसी एक व्यक्ति को नहीं सताता, वरन् सारी दुनिया को दबाए हुए है। इस दशा के लिए शासकवर्ग की जिम्मेदारी है। गोस्वामीजी उसे खुले शब्दों में कहते हैं।[18] इसके बदले में वह ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं, जहाँ न दरिद्रता हो, न विषमता हो, सिर्फ सुख, समृद्धि और कर्त्तव्यपरायणता हो।

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा, सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।[19]

इस प्रकार न्याय और समानता की व्यवस्था का आदर्श सामने रखकर, तुलसीदास जी ने लोकसंघर्ष की प्रेरणा दी है, जिससे दरिद्रता रूपी रावण का नाश और सुख-समृद्धि से पूरा जनमानस आप्लावित हो सके, ऐसा संदेश अपने काव्य से समाज में प्रेषित किया है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 81
2. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 18
3. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 1/21
4. तुलसीदास एक विश्लेषण, डॉ॰ रामविलास शर्मा, प्रकाशन विभाग, पृ॰ 13
5. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, 3, 4/10
6. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, 2/172
7. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, 2/152
8. रामचरितमानस, बालकांड, 4/60
9. रामचरितमानस, किष्किंधाकांड, 4/9
10. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा 23
11. दोहावली, तुलसीदास, दोहा 508
12. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 3/43
13. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 36
14. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 1/23
15. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा 20
16. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 37
17. कवितावली, तुलसीदास, पृ॰ 20
18. तुलसीदास एक विश्लेषण, रामविलास शर्मा, प्रकाशन विभाग, पृ॰ 17
19. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 3/21

2, **प्रोफेसर लॉज, मोदीनगर**
निकट सी॰एम॰डी॰
गाजियाबाद (उ॰प्र॰) 201204

फोटोनिक्स में कैरियर

डॉ॰ दीपक कोहली

विज्ञान विषय की जानकारी रखनेवाले लोगों के लिए 'फोटोनिक्स' कोई नया शब्द नहीं है। हालाँकि सामान्य जनमानस में कम लोग ही इस शब्द और इसकी उपयोगिता के बारे में जानते हों। यह भी सच है कि इस आधुनिकयुग में विभिन्न फोटोनिक्स तकनीक का प्रयोग हम रोजाना के जीवन में लगातार करते हैं। दरअसल, 1960 के दशक में लेजर रेज के अविष्कार के साथ ही पूरी दुनिया में फोटोनिक्स विज्ञान और टेक्नोलॉजी की शुरुआत हो गई थी।

जब 1970 के दशक में देश–दुनिया में टेलीकम्यूनिकेशन का प्रचार-प्रसार बढ़ा तो हमारे रोजमर्रा के जीवन में फोटोनिक्स टेक्नोलॉजी का प्रवेश और प्रयोग व्यापक स्तर पर शुरू हो गया जैसे–बारकोड स्केनर, प्रिंटर, रिमोट कंट्रोल डिवाइसेस, सीडी/डीवीडी, माइक्रोवेव, लेजर सर्जरी, टैटू रिमूवल, वेल्डिंग, ड्रिलिंग, कटिंग, स्मार्ट कंस्ट्रक्शन स्ट्रक्चर्स, एविएशन में फोटोनिक जाइरोस्कोपेस, मिलिट्री और डिफेंस में माइन लेइंग एंड डिटेक्शन, लेजर शोज, बीम इफेक्ट्स और क्वांटम कंप्यूटिंग जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण और जरूरी इक्विपमेंट्स और उनके इस्तेमाल हम अपने दैनिक जीवन में बहुतायत में करते ही रहते हैं।

फोटोनिक्स वास्तव में 'प्रकाश का विज्ञान' अर्थात् साइंस ऑफ लाइट है। इसमें लाइट या प्रकाश के विभिन्न अणुओं अर्थात् फोटोन्स और लाइट वेव्स (प्रकाश की तरंगों) का पता लगाने के साथ-साथ उन्हें जनरेट और कंट्रोल करने की टेक्नोलॉजी को शामिल किया जा सकता है। आजकल फोटोन्स का इस्तेमाल यूनिवर्स को एक्सप्लोर करने के साथ-साथ विभिन्न बीमारियों की चिकित्सा और अपराधों को हल करने के लिए भी किया जाता है। फोटोनिक्स गामा रेज, रेडियो वेव्स, एक्स-रेज, अल्ट्रावायलेट और इंफ्रारेड लाइट के साथ बड़े स्तर पर वेवलेंथ में विविधता की खोज करता है, ताकि मानव सभ्यता के कल्याण के लिए फोटोनिक्स का बेहतरीन उपयोग किया जा सके।

हमारे देश में किसी मान्यता प्राप्त एजुकेशनल बोर्ड से विज्ञान विषय (भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित) के साथ कम-से-कम 50 प्रतिशत अंकों सहित 12वीं कक्षा उत्तीर्ण करनेवाले विद्यार्थी अंडरग्रेजुएट कोर्सेज में प्रवेश ले सकते हैं। भारत में फोटोनिक्स के क्षेत्र में निम्नलिखित एजुकेशनल कोर्सेज में विद्यार्थी प्रवेश ले सकते हैं–

(1) डिप्लोमा–फोटोनिक्स या ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स, (2) बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग–फोटोनिक सिस्टम, (3) बीएससी–फोटोनिक्स या ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स, (4) एमएससी–फोटोनिक्स या ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स, (5) एमटेक–फोटोनिक्स या ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स, (6) एमफिल–फोटोनिक्स, (7) पीएच॰डी॰–फोटोनिक्स या ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स।

भारत में बहुत से विद्यालय और महाविद्यालय फोटोनिक्स को विज्ञान के एक इंटरडिसिप्लिरी विषय के तौर पर भी पढ़ाते हैं। हमारे देश में कुछ प्रमुख शैक्षिक संस्थाएँ फोटोनिक्स में कई डिग्री/डिप्लोमा कोर्सेज करवाते हैं जैसे–

 ISSN 0975-735X

1. इडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (IIT), चेन्नई/ दिल्ली।

2. इंटरनेशनल स्कूल ऑफ फोटोनिक्स, कोचीन यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी (CUSAT)।

3. राजऋषि शाहू महाविद्यालय, फोटोनिक्स विभाग, लातूर, महाराष्ट्र।

4. मनिपाल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मनिपालसेंट्रल।

5. इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट (CEERI), पिलानी।

फोटोनिक्स में करियर बनाने के आजकल अच्छे अवसर हैं। दुनियाभर में आज भी फोटोनिक्स विशेषज्ञों की कमी की वजह से संबंधित कंपनियों और इंडस्ट्रीज में इन पेशेवरों को तुरंत काम मिल सकता है। आमतौर पर विभिन्न कंपनियाँ और इंस्टीट्यूशन्स फोटोनिक्स विशेषज्ञों को वैज्ञानिक, तकनीशियन और इंजीनियर्स के तौर पर जॉब ऑफर करते हैं। इसी तरह, ये पेशेवर पीएच॰डी॰ करने के बाद देश के विभिन्न कॉलेजों और यूनिवर्सिटीज में अध्यापन का कार्य भी कर सकते हैं। भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों के विज्ञान से संबंधित विभागों, नेशनल रिसर्च लेबोरेटरीज और फोटोनिक्स से संबद्ध विभिन्न इंडस्ट्रीज में भी ये पेशेवर फोटोनिक्स से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों जैसे, लेजर्स, नानोटेक्नोलॉजी, रेडिएशन ट्रीटमेंट, ऑप्टिकल मटीरियल्स और मेडिकल इमेजिंग में रिसर्चर, साइंटिस्ट या इंजीनियर आदि के तौर पर नौकरी प्राप्त कर सकते हैं। हमारे देश में फोटोनिक्स के क्षेत्र से संबंधित पेशेवर निम्नलिखित प्रमुख कंपनियों में नौकरी के लिए आवेदन कर सकते हैं–

1. स्टर्लाइट ऑप्टिकल टेक्नोलॉजीज लिमिटेड, नई दिल्ली।

2. सहजानंद टेक्नोलॉजीज प्रिअव्ते लिमिटेड, सूरत।

3. एडवांस्ड फोटोनिक्स, मुंबई, महाराष्ट्र।

4. क्वालिटी फोटोनिक्स प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद।

5. ईगल फोटोनिक्स, बैंगलोर/चेन्नई।

6. ऑप्टीवेव फोटोनिक्स लिमिटेड, हैदराबाद।

7. जॉन एफ॰ वेल्श टेक्नोलॉजी सेंटर, बैंगलोर।

अगर फोटोनिक्स के क्षेत्र में वेतन/ पैकेज की चर्चा करें, तो यकीनन इस क्षेत्र में विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए करियर ग्रोथ की काफी आशाजनक संभावनाएँ हैं। क्योंकि हमारे देश में इस फील्ड में विभिन्न पेशेवरों, रिसर्चर्स और साइंटिस्ट्स को काफी आकर्षक सैलरी पैकेज मिलते हैं। फ्रेश कैंडिडेट्स को शुरू के दिनों में औसतन 25–30 हजार रुपए मासिक मिलते हैं। कुछ वर्षों के अनुभव के बाद ये पेशेवर हायर लेवल पर 8–10 लाख रुपए का सालाना सैलरी पैकेज ले सकते हैं। इन पेशेवरों के सैलरी पैकेज पर इन पेशेवरों की शैक्षिक योग्यता, प्रतिभा और रिक्रूटर कंपनी के फाइनेंशियल कंडीशन का भी सीधा असर पड़ता है। इस प्रकार फोटोनिक्स का क्षेत्र विज्ञान विधा में करियर हेतु एक उन्नत एवं प्रगतिशील क्षेत्र है, जिसका भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है।

5/104, **विपुल खंड, गोमतीनगर**

लखनऊ 226010

मो॰ 9454410037

आचार्य भिखारीदास के काव्य में श्रीराम के संदर्भ और भक्ति-भावना

अशेष उपाध्याय
पूर्व छात्र, बरेली कॉलेज, बरेली

रीतिकालीन काव्यांग निरूपण में आचार्य भिखारीदास की गणना उच्चकोटि के आचार्यों में की गई है। उत्तम विषय प्रतिपादन शैली तथा आलोचनाशक्ति से संपन्न, काव्य-प्रकाश के आधार पर हिंदी में रस-ध्वनि सिद्धांत के संस्थापक, सरल बिंब-योजना की अनुरंजकता तथा मर्मस्पर्शिता से परिपूर्ण इनके काव्य में भारतीय आस्तिक-संस्कृति से उद्‌भूत श्रीराम भक्ति की संजीवनी सृजनात्मक अंतर्विरोधों की स्थिति में भी रक्षा-कवच के रूप में गृहीत प्रतीत होती है। इन्होंने अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करने के साथ ही काव्य रस-रसिक समाज को काव्य-सृजन की ओर आकर्षित करने तथा प्रबोध प्रदान का सफल प्रयास अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, प्राकृतिक एवं धार्मिक स्थिति से प्रभावित जन समुच्चय तथा रीतियुगीन कालखंड में निहित सांस्कृतिक विकास ने इन्हें रस-सिक्त अलंकृत भावनाओं के शास्त्रीय स्वरूप से अभिमंडित रामाश्रयी संदर्भों से प्रतिबद्ध कर दिया है। अपने वंश-परिचय में इनके द्वारा 'सीतानाथ' श्रीराम का स्मरण इस प्रकार किया गया है–

अभिलाखा करी सदा ऐस निकाय होय बृत्थ
सब ठौर दिन सब याही सवा चर चाँन।
लौभा लई नीचें ग्यान चला चल ही कौ अंसु,
अंत है क्रिया प ताल निंदा रस ही कौ खाँन।
सेनापति देवी कर प्रभा गँन ती को भूप,
पना मोती हीरा हेंम सौदा हास ही कौ जाँन।
हीय पर जीव पर बदे जसु रहे नाँउ,
खगा सँन नग धर सीता नाथ कौल पाँन।'[1]

मध्याक्षरी ग्रहण बद्ध चित्रालंकार से युक्त इस कवित्त की अर्थसूचक व्याख्या अथवा 'तिलक में भी कवि ने 'रामभक्ति रस; मंडित निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत किया है–

या कवित्त-अतर-बँरन, लै तुकंत द्वे छंद
दास नाम कुल ग्राम कहि, राम भक्ति-रस मंड।[2]

इसमें मध्याक्षर ग्रहण करने की पद्धति से यह स्पष्ट हो जाता है कि कविवर भिखारीदास बहीवार वर्ण के कायस्थ थे। इनके पिता का नाम कृपालदास था। वीरभानु इनके पितामह थे और रामदास प्रपितामह का नाम था। चैनलाल इनके भाई थे। प्रतापगढ़ अवध के निकटवर्त्ती अरबर क्षेत्र का 'टोंग्या' अथवा 'टैंउगा' ग्राम इनका निवासस्थान था। श्री 'जाँनकी-रबँन-जस' संदर्भ का

 ISSN 0975-735X

उपयोग करके इन्होंनेशृंखलोत्तर चित्रालंकार के माध्यम से विविध प्रश्नों का उत्तर छंद के अंतिम चरण के उपर्युक्त अर्द्ध खंड के सम वर्णों के गतागत के रूप में प्रस्तुत किया है–

को सुंधर, कहा कींनी लाज गँनिकाँन,
को पढ़ैया खग, मोहै मृग कहा तपसी-बस।
कहा नृप करै, कहा भू में विस्तरै,
कहा जुआ छवि धरै, कोहै 'दास' नाँम के हैं रस।।
जीतै कोंन कोंन अखरा की रेफ, के के कहा,
कहें कूर मीत राखें कहा कहें धौस दस।
साधु कहा गावैं, कहा कुलटा सती-सिखावैं,
सब कौ उत्तर 'दास'-'जाँनकी रबँन-जस।।[3]

वास्तविकता यह है कि जानकी रमण श्रीराम के प्रति गहन आस्था ने ही कवि को 'द्वि अक्षर निर्मित चित्रालंकार' के उदाहरण में अपने रोम-रोम को 'रामां-राम' रटते हुए निरूपित किया है। जीवन की 'रारि' अर्थात् झगड़ा-टंटा मिटाने का यही उत्तम साधन है, जो कि जीवन के महामोह से विरक्ति की ओर अग्रसर कर देता है–

रोंम रमां रोंरै रुहै, मुरि मुरि मेरी रारि।
रोंम रोंम मेरो ररै, रामाँ-राँम मुरारि।।[4]

'अमात्रिक' के तद्भव अमंत' का चमत्कार प्रदर्शन करने के लिए दासजी ने 'अमत्त चित्रालंकार' में 'इ, ई, उ, ऊ, ओ' की मात्राओं से रहित छप्पय द्वंद्व का प्रयोग किया है। इनके द्वारा सदैव मन-सदन में विराजमान और क्षण-प्रतिक्षण भक्ति-तत्त्व-वर्षण में प्रवृत्त भगवान राम के कमल-नयन, पदकमल, सघन-सजल जलधर-वर्ण युक्त, अपने धवल यश से विश्व को वश में करनेवाले, दशानन रावण का हनन करके देवताओं के सुख दाता, दशरथ तनय के चरणों की शरण ग्रहण की गई है–

कँमल-नयन, पद-कँमल, कँमल-कर-अँमल-कँमल धर।
सतस सरद-सस-धँरन, हँरन मद लसत बदँन बर।।
रहत सतँन मन-सदँन, हरत छँन-छँन तत बरसत।
हर कँमलन सँग लहत, जनँम-फल दरसँन दरसत।।
तँन-सघँन-सजल-जलधर-बरँन, जगत-धवल जस बस करन।
दस बदँन दरन अँमरन-बरन, दसरथ तनय चरँनन-सरँन।।[5]

काव्य में आलंकारिक प्रयोगों के कौशल से भिन्न-भिन्न वर्णों की रचनावृत्ति के रूप में ग्रहण की गई है। उपनागरिका, परुषा एवं कोमला इसके तीन भेद हैं। ट, ठ, ड, ढ, वर्णों से रहित सानुस्वार वर्णों की माधुर्यगुण युक्त रचना उपनागरिका मानी गई है। ट, ठ, ड, ढ, द्वित्व एवं संयुक्त वर्णों के बाहुल्य से युक्त ओज गुण की रचना परुषावृत्ति है। प्रसाद गुण युक्त द्वित्व तथा संयुक्त वर्ण विहीन 'ट, ठ, ड, ढ वर्णों से रहित शब्दावली कोमलावृत्ति है। दासजी ने अपने आराध्य श्रीराम के युद्ध का वर्णन 'परुषावृत्ति' के उदाहरण में प्रस्तुत किया है–

मरकट-जुद्ध-विरुद्ध कुद्ध अरि-ठट्ठ दपट्टे।
अच्छ-सब्द करिगर्जि, तर्जि झुकि झंपि झपट्टे।।

लच्छ, लच्छ रच्छस बिपच्छ धरि धरँन पट्ट के।
तिख्ख सस्त्र बज्रादि अस्त एक्कौ न अट्टकें।।
कृत व्यक्त रक्त स्रोनित सँने जत्र-जत्र अनहद्द भुअ।
तस विक्रंम कत्थ अकत्थ जस, रँन समत्थ दसरथ सुअ।

आचार्य भिखारीदास ने श्लेष से पुष्ट प्रतीप' अलंकार के माध्यम से 'महाराज रघुराज' के 'गुमान' की न्यूनता को 'दंड', 'कोष', एवं 'दल' के श्लिष्ट तात्पर्य से प्रकट करके 'सरसिज' अर्थात् कमल उपमेय के प्रयोग-वैचित्य से स्पष्ट किया है। इसमें 'महाराज रघुराज' अर्थात् श्रीराम उपमान के रूप में ग्रहण किए गए हैं–

महाराज रघुराज जू, कीजै कहा गुमाँन।
दंड कोस-दल के धनी, सरसिज तुम्हें समान।।[7]

'चपलातिशयोक्ति' में अत्यंत शीघ्रता से कार्य पूर्ण होने का कथन होता है। चपला का अर्थ है–विद्युत या बिजली। अत: विद्युत गति से कार्य पूर्ण होना अथवा कारण का कथन होते ही कार्य संपन्न होने की स्थिति में यह अलंकार 'सुकविसिरताजों' के द्वारा स्वीकार किया गया है। इसमें आश्चर्य अथवा विस्मय की उद्भावना कारण अद्भुत रस की निष्पत्ति हो जाती है। श्रीराम के स्नेह का अद्भुत प्रभाव हनुमानजी की गति को अत्यंत तीव्रगम्यता प्रदान करके 'भालु कपि कटक' को आश्चर्य में जकड़ देता है। वे समुद्र संतरण के कार्य में संलग्न होते हुए आकाश के मध्य में विकसित स्वर्ण-धनुष जैसे प्रतीत होते हैं–

तेरे जोग काँम यै, राम के सँनेही, जाँमबंत कह्यौ,
औध हू के धौस दस द्वै रह्यौ।
एती बात सुँनत अधिक हँनुमंत गिरि
सुंदर तें कूदि के सुबेल पर ह्वै रह्यौ।।
'दास' अति गति की चपलता कहाँ लो कहाँ
भालु-कपि-कटक अचंभे जकि ह्वै रह्यौ।।
एक छिन बार-पार लागी पारबार के,
गगँन मध्य कंचन धनुष ऐसौ व्वै रह्यौ।।[8]

'अक्रमातिशयोक्ति' अलंकार में अक्रम का शाब्दिक तात्पर्य 'क्रमहीन' है। इसमें कार्य कारण का कथन एक ही काल में होता है। आगे-पीछे का उचित क्रम कार्य-कारण के एककालिक वर्णन में तिरोहित हो जाता है। श्रीराम की 'असि' की प्रशंसा में कवि ने इस अलंकार का प्रयोग किया है। इसमें जैसे ही इनकी 'असि' या तलवार कोष से निकलती है, वैसे ही इससे भयभीत शत्रु अपना कोष त्यागकर पलायन कर जाते हैं। इसकी धारा के सजते ही उनकी आँखों में अश्रुधारा सज जाती है–

राम असि तेरी अस बैरिन के कीने हाल,
ताते दोऊ काज इक साथ ही सजत हैं।
ज्यों ही यै कोस कों तजति ह्वै दयाल त्यों ही
वे हू सब निज-निज कोस को तजत हैं।
'दास' यै धारा कों छजत जब-जग, तब-तब

 ISSN 0975-735X

वे हू सब अश्रुन की धारा कों छजत हैं।
या कों तू कँपाई के भँजावत है ज्यों-ज्यों, त्यों-त्यों,
वे हू काँपि-काँपि ठौर-ठौरन भजत हैं।[9]

सौंदर्य, शौर्य सौकुमार्य औदार्य तथा सम्पत्ति इत्यादि का उच्च स्तरीय अतथ्य वर्णन तथा 'जोग को अधिक जोग' अर्थात् योग्य का अधिक योग्य रूप में कथन अत्युक्ति अलंकार है। इस प्रकार का कथन उदात्त अलंकार के अंतर्गत भी आता है किंतु आचार्य भिखारीदास ने इसे अतिशयोक्ति की परिधि में ही स्वीकार किया है। इसके उदाहरण में इनके द्वारा रघुकुल में नायक के रूप में प्रतिष्ठित श्रीराम से कल्पवृक्ष की याचना की गई है—

एती अँनाकँनी कीजै कहा, रघु के कुल में कौ कहाइ कें नाइक।
आपनों मेरौ धों नाम बिचारौं, हों दीन अधीन तू दीन हौ दाइक।
हौं तो अँनाथ अँनाथन में इक तेरोई नाम न दूजो सहाइक।
मंगँन तेरे के मंगन सौ कलयद्रुँम आज है माँगिवे लाइक।[10]

'अधिक' अलंकार में आधार और आधेय का न्यूनाधिक वर्णन किया जाता है। इसकी मुख्य विशेषता यह भी है कि इसमें बड़े आधेय एवं आधार की समतुल्यता में अल्प आधार तथा अधिक आधेय का कथन होता है। यह दो प्रकार का माना गया है। इसका प्रथम प्रकार है आधेय की तुलना में आधार का अधिक कथन और द्वितीय प्रकार है आधार की तुलना में आधेय का अधिक कथन। कवि की काव्य सृजन कला तथा कल्पना के चमत्कारपूर्ण उपयोग से न्यूनाधिकता का कथन इसमें असंदिग्ध रूप में आवश्यक है। श्रीराम के अधिक महत्त्व का प्रतिपादक निम्न उदाहरण इस संदर्भ में अवलोकनीय है—

सातों समुद्र घिरी बसुधा, औ सातों गिरीस धरे सब औरें।
सातों ही दीप सबै दरम्यान में, होंइगे खंड किते तिहिँ ठोरें।
दास चतुरदस-लोक प्रकासित है, हैं ब्रह्मांड इकीस ही जोरें।[11]

असंगति अलंकार में कारण-कार्य की स्वाभाविक संगति का अभाव होता है। इसके भेदों में प्रथम भेद है—कारण एवं कार्य के स्थान की पृथकता। द्वितीय भेद है—नियत स्थान का कार्य अन्यत्र स्थान पर और तृतीय भेद है—प्रारंभ किए गए कार्य के विरुद्ध अन्य कार्य का निष्पादन। कारण और कार्य का एक साथ एक स्थान पर होना स्वाभाविक क्रिया है। कवि अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ऐसे प्रकरणों की खोजबीन करता रहता है, जिनमें इस स्वाभाविक क्रिया के विपरीत स्थिति का प्रभावोत्पादक वर्णन संभव होकर सहृदय पाठकों के मनहरण में समर्थ हो जाए। आचार्य भिखारीदास ने द्वितीय प्रकार के असंगति अलंकार 'और थल की क्रिया और थल' के उदाहरण में श्रीराम के वन में स्नान का वर्णन इस प्रकार किया है—

मैं देख्यौ बँन-हात राँमचंद तो अरि न तिय।
कटि-तट पैहरे पात, दृगे कंकन, करु में तिलक।[12]

प्रतिषेध अलंकार में किसी प्रसिद्ध विरुद्ध कथन अथवा निषेध का किसी विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु निरूपण किया जाता है। इसके उदाहरण में कवि ने श्रीराम को विष्णु भगवान का रूप मानकर श्रीकृष्ण रूप में गोचारण, गोवर्द्धन धारण, दावानल पान, कालियनाग दमन, द्रौपदी की रक्षा, गणिका उद्धार, बकासुर विदीर्णन, विष्णु के रूप में मधु राक्षस का संहार, गजेंद्र मोक्ष तथा

श्रीराम के रूप में अहिल्या उद्धार, परशुराम के वैष्णव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना आदि का स्मरण कराते हुए आराध्य श्री 'राँमभुवनेश' को अपने 'क्लेश टारिबो' की कठिन चुनौती अति अधम उद्धार हेतु प्रस्तुत की है–

गैयन चरैबो है न, गिरिको उठैबोहै न,
पावक अँचौबौ हैं न, पाँहन को तारिवो।
धनुँष चढ़ैवौ है न, बसँन बढ़ैबौ है न,
नाग-नाँथ लैवौ है न गनिका उधारिबौ।।
मधुसुर मारिबौ नाँ, बकासुर-बिदारिबौ नाँ,
बारन उधारिबौ नॉ मन में बिचारिबौ।
ह्याँ पै तौ न जइ है पेस, सुनों राँम भुवनेस,
सब से कठिन बेस मेरे क्लेस टारिबौ।।[13]

आचार्य भिखारीदास जी ने श्रीराम के 'जय' का उपदेश 'भयानक रसवंत अलंकार' के माध्यम से दिया है। इस अलंकार में एक रस दूसरे का अंग बनकर प्रकट होता है। इनके द्वारा दिए गए उदाहरण में शांत रस का भयानक रस अंग रूप हो गया है। भ्रम-जाल इष्टदेव को भूले हुए ख्याल की खाल में फूले हुए जीवात्मा को पंच भूत 'अकूत कुनाँच' नचाकर दुखी करते रहेंगे। इनसे विश्राम प्राप्त करने का एक मात्र उपाय श्रीराम का जप है–

भूल्यौ फिरै भ्रँम जाल में जीव, सु ख्याल की खाल में फूल्यौ फिरै है।
भूत जु पाँच लगे मजबूत, सो साँच अबूत कुनाँच नचौ है।
काँन में आँन रें 'दास' कही को नहीं ते तुही मँन में पछितै है।
कॉम के तेज निकाँम तपै, बिन राम-जपैं बिसराम न पै है।[14]

समाहित अलंकार भाव प्रशम अथवा भावाशांति से बनता है। जब किसी भाव की प्रशमता किसी दूसरे रस के अंगीकरण हेतु से या किसी रस के किसी भाव की प्रशमता अथवा भाव की शांति के अंगीकरण हेतु से परिलक्षित होती है, तब वहाँ समाहित अलंकार होता है। श्रीराम के धनुष की टंकार का भयानक घोष सुनकर रिपु रानियों के 'गर्भ-पतन' तथा शत्रुजनों के 'बल-पतन' का उदाहरण इसके लिए दृष्टव्य है–

राँम धनुष-टंकार सुनि, फैल्यो चहुँ दिसि सोर।
गरभ स्रवें रिपु-रानियाँ, गरब स्रबें रिपु जोर।[15]

प्रियजन, प्रिय वस्तु, इष्ट अथवा वाहन, पशु-पक्षी आदि के वियोग से उद्भवित रति-विहीन स्थायी भाव शोक से विकसित अनुभूति को करुण रस की संज्ञा दी गई है। श्रीराम वनगमन के कारण उत्पन्न शोक में अयोध्या के नर-नारी, पक्षी-पशु इत्यादि परम दुखित होकर रुदन करते हैं। प्राण-प्यारे रघुनंदन दुलारे का वन को सिधारना उनके शरीर में प्राण रहते हुए भी विलाप मात्र बनकर रह गया है। आचार्य भिखारीदास ने इसे निम्नलिखित कवित्त में करुण रस के उदाहरण में प्रस्तुत किया है–

बटियाँ हुतीं न सपनेहू सुनिबे की सो सुन्यो में,
जु हटी न कहिबै की सो कह्येई में।
सारे नर-नारी, पंछी-पशु देह धारी,

 ISSN 0975-735X

रोमें परँम दुखारी ऐसे सूलँन सह्यौई में।
हाय अपलोक ओक पंथहि गह्यो पै
विरहाग्नि दह्यौ में सोक सिंध-हि बह्यौ-ई में।
हाय प्रान प्यारे रघुनंदन दुलारे,
तुम बँनकों सिधारे प्रान-तँन लै रह्योई में।[16]

स्थायीभाव क्रोध तथा शत्रु और उसके सहकर्मी अथवा पक्षधर, आक्रमणकारी, दुष्टजन एवं अपराधी आदि आलंबन के संयोग से रौद्ररस की निष्पत्ति होती है। मदांध दशकंठ का अंधाधुंध सैन्य दल देखकर परम शक्ति-संपन्न श्रीराम क्रोधावेश से परिपूर्ण होकर अपने भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि आज वे अकेले ही प्रचंड शत्रु-सेना का संहार करेंगे। उनके बाणों की अखंड तृषा इनके रक्त स्नान से ही शांत होगी। तरकश के 'तरकते' और धनुष के 'करकते' ही उनके भुज दंड क्रोधावेग में फड़कने लगते हैं–

देखत मदंध दसकंध अंधधुंध-दल,
बंधु सो बलकि बोल्यो राजा राँम बरबँड।
लच्छँन विचच्छँन सँम्हारे रहौ निज-पच्छ,
देखि हों अकेले हों ही अरि अनी परचंड।
आज अधवाऊँ इन सँत्रुन के स्रोनितँन,
'दास' भँनि बाढ़ी मेरे बानन तृषा अखंड।
जाँन पन सक्कल, तरक्क उठ्यौ तक्कस,
करक उठयौ कोदंड, फरक्क उठे भुजदंड।[17]

'अपरांग व्यंग्य' में व्यंग्यार्थ अन्य अर्थ के अंग रूप में दृष्टिगत होता है। इसके उदाहरण में कवि ने श्रीराम के प्रभाव की उपमा 'चंद्र सुभाव' से प्रस्तुत करने के निहित उद्देश्य से सीता के चंद्र संदर्भ में शीतलता, श्रीराम के संदर्भ में राजा जनक की पुत्री, लक्ष्मण के चंद्र संदर्भ में कलंक तथा श्रीराम के संदर्भ में भ्राता लक्ष्मण कहा है–

सँग लै सीता-लक्ष्छमँन देति कुवलयहिचाव।
राजत चंद सुभाव सौ, श्री रघुवीर प्रभाव।[18]

आचार्य भिखारीदास द्वारा रचित प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ 'काव्य निर्णय' के अंतिम आठ छंद श्रीराम के प्रति इनकी भक्तिभावना का स्पष्ट प्रमाण हैं। राम का नाम पूर्ण शक्तिसंपन्न दो वर्णों का मंत्र है। इसे सभी जन इसलिए जपते हैं क्योंकि इसमें निहित वायु सहित अग्नि से असंख्य पापों के पहाड़ भस्म हो जाते हैं। ये दोनों अक्षर 'दिनेश-कलाधर' वेश में संसार के निस्तारक तथा मुक्ति-महीरुह के प्रभु' के रूप में प्रतिष्ठित है।[19] श्रीराम की बड़ाई से इनका नाम बड़ा है। वास्तविकता यह है कि अपने नाम की बड़ाई से ही श्रीराम बड़े बन गए हैं–

सिद्धन को सिरताज भयो, कवि-कोविद नाँम ही की सिबकाई।
गीध, गयंद अजामिल सें तरिगे, सब नाँम ही की प्रभुताई।
'दास' कहै पैहलाद उवारत, राँम हू ने पैहले किहि ठाईं।
राँम बड़ाई न, नाँम बड़ौ भयौ, राम बड़ौ निज नाँम बड़ाई। [20]

आचार्य भिखारीदास के 'काव्य निर्णय' में श्रीराम से संबंधित संदर्भ प्रभाव और भक्ति

भावना उनके पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश का सत्परिणाम है। वह एक समर्थ काव्य-स्रष्टा थे। अपने काव्य में उन्होंने जो कुछ विरचित किया है, वही उनकी भावनाओं का यथार्थ है। शृंगारकालीन रीतिबद्ध साहित्यिक वातावरण में उनके श्रीरामयुक्त रस, अलंकार आदि के उदाहरणों तथा भक्ति भाव को शृंगार और आचार्यत्व प्रदर्शन के साधक रूप में परिगणित करना उचित नहीं है। जीवन की दुर्लभ भावानुभूतियों ने ही इस प्रकार का सृजन करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया हैं उनका निम्नलिखित आत्म कथ्य अवलोकनीय है–

जाँनों न भक्ति न ग्याँन की सक्ति, हों 'दास' अँनाथ अँनाथ के स्वामिजू।
माँगों इतौ वर दीनं दयानिधि, दीनता मेरी चितै भरौ हाँमि जू।।
ज्यों बिच नाँम के भेद कौ व्यौर है, अंतरजाँमी निरन्तर जाँमि जू।
मो रसनाँ को रुचौ रस नाँ, तजि राम नमाँमि, नमाँमि, नमाँमि जू।।[21]

संदर्भ

1. भिखारीदास, काव्यनिर्णय, संपादक, जवाहरलाल चतुर्वेदी, कल्याणदास एंड ब्रदर्स, ज्ञानवाणी, वाराणसी, 1956 ई०, पृ० 616
2. वही, पृ०, 617
3. वही, पृ०, 584
4. वही, पृ०, 592
5. वही, पृ०, 590
6. वही, पृ०, 547
7. वही, पृ०, 272
8. वही, पृ०, 277-278
9. वही, पृ०, 279, 280
10. वही, पृ०, 280
11. वही, पृ०, 292
12. वही, पृ०, 347
13. वही, पृ०, 425
14. वही, पृ०, 103
15. वही, पृ०, 108
16. वही, पृ०, 87,88
17. वही, पृ०, 90
18. वही, पृ०, 149
19. वही, पृ०, 687
20. वही, पृ०, 687
21. वही, पृ०, 688

द्वारा श्रीमती रजनी उपाध्याय
197/199, **डॉक्टर्स कॉलोनी**
सिविल लाइन्स, बरेली।

एक गुमनाम कहानीकार : रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'

रामभवन यादव, शोधार्थी
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

रमाप्रसाद घिल्डियाल का जन्म 01 अगस्त 1911 ई० में उत्तराखंड के गढ़वाल मंडल अंतर्गत पौड़ी जनपद के डाँग नामक ग्राम में हुआ था। 'पहाड़ी' हिंदी के एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्हें साहित्यिक खेमेबाजों की वजह से अपेक्षित प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी। उन्होंने अपनी लेखनी में उन बिंदुओं को उभारा है, जिस पर उस समय के लेखकों की कलम लड़खड़ाने लगती थी। श्री पहाड़ी साहित्यिक पृष्ठभूमि में पले-बढ़े थे। उनके पिता श्री गोबिन्दप्रसाद घिल्डियाल ने 1916 ई० में ओथेलो का हिंदी अनुवाद किया था और उनके दादा श्री रविदत्त घिल्डियाल ने एक दुर्लभ पुस्तक 'ढोलसागर' की पांडुलिपि तैयार करवाई थी। यह पांडुलिपि पहाड़ीजी के पारिवारिक सदस्य ईश्वरीप्रसाद के जीवन पर लिखी गई है। ईश्वरीप्रसाद अपने इलाके के प्रसिद्ध ढोल-नगाड़ा वादक थे। यानी पहाड़ीजी की पारिवारिक पृष्ठभूमि में साहित्य और कला का सम्मान था। इसकी छाप इनके व्यक्तित्व पर भी पड़ी। जब पहाड़ीजी मेरठ कॉलेज में पढ़ रहे थे, तभी उन्हें स्टेट्समैन दिल्ली और टाइम्स ऑफ इंडिया बंबई का प्रमुख प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। वे 1935-38 के बीच अमृत बाजार पत्रिका से संवाददाता के रूप में संबद्ध रहे। कुछ समय तक आकाशवाणी लखनऊ में भी कार्य किया। कर्मयोगी, संघर्ष, नया साहित्य, सेवा और गढ़वाल समाचार का संपादन भी किया। 22 वर्षों तक साहित्य सम्मेलन प्रयाग में संयुक्त उत्तर प्रदेश शाखा का सेक्रेटरी होने का गौरव भी प्राप्त हुआ। पहाड़ीजी ने 'नया साहित्य' पत्र की शुरुआत भी की। इस समय इनकी रचनाएँ विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवादित हो रही थीं और सोवियत विश्व लेखक निर्देशिका (1956) में हिंदुस्तान के लेखकों में इन्हें शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ था। इनका पहला कहानी-संग्रह 'अधूरा चित्र' 1941 ई० में प्रकाशित हुआ। इनके कुल 19 कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके कहानी-संग्रह अधूरा चित्र (1941), बया का घोंसला (1944), सफर (1945), मौली (1946), नया रास्ता (1946), छाया में (1947), शेषनाथ की थाती (1948), कैदी और बुलबुल (1951), तूफान के बाद (1952), बरगद की जड़ें (1960), मालापाती (1961), बीज और पौधा (1968), इंद्रधनुष (1976) और ब्रांड कोट (1979) हैं।

कमलकिशोर गोयनका द्वारा संपादित पुस्तक प्रेमचंद : कुछ संस्मरण (1980) में पहाड़ीजी का एक संस्मरण संकलित है, जिसमें उन्होंने प्रेमचंदजी द्वारा भेजे गए एक पत्र की चर्चा की है। प्रेमचंद लिखते हैं कि 'आपकी अधूरा चित्र कहानी अगस्त की माधुरी में देखी और मुग्ध हो गया, सैकड़ों बढ़ाइयाँ। विषय इतना मनोवैज्ञानिक है और उसे ऊपर से इतनी खूबसूरती से निभाया गया है कि पूरा चित्र करुणा और व्यक्ति कल्पना के साथ आँखों के सामने खिंच जाता है। अब आप गल्प-लेखकों के पहले सफे में आ गए हैं, बल्कि बहुतों को पीछे छोड़ गए हैं।'[1] जिस लेखक की

तारीफ प्रेमचंद जैसे अफसानानिगार ने की, आज उस कहानीकार की चर्चा नहीं के बराबर होती है। प्रत्येक सफल साहित्यकार अपने समय की आवाज को शब्दबद्ध करता है और समाज की आंतरिक संरचना का चित्र प्रस्तुत करता है। रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' की कहानियों में राजनीतिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक संबंधों में आ रहे परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। इसके अलावा उन्होंने सर्वप्रथम हिंदी साहित्य में पर्वतीय समाज का सशक्त चित्रण किया। पहाड़ीजी के दौर में दो महायुद्ध हुए, जिस पर हिंदी के प्रचलित साहित्यकरों ने न के बराबर लिखा है। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से बताया कि इन महायुद्धों का भारतीय जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा और युद्ध ने किस तरह से मानवीय संबंधों की बुनियाद को खोखला किया। पहाड़ीजी ने बदलती हुई सामाजिक तस्वीर को अपने सर्जनात्मक आईने में उभारने का सफल प्रयास किया है। हम इनकी कहानियों को पढ़कर समय की केंद्रीय संवेदना को समझ सकते हैं। अधूरा चित्र कहानी-संग्रह की भूमिका में पहाड़ीजी ने लिखा है कि 'आज की कहानी राजा-रानी, हड्डी-मांसवाले शारीरिक व्यक्तित्व से अलग, इंसान और समूह के मनोवैज्ञानिक उफानों की चर्चा है।...आज की कहानी निराशावाद की कहानी है, जिसका सही कारण आर्थिक दासता है।'[2] उन्होंने बदलते परिवेश में बदलती हुई संवेदना के अनुसार कहानी-कला को निर्मित किया। प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों की सूची में पहाड़ी शीर्ष कहानीकार हैं। इस संग्रह की ज्यादातर कहानियों की प्रधान पात्र स्त्रियाँ हैं। 'व्यक्ति में भावना, भावुकता, निराशा, दुख, क्रोध आदि भीतरी दृष्टि होती है।'[3] इसी आंतरिक मनोभावों को पहाड़ी की कहानियाँ व्यक्त करती हैं।

भारतीय समाज पुरुष-प्रधान समाज रहा है, जिसमें विवाह के लिए जीवनसाथी के चुनाव में पुरुष की इच्छाओं और आकांक्षाओं को ज्यादा तरजीह दी जाती रही है। शादी से पहले लड़की की चारित्रिक और दैहिक स्वास्थ्य की पड़ताल भी होती है। पहाड़ीजी ने अपनी अधूरा चित्र कहानी में शादी की पारंपरिक ढाँचा को तोड़ा है। इस कहानी का नायक उस लड़की से शादी करता है, जिसे वह पहले से जानता है कि लड़की हिस्ट्रिया और क्षय की रोगी है। नायक अपने घरवालों, रिश्तेदारों और मित्रों की बातों की अवहेलना कर लड़की को अपनाता है। वह कहता है, 'मैं सौंदर्य को वासना की सामग्री नहीं समझता, वह तो कला का पक्ष है और मानसिक तृप्ति के लिए उसका आविर्भाव भी करना पड़ता है।[3] मैं उसे सोहागरात के लिए नहीं लाया था। उसे लाया था अपने हृदय में छिपाने के लिए।'[4] यह कहानी मानवीय संबंधों की सूक्ष्म संवेदना को स्पर्श करती है। कमलिनी का पति बौद्धिक युवाशक्ति का प्रतीक बनकर आता है। तभी वह कहता है कि 'मैं संसार को दिखा देना चाहता था कि विवाह का मूल्य स्वार्थ नहीं, त्याग है।'[5] अधूरा चित्र कहानी उस समय को चुनौती देती है, जब स्त्री की दुनिया घर के आँगन तक सीमित थी। यह कहानी संबंध-भावना के बोध की कहानी है। यह कहानी हिंदी साहित्य की कुछ चुनिंदा प्रेम कहानियों में एक है। यह हिंदी कहानी का वह दौर था, जब रचनात्मक संभावनाओं का क्षेत्र विस्तृत हो रहा था। यथार्थबोध बाह्य परिस्थितियों के साक्ष्य पर नहीं, रचनाकारों के निजी अनुभव के आधार पर सृजित होने लगा था। अधूरा चित्र कहानी के संबंध में लेखक ने प्रेमचंद जी को लिखे गए एक पत्र में कहा है कि 'मेरे तरुण भाई की मृत्यु की छाया उस रचना में है तो उनका तुरंत सहानुभूतिपूर्ण पत्र मिला कि लेखक जब तक पीड़ा का अनुभव नहीं करेगा तो लिखेगा कैसे। यही लेखक की सफलता है कि वह मानवीय अनुभूति को सफलता से आगे लाकर विकसित

 ISSN 0975-735X

करता है।'[6] कहानी में जो समस्या चित्रित की गई है, वह आज भी जिंदा है।

पहाड़ीजी ने अपनी अनेक कहानियों में विवाह और उसकी सार्थकता के सवाल को सूक्ष्मता से चित्रित किया है। यदि रिश्ते सहज और स्वाभाविक रूप से नहीं पनपते तो उसमें कृत्रिमता आ ही जाती है। रिश्तों पर आर्थिक विपन्नता का भी प्रभाव पड़ता है। रज्जो और आखिरी स्कैच कहानी इन्हीं सवालों को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। रज्जो का बचपन एक कुशल परिवार में बीता। शादी के बाद बढ़ती जीवन की जिम्मेदारियों के साथ उसका श्चेहरा कुछ फीकाए शरीर दुबला और बातों में जीवन नहीं। कहीं हँसी नहीं बचपन वाली शेखी नहीं थी। सात साल के छोटे-से अरसे में ही वह तो बड़ी-बूढ़ियों जैसी बन गई थी।'[7] शादी के बाद जीवन में आए एकरसता और अर्थाभाव से उसका जीवनरस सुख चुका है। क्योंकि पुरुष के कार्य प्राय: ऐसे होते हैं, जिनमें विविधता होती है, जो कर्मी के पूरे ध्यान को अपने में खींच सकते हैं और जिनके संपादन में रचना का भी कुछ आनंद होता है।...किंतु इसके विपरीत नारियाँ जो काम करती हैं, उनमें रचना का आनंद नहीं होता, न वे नारियों के मन को खींचकर अपने में लीन कर सकते हैं। बर्तन धोना, रसोई पकाना, बच्चों को स्कूल भेजना और घर की सफाई करना–ये सारे-के-सारे काम ऐसे हैं, जिनमें नवीनता नहीं होती, जिनका संबंध विश्व के गतिशील जीवन से नहीं होता, जो भविष्य से असंबद्ध होते हैं।'[8] यह कहानी जीवन में आई जड़ता से धूमिल होती जीवन-जिज्ञासा को चित्रित करती है। आर्थिक व्यवस्था क्षीण होने से किस तरह पारिवारिक एकता विच्छिन्न होती है, रज्जो कहानी के माध्यम से पहाड़ीजी ने उस बिंदु को भी उभारने का प्रयास किया है। आखिरी स्कैच आधुनिक मनुष्य के द्वंद्वग्रस्त जीवन की कहानी है। इसी विकृति का शिकार कहानी का पात्र रज्जन है, जो अपनी पारिवारिक जिंदगी से असंतुष्ट है। सिर्फ रज्जन ही नहीं, उसकी पत्नी पुष्पा की भी यही हालत है। पुष्पा के जीवन का प्रिय पात्र विनोद है। पुष्पा का जीवन विनोद और रज्जन के बीच बँटा हुआ है। अधूरेपन का शिकार रज्जन और पुष्पा दोनों हैं। परिणाम यह होता है कि अंत में रज्जन आत्महत्या कर लेता है। रज्जन पुष्पा को एकदिन पहले एक चिट देता है, जिसमें लिखा हुआ था, 'तुम मेरी मौत चाहती हो न पुष्पा'[9] रज्जन स्कैच कलाकार है। उसने एक दिन सपने में कुछ स्कैच देखा, जिसका जिक्र विनोद से किया था। जब पुष्पा विनोद को रज्जन की चिट दिखाती है तो वह तब बोलता है कि 'यही उसने आखिरी स्कैच में देखा था।'[10]

यह जिस भावबोध की कहानी है, ऐसी कहानियाँ नई कहानी के दौर में खूब लिखी गईं। नए कहानीकारों में पति-पत्नी और वो को खूब प्रतिष्ठित किया गया। इस भावभूमि का निर्माण प्रेचंदोत्तर पीढ़ी के कुछ कहानीकारों ने किया, जिसमें पहाड़ीजी भी अग्रणी थे। पहाड़ीजी के कहानी-संग्रह बया का घोंसला (1944) की ज्यादातर कहानियाँ इस तरह के संबंधों को रेखांकित करती हैं। इस कहानी में बया का घोंसला एक प्रतीक के रूप में आया है। बया एक पक्षी का नाम है। इन्हें पक्षियों का अभियंता भी कह सकते हैं। वसंत ऋतु में नर बया अपना घर बसाने के लिए सुदूर जंगलों के तरफ उड़ते हैं। घोंसला बन जाने के बाद पेड़ पर बैठकर मादा बया को बुलाते हैं। नर बया की पुकार सुन मादा बया बनाए हुए घोंसलों में से किसी एक को चुन लेती है। एक घोंसला पसंद नहीं आया तो दूसरे में जाती है और कोई पसंद नहीं आता तो फिर वापस उड़ जाती हैं। मादा बया के घोंसले में प्रवेश करते ही नर बया भी प्रेमालाप करने पहुँच जाता है। मादा बया के गर्भिणी होते ही नर बया उड़ जाता है और पुन: दूसरा परिवार बसाने के लिए नया घोंसला

बनाता है। वर्षा ऋतु के तक यह सिलसिला चलता रहता है। इन पक्षियों के दर्शन को आधार बनाकर पहाड़ीजी ने इस कहानी के प्लॉट को तैयार किया है। 'बया का घोंसला' कहानी में दो नारी-चरित्र शीला और निरुपमा हैं, जो पारंपरिक तथाकथित मर्यादा की बेड़ियों को तोड़कर नई जिंदगी बसा लेती हैं। जब शीला से उसका प्रेमी रवींद्र 5 साल बाद मिलता है तो वह कहती है, 'ओ भूचाल आया था एक दिन। तुमने उसका वैज्ञानिक आधार स्वीकार किया था। पाँच साल पुरानी बात हो गई है। वह कल-परसों की नहीं है। एकाएक मन में वह भूचाल उठा था। एक ज्वालामुखी था। उसकी गति तीव्र थी। जब तक मैं सँभलूँ, मैंने पाया कि जीवन को चारों ओर से 'लावा' ने ढक लिया है। किसी अरण्य प्रकाश ने मेरी आँखें धुँधली कर दीं, जब कुछ होश आया तो देखे तुम सुस्त खड़े हो। उस समय मेरे नारी-दर्प पर भारी चोट लगी। तुम एक स्तूप की तरह खड़े थे, जिसके चारों ओर खुली धरती थी।'[11] इसी ज्वालामुखी से शीला के बेटे कैलाश का जन्म होता है। बीच में शीला विधवा हो जाती है। कहानी की दूसरी स्त्री निरुपमा प्रेम-विवाह करती है। लेकिन दो साल बाद वह अपने पति से संबंध जारी नहीं रख पाती है और बाद में वह एक व्यक्ति के साथ लिव-इन-रिलेशनशीप में रहने लगती है। शीला, रवींद्र को बताती है, 'मुझे इस प्रकार एकांत में रहना बुरा लगा। और निरुपमा की चिट्ठी आई थी। अपने एक प्रेमी से उसका बच्चा हुआ था। वह स्कूल की नौकरी से निकाल दी गई। समाज ने उसे क्षमा नहीं किया। वह उसे आज अनाचारिणी कहता है। उनकी दृष्टि में यह एक भारी अपराध है।'[12] यह अपराध है, लेकिन समाज की दृष्टि में न की उस व्यक्ति में, जिसने यह कार्य किया है। दोष हमारे समाज में है न कि उस स्त्री में जो अपने अस्तित्व और कोख के अधिकार के प्रति जागरूक है। दोनों स्त्रियाँ अपने जीवन के बिखरे तिनके को सहेजकर नया घोंसला बनाती हैं और नए जीवन की शुरुआत करती हैं। पहाड़ीजी की इस कहानी में वह दृष्टि है, जिसके प्रकाश में एक सुंदर समाज की दुनिया नजर आती है। यह जीवनदृष्टि इनकी अन्य कहानियों में भी देखने को मिलती है। 'बीज और पौधा' कहानी में सुरेशी के माध्यम से एक पर्वतीय स्त्री के संघर्ष को चित्रित करते हैं, जो बाद में तथाकथित सामाजिक मर्यादाओं को तोड़कर एक नयी जिंदगी आरंभ करती है।

'बया का घोंसला' कहानी-संग्रह में चार और कहानियाँ—पतझड़, धुँधली रेखाएँ, एक चुटकी और जंजाल हैं। इन कहानियों में कहानीकर युगचेतना से लैस है। पतझड़ कहानी उन बिंदुओं को स्पर्श करती है, जहाँ उस समय के कहानीकारों की दृष्टि नहीं गई। यह कहानी बंगाल अकाल और आधुनिक विश्व के इतिहास में कलंक के रूप में दर्ज दो महायुद्धों से संबंधित है। विश्वयुद्धों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित किया। बर्मा पर जापानी सैनिकों का कब्जा था। इस जंग को लेकर कलकत्ता शहर में अनाज की जमाखोरी होने लगी, जिससे ग्रामीण इलाकों में खाद्य सामग्री महँगी होने लगी। तब बंगाल चावल का आयात बर्मा से करता था, जापानी कब्जे में होने की वजह से चावल का आयात बंद हो गया। 1943 के पूरे साल ब्रिटेन और ब्रितानी फौजों को खाद्य-सामग्री भेजा जाना जारी रहा। इस अकाल में अँग्रेजी सत्ता ने बिना हथियार के हत्या की। यह एक मानव-निर्मित त्रासदी थी, जिसमें लाखों लोग मारे गए। छोटा किसान गाँव से शहर, भीख से लंगरखाने, सड़क से श्मशान पहुँच रहा है। मझोले किसान सट्टेबाजों के हाथ घर, खेत, फसल सब बेच डाली, भाव चौगुना हो गया है। वहाँ से मौत हमारे शहरों के भीतर आकर हँसा करती है।'[13] यह कहानी अँग्रेजी सत्ता की क्रूरता और उसकी नीति का भी पर्दाफाश करती है। यह

 ISSN 0975-735X

अकाल अँग्रेजों की नकदी उपज वाली फसलों को बढ़ावा देने के परिणामस्वरूप भी आया। नील की खेती के लिए भारतीय किसानों पर दबाव बनाना और खाद्य-पदार्थों के प्रति नकारात्मक रवैया अपनाना भी अकाल का प्रमुख कारण था। इस अकाल में बंगाल की औरतें आत्मसम्मान खोकर पथ के भिखारी से लेकर कोठे पर देह श्रमिक बनने को भी मजबूर हुईं। नौजवान बेटा नौकरी पर जाता है। वह लौटकर नहीं आता। बूढ़ा अपनी बुढ़िया को निकाल देता है और और पतोहू अपनी सास को। विधवाओं की हालत और भी खराब है। युवती माँ बच्चे का गला घोंटकर वेश्यालय की ओर बढ़ जाती है। माताएँ बेटियों, सास बहुओं को बेच देती हैं।'[14]

कहानी हमें उस बेरंग दुनिया में ले जाती है, जहाँ समाज का आम आदमी भुखमरी, बीमारी और कुपोषण का दंश झेलता हुआ दुनिया से दफा हो जाता था। साहित्यकार उस अंतिम व्यक्ति का वकील होता है, जिसकी आवाज मुख्यधारा के कम लोग सुन पाते हैं। पहाड़ीजी इस कहानी में उस त्रासद स्थिति का चित्रण करते हैं, जहाँ कूड़े के ढेर से इंसान ने जानवरों के साथ छीना-झपटी करके जूठन खाई।'[15]

'पतझड़' कहानी व्यवस्था से संबंधित लोगों के दोहरी जीवन-शैली को भी दर्शाती है। एक समाज वह था, जहाँ निराश्रित स्त्रियाँ देह-श्रम करने को विवश हो रही थीं और एक तरफ तथाकथित संभ्रांत लोगों को होटल के रंगीन जीवन से फुरसत नहीं थी। कहानी की पात्र सरल कहती है, 'होटल की उस चहल-पहल को देखकर मैं दंग रह गई। वहाँ फौजी अफसर थे और ऊँचे मध्यवर्ग की स्त्रियाँ। वहाँ का सारा वातावरण विचित्र लगा। भिखमंगों की दुनिया से केवल पाँच कदम की दूरी पर इंसानों का वाहिश्त था। बाहर लोग मर रहे थे, भीतर व्हिस्की उड़ रही थी। जीवन के इस भारी अंतर ने मुझे डस सा लिया।'[16] यह व्यवस्थापरस्त लोगों की निर्ममता की तस्वीर है। कल-कारखानों में काम करने वाले मेहनतकश लोग जिंदा रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं और समाज का परजीवी वर्ग अपने जीवन को अनेक रंगों ढालकर आनंद ले रहा है। पतझड़ कहानी विपत्ति में उबलते हुए बेबस लोगों का जिंदा दस्तावेज है।

'तूफान के बाद' कहानी में पहाड़ की सामाजिक स्थिति का चित्रण हुआ है। वहाँ की गरीबी से विवश नौजवान सेना में भर्ती होते हैं, जिनके ऊपर घर की पूरी जिम्मेदारी होती है। हरिसिंह का परिवार बहुत निर्धन है। उसकी एक बड़ी बहन है, जो अपने ससुराल में कभी खुशहाल जिंदगी व्यतीत नहीं कर पाती है। अंत में कहीं जाकर मर जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जवान लाम पर भेजे जा रहे थे। हरिसिंह का बड़ा भाई भी सेना में भर्ती हो जाता है। पहले वह गाँव में लोगों के पशुओं को चराता था और माँ गाँव वालों के यहाँ अनाज पीसती थी। छोटी बहन तथाकथित संभ्रांत परिवार में चौका-बर्तन करती थी। ऐसी हालत में हरिसिंह के भाई की नौकरी का लगना खुशी की बात थी। नौकरी में जान को खतरा है, लेकिन गरीबी जान पर भारी पड़ जाती है। 'वह पहले मकान दुमंजिला बनवाना चाहता था। डंगरों के लिए ठीक बाड़ा तक नहीं था। आँगन की दीवाल टूटी थी। मकान का पिछवाड़ा खाली अच्छा नहीं लगता था। उसके भाई का कहना था कि वहाँ बाग लग सकता है।'[17] युद्ध उन गाँव के गरीबों के लिए खुशहाली लाया था। सभी बेरोजगार नौजवान नौकरी पा गए थे। चीजों के दाम महँगे होने के बाद भी लोगों के पास खरीदने के लिए पैसे थे। अंततः हरिसिंह के भाई की मृत्यु हो जाती है। भाई के शहीद होने के बाद हरिसिंह अपनी भाभी से शादी कर लेता है। गृहस्थी का बोझ पड़ने के बाद अर्थाभाव के

कारण जिम्मेदारी का सही ढंग से निर्वाह नहीं कर पाता। अपने परिवार को मारता है और महाजन से उधार लेकर वेश्यागमन करता है। समाज का एक वर्ग ऐसा था, जो महायुद्ध चाहता था। क्योंकि महायुद्ध धनार्जन का प्रमुख साधन बन गया था। महाजन का साला शराब के नशे में कहता है 'सुना अब फिर लड़ाई शुरू होनेवाली है। उसका जीजा इसलिए तीन-चार नई दुकानें बनवाने की सोच रहा है।'[18] सुविधासंपन्न वर्ग को कोई फर्क नहीं पड़ता कि महायुद्ध से देश की आम जनता के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए चिंतित रहता है। 'भाभी इस युद्ध से घृणा करती है। लड़ाई के जमाने की आमदनी में कोई बरकत नहीं हुई। यह महाजन ही ऐसा है जो घर बैठे फला-फूला।'[19] इस कहानी में युद्ध के सभी दुष्परिणामों को दिखाया गया है। युद्ध से बिना नुकसान के फायदा महाजन को हुआ है। आमजन ने सिर्फ प्राणों की आहुति दी। उसे युद्ध कुछ देता नहीं बल्कि छीनता है। यही कारण है हरिसिंह की भाभी समेत पूरा परिवार युद्ध का विरोध करता है।

इसी पृष्ठभूमि की कहानी 'कुछ पुरानी सी बात' भी है, जिसमें औपनिवेशिक गुलामी और सामंती व्यवस्था की क्रूर दास्तान को प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में फौजी युद्ध से वापस लौटे हुए हैं और अँग्रेजी हुकूमत से नफरत करते हैं। कहानी का पात्र 'मैं' इन परिस्थितियों का सर्वेक्षण करता है कि युद्ध में आम जनता मारी गई। लेकिन युद्ध से कुछ खास लोगों को ही फायदा भी हुआ। नवीन इन्हीं दोहरे चरित्र वाले व्यक्तियों की व्यवस्था को बदलने की लड़ाई लड़ता है। नवीन का मानना है कि जब तक सामंती मूल्यों का उन्मूलन नहीं होगा, तब तक गरीबी और शोषण से मुक्ति नहीं मिलेगी। वह कहता है कि हमें सर्वप्रथम सामाजिक व्यवस्था बदलने के लिए लड़ना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हम ऐसे ही विदेशी भूमि पर अपनी जान गँवाते रहेंगे। 'इतिहास' कहानी में गरीब शोषित-मजदूर कुपोषित आम जनता की लाचारी को दर्शाया गया है। अँग्रेजी हुकूमत के समय देसी सामंत अँग्रेजी शासन-व्यवस्था से मिले हुए थे। अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए किसानों पर बेवजह कुर्की और कर लगाते थे। किसान युवा आर्थिक विवशता के कारण फौज में भर्ती हो जाता था। एक समय ऐसा आया कि गाँवों में सिर्फ बूढ़े, विधवा और बच्चे ही बचे थे। 'उनका राजा अँग्रेजों का गुलाम था और वे राजा के दस। राजा ने अपने मालिक को खुश करने के लिए भरती की और हजारों नौजवानों को गाजर-मूली की भाँति कटवा दिया। वह राजा घर बैठे-बैठे ओहदे पा गया।'[20] उस महायुद्ध में ज्यादातर पहाड़ी साधारण परिवारों ने अपने सगे-संबंधियों को खोया। स्थिति यह हुई कि अनाथ माताएँ, युवती विधवाएँ, लगता कि गाँवों में प्रौढ़ता आ गई और वे बूढ़े हो रहे हैं। कहीं युवकों के चेहरे देखने को नहीं मिलते थे। एक बेकली और बेचैनी चारों ओर फैल गई। तीन-चार साल तक कहीं उत्सव नहीं मनाया गया।'[21] पहाड़ीजी एक चेतनासंपन्न युगशिल्पी थे, जो आम आदमी की नारकीय जिंदगी को बेहतर बनाने के संकल्प से उनकी मजबूत आवाज बनकर साहित्य में उपस्थित हुए। उन्होंने सत्ता और सुविधासंपन्न वर्ग के विलासी एकाधिकार पर सवाल उठाया। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आलोक में सामाजिक समस्याओं को अपनी लेखनी का विषय बनाया। चूँकि पहाड़ीजी अपने समय के क्रियाशील सामाजिक कार्यक्रताओं में से एक थे। युद्ध-विरोधी संवेदना के सृजन में हिंदी कहानी साहित्य में रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' के बराबर दूसरा साहित्यकार कोई नहीं है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि पहाड़ीजी युद्ध-विरोधी संवेदना के कहानीकार हैं। इनका पूरा लेखन मानवता की पक्षधरता का लेखन है।

संदर्भ

1. सं॰ कमलकिशोर गोयनका, प्रेमचंद : कुछ संस्मरण, सरस्वती विहार प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1980, पृ॰ 125
2. रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, अधूरा चित्र, प्रकाशगृह, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद, संस्करण 1961, पृ॰ 09
3. वही, पृ॰ 07
4. वही, पृ॰ 201
5. वही, पृ॰ 204
6. सं॰ कमलकिशोर गोयनका, प्रेमचंद कुछ संस्मरण, सरस्वती विहार प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1980, पृ॰ 125
7. रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, अधूरा चित्र, पृ॰ 22
8. रामधारीसिंह दिनकर, विवाह की मुसीबतें, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2019, पृ॰ 16
9. रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, अधूरा चित्र, पृ॰ 43
10. वही, पृ॰ 43
11. रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, बया का घोंसला, प्रकाशगृह, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद, संस्करण 1963, पृ॰ 186
12. वही, पृ॰ 212
13. वही, पृ॰ 17
14. वही, पृ॰ 23
15. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, अनु॰ भगवतीप्रसाद चंदोला, बंगाल का अकाल, संचयिनी प्रकाशन, कलकत्ता, संस्करण 1944, पृ॰ 04
16. रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, बया का घोंसला, पृ॰ 67
17. रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, तूफान के बाद, प्रकाशगृह, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद, संस्करण 1969, पृ॰ 14
18. वही, पृ॰ 18
19. वही, पृ॰ 19
20. वही, पृ॰ 62
21. वही, पृ॰ 62

108, **सतलज छात्रावास**
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067
मो॰ 9650967595
rbrosan4u@gmail.com

वर्तमान भारतीय शिक्षा के परिपेक्ष्य में जयप्रकाश नारायण के शैक्षिक विचारों की उपादेयता

डॉ॰ हरेन्द्र कुमार
बी॰एड्॰ विभाग,
दिगंबर जैन कॉलिज, बड़ौत

हमारे दर्शन में और विचारधाराओं में भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न दार्शनिकता की लहरें उत्पन्न होती रही हैं और सही लहरें प्रवाहोत्पादक रही हैं, जिससे उन्होंने सारे राष्ट्र की चिंतनधारा ही बदल दी है। जहाँ दीर्घकाल तक देश की अमृतवाणी ने जन-जन के हृदय को संवेदित किया तो वहीं महात्मा गौतमबुद्ध, भगवान महावीर आदि जैसे मनीषियों के चिंतन ने भी हमारे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व प्रशासनिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों को स्पर्श किया है और एक नई प्राणवायु का राष्ट्रजीवन में संचार किया है।

शिक्षा के अर्थ में व्यापक परिवर्तन होने के कारण आज मात्र पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करना या थोड़ा सा ज्ञान अर्जन करना ही शिक्षा नहीं रह गया है, वरन शिक्षा को जीवंत निरंतर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। आधुनिक शिक्षा की व्यवस्था किस प्रकार की गई है तथा किस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन होते रहें हैं आदि विषयों पर शिक्षा-दर्शन में विचार किया जाता है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली युवकों को स्वावलंबी न बनाकर परमुखापेक्षी बनाती है। आजकल के उपाधिधारक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी अपने को समाज में अयोग्य एवं जीवन में निष्क्रय पाते हैं। जिसका कारण हमारी शिक्षा में उद्योग-धंधों और दस्तकारी तथा व्यवसायिक शिक्षा का अभाव है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में अँग्रेजी माध्यम को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। अँग्रेजी को अनावश्यक रूप से महत्त्व दिए जाने के कारण छात्र अन्य विषयों में पिछड़ जाता है। विदेशी भाषा का ज्ञान भाषा की तुलना में अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हो रहा है। फलतः विद्यार्थी अँग्रेजी भाषा भी प्रभावी ढंग से नहीं बोल पाते तथा अन्य विषयों में भी पूर्ण विशेज्ञता प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली इसलिए भी दोषपूर्ण है कि यह केवल उदरपूर्ति का साधन-मात्र है। इसके द्वारा छात्रों में राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-भावना जाग्रत नहीं होती और उनमें विश्वबंधुत्व एवं नागरिकता के भाव का विकास नहीं हो पाता है।[1]

जयप्रकाश नारायण एक विवेकशील, गतिशील, चिंतनशील एवं गहन सामाजिक संरचना में पदार्पण करने वाले दार्शनिक एवं भारतीय विचाराधाराओं से प्रभावित व्यक्ति थे। इन विचारधाराओं ने जयप्रकाशनारयण को विलक्षणता प्रदान की है, जो उनके जीवन के सभी पक्षों यथा सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक आदि में परिलक्षित होती है। जयप्रकाश नारायण मौलिक रूप से मानवतावादी चिंतक थे। मनुष्य की भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं को

 ISSN 0975-735X

स्वीकार करते थे। उन्होंने माना कि मनुष्य का शरीर एवं आत्मा दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार नैतिक रूप से व्यक्ति स्वयं अपने विचार एवं कार्यों की सीमाओं को अंकित करे तथा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे। नैतिक रूप से व्यक्ति का अपने दायित्व के प्रति पूर्ण लगाव होना चाहिए और उन्हें पूरा भी करना चाहिए। अधिकार एवं कर्तव्य में सामंजस्य हुए बिना समाज की प्रगति संभव नहीं है। जयप्रकाश नारायण की समाजवादी व्यवस्था में अतीत के मूल्यों का सममिश्रण है।

भारत एक विकासशील देश है, जिसमें असंतोष, अनुशासनहीनता, शिक्षित बेराजेगारी, शिक्षा में व्यावसायीकरण, तकनीकि शिक्षा का अभाव आदि अनेक समस्याएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। आज छात्र उच्चशिक्षा प्राप्त करने के बाद भी कुंठा, तनाव से युक्त होकर समाज के नैतिक मूल्यों का ध्वंस करने में लगा है। वातावरण दूषित करने के अनेक कारण हैं। शिक्षा के उद्देश्य अस्पष्ट हैं, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का अभाव है। शिक्षकों के प्रति आदरभाव नहीं है तथा ज्ञान के प्रति रुचि नहीं है, स्वछंदता तथा अनुशासनहीनता का साम्राज्य है, अत: जयप्रकाश नारायण जैसे विचारकों का शिक्षा-दर्शन ही समाज को एवं शिक्षा-प्रणाली को नई संजीवनी दे सकता है।

जयप्रकाश नारायण एक विचारक के रूप में जाने जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उनके विचार संगत रूप से प्रगतिशील थे, विचारक के रूप में उन्होंने ऐसे अनेक प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित किया था, जो आज के दिन मानव-जाति की चिंता का विषय बने हुए हैं। जयप्रकाश नारायण ने मानव-जीवन की उन्नति को उचित दिशा देने के लिए भौतिक और आध्यात्मिक विकास के समन्वित रूप को स्वीकार करने पर जोर दिया है। जयप्रकाश नारायण के शैक्षिक दर्शन में निम्न महत्त्वपूर्ण संदेश नीति-निर्धारक के रूप में पाए जाते हैं–

1. शिक्षा रोजगारोन्मुख हो, शिक्षा का पाठ्यक्रम उपयोगी और स्थानीय आवश्यकतओं के अनुरूप होना चाहिए।[2]

2. शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक एवं मानसिक व आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ बालक का सांस्कृतिक विकास करना भी हो।[3]

3. उन्होंने व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में लिखा है कि 'विद्यार्थियों को अतिरिक्त प्रशिक्षण लेना चाहिए तभी वे एक अच्छे किसान, अच्छे दुकानदार व अच्छे शिल्पकार बन सकते हैं।'

4. केवल भरण-पोषण का साधन-मात्र न होकर शिक्षा का लक्ष्य सत्यं, शिवं, सुंदरम् की कल्पना को पूर्ण कराना होना चाहिए।

5. राष्ट्रवाद के लिए शिक्षा द्वारा पृथकवाद की भावना को समाप्त कराना होगा।

6. पाठ्यक्रम में 'विशेष रूप से प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर प्राकृतिक विज्ञानों, मानव-विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों के पाठ्यक्रम में सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए।[4]

7. उन्होंने सकारात्मक शिक्षक पद्धति एवं सकारात्मक बाल पद्धति शिक्षण की नई अवधारणा शिक्षा जगत में प्रस्तुत की है।[5]

8. शिक्षक को अपने शिष्यों की अदमनीय शारीरिक योग्यताओं को पहचानने में समर्थ होना चाहिए तभी वह उसे समाजिक रूप से कुशल बना सकता है।

9. शिष्य को अपने गुरु के प्रति पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध होना चाहिए।

10. हमें आत्मानुशासन अपनाना चाहिए।[6]

11. आर्थिक विकास का केन्द्र मनुष्य होना चाहिए।

12. शिक्षा को लक्ष्य से जोड़ने का संकेत देते हुए उन्होंने कहा, 'शिक्षा की परिसमाप्ति डिग्री या उपाधि में इतनी नहीं, जितनी दायित्व-बोध में होनी चाहिए।'[7]

जे॰पी॰ की संपूर्ण क्रांति चिंतन के ठोस धरातल पर समय की माँग को पहचानकर चलाई गई क्रांति है और यह क्रांति सतत चलने वाली है। उनकी क्रांति किसी एक विषय को लेकर नहीं बल्कि एक समग्र क्रांति है। व्यक्ति के अर्थों से लेकर भावों तक, जन से लेकर शासन तक, समाज से लेकर संस्कृति तक जो हो सकता है की प्रत्यक्ष रूप में हमें उनकी कोई बड़ी उपलब्धि देखने को न मिली हो, पर युवा को, समाज को उनकी आवश्यकता है, यह महसूस कराना ही उनके शैक्षिक दर्शन की बड़ी उपलब्धि है।

जयप्रकाश नारायण के समस्त शैक्षिक विचारों पर चिंतन करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान परिपेक्ष्य में उनके शिक्षा-संबंधी सुझाव वर्तमान भारतीय दिशाविहीनता के लिए एक नई दिशा और आधार प्रदान कर सकते हैं। यदि जे॰पी॰ के शैक्षिक दर्शन को आज की निरुदेश्य शिक्षा का आधार बनाया जाए तो उसे व्यावहारिक बनाने में पुनर्जीवन मिल सकता है। आज रोजगारपरक शिक्षा को शिक्षा के उद्देश्य से जोड़ने के लिए उनके दर्शन की महती आवश्यकता है। मानव में उच्च नैतिक मूल्यों, श्रेष्ठ चारित्रिक भावना और गतिशील एवं तकनीकि सोच के विकास के लिए उनके शैक्षिक दृष्टिकोण को अपनाया जाना आवश्यक है। जयप्रकाश नारायण का दर्शन, उनके शैक्षिक विचार भारत में आज की परिस्थितियों में ज्यादा प्रासंगिक हो गए हैं। आज आवश्यकता उनके विचारों को गंभीर प्रयासों द्वारा शैक्षिक प्रणाली में अमल में लाए जाने की है। तभी वर्तमान परिपेक्ष्य में भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति संभव है।

संदर्भ

1. दादा धर्माधिकारी, संपूर्ण क्रांति के आयाम।
2. जयप्रकाश नारायण, मेरी जेल डायरी।
3. डॉ॰ ईश्वरप्रसाद : युगद्रष्टा जयप्रकाश नारायण, पृ॰ 51
4. फारुख अली : जे॰पी॰ जयप्रकाश, पृ॰ 97
5. जयप्रकाश नारायण, समय की ललकार, पृ॰ 110
6. एलन एवं वेडीस्कोर्फ, जयप्रकाश : एक जीवनी, पृ॰ 150
7. निर्मल शुक्ल, लोकनायक, पृ॰ 78
8. जयप्रकाश नारायण, छात्रों के बीच
9. जयप्रकाश नारायण, आज से आगे

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और हिंदी कविता

कुँवर डॉ० महाराणा प्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही'
अध्यक्ष, शोध एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
डॉ० राममनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय
ऑवला (बरेली) उ०प्र०

वस्तुतः प्रत्येक युग का साहित्य अपने समय और समाज की प्राणवान छवियों का दिग्दर्शक एवं व्याख्याता होता है। इसी अर्थ में उसे 'समाज का दर्पण' कहा जाता है। शासन-सत्ता के प्रभाव से उपजे चकाचौंध के कारण इतिहास जिनकी तरफ से पीठ फेर लेता है, साहित्य सर्वदा उन्हीं की पक्षधरता में खड़ा रहने को अपना 'दाय' एवं 'दायित्व' समझता है। इसीलिए शासन-सत्ता का प्रतिपक्षी होने पर भी साहित्य को इतिहास के मुकाबले अधिक भरोसेमंद समझा जाता है। जहाँ तक भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन का प्रश्न है, हिंदी कविता ने उसे चिंगारी से मशाल बनाने में अहम भूमिका निभाई है। वह उसके हर पल की साक्षी है। मुझे यह कहने में कोई गुरेज नहीं कि स्वतंत्रता-आंदोलन की सहचरी रही हिंदी कविता इतिहास की तुलना में उसे बेहतर ढंग से समझती, बूझती और कहती है।

1857 तक भारतवर्ष पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की गिरफ्त में आ चुका था और अँग्रेज व्यापारी भारतवर्ष के स्वामी बन गए थे। यह ठीक है कि 1857 में भारतीय जनता के आक्रोश से उपजे भारी विरोध और विप्लव के बावजूद, उसका प्रयास सफल नहीं हो सका। फिर भी उसकी इस पहल ने बिखरे हुए भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधने का गुरुतर कार्य अवश्य किया और इसी के प्रभाव में भारतीय कवियों, लेखकों और पत्रकारों ने अँग्रेजीराज के शोषण और दमन के विरोध में लिखना आरंभ किया। भारतवर्ष की अधिकांश प्रांतीय भाषाओं में इस समय लिखे गए साहित्य पर दृक्पात करने पर विदित होता है कि स्वातंत्र्य-चेतना के इस भाव का अंकुरण एवं विस्तार कमोवेश भारतवर्ष में बोली जाने वाली सभी भाषाओं में रूपायित होता दिखाई देता है। गुजराती में नर्मद और दौलतराम, मराठी में चिपलुणकर, बंगला में बंकिमचंद और हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद की रचनाओं में अँग्रेजी सत्ता के विरोध के साथ-साथ स्वातंत्र्य-चेतना की सुगबुगाहट मिलने के पीछे की यही वजह है। प्रकारांतर से कहें तो यही भारतीयता का वह चटक और गाढ़ा रंग है, जो सभी संकीर्णताओं पर हमेशा भारी पड़ता रहा है। वास्तव में यही 'इंकलाब' है, यही 'वंदे मातरम्' है और सरफरोशी की तमन्ना भी इसी में साँस ले रही है। वस्तुतः हम कुछ भी हों, हम कोई भी हों, हम सबसे पहले भारतीय हैं, सिर्फ और सिर्फ भारतीय हैं।

भारतेंदु और उनके युग के रचनाकारों ने अँग्रेजों की दमनमूलक नीति का विरोध करते हुए देश की तत्कालीन दुर्दशा और हीनावस्था के अनेक चित्र उकेरते हुए अपना क्षोभ व्यक्त किया है, भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' में लिखा है–

रोबहु सब मिलि के, आवहु भारत भाई,
हा हा! भारत दुर्दशा, न देखी जाई।[1]

किसी भी औपनिवेशक देश के लिए स्वत्व-प्राप्ति में 'स्वदेशी का अपना महत्त्व है, जिसका संबंध देश की आर्थिक स्थिति की मजबूती एवं विदेशियों के शोषण से है। भारतेंदु और उनके युग के लेखकों ने स्वदेशी को केंद्र में रखकर प्रचुर मात्रा में रचनाएँ लिखी हैं। इसी की वानगी के तौर पर कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

अँग्रेजी राज सुख साज सजै सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।[2]

द्विवेदीयुग के कवियों की रचनाओं में सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बात अँग्रेजी राज और उसके अत्याचारों के विरोध के रूप में मिलती है। इसी वैचारिक भूमि का आश्रय लेकर द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा–

हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।[3]

गुप्तजी ने अपनी कृति 'भारत भारती' में अँग्रेजी सत्ता के दमनकारी स्वरूप का अंकन बहुत ही शामक और सधे अंदाज में किया है। किसानों की दयनीय स्थिति और व्यापार की गिरावट का अंकन करते हुए वे प्रत्यक्षत: यह नहीं कहते कि इस स्थिति के लिए अँग्रेज जिम्मेदार हैं। फिर भी वे एक प्रश्न अवश्य खड़ा करते हैं कि देश और देशवासियों को इस दयनीय स्थिति में पहुँचाने के लिए कौन उत्तरदायी है? और उसका एक ही उत्तर है–'अँग्रेज और अँग्रेजी राज।' संकेतों ही संकेतों में 'समझदारों को इशारा काफी' वाले लहजे में आगे फिर कहते हैं–

बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा-सा जल रहा,
है चल रहा सन-सन पवन, तन से पसीना ढल रहा,
देखो, कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस आँच में, वे निज शरीर जला रहे।[4]

आगे चलकर, राष्ट्रीय धारा के अंतर्गत कवि माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवियों ने राष्ट्रप्रेम की कविताएँ लिखीं। माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा देशभक्ति से ओतप्रोत कविताएँ बहुतायत में लिखने के कारण ही उन्हें 'भारतीय आत्मा' कहा गया। 'एक फूल की चाह' और 'कैदी कोकिला' इत्यादि उनकी ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें आत्मबलिदान की आकुलता की अभिव्यक्ति उत्तेजक रूप में हुई है। चतुर्वेदीजी की प्रतिनिधि कविता 'एक फूल की चाह' की उन कुछ पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ, जिन्होंने न जाने कितने लोगों को देश पर-मर मिटने के लिए प्रेरित किया–

चाह नहीं मैं सुरबाला के, गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं प्रेमी-माला में, बिंध प्यारी को ललचाऊँ
चाह नहीं देवों के सिर पर, हे हरि मैं डाला जाऊँ।[5]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ओज और क्रांति के कवि हैं। अपनी ओजस्वनी वाणी के माध्यम से उन्होंने भी राष्ट्रप्रेम की भावना के रंग को गाढ़ा बनाने का कार्य किया। दिनकर जी की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

ओ मगध कहाँ मेरे अशोक, वह चंद्रगुप्त बलधाम कहाँ
बन-बन स्वतंत्रता दीप लिए फिरने बाला बलवान कहाँ।[6]

वहीं, आम जनमानस की पीड़ा को केंद्र में रखकर दिनकर जी ने लिखा–

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक-ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं,
नारी के लज्जा बसन बेच, जब कर्ज चुकाए जाते हैं,
मालिक तब तेल फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।[7]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भी क्रांति, विद्रोह और स्वातंत्र्य-चेतना के कवि हैं। उनकी कविता में आग और तूफान मौजूद है। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए, जीने के लाले पड़ जाएँ।'[8] नवीनजी की ये पंक्तियाँ स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा नहीं, तो क्या हैं!

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और निराला ने 'जागो फिर एक बार' तथा 'राम की शक्ति पूजा' जैसी कविताएँ लिखकर भारतीय जनमानस को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास किया। लेकिन कुल मिलाकर छायावादी कवियों ने प्रेम और प्रकृति के माध्यम से ही भारतीय जनता की मुक्ति-कामना की। 'प्रथम रश्मि' सुमित्रानंदन पंत की प्रतिनिधि कविता है, जिसका प्रकाशन सन् 1919 में हुआ। निजता से थोड़ा हटकर व्यापक संदर्भ में देखें, तो पूरी कविता में 'अंधकार और प्रकाश' का एक द्वंद्व मिलता है। 'निराकार तुम मानो सहसा, ज्योतिपुंज में हो साकार।' निराशा में आशा की यह कामना कहीं न कहीं स्वातंत्र्य-चेतना की भावना से अनुप्राणित है। महादेवी वर्मा के गीतों में अभिव्यक्त वेदना, पीड़ा और अवसाद के पीछे उनकी निजी पीड़ा के साथ-साथ परतंत्रता में जीने से उपजा आम जनमानस का विषाद ही है, जिसे उन्होंने काव्य के बाने में प्रस्तुत किया है। वे बार-बार जिस प्रेमी की बात करती हैं, वह और कोई नहीं एक मायने में हो न हो, आजादी पाने की कामना ही है। वे लिखती हैं–

जो तुम आ जाते एक बार,
कितनी करुणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते बार-बार
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग भरा उन्माद राग आँसू लेते वे पथ पखार
जो तुम आ जाते एक बार।[9]

आधुनिक काल में अन्य जिन हिंदी कवियों ने अपनी कविताओं से जनता को जागरण की दस्तक देकर, देशभक्ति के आवेग और उल्लास में सराबोर किया, उनमें एक महत्त्वपूर्ण नाम सुभद्राकुमारी चौहान का भी है। सुभद्राजी का परिवार ऐसे दुर्लभ परिवारों में से एक था, जिसमें से हर किसी ने स्वतंत्रता-संग्राम में किसी न किसी रूप में हिस्सेदारी की। स्वतंत्रता-संग्राम में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के कारण उस समय महिलाओं को अपने घर-परिवार में जिन स्थितियों का सामना करना पड़ा, उन्हें प्रस्तुत करती हुई सुभद्रा जी लिखती हैं–

बहुत दिनों तक हुई प्रतीक्षा, अब रूठा व्यवहार न हो,
अजी, बोल तो लिया करो तुम चाहे मुझ पर प्यार न हो,
जरा-जरा सी बातों पर, मत रूठो मेरे अभिमानी!
लो प्रसन्न हो जाओ, गलती मैंने अपनी ही मानी!
मैं भूलों की भरी पिटारी, और दया के तुम आगार,

सदा दिखाई दो तुम हँसते चाहे मुझसे करो न प्यार।[10]

इसके अतिरिक्त सोहनलाल द्विवेदी, गोपालसिंह 'नेपाली', नाथूराम शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि ऐसे कवि हैं, जिन्होंने देशप्रेम की अलख जगाने वाली कविताएँ लिखीं।

इसके साथ ही, इस समय अँग्रेजों के दमनचक्र को उजागर करने वाली अनेक ऐसी कविताएँ लिखी गईं, जिनमें किसी प्रकार के छद्म से दूर अँग्रेजी सरकार की धूर्तताओं, उनकी लूट-खसोट, भारतीय किसान की दुर्दशा, गरीब-मजदूरों की दयनीयता और भारतीय क्रांतिकारियों के त्याग और वीरता को बेलाग भाषा में प्रस्तुत किया गया है। ऐसी रचनाओं में लोकसंस्कृति लोकभाषा, लोकजीवन, लोकशैली के अनूठे और अछूते रंग और प्रयोग दिखाई देते हैं। इन कविताओं को अँग्रेजी सत्ता ने अपना खुला विरोध माना और उन्हें तत्काल प्रतिबंधित कर दिया। इनमें सुभद्राजी की कविता 'झांसी की रानी' भी एक है।

'दरअसल, ये कविताएँ स्वाधीनता-आंदोलन के विभिन्न नेताओं एवं क्रांतिकारी अमर शहीदों के शौर्य एवं उत्सर्ग, समय-समय पर चलने वाले आंदोलनों की गतिविधियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं, भारतीय जनता के अनथक संघर्षशील प्रयासों, अँग्रेजीराज के शोषण-उत्पीड़न, लूट-खसोट, विदेशी साम्राज्यवाद और देशी सामंतवाद की दुरभिसंधियों में पिसती-कराहती संघर्षशील भारतीय जनता की दर्द-भरी दास्तान है।'[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी कविता में स्वतंत्रता-संग्राम के समग्र रूप-स्वरूप की एक सर्वांगपूर्ण झाँकी दिखाई देती है। आज जिन संदर्भों में हम जी रहे हैं, इस बात की महती आवश्यकता है कि अँग्रेजीराज के उन्मूलन और स्वाधीनता-संग्राम को गतिमान बनाने में हिंदी कविता के योगदान एवं भूमिका का रेखांकन किया जाए, ताकि आधुनिक युवापीढ़ी राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़े संदर्भों से रूबरू हो सके, विशेषकर आज के 'नो कन्शर्न' के युग में।

संदर्भ

1. नवजागरण का संबंध और भारतेंदु की कविता, पृ॰ 18, विकल्प, जनवरी 2000
2. वही, पृ॰ 25
3. अब्दुल कादिर, राष्ट्र के चारण कवि मैथिलीशरण गुप्त, पृ॰ 81
4. भारत भारती, भूमिका से उद्धृत
5. आधुनिक हिंदी के कवि (सं॰ भूषण बिहारी) पृ॰ 213
6. वही, पृ॰ 233
7. वही, पृ॰ 238
8. वर्तमान साहित्य, सयुंक्तांक मई-जून, 2000, पृ॰ 69
9. महादेवी वर्मा : संधिनी, पृ॰ 48
10. वर्तमान साहित्य, सयुंक्तांक, मई-जून, 2000 पृ॰ 460
11. वही, पृ॰ 274

मो॰ 9411219095

dr.mhaaranapratapsingh@gmail.com

सेवासदन उपन्यास के सौ वर्ष : प्रमुख स्त्री पात्र

ममता कुमारी
अतिथि व्याख्याता, हिंदी विभाग
मुरारका महाविद्यालय, सुलतानगंज (भागलपुर)
(तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर)

'पश्चात्ताप के कड़वे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं।'[1] जिस उपन्यास का आरंभ ही इस विश्वव्यापी सत्य और ऐसे सटीक वाक्य से हो, उसका अंत और उसकी कथावस्तु तो निश्चय ही अत्यंत रोचक होंगे। यह सर्वविदित है कि उपर्युक्त विश्वव्यापी सत्य प्रेमचंद जी द्वारा रचित सामाजिक उपन्यासों में अग्रगण्य 'सेवासदन' की आरंभिक पंक्ति है। उर्दू में रचित 'बाजरे-हुस्न' और पहले हिंदी में प्रकाशित 'सेवासदन' औपन्यासिक दुनिया का बेहतरीन उपन्यास है। 'सेवासदन' (1981) को प्रेमचंद्र ने स्वयं हिंदी का बेहतरीन नोवेल कहा है।'[2] सन 1918 में प्रकाशित 'सेवासदन' के 100 वर्ष पूरे होने पर भी उसकी महत्ता और रोचकता ने पाठकों के अंत:स्थल में श्रद्धा के दीप को जलाए रखा है। अगर हम कहें कि सेवासदन ने इस लंबी कालवधि में पाठकों की रोचकता में अबाध गति से श्रीवृद्धि की है तो कदाचित अतिशयोक्ति नहीं होगी। कारण है कि उपन्यास का विषय, उसकी समस्याएँ तत्कालीन परिदृश्यों को भी स्वयं में समेटे हुए हैं और समकालीन दृश्यों की झाँकी स्वयमेव दृष्टिगोचर हो जाती है। कहना गलत नहीं होगा कि सच्चा साहित्यकार समाज का नवोन्मेषक होता है। समाज में, देश में घट रही घटनाओं को वह अपनी रचना में स्थान देता है और इस क्रम में अतीत का स्मरण कर, वर्तमान का मूल्यांकन करते हुए भविष्य की मांगलिकता का आग्रही होता है और इस बिंदु पर प्रेमचंद शीर्ष आसन पर आसीन हैं। 'सेवासदन उपन्यास कला और समस्या की पकड़ तथा चित्रण दोनों दृश्यों से पहला परिपक्व उपन्यास है।'[3] अब जहाँ तक उपन्यास की कथावस्तु या उसकी मुख्य समस्या का प्रश्न उठता है तो इस बिंदु पर विद्वत्जनों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का मानना है कि उपन्यास की मुख्य समस्या अर्थ है, क्योंकि अगर धन की समस्या नहीं होती तो सुमन को वेश्या न बनना पड़ता; कुछ का मानना है दहेज-प्रथा। धन और दहेज के अतिरिक्त जिस बिंदु पर सर्वाधिक मत के दर्शन होते है वह है वेश्या जीवन। ऐसी भी बात सामने आती है, 'सेवासदन में उनका ध्यान मुख्यत: विवाह से जुड़ी समस्याओं, तिलक दहेज की प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, विवाह के बाद घर में पत्नी का स्थान और समाज में वेश्या की स्थिति पर रहा।'[4] परंतु अगर हम उपन्यास की गहराई में उतरने का प्रयास करें तो जो समस्या उभरकर सामने आती है, वह है नारी-समस्या। 'सेवासदन में वेश्या जीवन को एक सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। वेश्या जीवन पुरुष के लिए एक लुभावनी चीज रहा है, परंतु यथार्थवादी कलाकार ने इस लुभावनी चीज के नीचे छिपी नारी-जीवन की गहनतम प्रताड़ना, अवमानना को उद्घाटित कर उन मूल कारणों पर प्रकाश डाला है, जो हमारे मध्यवर्गीय स्त्री-समाज को वेश्या बनने के लिए विवश कर देते हैं और लेखक ने हमारे पुरुष समाज के रंग-बिरंगी नकाब पहने हुए तमाम धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक पुण्य पुरुषों को भरी सड़क पर

नंगा कर दिया और उन सामाजिक कुरीतियों पर तेज रोशनी डाली, जो हमें ऊपर से शरीफ और नीचे से जानवर बनाए हुए हैं।'[5] सत्य यही है कि सेवासदन का मुख्य विषय वेश्या-जीवन है ही नहीं, नारीविषयक समस्या मूल विषय है। इस बात का प्रमाण डॉ॰ रामविलास शर्मा ने डंके की चोट पर कहा है, 'वास्तव में वेश्या-जीवन उसका मुख्य विषय है भी नहीं; सुमन कथा पर छाई हुई है, इसलिए ऐसा आभास हो सकता है कि उपन्यास वेश्या-जीवन पर है। लेकिन इस बात की जाँच की जाए तो कि कितने सफों में वेश्या-जीवन की चर्चा है तो पता चलेगा कि एक तिहाई से ज्यादा भाग यह चर्चा नहीं घेरती। सेवासदन की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है।'[6]

नारीविषयक समस्या किस-किस रूप में उभरकर सामने आ रही है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देती हैं उपन्यास में चित्रित स्त्री-पात्र। उपन्यास की नायिका सुमन, जो संपूर्ण कथावस्तु का केंद्र बनी रहती है, अपने व्यक्तित्व और जीवन के संघर्ष से उपर्युक्त बिंदुओं को स्पष्ट करती है। इसके अतिरिक्त सुमन की बहन शांता का सुशील व्यवहार, गंगाजली का पत्नीधर्म, भामा का मातृत्व, सुभद्रा का परिवार के प्रति निष्ठा का भाव, जाह्नवी तथा भोलीबाई की मानवीय तथा चारित्रिक विशेषता कथा की रोचकता को बनाए रखते हैं।

उपन्यास की नायिका सुमन के पिता दरोगा कृष्णचंद्र एक ऐसा ईमानदार दरोगा है, जिसे समाज के दहेजप्रेमी दानव ईमानदार नहीं रहने देते। फल यह होता है कि उसकी एक भूल की सजा पूरा परिवार भुगतता है। अपनी पुत्रियों के सुखी-संपन्न दांपत्य जीवन के सुनहरे सपनों की ख्वाहिशें उसे सलाखों के पीछे डाल देती हैं। उसकी पत्नी गंगाजली, जिसने अपने समस्त दायित्वों का निर्वहन पूरी श्रद्धा व निष्ठा से किया, समय के तमाचे उसे मायके में कठोर बातों व असम्मान की आँच पर सेंकी गई रोटियों को गले से नीचे उतारने को मजबूर कर देते हैं। वह चाहती थी कि बेटियों का विवाह छुटपन में हो जाय, परंतु पिता के ऐसा नहीं चाहने पर वह पति की बातों का खंडन नहीं करती, लेकिन एक भारतीय पतिपरायणा का परिचय उस वक्त देती है, जब कृष्णचंद्र को पुलिस पकड़ने आती है, वह भूल जाती है कि वह एक माँ भी है। उसे याद है तो सिर्फ उसका पति, उसका सर्वस्व, तभी तो वह कहती है, 'मेरी लड़की बिना व्याही रहेगी। हाय ईश्वर! मेरी मति क्यों मारी गई? मैं साहब के पास चलती हूँ। आज लाज-शरम कैसी?'[7]

इतना ही नहीं कृष्णचंद्र के मना करने पर भी वह अधिक से अधिक पैसे मुकदमे में लगा देती है, परंतु यह प्रयास निष्फल होता है और परिणाम भी बुरा। परिणाम बुरा इस रूप में कि कालांतर में उस पराश्रित स्त्री की प्रथम सुपुत्री अति सुंदर कन्या सुमन का विवाह एक दरिद्र अपात्र के साथ होता है। दामाद को देखने के पश्चात गंगाजली को ऐसा प्रतीत होता है जैसे सुमन को उसने किसी कुँए में ढकेल दिया हो। परिणयसूत्र में बँधने के पश्चात् सुमन के जीवन में संघर्षों का जो उतार-चढ़ाव होता है, उससे उपन्यास का मुख्य विषय सामने आता है। यह सत्य है कि मनुष्य संघर्षों से सीखता है और इन संघर्षों से मिली सीख सुमन को बहुत मजबूत बनाती है। 'सुमन एक अच्छे स्वभाव की सुंदर-सी लड़की है। उसे हम औसत दर्जे की लड़की कह सकते हैं। उसमें अगर कुछ विशेष बात है तो यह कि वह अन्याय के सामने झुकना नहीं जानती; वह अपने आत्मसम्मान को ठुकराया जाना नहीं देख सकती।'[8] विवाहोपरांत घर की आर्थिक स्थिति, सुमन का गृहप्रबंध में आवश्यक-अनावश्यक के ज्ञान से अपरिचित होना, सुमन की मानसिक स्थिति, आस-पास का माहौल और सबसे महत्त्वपूर्ण पति का संशय एवं कठोर व्यवहार सुमन को

उस गलत मोड़ पर लाकर खड़ा कर देता है, जहाँ से उसका जीवन नरक हो जाता है। यों तो शुरू के वैवाहिक जीवन में गजाधर सुमन को खुश रखने की हरसंभव कोशिश करता है, दोगुनी मेहनत भी करता है, परंतु जिम्मेदारी का बोझ और आर्थिक परिस्थिति जीवन को समान नहीं रहने देते। गृहप्रबंध के ज्ञान से अनभिज्ञ सुमन घर गृहस्थी में उतनी कुशल नहीं थी और देखा जाए तो इसमें सुमन का कोई दोष भी नहीं था। वह अपने पिता के घर बड़े ठाठ से रही है। उसकी इच्छाएँ आकांक्षाएँ बहुत ऊँची हैं, परंतु विवाहोपरांत इन इच्छाओं पर गहरी चोट पहुँचती है, पग-पग पर उसके आत्मसम्मान को ठोकर लगती है। सुमन का सौंदर्य गजाधर को अपनी ओर आकर्षित करता है, परंतु गृहप्रबंध की अनभिज्ञता सदैव खटकती है। सुमन खर्चीली है तो गजाधर कृपण, सुमन चंचल है तो गजाधर अनुभवी और सबसे बड़ी बात दोनों की उम्र का अंतर भी विवाद व विवाह-विच्छेद का कारण बनता है। सुमन गृहकार्य में भले ही उतनी कुशल न हो, परंतु चालाक बहुत थी और अपने चातुर्य एवं वाक्पटुता से मोहल्ले की स्त्रियों में श्रेष्ठ थी। गजाधर को सुमन का मोहल्ले की इन स्त्रियों से मेलजोल बिल्कुल पसंद नहीं था, इतना ही नहीं घर के सामने एक वेश्या भोलीबाई से सुमन का बात करना भी गजाधर को नागवार लगता था। फलतः गजाधर के हस्तक्षेप से घर में कलह का माहौल उत्पन्न होता और शौक एवं जरूरत जैसे मुद्दे उठते। गजाधर करे भी तो क्या, उसके लिए सुमन के संपूर्ण सुख-सुविधा की व्यवस्था करना आसमान से तारे तोड़ने जितना कठिन था। प्रतिदिन की कलह का यह परिणाम हुआ कि सुमन ने कहीं आना-जाना छोड़ दिया, यहाँ तक कि गंगास्नान भी और बीमार रहने लगी। अब वह अपनी मंडली की रानी नहीं थी– 'उसका प्रभुत्व मिटा जाता था। उत्तम वस्त्रविहीन होकर वह आपने उच्च आसन से गिर गई थी।'[9]

अब गजाधर को भी उस पर दया आई और बहुत आग्रोपरांत वह पुनः गंगास्नान को जाने लगी और जीवनरूपी सूखता पौधा मित्र रूपी जल पाकर पुनः हरा-भरा हो गया। जी हाँ, वह मित्र थी सुभद्रा। वकील पदमसिंह की पत्नी अत्यंत गुणी एवं सहृदय व्यक्तित्व की स्वामिनी। समस्त स्त्रियोचित गुणों से परिपूर्ण एक सफल पत्नी और इसका परिचय कथा-विकास के क्रम में निरंतर होता है। पदमसिंह उसे अपने से कम आँकते हैं, परंतु हमेशा वह अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देती है। वह मातृत्व सुख-लाभ से वंचित रह गई, परंतु सदन के प्रति उसका प्रेम अटूट है। जब सदन घोड़े कि माँग करता है तो वह अपने पास इकट्ठा सारा धन पदमसिंह को दे देती है। दोनों स्त्रियों में मेल-मिलाप बढ़ने लगता है और इतना कि दोनों बहुत अच्छी सखी बन जाती हैं। 'जैसे बालू पर तड़पती हुई मछली जलधारा में पहुँचकर किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार सुमन भी सुभद्रा की स्नेहरूपी जलधारा में अपनी विपत्ति को भूलकर आमोद-प्रमोद में मगन हो गई।'[10] परंतु इस आमोद-प्रमोद का अंत अत्यंत भयावह होगा, इसका अंदाजा अभी सुमन को नहीं हुआ था। गजाधर को सुमन की यह स्वतंत्रता बहुत खलती और एक दिन सुभद्रा के घर से देर आना, सुमन के ऊपर मानो गाज गिर पड़ती है। यह काली भयावह रात सुमन के जीवन का रहा-सहा उजाला भी समाप्त कर जाती है। सुमन का देर से आना और गजाधर के साथ वाद-विवाद, लांछन, ताड़न आदि के उपरांत पति पुरानी रीति के अनुसार घर से निकलने की धमकी देता है, कोसता है, सुमन बात सँभालने का प्रयास करती है, परंतु वह निष्फल रहती है और अंततः वह सगर्वा चली जाती है। 'सुमन न पैरों पड़ती है, न गिड़गिड़ाती है। उसके स्वर में भारत का नवजाग्रत नारीत्व उत्तर देता है, 'हाँ, यों कहो कि तुझे रखना नहीं चाहता। मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम ही मेरे

अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूँगी, वही पेट पाल लूँगी।'[11] अब वह निराश्रित पहले तो अपने सखी के घर जाती है, परंतु गजाधर के द्वारा पदमसिंह को बदनाम किए जाने पर उसकी आश्रयदाता बनती है भोलीबाई। सुमन वहाँ रहने से हिचकिचाती है, परंतु भोलीबाई सुमन को अपने झाँसे में फँसा ही लेती है और अपनी राम कहानी कहती है, 'प्रेमचंद यह दिखलाते हैं कि नारी की पराधीनता और वेश्यावृत्ति हिंदुओं और मुसलमानों दोनों में है। वह इस्लामी संस्कृति और हिंदू संस्कृति का डंका बजानेवालों से कहते है, 'देखो, यह है तुम्हारी संस्कृति जो हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों की स्त्री से वेश्यावृत्ति कराती है। तुम्हारे यहाँ नारीत्व का तभी सम्मान किया जाता है, जब वह बिकाऊ हो।'[12]

अब सुमन, सुमन से सुमनबाई हो जाती है, दालमंडी की सुमनबाई। परंतु यह सुमनबाई अन्य वेश्याओं से बहुत अलग। 'सुमन वेश्या जीवन कि प्रतिनिधि पात्र नहीं है। वह थोड़े ही दिन वेश्या रहती है और तब भी अन्य वेश्याओं की तरह तन नहीं बेचती। बेचना तो दूर, वह किसी को उसे समर्पित भी नहीं कर सकती।'[13] तभी तो वह विट्ठलनाथ से कहती है, 'यद्यपि इस काजल की कोठरी में आकर पवित्र रहना अत्यंत कठिन है, पर मैंने यह प्रतिज्ञा की है अपने सत्य की रक्षा करूँगी। गाऊँगी नाचूँगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूँगी।'[14]

यहाँ सुमन का चातुर्य, वाक्‌पटुता एवं अकाट्य तर्क विट्ठलनाथ को तर्कहीन कर देते हैं। कालांतर में पद्मसिंह की आत्मग्लानि से उपजे वाक्यों को सुमन के स्पष्ट प्रश्नों के समक्ष निरुत्तर होना पड़ता है। अब कथा-विकास में सदन का प्रवेश होता है, जो सुमन के प्रति आकर्षित है और उसके रूप-सौंदर्य के सागर में एक बार डुबकी लगाना चाहता है, परंतु ऐसा हो नहीं पाता, क्योंकि पदमसिंह और विट्ठलनाथ के अथक् प्रयास से सुमन दालमंडी से विधवाश्रम पहुँच जाती है। सदन का विवाह शांता से तय हो जाता है। जी हाँ, यह वही शांता है सुमन की बहन। यथा नाम गुण, शांत, सहनशील, सुशील परंतु कथा के अंत में यह शांत स्वभाव ईर्ष्या के वशीभूत होकर विद्रोही हो जाता है। शांता का सुमन का बहन होना उसके लिए अभिशाप बन जाता है और उसका विवाह टूट जाता है, क्योंकि वह वेश्या की बहन और अपराधी पिता की पुत्री है। यहाँ उपन्यास में एक और नारी-पात्र का परिचय होता है, वह है जाह्नवी। उमानाथ की पत्नी और शांता की मामी, जो सुमन और शांता को बिल्कुल पसंद नहीं करती और जब शांता कि बारात लौट जाती है तो उसे भी थोड़ा दुःख होता है। इतना ही नहीं जब उमानाथ कृष्णचंद के कटु वाक्य के बारे में बताते हैं तो वह कृष्णचंद को खरी-खोटी सुनाने को उतारू हो जाती है। इधर शांता आपने विवाह के टूट जाने से अत्यंत दुखी भी है और आशान्वित भी, एक दिन सब अच्छा हो जाएगा और इसकी शुरुआत व पदमसिंह को एक पत्र लिखकर करती है। शांता का यह प्रयास सफल होता है और पदमसिंह उसे भी उसी विधवाश्रम में रखवाते हैं, जहाँ उसकी बहन सुमन थी। शांता सुमन से अपनी मनोव्यथा कहती है और इस समय दोनों बहनों को संबल प्रदान करती है। परंतु सत्य है समाज ने भूलों को कब सही राह पकड़ने दी है। समाज की मर्यादा के रखवाले इस बात को गोपनीय नहीं रहने देते और सुमन एवं शांता को आश्रम छोड़ना पड़ता है।

सुमन के जीवन का साँप सीढ़ी का खेल सुमन को इतना बल प्रदान करता है कि वह केवल अपना ही नहीं, बल्कि अपनों का अपमान बर्दास्त नहीं कर सकती। तभी तो बहन प्रेम से भावविभोर होकर वह सदन को ऐसा फटकारती है कि उसे निरुत्तर कर देती है, 'अन्याय अन्याय

ही है चाहे कोई एक आदमी करे या सारी जाति करे। दूसरों के भय से किसी पर अन्याय नहीं करना चाहिए।'[15] इतना कहकर भी वह चुप कहाँ रहती है, उससे अपनी बहन की यह दशा देखी नहीं जाती। वह कहती है, 'मैं तुमसे पूछती हूँ यह कहाँ की नीति है एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाए? अब तुमसे कोई बात छिपी नहीं है अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पूर्व जन्म के पापों से, मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया। उसका दंड मुझे मिलना चाहिए था, वह मिला। लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था, जिसके लिए तुम लोगों ने इसे त्याग दिया? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा।'[16]

सुमन की इन बातों का असर सदन पर इस प्रकार होता है कि वह आपने पैर पर खड़ा होने में सफल होता है और शांता से उसका विवाह होता है। जो सुमन आरंभिक दिनों में गृहप्रबंध में कुशल नहीं थी, वह आज शांता के घर का समस्त काम सँभालती है, परंतु शांता अब वह शांता नहीं, उसकी ईर्ष्या कि कहीं सदन सुमन की ओर आकर्षित न हो जाए, उसके इस विद्रोहभाव को व्यक्त कर देती है, लेकिन सुमन इस असहनीय कष्ट को सहकर नौकरानी बनकर रहती है केवल शांता के लिए, क्योंकि वह माँ बनने वाली है।

'सुमन स्वभाव से मानिनी सगर्वा स्त्री थी। वह जहाँ कहीं रही थी रानी बनकर रही थी। अपने पति के घर पर सब कष्ट झेलकर भी रानी थी। विलासनगर में जब तक रही, उसी का सिक्का चलता रहा। आश्रम में वह सेवाधर्म पालन करके सर्वमान्य बनी हुई थी। इसलिए अब यहाँ इस हीनावस्था में रहना उसे असह्य था।'[17] लेकिन उसका रहना उसकी सहृदयता को प्रदर्शित करता है। शांता को पुत्र की प्राप्ति हुई और सब-कुछ मिला। परिवार, पति, पुत्र, प्रेम सब। भामा और मदनसिंह जो अब तक उसके विवाह के विरोधी थे, पौत्र-प्रेम ने सब भुला दिया। परंतु अकेली रह गई सुमन, वह स्वयं को धिक्कारती कि उसके कारण माँ-पिता भी कलंकित हुए और वही उसकी मृत्यु का कारण बनी। परंतु एक अदृश्य शक्ति उसे गजाधर के पास खींच लाती है। गजाधर जो पश्चात्ताप कि अग्नि में जलकर संन्यासी हो गया है और नारी-उद्धार हेतु एक अनाथालय चलाता है। वह सुमन से आग्रह करता है कि वह इसमें उसका सहयोग करे, क्योंकि वही इस कार्य के योग्य है। 'तुम्हारे हृदय में दया है, करुणा है, धर्म है, और तुम्हीं इस कर्तव्य का भार सँभाल सकती हो। मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी?'[18]

सेवासदन की समस्त स्त्री-पात्रों को जानने के पश्चात् ऐसा ज्ञात होता है जैसे प्रेमचंद ने स्त्री मन को टोह लिया हो। प्रस्तुत उपन्यास में जिन स्वरूपों का चित्रण हुआ है अद्‌भुत हैं, अपूर्व हैं, अतुलनीय हैं। अंततः अगर कहा जाय कि 'सेवासदन' में चित्रित समस्त स्त्री पात्रों द्वारा समस्त नार्योचित गुणों के दर्शन होते हैं तो कदाचित अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ

1. सेवासदन, प्रेमचंद, साहित्य संसद, प्रथम संस्करण 2000, पृ॰ 05
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ॰ बच्चनसिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ॰ 373
3. हिंदी उपन्यास एक अंतयात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2001, पृ॰ 38
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र, डॉ॰ हरदयाल, मयूर पपेरबैक्स, नई दिल्ली 2009 पृ॰ 559
5. हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ॰ 39

6. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1993, आवृति 1995, 1998, पृ॰ 31
7. सेवासदन, प्रेमचंद, पृ॰ 05
8. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृ॰ 31
9. सेवासदन, प्रेमचंद, पृ॰ 24
10. वही, पृ॰ 28
11. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृ॰ 36
12. वही, पृ॰ 37
13. वही, पृ॰ 39
14. सेवासदन, प्रेमचंद, पृ॰ 63
15. वही, पृ॰ 190-191
16. वही, पृ॰ 190-191
17. वही, पृ॰ 214
18. वही, पृ॰ 234

पत्नी श्री सचिनकुमार
वीना फर्नीचर, सुलतानगंज थाना के पास
थाना रोड, सुलतानगंज (भागलपुर) 813213
मो॰ 8407816425
mk1141888@gmail.com

 ISSN 0975-735X

अजीत कौर के उपन्यास पोस्टमार्टम में भारतीय नारी की मानसिक पीड़ा

फारूक अहमद
पीएच॰डी॰ शोधार्थी
हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

हमारी संस्कृति रही है कि 'नारी' के नाम से ही मन में सम्मान उत्पन्न हो जाता था। वेदों और पुराणों में नारी को उच्च स्थान दिया गया है। इन सबके उपरांत भी आज नारी का भारत जैसे पवित्र देश में स्थान इतना गिरा दिया गया है कि उसे मानसिक पीड़ा का शिकार होना पड़ता है। कभी परिवार, कभी पति, सास, ससुर तो कभी प्रेमी यहाँ तक कि बच्चों की ओर से भी मानसिक तनाव को चुपचाप सहती है, जिसके कारण वह अनेक मानसिक रोगों का शिकार होती है। इसमें कोई दो कथनी नहीं है कि पुरातन समय से ही जबसे भारतीय समाज का विकास हुआ है, तबसे सामाजिक विकास की परिधि में नारी का अमूल्य योगदान है। समाज में पारिवारिक सृजन में भी प्रमुख स्थान है, क्योंकि उसी से ही वंशवृद्धि होती है। समाज की समग्र संरचना का आधार स्त्री ही है, फिर भी नारी अनेक प्रकार की मानसिक यातनाओं को सहती आई। समाज के विकास में परिवर्तन आने से मानव के जीवन में भी बदलाव आए, लेकिन नारी-जीवन की स्थिति में कोई बदलाव नहीं हुए, उनकी स्थिति कल भी वैसी ही थी और आज भी वैसी ही है, जिसका कहीं न कहीं जिम्मेदार पुरुष-प्रधान समाज ही है। समाज में नारी की यह सच्चाई सदैव रही है, "देश ने कितनी भी प्रगति की हो लेकिन औरत के मसले पर आदमी और समाज का नजरिया आज भी बदला नहीं है। भले ही औरत ने आदमी के साथ हर मोर्चे पर कदम से कदम मिलकर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाया है, लेकिन उसके बावजूद समाज ने उसको क्या दिया? वह आज भी हर मोर्चे पर उत्पीड़न का शिकार है और त्रासदी-भरा जीवन जीना उसकी नियति है।"[1] स्त्री की इस स्थिति का चित्रण भले ही बदलते दौर में होता रहा है, परंतु हिंदी साहित्य ने भी नारी की इस यथार्थ स्थिति का चित्रण करने में कलम को सहभागी बनाया है ताकि वह समाज में नारी की संत्रासपूर्ण स्थिति से समाज को अवगत करा सके। आधुनिक लेखकों के साथ-साथ महिला लेखिकाओं ने भी खूब सहभागिता निभाई है तथा उसकी इस स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों को भी अपने साहित्य में उजागर किया है। जिन लेखिकाओं ने स्त्री के जीवन के प्रत्येक पक्ष को चित्रित करने के साथ उसके मानसिक घुटन, संत्रास तथा तनाव को सबसे प्रबल स्थान पर रखा है, उनमें से एक लेखिका एवं उपन्यासकार अजीत कौर हैं, जो कि मूल रूप से पंजाबी लेखिका हैं तथा उनके पंजाबी साहित्य का हिंदी में अनुवाद हुआ है। उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज में नारी की मानसिक यातना, पुरुष द्वारा उसका मानसिक तथा शारीरिक शोषण, और उसे स्वयं के अस्तित्व को तलाशती दिखाया गया है। नारी की इस मानसिक स्थिति को

दिखाता उपन्यास 'पोस्टमार्टम' है, जिसमें नारी मानसिक यातनाएँ सहती हुई भी मुख से कुछ न बोलकर अपने भीतर ही मानसिक कुंठा से दो-चार होती है। परिणामस्वरूप वह समाज तथा परिवार के साथ रहने पर भी मानसिक रूप से अकेलेपन का अनुभव करती है, क्योंकि समाज द्वारा सदैव से ही उसे उपेक्षित किया जाता रहा है। भारतीय शिक्षित नारी भी किस प्रकार मानसिक उत्पीड़न का शिकार होती है, उन्हीं कारणों को अजीत कौर ने 'पोस्टमार्टम' उपन्यास के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है।

अंतर्विरोध की भावना

अंतर्विरोध से तात्पर्य है विचारों की परस्पर भिन्नता होना तथा एक-दूसरे की समस्त क्रिया-प्रक्रिया का निरंतर विरोध करते रहना। यही भावना पोस्टमार्टम की नायिका मीरा तथा उसके प्रेमी में आरंभ से अंत तक विद्यमान रहती है। इस बात में कोई दो राय नहीं है कि पुरुष सदैव से ही स्त्री के विचारों तथा भावनाओं से खेलता आया है, साथ में वह उसका पूरा विरोध भी करता है। एक तरह से उसमें नारी के लिए विरोधाभास प्रतीत होता है। इसी भावना के कारण ही स्त्री में संत्रास, मानसिक पीड़ा की स्थिति उत्पन्न होती है। क्योंकि पुरुष-प्रधान समाज में वह भी कहीं न कहीं यह मानने लग पड़ी है कि समाज मात्र पुरुष के लिए है, स्त्री तो किसी वस्तु विशेष से अधिक कुछ नहीं है। जैसे किसी निर्जीव वस्तु में कोई विचार या भावना नहीं होती, उसी प्रकार समाज भी नारी को अमूर्त वस्तु की भाँति ही समझता है। इसके अतिरिक्त उसका मन-मस्तिष्क उसे सोचने ही नहीं देता है, क्योंकि सामाजिक परिस्थितियाँ उसके मन पर हावी होती हैं और न ही वह समझना चाहती है। जैसे उपन्यास 'पोस्टमार्टम' की पात्र मीरा जो कि अपने प्रेमी अविनाश की उपेक्षा की शिकार होती है, क्योंकि वह सदैव उसकी भावनाओं तथा विचारों को कुचलता हुआ आगे बढ़ जाता है, लेकिन मीरा मन में ही उसका विरोध करके मुँह से एक वाक्य नहीं बोलती। उसके मन पर अपने प्रेमी द्वारा कही गई विरोधी बातों का आघात पहुँचता है, जब दोपहर के समय काफी पीने के बाद मीरा उसे (अविनाश) को मूवी देखने के लिए कहती है, तब वह उसकी बात को टालते हुए किसी से मिलने जाने की बात करता है–

"मूवी देख सकते थे पर....' तूने फिर घड़ी देखी।

'पर क्या?'

'छह बजे किसी को वक्त दे बेठा हूँ। जाना है।'

फिर, हम बेमतलब कनाट प्लेस के बरामदे में घूमते रहे।"[2]

इसी तरह मीरा के साथ मूवी न देखकर इधर-उधर घूमने को उसने ठीक समझा, क्योंकि अगर वह अपनी प्रेमिका की बात मान लेता तो उसका पौरुष आहत हो उठता इसलिए वह प्रत्येक स्थान पर मीरा की बातों में अंतर्विरोध करते हुए ही दिखाई देता है। इस तरह जब मोहन राकेश की मृत्यु पर उनके दाह-संस्कार के तुरंत बाद फुटबाल मैच देखने चला जाता है तथा मीरा द्वारा घर पर आने के लिए कहने पर उसकी बात का विरोध करता है, "उसके बाद तो तुझे मेरे पास आना था। यहीं रोटी खानी थी। भूल गया था।

तूने कहा, भुला तो नहीं था, पर वहाँ दाह-संस्कार के समय मुझे याद आया कि उस दिन फुटबाल का मैच हो रहा था। सो, संस्कार के बाद मैं फुटबाल का मैच देखने चला गया, फिर वहीं से दफ्तर चला गया।

 ISSN 0975-735X

मैं हक्की-बक्की होकर तेरे मुँह की ओर देख रही थी। तेरी शख्सियत को यह कैसी कंट्राडिक्शन थी। कैसा विरोधाभास था।"[3]

जब मीरा अविनाश के साथ हॉकी का मैच देखने जाना चाहती थी तो भी वह उसकी बात को काटते हुए उसका विरोध करता है कि तुम क्या करोगी मेरे साथ जाकर। तब उसे अपने प्रेमी के साथ विचारों के अंतर्विरोध का अनुभव होता है। इसलिए वह मन ही मन में सोचती है कि "जब कभी भी मैंने छोटी सी भी जिद्द की, तू हमेशा जैसे मीलोंमील दूर निकल गया। किसी जिद्द के आगे हार जाना, झुक जाना। झुककर उस जिद्द की लाज रख लेना, यह तेरी फितरत में शामिल नहीं।"[4] क्योंकि इससे तेरे स्वाभिमान को ठेस पहुँचती इसलिए वो प्रत्येक बात का विरोध करने में ही अपना लक्ष्य समझता था। उसके भीतर प्रेमिका के लिए एक विरोधी भावना थी, परिणामतः मीरा निरंतर उसके इसी विरोधाभास का शिकार बनी रहती है।

अकेलेपन की शिकार

अकेलापन एक ऐसी भावना होती है, जिससे इंसान मानसिक रूप से पूरी तरह भीतर से टूट जाता है तथा उसके भीतर मृत्यु जैसे बुरे ख्याल आते हैं, अपने-आपको सबसे अलग रखता है। भारतीय समाज में नारी की भी यही स्थिति है। उसे सदैव पुरुष द्वारा उपेक्षित किया जाता है, जिससे उसका जीवन ऊब, छटपटाहट, संत्रास से भर उठा है और स्वयं को सबसे अलग ही अनुभव करती है, लेकिन वह इस समाज के बीच कहीं समाप्त हो चुके अपने व्यक्तित्व को खोजने का प्रयास करती रही है ताकि वह अपना अस्तित्व स्थापित कर सके, परंतु इसमें नारी निरंतर असफल होती रही है। यही स्थिति प्रस्तुत उपन्यास 'पोस्टमार्टम' की नायिका मीरा के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। इस उपन्यास में मीरा एक ऐसी नारी के रूप में ऊभरकर आती है, जो समाज की भीड़ में रहते हुए अपने आपको अकेला महसूस करती है क्योंकि उसको तथा उसकी मानसिक व्यथा को समझने वाला कोई भी नही है, यहाँ तक कि उसका प्रेमी भी उसको समझ नहीं पता है, जबकि वह उसको निरंतर समझाने का प्रयास करती है। इसी कारण मीरा मानसिक तनावग्रस्त रहती है तथा संत्रासपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होती है। इससे उसके जीवन में अकेलेपन की स्थिति आती है। ऐसी स्थिति असहनीय होने के कारण वह सोचती है कि उसने अविनाश के कहने पर माँ को गाँव और बहन की शादी करवा कर उसने गलती की है। उन दोनों के जाने के बाद तो वह स्वयं को इतना अकेला अनुभव करती है कि मृत्यु को गले लगाना चाहती है।

"मुझे लगता, रात को सवेर नहीं होगी। उन्हीं दीवारों में मैं अकेली मर जाऊँगी और सुबह जब अखबारवाला आएगा, दूधवाला आएगा, सब्जीवाला आएगा, दरवाजा बंद होगा।"[5] मीरा अपने प्रेमी के मात्र एक स्पर्श को जीवन-भर तरसती रहती है, कहीं न कहीं अपने अकेलेपन का दोष अपने प्रेमी को ही ठहराती है, क्योंकि वह सदैव उसे देखकर भी अनदेखा करता है। जब मीरा अपने प्रेमी को दिल्ली से जयपुर किसी काम से साथ लेकर जाती है कि उसे उसके साथ अपनापन अनुभव होगा, लेकिन वहाँ पर वह अपने प्रेमी के व्यवहार से परेशान होती है और सोचती है कि अगर वह उसे एक बार प्यार से अपनेपन अहसास कराये तो उसका अकेलापन तथा तनाव समाप्त हो जाता लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। "अगर तूने उस एकांत कमरे में मुझे एक बार अपनी छाती से लगा लिया होता। अगर तूने भी अपने सहज भाव से बैड पर मेरे करीब बैठकर सिगरेट

सुलगाई होती! महज तेरे एक स्पर्श से सारा तनाव खत्म हो जाता।"[6]

वह समाज में बिल्कुल अकेली थी भावनाओं से भी, स्थिति विचारों से भी। इसी अकेलेपन ने उसमें मानसिक पीड़ा इतनी भर दी कि अपने आपको मृत्यु के दुराहे पर देखने लगती थी क्योंकि उसको सब-कुछ, मानो अपने पीछे छूटता प्रतीत हो रहा था, जिसे दुबारा प्राप्त करना असंभव ही था।

पत्नी तथा प्रेमिका के रूप में नारी में मानसिक तनाव

आज के इस आधुनिक समय में मानव की मनोवृत्ति ऐसी हो गई है कि तनाव, मानसिक कुंठा जीवन का एक सहज भाग बन गये हैं। इस स्थिति से सभी जूझ रहे हैं विशेष रूप से नारी की स्थिति तनाव पूर्ण हो रही है चाहे समाज में हो या परिवार में। प्रत्येक स्थान पर उसे उपेक्षा की शिकार होना पड़ा जिससे उसके मानसिक मनोबल में गिरावट आती रही है। परिणामस्वरूप वह समाज में ऊपर उठने के बजाय दलदल में धँसती चली गई। आज इतना धँस गई है कि उसे समाज में एक पूर्ण स्वतंत्रता दिलाना मुश्किल हो गया है। इसका एक मात्र कारण उसका मानसिक तनाव है। वह कभी अपने मानसिक तनाव से बाहर ही नहीं आ पाई, क्योंकि पुरुष-प्रधान समाज द्वारा इतना दबाया गया है कि वह स्वयं मानसिक तनाव की शिकार होकर मृत्यु को गले भी लगा लेती है। आज परिवार में पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका के बीच इतना तनाव बढ़ गया है कि वह दोनों एक दूसरे से नफरत करते हैं और एक-दूसरे को देखना पसंद नहीं करते। जैसे उपन्यास 'पोस्टमार्टम' में अविनाश जोकि पहले से ही शादीशुदा है क्योंकि उसने न चाहते हुए भी मदरासी लड़की से शादी की थी, लेकिन अब दोनों में तनाव इतना बढ़ गया है कि एक-दूसरे को बुलाना तो दूर, अलग-अलग कमरों में सोते हैं। मीरा द्वारा पूछने पर कहता है कि, "वह किसी और से मुहब्बत करती है। महीन में पच्चीस दिन बाहर टूर पर गई रहती है, अपने उसी कुलीग के साथ और बाकि के पाँच दिन भी तुम अलग-अलग कमरों में सोते हैं।"[7] मीरा और अविनाश के इन वाक्यों से स्पष्ट झलकता है कि आजकल पति-पत्नी में मानसिक तनाव इतना बढ़ गया है कि वह एक-दूसरे से दूर रहते हैं। यही स्थिति प्रेमी-प्रेमिका के रिश्तों में भी देखने को मिलती है, जिसमें सबसे अधिक औरत को ही मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है। जैसे मीरा अपने प्रेमी से बहुत प्रेम करती है और उससे विवाह करना चाहती है लेकिन उसमें भी मानसिक तनाव रहता है। जब अविनाश को किसी काम के लिए पंद्रह दिनों तक मुंबई जाना पड़ता है वहाँ जाकर मीरा के फोन का उत्तर नहीं देता था, कभी फोन काट देता। अब वो मीरा से बात नहीं करना चाहता था। जब भी फोन करती पता नहीं कौन उठाता। तू तो यहाँ से डेपुटेशन पर गया हुआ था। सो, फोन तो वैसे ही तेरे पास नहीं होगा, जो व्यक्ति फोन उठाता, मैं पूछती, 'मि० बजवा हैं, अविनाश बाजवा?' दूसरी और से आवाज आती, "एक मिनट होल्ड करें और फिर करीब दो मिनट बाद, जी नहीं, वह तो नहीं हैं।"[8]

घुटन और मानसिक कुंठा की शिकार

समाज में नारी को सदैव कम आंका जाता है कारण उसे पीछे छोड़ा जाता है तथा दबाकर रखा जाता है। नारी अपनी भावनाओं एवं विचारों को बाहर नहीं निकाल पाती है। वह उसे कहीं न कहीं अपने मन के कोने में छिपा लेती है लेकिन इससे स्त्री स्वयं घुटन और मानसिक कुंठा की शिकार हो जाती है तथा पुरुष प्रधान समाज ने पुरुष को उच्च पद पर आसीन किया हुआ है। वह

 ISSN 0975-735X

अपनी इसी शक्ति के सहारे नारी का शारीरिक और मानसिक शोषण करता है उसे पूछने वाला कोई नहीं होता। पुरुष द्वारा स्त्री को अपने पैरों की जूती समझा जाता है परंतु नारी प्यार और अपनेपन की भूखी होती है लेकिन जब उसे वही न मिलता बल्कि उसके स्थान पर उसको उपेक्षा सहनी पड़ती है। जिससे उसमें एक प्रकार की तमस पैदा होती है जोकि उसमें घुटन और कुण्ठित मानसिकता को जन्म देती है। प्रस्तुत उपन्यास में भी मीरा जब अविनाश को घर आने के लिए कहती है परंतु वह दोस्तों के साथ, शराब पीने के लिए कहता है तो उसे गुस्सा आता है तथा कहती है कि, "तू जो सलूक मेरे साथ करता है, वह अगर तू अपने पालतू कुत्ते के साथ भी करे तो वह भी तुझसे नफरत करने लग पड़े।"[9]

इसी उपेक्षा की शिकार होने पर ही उसके जीवन में इतनी घुटन बढ़ जाती है कि उसे इस घुटन का अहसास भी होने लगता है। जब वह दोनों जयपुर जाते समय गाड़ी खराब होने के कारण एक रेस्तराँ में रुकते हैं तब भी मीरा को अपने प्रेमी के साथ होने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि चारों तरफ घुटन ही बिखरी हुई है, "मुझे लगा, यह एक साधारण कामों वाले दिनों जैसा ही कोई दिन था। फालतू सिर्फ एक चीज थी और वह थी घुटन।"[10]

इसी घुटन से वह स्वयं को भीतर से टूटी हुई देखती है वह मानसिक रूप से इतनी कुंठित हो जाती है कि मौत के बारे में सोचने लगती है कि, "और मुझे लगता, रात को सवेरे होगी। उन्हीं दीवारों में मैं अकेले मर जाउँगी और सुबह जब अखबार वाला आएगा, दूध वाला आएगा, सब्जी वाला आएगा, दरवाजा बंद होगा।"[11]

अस्तित्व की तलाश

अस्तित्व से तात्पर्य मात्र स्वतंत्र रूप से प्रत्येक बंधन से मुक्त होना नहीं है अपितु उन विकार या बंधन से स्वतंत्र होना है, जो नारी के व्यक्तित्व के विकास में बाधक होते हैं। समाज में औरत को भी पुरुष के समान अपने व्यक्तित्व का विकास करने का पूर्ण हक है, परंतु सदियों से नारी को पुरुष की दासी बनाकर उसके अस्तित्व को ठेस पहुँचाई जाती है। इसी संदर्भ में विमल शर्मा कहते हैं कि, "जीवन के हर क्षेत्र में सदियों से नारी को दूसरा स्थान मिला है परिवार में और सामाजिक इकाई के रूप में पिता, पति, पुत्र, व भाई आदि का महत्त्व स्वयं पुत्रों, पत्नी, माँ अथवा बहन की अपेक्षा अधिक रहा है। नारी का अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी ठोस मान्यता पर टिकता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। परिवार के कल्याण के लिए अपना अस्तित्व मिटा देना ही उसकी विवशता है।"[12]

फलस्वरूप नारी सदैव से मानसिक पीड़ा को सहन करते आ रही है। इसी बात को प्रस्तुत उपन्यास में भी उठाया गया है कि नारी निरंतर अपने अस्तित्व के लिए तड़पती है और चाहती है कि कोई तो हो जो उसके अस्तित्व को पहचाने। इसी दिशा की ओर देखती मीरा अपने प्रेमी के साथ होने के बावजूद बेसहारा अनुभव करती है। वह उससे अपने अस्तित्व की माँग करती है, परंतु प्रेमी उसकी उपेक्षा करता है तब वह रोती हुई उससे पूछती है, "तू मुझसे चाहता क्या था? किसी भी औरत से तू क्या चाहता है? जिन औरतों के संग तू सोता रहा, उन्हें तो तू वैसे ही कूड़ा समझ कर फेंक देता रहा है। मुझे तूने इस कारण फेंक दिया कि मेरे संग तू सोया नहीं था, इसलिए मुझसे तेरी कोई साँझ नहीं थी। कोई कमिटमेंट नहीं था। तुम मर्द चाहते क्या हो औरत से? अगर तुम्हारे साथ सो जाए वह, तो वह घटिया कंजरी! उसके बिस्तर में से निकलकर अगले पहल ही

तुम उसके बारे में कह सकते हो-शी इज ए बिच्च, और जिस औरत को बिस्तर तक न ले जा सके, उसे तुम समझते हो कि काम की नहीं है। ठंडी, बेलज्जत, बेजायका औरत!"[13]

इसी तरह जब मीरा अपने प्रेमी के सामने अपने प्यार की बात करते-करते रोने लगती है तो वह कहता है कि उसे रोने वाली लड़कियाँ पसंद नहीं हैं, इसलिए वह बाथरूम में जाकर अपने आँसू साफ करती है और चुपचाप बाहर आकर उसकी तरफ देखकर सोचती है, "वक्त भी अजीब चीज है। कभी कोई इसमें से खामोश गुजर जाता है। कभी बाढ़ में घिरी अकेली किश्ती की तरह घिर जाता है। कभी यह वक्त छाती पर पैर रखता हुआ गुजरता है और कभी छाती पर चढ़कर खड़ा हो जाता है, गुजरता ही नहीं।"[14]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि आधुनिक समाज में नारी का जीवन इतना संत्रास-भरा और कुंठित हो गया है कि वह मानसिक पीड़ा की शिकार बनकर रह गई है। इसका एक ही जिम्मेदार है पुरुष-प्रधान समाज, जिसने नारी को इतना गिराने का प्रयास किया है और उसे आज इस कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है कि यहाँ पर वह मानसिक घुटन-भरा जीवन जीने के लिए विवश हो गई है। इसी को अजीत कौर ने अपने उपन्यास पोस्टमार्टम में अच्छे से दिखाने का प्रयास किया है।

संदर्भ

1. ज्ञानेंद्र यादव, कंस समाज में औरत, पृ॰ 19
2. अजीत कौर, पोस्टमार्टम, पृ॰ 22
3. वही, पृ॰ 65
4. वही, पृ॰ 68
5. वही, पृ॰ 59
6. वही, पृ॰ 29
7. वही, पृ॰ 32
8. वही, पृ॰ 87
9. वही, पृ॰ 23
10. वही, पृ॰ 34
11. वही, पृ॰ 39
12. विमल शर्मा, सठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ॰ 4
13. अजीत कौर, पोस्टमार्टम, पृ॰ 90
14. वही, पृ॰ 64

मो. 8493815123.

राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'कटरा बी आर्जू' का पुनर्पाठ

चंदनकुमार
सहायक प्राध्यापक
जमालपुर कॉलेज जमालपुर
मुंगेर विश्वविद्यालय बिहार

डॉ॰ राही मासूम रज़ा का प्रतिनिधि उपन्यास 'कटरा बी आर्जू' का प्रथम संस्करण सन् 1978 ई॰ में आया था। यह उपन्यास भारतीय राजनीति में कलंकित आपातकाल की सामाजिक-राजनीतिक कथावस्तु पर आधारित है। इमरजेंसी से पहले की पृष्ठभूमि में इसकी कहानी शुरू होती है और 'जनता' के उदय के साथ इसकी कथा समाप्त हो जाती है।

कथानक के केंद्र में 'कटरा मीर बुलाकी' नामक बस्ती है, जो इलाहाबाद के पास है और शहरी रंग-ढंग से परिचित होने के बावजूद गरीब और मेहनतकश लोगों का इलाका है। यहाँ के मैकेनिक, मजदूरी, लॉउंड्रीवाले, परचूनवाले रहते हैं और अपने सपनों को आकार देने के लिए खूब मेहनत करते हैं। कटरे के लोगों का संघर्ष जब तक मुकाम पाने को होता है तब तक उनके सपने ताश की पत्तों की तरह बिखरा दिए जाते हैं। मेहनतकश, मजबूर, ईमानदार लोगों के सपनों से खेलनेवाले लोग सत्ता में भी हैं और प्रशासन में भी हैं जिन्हें लोकतंत्र का अर्थ पता है या नहीं–इसी तथ्य को यह उपन्यास परत-दर-परत उधेड़ता है।

उपन्यास का प्रारंभ ही कटरे की छोटी-सी कहानी के साथ शुरू होता है। लेखक उसके नामकरण में आए बदलाव की घटना हमारे सामने रखता है। जिसे जानने-पहचाने के बाद ऐसा लगता है कि यह एक मामूली कटरे की कहानी होते हुए भी लगभग पूरे देश की कथा को बयाँ करता है। पूरा देश सत्ताधीशों को अपने दिन फेरने की उम्मीद में सत्ता सौंप देता है किंतु जब उनके सपने और उनकी आशाएँ टूटने लगती हैं तब बेबसी, लाचारगी और आर्जुओं की बाढ़-सी आ जाती है। लोकतंत्र में लोक के इसी बेहाली को और लाचारगी को राही ने इस उपन्यास में व्यक्त किया है। जिस मास्टर बद्रुल हसन 'नायाब' मछलीशहरी ने शहनाज से अपनी तय हुई शादी की आर्जुओं को देखते हुए कटरा मीर बुलाकी को कटरा बी आर्जू बना दिया–उसे शायद ही पता होगा कि उसका मजाकिया कृत्य कितनों को उनकी आर्जुओं के साथ ही दफन कर देगा। वैसे मास्टर को यह नाम इसलिए सूझा, क्योंकि 'वह बहुत दिनों से देखते चले आ रहे थे कि उनके कटरे वालों के पास और तो कुछ नहीं पर आर्जुएँ बहुत हैं।'[1]

यह सच ही है कि कटरे या देश की जनता में आर्जुएँ ही बहुत हैं, वे क्रांतिदर्शी चेतना से भरे नहीं हैं। यही कारण है कि जो आशाराम 'कटरा बी आर्जू' पर लगातार 'सीरियल' लिखे जा रहा था–'और कभी-कभी गई रात तक कटरे के लोगों का पीछा किया करता और अपने हिसाब से उनकी आर्जुएँ जमा करता रहता था। उनकी जिंदगी के एक-एक क्षण को कलम की नोक पर रखकर अपनी चेतना की तेज रोशनी में घुमा-फिराकर हर तरफ से देखने की कोशिश किया

करता था।'[2] वही आशाराम तमाम विपक्षी दलील रखते हुए मोटर यूनियन के मजदूरों की आवाज बनते हुए भी अंततः जब सरकार के जुल्मों-सितम से डर जाता है तो जिस काँग्रेस की सत्ता का विरोध कर रहा था, उसी से जा मिलता है और काँग्रेस की टिकट पर ही चुनाव भी लड़ता है किंतु तब तक जनता पार्टी अस्तित्व में आ जाती है और वह हार जाता है।

राही ने आशाराम की कहानी से कई लोगों की कहानियों को सामानांतर रूप से आगे बढ़ाते हुए आपस में अंतर्संबंधित कर 'कटरा मीर बुलाकी' की सामूहिक चेतना और उस समाज के सह-अस्तित्व को दिखाया है। जिसमें देशराज-बिल्लो, पहलवान भोलेनाथ, शम्सू मियाँ, मास्टर बद्रुल हसन, शहनाज, महनाज और जोखन, बाबू गौरीशंकर पांडेय, बाबूराम, इतवारी बाबा आदि के आचार-विचार, बोल-चाल, रहन-सहन आदि एक साथ रहते हुए एक-दूसरे के सुख-दुख में कैसे काम आते हैं, एक-दूसरे के साथ कैसे जीते हैं यह केवल 'कटरा मीर बुलाकी' की अंतश्चेतना ही नहीं है, बल्कि देशी भाव-भंगिमा का एक आंचलिक उदाहरण भी है–

'रिक्शा जब गली द्वारिका प्रसाद में मुड़ा तो पहलवान ने हाँक लगाई–ई का खरीद लिआये तुम लोग?'

'उस्ताद, महनाज के दहेज के वास्ते रेडियो खरीदिन है।' बिल्लो ने कहा।'[3]

यह उदाहरण सांप्रदायिक सद्भाव का बहुत सुंदर नमूना है कि एक मुसलमान की बेटी के लिए देशराज और बिल्लो ने दहेज की व्यवस्था कर 'कटरा मीर बुलाकी' की उस साझी संस्कृति को बढ़ावा दिया जो हमारे देश की नब्ज में विद्यमान है। यही नहीं राही ने इस उपन्यास से सांप्रदायिक समन्वय का एक और उदाहरण पेश किया है। होली के एक प्रसंग में शम्सू मियाँ और मौलवी खैराती जुम्मे के कारण होली नहीं खेलना चाह रहे थे, पर बाहरी लोग हुज्जत करने लगे ओर उस जातीय तनाव में पहलवान ने शम्सू मियाँ का साथ देकर बाहर वाले हिंदू को थप्पड़ मारकर बाहर का रास्ता दिखा दिया–

'जुम्मे के मारे लुका गए रहे।' शम्सू मियाँ ने कहा, 'नहीं तो का कभई ऐसा भया कि हम होली ना खेलें...'

'अरे मियाँ लोग को तो कोई बहाना चाहिए होली ना खेले का।' किसी बाहर वाले ने कहा।

पहलवान ने उसे वह लप्पड़ दिया कि वह लुढ़कनियाँ खाकर दूर जा गिरा।

'ई कटरा मीर बुलाकी है।' पहलवान ने कहा, 'खबरदार जो ईहाँ हिंदू-मुसलमान का चक्कर लगाया। ई सब करना है तो अतरसुइया जाव या अटाले जाव।'[4]

सच में राही ने समन्वय और साझी संस्कृति के अनूठे संतुलन से उपन्यास को आगे बढ़ाया है।

बिल्लो और देशराज के बीच का संबंध जिस रूप में हमारे सामने आता है, वह भारतीय समाज में पितृसत्ता की चूलें हिलाने लायक दिखाई देता है। बचपन में उसको (बिल्लो को) उसकी दादी घर से निकाल देती हैं तो वह अपने बचपन में ही एक अदद घर बनाने का संकल्प लेकर अपने सपनों में देशराज को शरीक करते हुए बहुत बेबाक तरीके से उसी समाज में 'लिव इन रिलेशन' में देशराज के साथ तब तक रहती है जब तक वह घर नहीं बना लेती है। घर बनाने के बाद वह शादी करती है। जनता लाउंड्री की मालकिन बनकर वह एक बेटी को जन्म देती है। इसी बीच इमरजेंसी लग जाती है और पुलिस हेड कांस्टेबल जगदंबाप्रसाद और खुर्शीद आलम के

द्वारा आशाराम के नुमाइंदे के रूप में देशराज को पकड़ लिया जाता है। पुलिस उसे विक्षिप्त करने तक थर्ड डिग्री टॉर्चर करती है और अंततः जब कुछ पता नहीं चलता तब उसे अधमरा कर लाश की तरह गठरी में बाँधकर उसके घर के बाहर छोड़ दिया जाता है। इसी घटना के सामानांतर पं॰ गौरीशंकर पांडेय काँग्रेस में अपना कद ऊँचा करने के खातिर संजय गाँधी को 'कटरा मीर बुलाकी' बुलाता है। चूँकि संजय गाँधी आनेवाले होते हैं तो यह जरूरत महसूस होती है कि सड़कें चौड़ी हों और जब सड़क चौड़ीकरण का काम शुरू होता है तो बिल्लो-देशराज की जमीन और घर उस चौड़ीकरण की जद में आ जाता है। सरकार देशराज-बिल्लो को उसके बदले अन्य किसी स्थान पर दूसरा घर देती है, किंतु बिल्लो अंततः उस घर में जाना पसंद नहीं करती है। इसी बीच बुलडोजर उसका घर गिराने आ जाता है। बुलडोजर जब उसका बनाया हुआ घर गिराने लगता है तब बिल्लो और बिल्लो की बेटी (जो गोदी में थी) उसके सामने आ जाती हैं और बुलडोजर के नीचे आकर अपने ही सपनों के घर में बुलडोजर द्वारा ढहाए जा रहे दीवारों में दबकर मर जाती हैं।

राही इस कथानक के माध्यम से यह प्रकट करना चाहते हैं कि जनता के सपनों का नेताओं के सामने कोई मोल नहीं होता। जनता अपने सपने को सच बनाने के लिए जी तोड़ परिश्रम करती है किंतु आखिर में जब सपना सच हो जाता है या होने लगता है तो सत्ता का बुलडोजर उसे ढहा जाता है और अंततः बचा रह जाता है अँधेरा।

यह उपन्यास प्रारंभ में कई घटना चक्रों के साथ शुरू होता है इमरजेंसी से पूर्व की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि को राही ने केवल 'कटरा मीर बुलाकी' तक ही सीमित नहीं रखा है, बल्कि उस समय का पूरा भारत उपन्यास में चित्रित होता है।

'कारपोरेशन में इसका नक्शा भी होगा। मैंने उसे देखने का चक्कर भी नहीं चलाया, क्योंकि उस नक्शे से भी हमें क्या लेना-देना! लेकिन एक बात बिल्कुल साफ है कि अपने असली नक्शे से अब कटरा मीर बुलाकी का कोई खास तआल्लुक नहीं रह गया है, क्योंकि लगता है कि असली कटरे की चौहद्दी की दीवारों को गायब हुए भी एक जमाना हो गया। और अब तो यह तै करना भी संभव नहीं कि असली कटरा कहाँ खत्म होता है...समय इन चौहद्दियों को नहीं मानता।'[5]

राही के सामने संपूर्ण भारत की प्रवृति इस छोटे से कटरे में घटित होते हुए दिखाई दे रही थी। कटरे के समाज की कुरीतियाँ, विवशताएँ, बेमेल विवाह, दहेज की समस्या, महँगाई, अभिभावकत्व में पड़ोसी, अभाव, श्रम का अवमूल्यन, भूख, बीमारी, साझी परंपराएँ, व्यभिचार, स्त्रियों का परिवारों में निर्णयशील होना (महनाज और बिल्लो के पक्ष में), सामाजिक विवाहभोज, श्राद्धभोज की मान्यताएँ आदि सभी तथ्य पूरे भारत की प्रवृति से मेल खाते हैं।

वहीं दूसरी ओर कटरे के लोगों की राजनीतिक समझ, प्रशासन का चरित्र, पुलिस महकमे की मुफ्तखोरी और भ्रष्टाचार, मीडिया द्वारा सत्ता के अनुकूल कार्य, सरकार द्वारा मीडिया का नियंत्रण, राजनीतिक लोगों द्वारा जन आकांक्षाओं की हत्या, सत्ता का निरंकुश रूप, आपातकाल से लोकतंत्र पर प्रतिबंध आदि इस उपन्यास में वे तथ्य हैं जो लेखक कटरे के परिवेश और देश की राजनीतिक उठापटक को एक-दूसरे से अंतर्संबंधित करके हमारे सामने रखते हैं।

राही मेहनतकश लोगों की पीड़ा को बयान कर हर तरह के विचारधारा पर प्रश्न खड़े करते हैं। देशराज जोखन से कहता है–

'गरीब मुहल्ले के मुँह पर नाक अच्छी भी ना लगती जोखन चा! हम तो एक दिन आसाराम से साफ-साफ पूछ लिया कि भाई मिनिस्टर लोग तो घूस खा के जी लीहें, पर जनता बेचारी क्या खाये! ऊ लगे लेकचर झाड़े कि मार्क्सवाद ई मार्क्सवाद ऊ! ते हम कहा बस रहे दीजिए। लेकचर से पेट भर सकता तो हम लेकचर देसावर भेजते। लेकचरे की पैदावार इ़रात है अपने मुलुक में।'[6]

राही ने देखा कि विचारधारा एक मात्र स्लोगन की तरह है। जिसके पीछे राजनीति का विकृत चेहरा छिपा है। विचारधारा होती तो देशराज यह न कहता कि 'ऊ लगे लेक्चर झाड़े कि मार्क्सवाद इ, मार्क्सवाद ऊ' राही ने स्वयं भी लिखा–

'श्री जयप्रकाश नारायण की राजनीति ने कभी मेरे दिल को नहीं छूआ...जो लोग उनके साथ लग लिए थे वह भी कुछ भले लोग नहीं थे। बिहार के सारे बेईमान मिनिस्टर उनके साथ लगे हुए थे। बिहार में उन्हें पहले कभी बेईमानी नहीं दिखाई दी और जब उस स्टेट को एक ईमानदार चीफ मिनिस्टर मिला तो बिहार के बेईमान लोगों को साथ लेकर जयप्रकाश जी ने धावा बोल दिया और जनसंघ आर॰एस॰एस॰, प्रेममार्गियों और जमआते इस्लामी जैसे घोर अवाम दुश्मनों से गठजोड़ करते हुए उन्हें जरा तकल्लुफ न हुआ। मार्क्सवादी कम्यूनिस्टों ने भी इस मोर्चे का साथ दिया।'[7]

उक्त संदर्भों से यह स्पष्ट है कि जनता की बुनियादी जरूरतों के लिए यदि ईश्वर से भी प्राप्त कोई विचार यदि बूरे और भ्रष्ट लोगों के द्वारा क्रियान्वित होगी तो वह निश्चय ही धरातल पर लोगों के पक्ष में खड़ी नहीं उतर सकती है। लेखक मध्यांतर में 'फैसला' नामक उपशीर्षक में कथित रूप से साहित्यिक-सामाजिक विचारकों पर भी घोर आपत्ति व्यक्त करते हुए निराशा से लिखते हैं–

'मुझे यह सोचकर शर्म आती है कि हिंदुस्तानी बुद्धिजीवियों ने इसके खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाई। कम्यूनिस्ट बुद्धिजीवी तो खुल्लमखुल्ला इमरजेंसी का साथ दे रहे थे और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास उन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा।'[8]

इसी उपन्यास के मध्यांतर में 'फैसला' उपशीर्षक में राही एक व्यक्ति के रूप में लोकतंत्र की लाज रखते हुए लोक के पक्ष में खड़े होकर प्रतीकात्मक रूप से अपना विरोध और असहमति रखकर यह उपन्यास 'कटरा बी आर्ज़ू' लिखते हैं, जो उस समय का दस्तावेज बन जाता है। लेखक इस उपन्यास के उद्देश्य के बारे में लिखते हैं–

'यह उपन्यास खत्म होने से पहले इमरजेंसी और उसके साथ कॉंग्रेस सरकारें भी खत्म हो चुकी थीं परंतु मेरे ख्याल में इस उपन्यास की जरूरत खत्म नहीं हुई है क्योंकि यह मेरे और इमरजेंसी के नाजायज़ तअल्लुकात की निशानी है। और इसका नाम फिर भी 'कटरा बी आर्ज़ू' ही है क्योंकि आर्ज़ू का मौसम खत्म नहीं हुआ है।'[9]

यह बात सही है कि 'आर्जुओं का मौसम' खत्म नहीं हुआ है। कॉंग्रेस की सरकारें खत्म हो जाती हैं। जनता पार्टी की सरकार सत्ता में आ जाती है। मगर कटरे का नेता बदलता नहीं है। गौरीशंकर पांडेय ही बना रहता है। जो गौरीशंकर पांडेय ने कॉंग्रेस में होते हुए संजय गांधी को अपने क्षेत्र में बुलाता है और सड़क चौड़ीकरण के बहाने के बुलडोजर से बिल्लो, बिल्लो की बेटी और उसी के साथ उसके सपनों का घर तबाह कर देता है।...वही गोरीशंकर पांडेय जनता पार्टी के

टिकट पर चुनाव लड़ता है एवं सत्ता में आने का जश्न मनाते हुए बिल्लो के ढहे हुए घर के पास से गुजरता है। विक्षिप्त देशराज उस जश्न में अपनी वैशाखी सँभाले शामिल होता है। नाचने-नारे लगाने के क्रम में उसकी बैसाखी गिर जाती है और 'जनता के प्रतीक' के रूप में देशराज एक सत्ताधीश के जीत के स्वागत जुलूस में उसके वाहन द्वारा कुचला चला जाता है।

निष्कर्ष : कुल मिलाकर 'कटरा बी आर्ज़ू' उपन्यास लोकतंत्र से लोक के बेदखली का आख्यान है। सत्ता में चाहे जो रहे, किंतु 'लोक' या 'जन' के अपने सवाल जस-के-तस बने रहते हैं। राही ने आपातकाल को भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में काला धब्बा जैसा चिह्नित किया है। उपन्यास में कथाकार का उद्‌देश्य केवल कहानी कहना ही नहीं है, बल्कि वे कथानक के हर मोड़ पर बडी ही बारीकी से हर पात्र के जरिए भारतीय समाज और राजनीति के अंतर्विरोधों को स्पष्ट भी करते हैं। लेखक तटस्थ भाव से लोगों के यातनामय संघर्षों का चित्रण करता है जिसमें दर्द का अहसास मिट जाता है–दर्द ही दवा बन जाता है। दर्द केवल बिल्लो और देशराज का ही नहीं, बल्कि सभी किरदार अपनी-अपनी मान्यताओं से मोहभंग के शिकार होते हैं। पात्रों का मोहभंग मृत्यु से भी अधिक पीड़ादाई है, जिसे देख-पढ़कर भारत के लोकतंत्र को समझा जा सकता है।

संदर्भ

1. रज़ा, राही मासूम, कटरा बी आर्ज़ू, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 11
2. वही, पृ॰ 11-12
3. वही, पृ॰ 58
4. वही, पृ॰ 77
5. वही, पृ॰ 25
6. वही, पृ॰ 32
7. वही, पृ॰ 111
8. वही, पृ॰ 112
9. वही, पृ॰ 112

द्वारा श्री संतोष कुमार ठाकुर
वार्ड नंबर 01, **गायत्रीनगर**
वी मार्ट के पास
जमालपुर, मुंगेर 811214 **(बिहार)**
मो॰ 9308746111

प्रेम का उदात्त रूप, 'तुम सर्दी की धूप'

स्मृति शुक्ला

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' हिंदी के बड़े रचनाकार इस अर्थ में है कि उन्होंने हिंदी की अनेक विधाओं में स्तरीय लेखन किया है। वे जितने अच्छे कथाकार हैं, उतने ही अच्छे कवि भी हैं। अब तक उनके तीन कविता-संग्रह 'अंजुरी-भर आशीष', 'मैं घर लौटा', 'तुम सर्दी की धूप' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं। 'तुम सर्दी की धूप' उनकी प्रेम-कविताओं का संग्रह है। प्रेम एक ऐसा पवित्र और उदात्त भाव है, जो मनुष्य के जीवन को बदल देता है। उसे कोमल, उदार और अधिक संवेदनशील बनाता है। पवित्र लौकिक प्रेम ही मनुष्य को अलौकिक प्रेम की यात्रा करा सकता है।

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने 'तुम सर्दी की धूप' संग्रह की भूमिका में लिखा है–'कविता मेरी जीवनरेखा है। मैं बिना खाए काफी देर तक रह सकता हूँ, लेकिन बिना साँस लिए नहीं रह सकता। कविता मेरे लिए यही साँसों का आना-जाना है।' जिस कवि के लिए कविता की अनिवार्यता साँसों की अनिवार्यता जितनी है अर्थात् जिसकी प्रत्येक आती-जाती साँस में कविता रची-बसी हो, वह कविता से कितना गहन अनुराग रखता है, यह हम अंदाजा लगा सकते हैं।

प्रेम को समर्पित 'सर्दी की धूप' में प्रेम को केंद्र में रखकर दोहे, मुक्तक, क्षणिकाएँ, हाइकु आदि के अतिरिक्त कविताएँ भी लिखी हैं। प्रेम के रसायन से सिक्त दोहों में कवि के प्रेमास्पद की सघन उपस्थिति है। काम्बोज जी प्रेमास्पद के प्रेम को वरदान सदृश मानते हैं। वे लिखते हैं–

मैं तुझमें ऐसे रहूँ, जैसे नीर-तरंग।
आए जो तूफान भी, नहीं छोड़ती संग।
मिलते हैं संसार में, सबको लाखों लोग।
तुमसे मिल जाएँ जिसे, यह केवल संयोग।

प्रेम की गहरी व्यंजना और प्रेम की पीड़ा को समेटे इन तीन सौ चौवन दोहों में भाव-प्रवणता है, अर्थ की गहनता और अनुभूति की तीव्रता है। कवि का प्रेम पवित्र है, उसके मन में कोई खोट नहीं है; इसलिए वह निडर और निशंक हैं। रामेश्वर काम्बोज प्यार को सिर्फ प्रतिदान मानते हैं, इसलिए कहते हैं–

प्यार सिर्फ प्रतिदान है, उजले मन की धूप।
रंग नहीं फीका पड़े, प्यार वही है रूप।

प्यार के रंग में रँगे हुए 74 मुक्तक संकलित हैं। इन मुक्तकों में प्रेम की विभिन्न अनुभूतियाँ हैं, कई रंग हैं। कहीं ये रंग चटक हैं तो कहीं हल्के हैं। कवि अपने प्रेमास्पद को पर्वत के ऊँचे शिखर से उपमित करता है और स्वयं को सागर की गहराई, प्रिय उषा है तो कवि उसकी परछाई। प्रेम में भौतिक दूरी कवि को विकल करती है, लेकिन कवि विरह में भी प्रिय के पास है। ईश्वर

 ISSN 0975-735X

का स्मरण करते हुए भी वह प्रिय के नेह में ही डूब जाता है। वह प्रेयसी के मानवीय रूप में ईश्वर के ही दर्शन करता है। यहाँ कवि का प्रेम उदात्त की उच्च भावभूमि को स्पर्श करने लगता है। प्रेम की अनन्यता में कवि अपने प्रत्येक सर्जन में प्रिय को ही पाता है–

प्राणों की विकल बाँसुरी से उमड़ा संगीत तुम्हीं हो,
वाणी की गंगा से निकला, वह पावन गीत तुम्हीं हो।
अभिशप्त अप्सरा स्वर्गलोक की, धरती पर उतरी हो।
प्राण सदा जिसको तरसे हैं, मेरी वह प्रीत तुम्हीं हो।

कवि का प्रेम निस्वार्थ है। वह केवल प्रिय का कल्याण चाहता है, उसे देना ही चाहता है, उसके सारे दुख-दर्द अपने ऊपर लेना चाहता है। लेकिन कई बार ऐसा नहीं भी हो पाया है। जयशंकर प्रसाद ने आँसू में लिखा है–'छलना थी तो भी था विश्वास घना' इस सघन विश्वास के कारण कवि को कई बार प्रवंचना भी मिली है जिससे कवि का मन दुखी भी हुआ है। कुछ इसी तरह के भाव व्यक्त करते हुए रामेश्वर जी ने लिखा है–

जिन पर हमने किया भरोसा, सारे भेद छुपाकर निकले,
खून-पसीने से जो सींचे, वे सब हमें मिटाकर निकले,
सारी उम्र गुजारी ऐसे, जब भीड़ मिली थी छलियों की,
तुमको हमने गागर समझा, पर तुम पूरे सागर निकले।

तमाम विश्वासघात और छल-कपट को झेलते हुए कवि आहत हुआ है, लेकिन लगता है कि अब कवि को अपने जीवन में देर से ही सही, सच्चा मीत मिल गया है।

'तुम सर्दी की धूप' के कविता खंड की कविताओं में भावों की गहराई, संवेदना की तरलता और अनुभूति की तीव्रता है। 'तुम ही तो हो' कविता में रामेश्वर काम्बोज ने प्रेमास्पद के आंतरिक और बाह्य सौंदर्य का बड़ा ही सजीव और हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। कवि यहाँ भी प्रेमास्पद के वन-उपवन में खुशबू बनकर प्राणों को सरस करना चाहता है। दूर रहकर भी प्रेयसी के द्वारे पर उजाले सजाना चाहता है। कवि इस यथार्थ से भी परिचित है कि सपने और अपने बहुत दुःख देते हैं। कवि को लगता कि दया, ममता, मानवीयता, करुणा जैसे भाव ही इस स्वार्थी संसार में दुख देते हैं या तो इन सभी को गहरे गड्ढे में दफन कर रोज-रोज भरा जाए या फिर किसी तयशुदा दिन का इंतजार किया जाए। कवि रामेश्वर काम्बोज को यह भान है कि भले ही वह कस्तूरी तुरंग की तरह अपने प्रेमास्पद को यहाँ-वहाँ खोजता फिर रहा है, लेकिन वह उसके हृदय में ही है।

क्षणिकाएँ और हाइकु भी प्रेम के रसायन में डूबे हुए हैं। प्रेम को बड़ी सुंदर परिभाषा कवि ने दी है–

प्रेम क्या है–
मुझको नहीं पता
तेरे न होने का मतलब
प्राण लापता, इतना जानता हूँ।

दरअसल, अनुभूति की सच्चाई इस संग्रह की कविताओं का प्राणतत्त्व है। निजी अनुभवों से जन्मी भावनाओं से सिक्त ये कविताएँ पाठक को व्यष्टि प्रेम से समष्टि प्रेम तक ले जाती हैं।

कवि की निजता में यदि सामाजिकता का समावेश न हो तो उसकी रचना की कोई मूल्यवत्ता नहीं होती। कवि रामेश्वर काम्बोज ने कवि के रूप में अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन बखूबी किया है, तभी वे कह पाए हैं–

मन की खाई को पार करें।
परहित सोचे और प्यार करें।
जब इस जग से जाना हो।
तब न मन में पछताना हो।

निस्संदेह, 'तुम सर्दी की धूप' कथ्य और शिल्प दोनों की स्तर पर हिंदी की एक श्रेष्ठ कृति ठहरती है। इन कविताओं में प्रेम की पीर है, मिलन की आकांक्षा है, प्रेमास्पद का रूप है, लेकिन इसके साथ ही मनुष्य के अनेक चेहरे उसकी कटुता, विरूपता, छल-कपट भी सामने हैं। इस संग्रह के दोहे, मुक्तक कविताएँ, हाइकु, माहिया और ताँका में गहरी भाव-प्रवणता है जो पाठक को भी भावनाओं की सरिता में आकंठ डुबोने का सामर्थ्य रखती है।

तुम सर्दी की धूप (काव्य-संग्रह): रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' , पृष्ठ : 140; मूल्य: 280 रुपए, संस्करण : 2018; प्रकाशक : अयन प्रकाशन, 1/ 20 , महरौली ,नई दिल्ली-110030

समीक्षक : डॉ॰ स्मृति शुक्ला, ए-16, पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर 482001

शचींद्र भटनागर के नवगीतों से गुजरते हुए

डॉ॰ रमेश तिवारी

एक रचनाकार अपने अतीत की ओर जब मुड़-मुड़ के देखता है तो उसे अपने जीवन की अच्छी-बुरी अनुकूल-प्रतिकूल अनुभूतियों और कृतियों का स्मरण हो आना स्वाभाविक है। 80 वर्षीय शचींद्र भटनागर का संग्रह 'त्रिवर्णी' इन्हीं कोशिशों का परिणाम है। इस संग्रह के प्रकाशन की पृष्ठभूमि से अवगत कराते हुए शचींद्र भटनागर कहते हैं कि 'खंड-खंड चाँदनी', 'हिरना लौट चलें', और 'ढाई आखर प्रेम के' संग्रहों के बहाने से अपने अतीत में घुसपैठ करने की कोशिश ही की है। इन तीनों संग्रहों की प्रतियाँ अब समाप्त हो गई हैं। पाठक मित्रों की माँग की पूर्ति के लिए अनुजसम मित्र डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की सलाह पर इन्हीं तीनों संग्रहों के प्रतिनिधि गीतों को त्रिवर्णी में संकलित कर प्रकाशित किया गया है। 'खंड-खंड चाँदनी' दिवंगत माँ की दूसरी पुण्यतिथि पर सन् 1973 में, 'हिरना लौट चलें' बहजोई प्रवास के दौरान (सन् 1970 से 1995 के दौरान), और 'ढाई आखर प्रेम के' विवाह की स्वर्णजयंती पर सहचरी कृष्णा को समर्पित है। इसमें संकलित गीतों का रचनाकाल सन् 1962 से 1995 के मध्य का है। इस संग्रह में 'खंड-खंड चाँदनी' से 18, 'हिरना लौट चलें' से 20, तथा 'ढाई आखर प्रेम के' से 16 गीत संकलित हैं।

यह संग्रह इस मायने में विशिष्ट है कि इसमें नवगीतों का संकलन है। नवगीत कविता से अलग कैसे हैं, क्या हैं, क्यों हैं? इन तमाम सवालों पर प्रकाश डालते हुए इस संग्रह की भूमिका लिखने का कार्य किया है डॉ॰ मधुकर अस्थाना ने। डॉ॰ अस्थाना नवगीतों की आवश्यकता और उनकी प्रासंगिकता पर विचार करते हुए लिखते हैं, 'जब इन्हीं गीतों से संवेदना, सामाजिक

 ISSN 0975-735X

सरोकार, लोकचेतना और यथार्थ के माध्यम से प्रगतिशीलता का बोध होने लगता है तो पारंपरिक सृजन के स्थान पर अपने समय से संवाद करता हुआ, वह प्रासंगिक बन जाता है तथा साधारण जन के जीवन-संघर्ष एवं जिजीविषा को आत्मसात कर, प्रतीक, बिंब, लोकभाषा, मिथक, सांकेतिकता के साथ नवगीत बन जाता है, जिसमें लक्षणा और व्यंजना में ही कथ्य को संप्रेषित किया जाता है। नवगीत और गीत, कविता आदि के अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ अस्थाना आगे लिखते हैं, 'नवगीत का उद्देश्य समय-संवेदना को संप्रेषणीय रूप में प्रस्तुत कर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान करना है, इसीलिए नवगीत लोकचेतना और लोकसंस्कृति को भी समाहित कर ऐसे कंटकाकीर्ण पथ पर चलता है, जिससे लहूलुहान होने की निरंतर आशंका बनी रहती है।' (वही, पृ॰ 7)

मैं अक्सर इस बात का उल्लेख करता रहता हूँ कि साहित्य हमें ताकत देता है। यदि जनसमूह को रचना से ताकत मिलती है तो मेरी दृष्टि में रचना लोकप्रिय और प्रासंगिक मानी जाएगी अन्यथा उसे मात्र वाणी का विलास ही कहा जाएगा। इससे विचार से सभी सहमत हों, यह जरूरी नहीं है। इसीलिए मैंने 'मेरी दृष्टि में' लिखा है। दूसरी बात यह कि जब रचनाकार दूरदर्शी दृष्टि से संपन्न होता है तो उसकी रचना में भी उस दूरदर्शिता की मौजूदगी अनिवार्य रूप से होगी। तो ऐसी स्थिति में जो समाज के सामने भविष्य में आनेवाला है उसे अपनी रचना के द्वारा रचनाकार बहुत पहले ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देने की क्षमता रखता है। इसी संदर्भ में प्रेमचंद ने साहित्य को समाज के आगे चलनेवाली मशाल कहा था। भक्तिकालीन साहित्य या अन्य कोई भी साहित्य इन्ही शर्तों पर दीर्घजीवी हो सकता है। ये वो कसौटियाँ हैं जिनके आधार पर हम किसी भी रचना का मूल्यांकन कर सकते हैं। इन कसौटियों को ध्यान में रखकर ही इस संग्रह का भी मूल्यांकन यहाँ किया जाएगा।

हमने देखा कि गुलाम भारत देश ने धीरे-धीरे संघर्ष करते हुए आजादी तो हासिल कर ली किंतु आजादी का स्वरूप वह नहीं रहा जो हमारे स्वाधीनता सेनानियों ने सोचा था। कुल मिलाकर सत्तासीन बदले किंतु व्यवस्था ज्यों-की-त्यों बनी रही। यानी सत्ता-परिवर्तन तो हुआ किंतु व्यवस्था-परिवर्तन का सपना अधूरा ही रहा। इससे जो विसंगतियाँ जन्मीं उन्हें नवगीतकार के रूप में शचींद्र भटनागर ने भली-भाँति देखा-समझा और अपनी रचनाओं का विषय बनाकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में 'बदलाव' शीर्षक नवगीत देखा जा सकता है—'लोग कहते हैं नया परिधान पहना है समय ने/ और सूरज/ बहुत ऊपर चढ़ गया है/ पर मुझे लगता कि सबको/ स्वप्न धोखा दे रहा है/ घोर दलदल बीच ही रथ अड़ गया है/ आदमी भीषण भँवर में पड़ गया है/ सभ्यता के ग्रंथ में पन्ने पुराने ही भरे हैं/ किंतु ऊपर आवरण बदला हुआ है।'(पृ॰ 29) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने पंचवटी में लिखा है—'कोई पास न रहने पर भी जन-मन मौन नहीं रहता/ आप-आप की है कहता वह आप-आप की है सुनता।' यहाँ एक रचनाकार के रूप में शचींद्र भी अपने जीवन संघर्षों से जूझते हुए विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए निरंतर स्वयं से ही प्रश्न पूछते हैं—'यह सब विपरीत क्रम चलेगा अब/ कितने दिन और!/ कैसा है समय/ कि अब मरुस्थल के नाम लिखा/ काम सजल बादल के मूल्यांकन करने का/ झुलसती जेठ की दुपहरी को श्रेय मिला/ धरा की दरारों को भरने का/ कसी जा रही है अब/ साँझ की कसौटी पर भोर की किरण/ बोलो यह घोर भ्रम चलेगा अब कितने दिन और!/ चार दिन बहारों की/ गलबाहीं पाने को/ हर उडती हुई

हवा संग मैं बहूँ कैसे/ एक सनातन सोंधी-सोंधी-सी गंध त्याग/ नए वेश बदलता रहूँ कैसे'(पृ॰ 30) बहुत साफ है कि रचनाकार मौसम और प्रकृति की तरह पल-पल अपने स्वार्थवश बदलने का पक्षधर नहीं है। हालाँकि उसकी यही सोच उसके जीवन-संघर्षों को बढ़ाने का कारण बनती है, फिर भी उसे अपने स्वभाव और व्यक्तित्व में परिवर्तन स्वीकार्य नहीं है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब यह जीवन-जगत ही नाशवान है, परिवर्तनशील है तो फिर इस नश्वर दुनिया में शाश्वत क्या है? इसका एक उत्तर है—परिवर्तन। परिवर्तन ही शाश्वत है इस दुनिया में। परिवर्तन का यह समय चक्र अपनी ही गति से चल रहा है। और कभी हमारे अनुकूल तो कभी प्रतिकूल होता चलता है। असल में अनुकूल-प्रतिकूल तो हमारी गढ़ी हुई परिभाषाएँ हैं, जो हमारे हानि-लाभ के आधार पर रची जाती हैं। भारतीय संस्कृति में परिवर्तन को स्पष्ट करने में प्रकृति की भी अद्‌भुत भूमिका है। यह सुविधा अन्य देशों में इतनी नहीं है जितनी हमारे देश में। हमारे यहाँ तो मौसम ही इतने हैं कि षड्ऋतु नाम प्रचलित है। भारतीय मौसम में वसंत के मौसम को ऋतुओं का राजा कहा गया है और शृंगार को रसों का। मैथिलकोकिल विद्यापति ने भी वसंत के आगमन पर लिखा है, 'आएल ऋतुपति राज बसंत।' शचींद्र ने भी अपने नवगीत 'आया ऋतुराज' में कुछ ऐसे ही भाव प्रकट किए हैं, 'टूट गई सारी रीतियाँ पुरानी/ बदल गए खोखले रिवाज/ बतलाने आया ऋतुराज।' (वही, पृ॰ 32) कहना होगा कि शचींद्र अपने परिवेश और प्रकृति को लेकर पूर्णतः सचेत और जागरूक हैं।

आज के मनुष्य की सबसे बड़ी पीड़ा यह है कि वह जो है वह होना नहीं चाहता और जो वह होना चाहता है वह हो नहीं पाता। इस 'होने' और 'ना हो पाने' के तनाव से उत्पन्न विसंगतिपूर्ण जीवन-स्थिति से हम सबको इसी जीवन में कभी न कभी गुजरना ही होता है। एक रचनाकार के रूप में शचींद्र इस प्रकार की पीड़ा को 'कस्बे का दर्द' शीर्षक रचना के द्वारा पाठकों तक पहुँचाते हैं 'मेरा दर्द कि मैं न गाँव ही रह पाया/ न शहर बन पाया/...सूख गया नयनों का पानी/ बढ़ता गया निरंतर मरुथल' (वही, पृ॰ 48) इन्हें तो बस जंगलों में भी उपवन की तलाश है—'जंगलों में भी कहीं/ उपवन मुझे मिल जाए बस यह कामना है/ जिंदगीभर बस इसी खोज में भागा फिरा हूँ।' (वही, पृ॰ 62) नवगीतकार की विशेषता यह है कि वह स्वयं को न तट का मानता है, न बहती धार का। वह तो स्वयं को नदी की मझधार के हवाले करने में यकीन रखता है। 'गतिरोध' शीर्षक रचना में वह कहता है—'मैं न तट का हूँ/ न बहती धार का हूँ/ मैं भँवर का जल हूँ।' (पृ॰ 65)

गौर से देखा जाए तो आज हम सब कहने को तो आधुनिक और उत्तर आधुनिक हो गए हैं किंतु इस आधुनिकता की असलियत क्या है? कभी इस पर विचार नहीं किया। इस पर विचार करना भी बहुत जरूरी है। इस झूठे दिखावे की कलई भी शचींद्र खोल देते हैं। 'ओढ़ी हुई आधुनिकता' में वे कहते हैं—'हमने पश्चिम की/ कुछ धुँधली छायाओं को/ वस्त्रों-सा ओढ़ा है/ द्रुत गति परिवर्तित होती/ जीवन शैली को/ उन सबसे जोड़ा है...कागज के फूलों-सी/ सभ्यता सजाकर/ हो गए आत्मगर्वित हम/ वैज्ञानिक दृष्टिकोण/ तर्कपूर्ण आचरण न कर पाए अर्जित हम/ केवल दीखे स्वर्णिम बाहर के आवरण/ पारस बन सका नहीं कोई अंतःकरण। (वही, पृ॰ 67-68) कृत्रिमता के इस आवरणयुक्त समाज के अंधे अनुकरण का ही यह प्रभाव है कि 'यहाँ मुस्कान अभिनय है/ रुदन भी है न स्वाभाविक/ यहाँ हर मौन कृत्रिम है।' (पृ॰ 69) शचींद्र इन सब आवरणयुक्त व्यवहार, दिखावे-भरे आचरण पर से पर्दा हटाने का काम करते हैं। यहाँ शचींद्र

की अभिलाषा का उल्लेख भी अनिवार्य है। 'अभिलाषा' शीर्षक नवगीत में वे लिखते हैं, 'मेरी अभिलाषा है/ सफर के समापन तक/ मुझे सजल शीतल-सा मेघ बना रहने दो/ मरुथल में, ऊसर में/ मस्जिद-गुरुद्वारे पर/ मंदिर पर, गिरजे पर बरस-बरस बहने दो/ पपड़ाई धरती का कोई भी कोना जब/ भीग-भीग जाएगा/ जब कोई खड़ी फसल खेतों में झूमेगी/ स्वेद में नहाई जब देह वायु चूमेगी/ तब मेरा अंतर्मन सात्विकी सुगंधों से खूब महमहाएगा (पृ॰ 72-73)

आज के इस आधुनिक-उत्तर आधुनिक समाज की एक असलियत और भी है। वह यह कि आज का समाज अपने दुःख से दुखी होने के बदले दूसरों के सुख से दुखी रहता है। जबकि होना यह चाहिए था कि वे दूसरों के दुःख से स्वयं को दुखी और सुख से सुखी महसूस करते। रचनाकार की सजगता का यह प्रमाण है कि वह इन नकारात्मक प्रवृत्तियों को लक्षित करना नहीं भूलता और निरंतर अपने नवगीतों में उनका उल्लेख करता है। 'जितना सब औरों के/ सुख से संतप्त हैं/ उतना वे द्रवित नहीं उनके क्रंदन से।'(पृ॰ 82) 'हिरना लौट चलें' में नवगीतकार के युवा दिनों की अनुभूति आज भी उसके भीतर उष्मा के उस अहसास को पुनर्जीवित कर देती है– 'हमें नहीं और अधिक है गिरना/ लौट चलें/...मीत यहाँ नहीं/ झरेगा मधुर पराग कभी/ लौट सकेंगे अब वे दिन फिर ना/ लौट चलें' (पृ॰ 84) इसी कड़ी में हम देखते हैं कि 'अवकाश नहीं' शीर्षक रचना भी एक उल्लेखनीय रचना है। इस रचना में नवगीतकार ने अपनी पक्षधरता और दृढ़ता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'सूख रहा कंठ/ होंठ पपड़ाए/ लेकिन अंजुरी भरने का अवकाश नहीं मिलता है/ नीर भरे कूलों को नमस्कार/ कैसी यह रहन/ जहाँ चलते ही रहना है/ जो कुछ भी मिले उसे चुप रहकर सहना है/ धूप हो अँधेरा हो/ रात हो सवेरा हो/ अथवा आकाश घने मेघों ने घेरा हो/ कभी-कभी छाहँ देख/ ललक-ललक जाता हूँ/ मन होता ठहरूँ/ विश्राम करूँ/ लेकिन कहीं ठहरने का अवकाश नहीं मिलता है/ सतरंगे दुकूलों को नमस्कार/ सारे अनुकूलों को नमस्कार' (पृ॰ 87)

आज का युग सूचना-प्रौद्योगिकी का है, विज्ञापन का है, प्रबंधन का है। भोग करो और भूल जाओ का है। यूज एंड थ्रो का है। आज का समाज हमें उपभोक्ता बना रहा है। यह कहना गलत नहीं होगा कि ये तमाम जुमले विदेशी और विशेषकर पश्चिम के विकसित देशों से आयातित हैं। इनमें से एक का भी मॉडल भारतीय नहीं है। यही हमारे बौद्धिक दिवालियापन का सबसे बड़ा प्रमाण है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम आज तक अपने देश की जरूरतों के मुताबिक विकास का कोई देशी मॉडल नहीं बना सके हैं। अब इंटरनेट आ गया है तो हम हर चीज गूगल गुरु के द्वारा पढ़ने, जानने को लालायित रहते हैं बिना इस बात की तस्दीक किए कि गूगल गुरु पर भी किसी-न-किसी व्यक्ति ने ही वह सूचना अपलोड की होगी और उसकी जानकारी गलत भी तो हो सकती है किंतु हमें तो बना-बनाया माल लपेटने की आदत लग चुकी है। नए सिरे से अपनी मेहनत के दम पर हासिल करने और अपना कोई मौलिक मॉडल दुनिया के सामने रखने का हमें साहस ही नहीं होता। एक तरफ इस उपभोक्तावादी संस्कृति के असर ने गाँवों से शहर की ओर पलायन की प्रवृत्ति को बढ़ाया है। तो दूसरी तरफ शहरों की आबादी भी बेतहाशा बढ़ी है। साथ-साथ कुछ दुर्गुण भी बढ़े हैं, शचींद्र इन सब पर निरंतर दृष्टि रखते हैं। आज के समाज में संबंधों की पोल खोलते हुए वे लिखते हैं, 'यहाँ स्वार्थ ही है/ संबंधों की सीमा/ एक वृत्त तक है स्वच्छंदों की सीमा/ हृदयों की नहीं मात्र अधरों की बातें हैं/ सारे-के-सारे अनुबंधों की सीमा/ इन सब सीमाओं को तोड़कर/ चलो चलें और कहीं उन्मन मन मेरे।'(पृ॰ 92) आज समय इतना बदल

चुका है कि किसी को किसी और के बारे में न तो सुनने की फुर्सत है, न ही जानने की। तभी तो रचनाकार लिखने को मजबूर है, 'यहाँ किसको समय है/ जो निहारे प्यार से भरकर/ तुम्हारी ओर पल भर भी/ तुम्हारी बात तो दूर है/ सुन पाता नहीं कोई/ स्वयं अपना मुखर स्वर भी।'(पृ॰ 107)

शचींद्र भटनागर की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे नकार से भी ताकत हासिल करने में सक्षम हैं–'मुझे तुम्हारी हर नकार से बहुत मिला है/ अनुभव, अथक मनोबल, साहस/ अविच्छिन्न आगे बढ़ने की चाह मिली है/ बिसराने के हर प्रयास ने/ मुझे पल्लवित किया प्रतिक्षण/ बस यह भूल हो गई तुमसे/ स्वयं अजनबीपन की धुन में/ तुमने मुझे अनन्य किया।'(पृ॰ 111-112) इस संग्रह की भूमिका में डॉ॰ अस्थाना ने बिलकुल ठीक लिखा है कि 'श्री शचींद्र भटनागर जी बनी-बनाई अन्य आचार्यों की परंपरा के अंधपोषक नहीं हैं। उन्होंने अपने गंतव्य की स्वयं खोज की है और तदनुसार पथ का निर्माण किया है। चिंतनविहीन सृजन से दूरी बनाकर प्रारंभ से अपनी रचनाओं की प्राण-प्रतिष्ठा नूतनता से ही करते रहे हैं।'(पृ॰ 8) निश्चय ही इस बहुमूल्य संग्रह के लिए शचींद्र भटनागर साधुवाद के हकदार हैं।

त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह), कवि : शचींद्र भटनागर, संस्करण-2015, पृष्ठ : 112, मूल्य: 300/- (सजिल्द), प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)

हमारा जीवन-संघर्ष और शचींद्र भटनागर के नवगीत

डॉ॰ रमेश तिवारी

'कुछ भी सहज नहीं' शचींद्र भटनागर का नवगीत-संग्रह है। इस संग्रह में संवेदना की ताजगी है, विचारों का मंथन है, मानवता का संघर्ष और क्रंदन है। परंपरा का अंधानुकरण न होकर नवीन विचारसंपन्न दृष्टि है। रचनाकार की दृष्टि दूर तक देखने में सक्षम है, यही कारण है कि यह नवगीतकार जो आगे घटित होनेवाला है, उसे भी अपने नवगीत के द्वारा पाठकों तक संप्रेषित कर उन्हें सावधान करने की भरपूर कोशिश करता है। प्राय: रचनाकारों की दृष्टि में वर्तमान और अतीत का ही चिंतन-विश्लेषण मिलता है। इस मायने में शचींद्र नितांत अलग हैं। उनकी दृष्टि वर्तमान और अतीत के स्थान पर वर्तमान और भविष्य पर अधिक केंद्रित है। कहना होगा कि वे अतीतोन्मुखी न होकर भविष्योन्मुखी हैं। यह शचींद्र की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो उनके दौर के विरले ही साहित्यकारों अथवा नवगीतकारों में देखने को मिलती है। इस संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें हमें अपने जीवन-संघर्षों के प्रतिबिंब भी दिखाई देते हैं। नवगीतकार की दृष्टि राजनीतिज्ञ, बुद्धिजीवी, किसान, मजदूर, ग्रामीण-शहरी, अमीर-गरीब सभी पर बारी-बारी से जाती है और अपनी जनपक्षधरता में कहीं भी शचींद्र दुविधाग्रस्त नहीं हैं। इसलिए इनके नवगीतों की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। वास्तव में आज हमें ऐसे ही नवगीतकारों की आवश्यकता है। जीवन के लगभग 80 वसंत देख चुके शचींद्र के समस्त अनुभव का निचोड़ देखना हो तो उनके इस संग्रह में देखा जा सकता है। पाठकों को उनके सवाल कि इस संग्रह में नया क्या है जो अन्य गीतकारों में नहीं है? जवाब होगा–'नयापन'

परंपराएँ जब आधुनिक जरूरतों को पूरा करने में अक्षम होने लगती हैं तब आधुनिकता के

दबाव स्वरूप कुछ नवीनताएँ अस्तित्व में आती हैं। प्राचीन-नवीन की यह रस्साकशी बहुत पुरानी है और दोनों का अस्तित्व उनकी उपयोगिता के सामर्थ्य पर ही टिका होता है। नवगीतकार भी अपने संग्रह में नवीनता को तवज्जो देता दिखाई पड़ता है। हम देखते हैं कि इस संग्रह में वो नयापन है जिसकी इस समाज को, हम सबको बहुत जरूरत है। कुछ उदाहरणों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। आप भी देखें और स्वयं फैसला लें–'चलें हम इस बार झोपड़पट्टियों में/ है अशिक्षा का/ वहाँ गहरा अँधेरा/ सभ्यता लेती नहीं/ उसमें बसेरा/ दिए बाती हैं/ बुझे लेकिन पड़े हैं/ चलें, भर दें स्नेह हम उनके दियों में/ रोशनी मिल जाए/ उन अभिशापितों को/ सभ्यता के राज्य से निर्वासितों को' (पृ॰ 59) तात्पर्य यह है कि ये नवगीत झोपड़पट्टियों में रह रहे अशिक्षित, अभिशापित, निर्वासित जनसमूहों के नारकीय जीवन को केंद्र में रखते हुए पाठकों का ध्यानाकर्षण चाहता है। आखिर इस ध्यानाकर्षण से नवगीतकार हासिल क्या करना चाहता है? नवगीतकार चाहता है कि सदियों से वंचित, दलित, उपेक्षित जनसमूह के नारकीय जीवन पर जब सामान्य और विशिष्ट दोनों जनसमूहों की दृष्टि जाएगी तो किसी-न-किसी में तो उनके संघर्षों के प्रति सहानुभूति का भाव जन्म लेगा, जो उनके जीवन संघर्षों को कुछ तो सरल बनाने की दिशा में पहल करने की कोशिश करेगा। हिंदी साहित्य में प्रगतिशील कविताओं में हम ये जनपक्षधरता देख चुके हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि इस नवगीतकार ने भी ऐसे ही साहित्य से प्रेरित-प्रभावित होकर नवगीत में इस दृष्टि का विकास करते हुए नए ढंग के साथ अपने दायित्वों को स्वीकार करने का साहस दिखाया है।

हम देखते हैं कि नवगीतकार जहाँ और जिधर भी देखता है उसे भ्रष्ट लोगों का ही बोलबाला दीखता है। 'उछाल' शीर्षक रचना देखें–'नहीं दूध के धुले कहीं भी/ मुंशी और मुहर्रिर दीखे/ बिके हुए अधिकारी, सेवक/ और दरोगा, मुखबिर दीखे/ कितने दिन तक/ चल पाएगी लोगों की खुदगर्जी बोलो।' (पृ॰ 60) कार्यालयी व्यवस्था का आलम यह है कि 'जो भारी थी जेब/ उसी का काम हुआ/...होती है हर जगह दलालों की लीला/ जो बिचौलिया बनकर काम कराते हैं/ सुविधाशुल्क जुटाते शासकदल का भी/ रौब दिखाकर नेताजी बन जाते हैं/...इनसे मिलकर सब संभव हो जाता है/ कोई दफ्तर हो, तहसील, कचहरी हो/ ऐसी कोई जगह नहीं/ इस धरती पर/ जिसके भीतर पहुँच न उनकी गहरी हो' (ननकू का आवेदन, पृ॰ 61) ऐसे दृश्य देखकर नवगीतकार को कहना पड़ता है–'बड़े-बड़े अधिकारी कुर्सी पर बैठे/ लगता है सबसे ज्यादा हैं मरभुक्खे' (पृ॰ 62)

आज राजनीति और अपराध के बीच अघोषित रिश्ता जुड़ गया है। पार्टी कोई भी हो इस रोग से मुक्त नहीं है। कुछ ऐसी भी पार्टियाँ हैं जिनमें लगता है सदस्यता हासिल करने का एकमात्र आधार आपराधिक पृष्ठभूमि होना ही है। ये राजनीति के पहरुए देश के जनप्रतिनिधि बनने के लिए हर गलत-सही हथकंडे अपनाते हैं और जब ये जनप्रतिनिधि चुन लिए जाते हैं तो जिनके वोटों पर चुने जाते हैं उनकी बातों को भी अनसुना करने में संकोच नहीं करते–'आगे जाओ, कौन सुनेगा/ यह तो है बस्ती बहरों की/ इस पथ पर सब अपनी कहते/ है अवकाश नहीं सुनने का/ उन्हें व्यसन है/ अपनी खातिर हर सुख, हर सुविधा चुनने का/' ...आज हमारे आसपास कहीं व्यापम है तो कहीं आईपीएल क्रिकेट फिक्सिंग का घोटाला है। इसमें छोटी-छोटी हस्तियों से लेकर मुख्यमंत्रियों और राजभवन के माननीय राज्यपाल तक की भूमिका पर सवाल उठ रहे हैं किंतु कोई

भी सच कहने-सुनने को राजी नहीं है। और तो और हालात इतने बुरे हो गए हैं कि जिसने व्हिसल ब्लोअर का काम किया, लोगों के सामने इन घोटालों को जगजाहिर करने का काम किया, आज उनकी ही जान को सबसे अधिक उन्ही अपराधियों से खतरा है।

शचींद्र भटनागर की विशेषता यह है कि वे इस तरह की घटनाओं को बहुत पहले ही अपने गीतों में रचकर पाठकों के सम्मुख रख देते हैं–'इस बस्ती के/ माननीय भी हैं नीचे गिर जाया करते/ तहकीकातों के घेरे में राजभवन तक आया करते/...हालत यह है कि ऊपरवाले बड़े चोर हैं/ छोटे भूतल पर रहते हैं/ सभ्य-शिष्ट हैं/ नहीं परस्पर एक-दूसरे की कहते हैं' (पृ॰ 64) नवगीतकार की दृष्टि बहुत साफ है। उसको कोई दुविधा नहीं है कि उसकी जनपक्षधरता के केंद्र में कौन है अमीर अथवा गरीब। शचींद्र साफ-साफ लिखते हैं–'उनके ऊँचे महल दुमहले/ हमें चाल भी नहीं मयस्सर/ बीती अपनी उमर/ देखते टूटी खाट, टपकता छप्पर/ बरसों बीते, बदल न पाए/ घर की फूटी हुई पतीली/ इस टूटी छाजन के नीचे/ बीती अपनी भरी जवानी/ बदल-बदलकर नेता आए/ लेकिन अपनी वही कहानी' (पृ॰ 70)

चुनाव के मौसम में पूँजीपति नेता आते हैं और गरीबों की बस्ती में साड़ी, कंबल बाँटते हैं, हैंडपंप लगवाते हैं, अपने हित में वोटों का ध्रुवीकरण करवाने के लिए दंगे भी करवाते हैं। पुलिस भी निर्दोष सत्याग्रहियों पर डंडे बरसाकर अपने कर्त्तव्य की खानापूर्ति कर लेती है। चारों तरफ दोहरी चालें ही चली जा रही हैं। ऐसे में कोई कैसे अच्छे हालातों के लिए उम्मीद कर सकता है। 'जिनको अपने गिरने पर ही/ लाज नहीं है/ वे स्वदेश का गौरव भला उठाएँ कैसे/ स्वामी चयन किया करता है/ भले-बुरे का/ हमने निंदियारी आँखों से/ चयन किया है/ दोष हमारा ही है/ यदि हमने कुपात्र को/ इस घर की रखवाली का/ अधिकार दिया है/ भरा हुआ हो लोभ/ दृष्टि में जिनकी हर पल/ घर को भला सुरक्षित वे रख पाएँ कैसे!' (पृ॰ 79) इन तमाम विसंगतियों के बावजूद शचींद्र ने उम्मीदों का दामन छोड़ा नहीं है। वे इस देश की परंपरा से पूरी तरह विमुख नहीं हैं बल्कि जो हमारी परंपरा की ताकत है उसका स्मरण रखते हुए पाठकों को भी स्मरण कराने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। 'संतों का वंशज' नवगीत इसी की परिणति है–'यह ऐसी धरती है/ जिसकी मिट्टी से/ कितने ही रैदास, कबीर जनमते हैं/ सेवा को जो/ सच्ची भक्ति समझते हैं/ भय से जिनके पद या सबद न थमते हैं' (पृ॰ 83)

इसी स्थिति को कबीरदास ने 'अनभै साँचा' नाम दिया था। अनभै यानी अनुभव से प्राप्त सच और अनभै का दूसरा अर्थ है निर्भय यानी निर्भय होकर कहा गया सच। शचींद्र भटनागर अपनी लेखनी पर जितना भरोसा करते हैं उतना ही वह उनके लिए गौरव का विषय भी है। उनका 'आत्मविश्वास' अटल है, पक्का है। उन्होंने जो कुछ भी इस दुनिया से अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया है वह सब वे अपने पाठकों को संपूर्णता में बाँटने में यकीन रखते हैं–'प्राप्त हमको जो हुई है धार/ उसका अंश/ अविरल बाँटते सबको रहेंगे/ लेखनी अपनी/ कभी बिकने न देंगे/ बात कुछ भी हो उसे निर्भय कहेंगे' (पृ॰ 105)

आज हमारे देश में 'बेटी बचाओ' की जो धूम मची है उसे बहुत पहले अपने नवगीत में शचींद्र ने प्रकट कर दिया है। 'पुत्रवधुएँ' शीर्षक नवगीत में वे लिखते हैं–'पुत्रवधुएँ भी/ किसी घर की दुलारी बेटियाँ हैं/ देखना ये दु:ख कभी पाने न पाएँ' (पृ॰ 116) रचनाकार भी हमारी-आपकी तरह एक सामान्य मनुष्य ही होता है इसलिए वह हमारी तरह कभी-कभी चिंतित भी होता है।

शचींद्र भटनागर भी इसके अपवाद नहीं हैं। 'चिंता' शीर्षक नवगीत इसका प्रमाण है–'राह दूर दिखती मंजिल की/ तय करनी है/ व्यवधानों पर हमको/ अभी विजय करनी है' (पृ॰ 117) हमारी तरह ही कभी-कभी रचनाकारों को भी निर्वसनयुक्त जीवनानुभूतियों से गुजरना पड़ता है। 'निर्वासन से मुक्ति' शीर्षक रचना में हमें यह भली-भाँति दिखाई देता है। 'खुली हवा में साँसें ली हैं/ बहुत घुटन के बाद/ गंधों की कुछ गमक मिली है/ गह्वर वन के बाद/ ...अंतहीन-सा/ लगता था/ वह भीषण रेगिस्तान/ भ्रमित किया करता था पल-पल/ सरवर का अनुमान/ ....मुक्ति मिली है आज हमें कुछ/ निर्वासन के बाद' (पृ॰ 119) रचनाकार ने अपनी प्रेरणा और ऊर्जा के श्रोत को भी अपने नवगीत में सदा स्मरण किया है। 'गरमाहट' शीर्षक रचना की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं– 'जब भी/ मंगल-पथ में/ मैंने खुद को/ समझा है एकाकी/ तब-तब देखी/ झलक तुम्हारी/ उस आलोकमयी/ छाया की' (पृ॰ 125)

अंतत: यदि संपूर्णता में देखा जाए तो शचींद्र भटनागर जी का जीवन अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं के सृजन-अनुभवों से भरपूर है। निस्संदेह आपका का जीवन ऐसे अनेकानेक अनुभवों के माणिक्यों को समाहित किए हुए है जिसकी खोज और प्राप्ति में हम जैसे सामान्यजनों को एक-एक जन्म लगाना पड़ सकता है और उसके बाद भी हमें ऐसे अनुभवों की प्राप्ति हो ही जाएगी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। जो कोई भी इस महान और विराट अनुभवफलक वाले व्यक्तित्व की सत्संगति प्राप्त करेगा वह मेरी बातों से अवश्य सहमत होगा। ऐसे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न शचींद्र भटनागर जी के नवगीतों को पढ़ना और उन पर अपनी सम्मतिस्वरूप लिखना मेरे लिए बड़े ही गौरव और सुखद अनुभूतियों का क्षण है। जीवन के इस पड़ाव पर पहुँचकर भी शचींद्र भटनागर ने अपने नवगीतों द्वारा समाज के जन-जन को प्रेरणा देने का जो सकारात्मक प्रयास किया है, उनके जीवन-संघर्षों में ताकत देने का कार्य किया है, इसके लिए पाठक जगत इनका सदा ऋणी रहेगा। इस महत्त्वपूर्ण संग्रह के लिए मैं आदरणीय शचींद्र भटनागर जी का अभिनंदन, वंदन और कोटि-कोटि नमन करता हूँ।

कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह), कवि : शचींद्र भटनागर, संस्करण : 2015, पृष्ठ 136, मूल्य 300/-(सजिल्द), प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ रमेश तिवारी
मो॰ 9868722444
ईमेल : tiwaridrramesh@gmail.com

मुहब्बत भी बग़ावत है

राजदीप कुमार

ग़ज़ल की रूह इश्क में बसती है, जबकि हिंदी ग़ज़ल की आत्मा समस्त मानवीय पीड़ाओं को आत्मसात् करती है। इस परिप्रेक्ष्य में हम इस समीक्ष्य कृति से गुजरते हैं तो उक्त कथन की सार्थकता सिद्ध होती प्रतीत होती है। संगृहीत तमाम ग़ज़लों में सघन अनुभूति की आर्द्रता, गहन मेघ के बीच तड़पती बिजली की विकलता बनकर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। प्यार की मधुरता तथा आतुरता, व्यक्ति और राज-समाज की विद्रूपता को जीतने की आशा, विश्वास और हौसले की सघन अभिव्यक्ति का एहसास संगृहीत लगभग समस्त ग़ज़लों में हम शिद्दत के साथ महसूस कर सकते हैं। कहने की कशिश और तग़ज़्ज़ुल तथा बहर की मर्यादा से मर्यादित ये ग़ज़लें चंदन जी को निश्चित रूप से भीड़ से अलग एक विशिष्ट ग़ज़लकार के रूप में स्थापित करती हैं। इसकी पुष्टि में हम चर्चित और स्थापित ग़ज़लकार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी की चंदन जी के बारे में कही उक्ति को उद्धृत करना चाहेंगे–डॉ॰ रामबहादुर चौधरी 'चंदन' की ग़ज़लों से गुजरते हुए यह अहसास बार-बार हुआ है कि उनमें ऐसा कुछ तो है जो उन्हें बार-बार पढ़ने को विवश करता है। 'चंदन' जी की ये ग़ज़लें मेरे मन के बहुत समीप हैं। मुझे विश्वास है कि आप भी इन्हें अपनी भावनाओं के बहुत पास पाएँगे।'

ग़ज़ल आज की सर्वाधिक लोकप्रिय नाजुक विधा है। इसके शेर में वह शक्ति होती है, जो श्रोता या पाठक के अंदर वे वाह निकाल लेती है, बशर्ते कि वह शेर, शेर हो जो सबके वश की बात नहीं है। इसके लिए अनुभूति का परिपक्व एहसास और साधना की दीर्घता के कहने की सुदृढ़ शक्ति भी नितांत अपेक्षित है। इसके अभाव में शेर सियार बनकर रह जाता है। ऐसे शेर की कसौटी के लिए चंदन जी का यह शेर मील-स्तंभ के के समान चर्चित है–

पहेली सी लगे लेकिन हकीकत है यही चंदन
ग़ज़ल में शेर होते हैं मगर जंगल नहीं होता।

ग़ज़ल की इस परिभाषा के आलोक में जब हम प्रस्तुत समीक्ष्य कृति 'मुहब्बत भी बगावत है' की सारी ग़ज़लों को परखते हैं तो लगभग सारी ग़ज़लें खरी उतरती हैं। सर्वप्रथम तो संग्रह का शीर्षक ही ध्वन्यात्मकता और व्यंजनात्मकता को समेटे हुए है। परस्पर विरोधी भाव को साथ रखकर पानी में छिपी आग का एहसास कराने की इसमें सफल चेष्टा की गई है। यह सुंदर कन्ट्रास्ट देखकर मुँह से बरबस वाह निकल जाता है। देखें–

मुहब्बत भी बगावत है कभी करके जरा देखो
चढ़े हैं जो मुलम्में हम पे सारे छूट जाते हैं।

इस तरह हम जब संगृहीत ग़ज़लों में डूबते हैं तो इन ग़ज़लों के कई शेड्स बनते हैं, जिनमें व्यक्ति, समाज, राज और राजनीति के अलावा आधुनिकता, देश-प्रेम, मानवीयता, प्रेम की

 ISSN 0975-735X

उदात्तता, प्राकृतिक और सामाजिक प्रदूषण आदि जीवन के विभिन्न आयामों को नवीन सांकेतिक प्रतीकों, बिंबों द्वारा जीवन संदर्भ से जोड़ने की अप्रतिम कोशिश की गई है, जो इन ग़ज़लों को विशिष्टता प्रदान करती है। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियों को हम देखें जो बूँद में समुद्र का एहसास कराती हैं–

प्यार गूँगा है मगर बहरा नहीं है
यह खुदा जिसका कोई चेहरा नहीं है।

जमीं से आसमां तक प्यार फैला है फिज़ाओं में
सिमट जाना कहीं भी प्यार की फ़ितरत नहीं होती।

रंगीन हो गया है सारा नया जमाना
जाएँ कहाँ बचाने ऐसे में सादगी को।

आँखें खुली तो देखते ही भोर की किरण
गूँगे निकल पड़े हैं जुबाँ की तलाश में।

हमारे हक का अब बोलो हिसाब कब होगा
सवाल जिंदगी का है जवाब का होगा।

सारांशत: संग्रह की लगभग सभी ग़ज़लें सूक्ति के समान पठनीय ही नहीं, जीवनदायी भी हैं। इनकी गेयता और रवानी हमें प्रभावित ही नहीं करती, बल्कि चेतना को जगाकर ऐसे लोक में ले जाती है, जहाँ कोई विद्रूपता नहीं, बस आनंद ही आनंद है। यही इसकी सार्थकता भी है।

हाँ, कुछ जगहों पर प्रूफ की अशुद्धियाँ बासमती चावल में कंकड़ के समान जरूर खटकती हैं, जिन्हें थोड़ी सावधानी से दूर किया जा सकता था। वैसे कुल मिलाकर यह संग्रह आपको बहुत सुकून देगा। इसकी ग़ज़लें आपके लिए स्मरणीय हो जाएँगी, ऐसा मेरा विश्वास है। आप एक बार इसे जरूर पढ़ें।

मुहब्बत भी बग़ावत है (ग़ज़ल-संग्रह), ग़ज़लकार : डॉ॰ रामबहादुर चौधरी 'चंदन', पता–फुलकिया, बरियारपुर, मुंगेर (बिहार) 811211, मो॰ 9204636510; मूल्य : दो सौ रुपए, प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)

राजदीप कुमार
हिंदी विभाग
टाउन इंटरस्तरीय विद्यालय
मुंगेर 811006 **बिहार**
मो॰ 8409666925

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00
● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
हिंदी शोध : नई दृष्टि	800.00
हिंदी शोध के नए प्रतिमान	800.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
शोधसंदर्भ-भाग-6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00

रचनावली

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-1 (कविता खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-2 (कविता खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-3 (कविता खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-4 (कविता खंड चार)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-5 (निबंध खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-6 (उपन्यास खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-7 (उपन्यास खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-8 (उपन्यास खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-9 (उपन्यास-नाटक खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-10 (कहानी खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-11 (निबंध-डायरी खंड)	1000.00
डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया (संपादक)	
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह)	700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) 700.00

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल (संपादक)

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (एक) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दो) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (तीन) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (चार) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (पाँच) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (छह) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (सात) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (आठ) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (नौ) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दस) 950.00

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (ग्यारह) 500.00

प्रहलाद तिवारी समग्र

मेरी समग्र कविताएँ • **प्रहलाद तिवारी** 800.00

मेरी समग्र कहानियाँ • **प्रहलाद तिवारी** 800.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड एक • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड दो • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड तीन • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड चार • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड पाँच • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड छह • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड सात • **प्रहलाद तिवारी** 850.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00

हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 500.00

सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 200.00

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा** 150.00

फिल्म संगीत, संस्कृति और समाज • **नवलकिशोर शर्मा** 350.00

आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेंद्र उपाध्याय** 300.00

डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर** 500.00

अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल** 400.00

नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति** 450.00

राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00

भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00

मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 150.00

मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी** 300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार** 250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰** 250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 350.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान
• **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा** 350.00
हिंदी ग़ज़ल और डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल • **डॉ॰ पूनम अग्रवाल** 595.00
ग़ज़ल संस्कृति और भीतर शोर बहुत है • **भागीनाथ वाकले** 400.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़लों में आशावाद के स्वर • **डॉ॰ दीपक पाटिल** 600.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा •
डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी 450.00
हिंदी कथासाहित्य में नारी-विमर्श • **प्रा॰ अमृता भरत पाटिल** 540.00
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ • **डॉ॰ शंकर क्षेम** 150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • **अनिरुद्ध सिन्हा** 150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • **डॉ॰ ज्योति व्यास** 150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • **डॉ॰ लालबहादुर रावल** 300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • **डॉ॰ अशोककुमार** 350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00
साहित्य और संस्कृति • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • **विनोदचंद्र पांडेय** 300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान • **डॉ॰ स्वाति शर्मा** 450.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन** 300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात** 495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • **रवींद्र प्रभात** 300.00
सूरदास का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु** 250.00
हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु** 500.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • **डॉ॰ मीनल रश्मि** 250.00
समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना • **डॉ॰ शीला गहलौत** 500.00
संत रविदास • **डॉ॰ सुदेश कुमारी** 300.00
हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ •
डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि 500.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • **डॉ॰ शुचि गुप्ता** 300.00

मुक्तिबोध का रचना-संसार ● **डॉ॰ शिवशंकर लधवे** 200.00
नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक ● **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना ● **डॉ॰ अनीता रानी** 400.00
सृजन और साहित्य ● **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 400.00
हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ● **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 500.00
उत्तर आधुनिक निबंध ● **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 450.00
इक्कीसवीं शताब्दी की कविता ● **राजेंद्र मिश्र** 550.00
राजेन्द्र मिश्र : सृजन-यात्रा ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 650.00
समालोचना के फलक ● **डॉ॰ बागेश्री चक्रधर** 300.00
शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथासाहित्य ● **डॉ॰ शशिप्रभा** 450.00
ललित निबंध : परंपरा और चिंतन ● **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
ललित निबंधकार डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे ● **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़ल दृष्टि ● **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
हिंदी कहानी के नए प्रतिमान ● **डॉ॰ अभयकुमार खैरनार** 500.00
हिंदी नाटक के नए प्रतिमान ● **डॉ॰ मनोजकुमार** 400.00
हिंदी उपन्यास के नए प्रतिमान ● **डॉ॰ जसपालसिंह वळवी** 550.00
दलित-विमर्श और हिंदी साहित्य ● **डॉ॰ जसपालसिंह वळवी** 450.00
जनसंख्या अवधारणा एवं लैंगिक संरचना ● **डॉ॰ विश्वनाथ पांडेय** 500.00
भारत में सांप्रदायिक सद्भाव ● **डॉ॰ गीता यादव** 500.00
एक इंद्रधनुषी व्यक्तित्व : आदित्य प्रचंडिया ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 600.00
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल ● **डॉ॰ रमेश तिवारी** 400.00
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य ● **डॉ॰ शेरजंग गर्ग** 700.00
कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की ● **डॉ॰ हरीश नवल** 300.00
प्रेम जनमेजय के व्यंग्य साहित्य में
सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना ● **डॉ॰ साधना झा** 700.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद ● **डॉ॰ आशा रावत** 350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य ● **डॉ॰ प्रेम जनमेजय** 500.00
राष्ट्रीयता, संस्कृति और साहित्य ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 700.00
हिंसा तेरे रूप अनेक ● **निश्तर खानकाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 400.00
आधी आबादी का सच ● **निश्तर खानकाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, मीना अग्रवाल** 550.00
साहित्यिक निबंध : मूल्य और मूल्यांकन ● **डॉ॰ निशा तिवारी** 400.00
विमर्श विविधा ● **डॉ॰ निशा तिवारी** 500.00
जनमानस के पक्षधर हिंदी नुक्कड़ नाटक ● **डॉ॰ पी॰वी॰ कोटमे** 400.00
समकालीन साहित्य की दिशाएँ ● **डॉ॰ रमेश तिवारी** 400.00
साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 400.00
मोक्षशास्त्र का माहात्म्य ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 400.00

भावों के शिलालेख • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	350.00
विचार और बोध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	300.00
आस्था के शिलापंख • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	220.00
साहित्य और शोध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	550.00
समीक्षा के वातायन • **डॉ॰ अलका प्रचण्डिया**	450.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया: व्यक्ति और स्रष्टा • **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	450.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया : साहित्य और सृजन • **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	600.00
साहित्य की परख • **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	450.00
डॉ॰ निशंक की सृजन यात्रा • **डॉ॰ नागेंद्र ध्यानी 'अरुण'**	400.00
डॉ॰ निशंक की कहानियों में मानवीय संवेदना • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	300.00
डॉ॰ निशंक के उपन्यासों में जीवन-दर्शन • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	300.00
डॉ॰ निशंक के काव्य में इंद्रधनुषी चिंतन • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	250.00
डॉ॰ निशंक का प्रेरणामूलक चिंतन • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	250.00
डॉ॰ निशंक का सृजनात्मक चिंतन • **डॉ॰ योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	250.00

लोकसाहित्य

लोकरंगमंच के विविध आयाम • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	200.00
लोकनाट्य सांग : कल और आज • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	700.00
लोकज्ञान की मंजूषा • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	450.00
विश्वगुरु भारत • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	700.00
हरियाणा के लोकगायक • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	400.00
हरियाणा के लोककवि • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	300.00
विश्वगुरु भारत • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	700.00
देवबंद की स्वांग-परंपरा • **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा**	200.00
रुहेलखंड के परंपरागत लोकगीत • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00

हास्य-व्यंग्य

काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00

 ISSN 0975-735X

आदमी और कुत्ते की नाक ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र ●	**गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ ●	**गिरीश पंकज**	250.00
भज्जी का जूता ●	**महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा ●	**महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
वीरप्पन की मूँछें ●	**महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
फ्राडियर और नीम पागल ●	**महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा ●	**पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
नो टेंशन ●	**डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	200.00
पैसे कहाँ से दें ●	**डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह ●	**डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र ●	**महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए ●	**अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए ●	**अशोक चक्रधर**	100.00
नमस्ते जी ●	**डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है ●	**डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी ●	**डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य ●	**डॉ॰ शिव शर्मा**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) ●	**डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अपने-अपने भस्मासुर ●	**डॉ॰ शिव शर्मा**	250.00
प्रतिनिधि व्यंग्य ●	**दामोदरदत्त दीक्षित**	200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते ●	**मधुप पांडेय**	200.00
धमकीबाजी के युग में ●	**निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
ला ख़र्चा निकाल ●	**गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें ●	**गजेंद्र तिवारी**	200.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं ●	**सूर्यकुमार पांडेय**	100.00
ये है इंडिया ●	**डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	220.00
आँखों देखा हाल ●	**डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	250.00
सच का सामना ●	**हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे ●	**डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00
देवेंद्र के कार्टून ●	**देवेंद्र शर्मा**	200.00
कार्टून कौतुक ●	**देवेंद्र शर्मा**	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र ●	**डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा**	200.00

अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान**	200.00
जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
विलायतीराम पांडेय • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
नो कमेंट • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00
सावधान पुलिस मंच पर है • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00
चुनिंदा व्यंग्य : आलोक पुराणिक • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : आशा रावत • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गिरिराजशरण अग्रवाल • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गोपाल चतुर्वेदी • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : प्रेम जनमेजय • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : महेशचंद्र द्विवेदी • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : श्रवणकुमार उर्मलिया • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुभाष चंदर • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुशील सिद्धार्थ • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : हरीशकुमार सिंह • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : वागीश सारस्वत • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
राजेंद्र सहगल के चुनिंदा व्यंग्य • **राजेंद्र सहगल**	300.00
रमेशचंद्र खरे के श्रेष्ठ व्यंग्य • **रमेशचंद्र खरे**	350.00
अनंत-हसंत • **राजेश अरोरा 'शलभ'**	300.00
कारनामा • **राजेश अरोरा 'शलभ'**	300.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक थी माया • **विजयकुमार**	200.00
अमृत वृद्धाश्रम • **विजयकुमार**	350.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल**	200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान**	250.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज**	200.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	250.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल**	150.00
क्या अच्छा क्या बुरा • **मीना अग्रवाल**	200.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी**	200.00
एक बौना मानव •**महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
इमराना हाशिर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी**	200.00

कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता** 120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा** 150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा** 150.00
कहानियाँ अमेरिका से • **सं॰ इला प्रसाद** 150.00
अंतराल • **संगीता** 200.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका** 150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'** 150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • **सं॰ देवी नागरानी** 200.00
दर्द की एक गाथा • **सं॰ देवी नागरानी** 300.00
भाँति-भाँति की मानुसी • **अंशु त्रिपाठी** 250.00
लड़की हँस रही है • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
आजकालीन कहानियाँ • **राजेंद्र मिश्र** 400.00
भूगोल के जख़्म • **राजेंद्र मिश्र** 350.00
आत्मकथा का कोलाज • **नीलम चतुर्वेदी** 200.00
आ से आजादी • **नीलम चतुर्वेदी** 300.00
ऐसा प्यार कहाँ • **नीतू मुकुल** 250.00
रेल कहानियाँ • **कृपासागर साहू** 300.00
डस्टबिन एवं अन्य कहानियाँ • **डॉ॰ अखिलेश पालरिया** 300.00
पुजारिन एवं अन्य कहानियाँ • **डॉ॰ अखिलेश पालरिया** 250.00
डॉ॰ अखिलेश पालरिया की चुनिंदा कहानियाँ • **पुष्पा पालरिया** 525.00
साइबर मैन (लघुकथाएँ) • **सुकेश साहनी** 250.00
जब तक जिंदा हैं • **कुँवर दिनेश** 220.00
नदी के किनारे • **आदित्य प्रचण्डिया** 300.00
आस्था के फूल (लघुकथाएँ) • **आदित्य प्रचण्डिया** 300.00
मेरी प्रारंभिक कहानियाँ • **रमेश पोखरियाल निशंक** 350.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • **राजेन्द्र मिश्र** 450.00
अपनी परिधि में • **राजेन्द्र मिश्र** 550.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 100.00
तीन बीघा ज़मीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
कुल का चिराग • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
नया सवेरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
जागृति • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 450.00
जीवन पथ • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 300.00

धूप-छाँव ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	300.00
कालचक्र से परे ●**श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
शांतिधाम ● **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	250.00
भीगे पंख ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
मानिला की योगिनी ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
और लहरें उफनती रहीं ● **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी ● **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
एक चेहरे की कहानी ● **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा ● **प्रेमसागर तिवारी**	250.00
रोशनी का पहरा ● **डॉ॰ आरती लोकेश**	300.00
विस्थापित ● **प्रहलाद तिवारी**	550.00

एकांकी-नाटक

● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
बच्चों के अनोखे नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला ● **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
संस्कार एवं अन्य नाटक ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	300.00
दमन ● **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
औरत की जंग ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00

प्रजापथ ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00
दृश्य होती कहानियाँ ● **राजेन्द्र मिश्र**	400.00
सूखा पत्ता पीपल का ● **डॉ॰ सुरेंद्र यादव**	300.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले ● **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन ● **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है ● **बाबूसिंह चौहान**	60.00
मकड़जाल में आदमी ● **बाबूसिंह चौहान**	80.00
उफनती नदियों के सामने ● **बाबूसिंह चौहान**	100.00
अनुभव के पंख ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत**	250.00
मेरे साक्षात्कार ● **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
आधी हकीकत आधा फसाना ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फूलों की महक ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
संवाद साहित्यकारों से ● **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया**	200.00

गीत-कविता

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	500.00
कोई आवाज़ देता है ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
दिन दिवंगत हुए ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
कुँअर बेचैन के नवगीत ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
पर्स पर तितली (हाइकु) ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
मातृभूमि के लिए ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	200.00
संघर्ष जारी है ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	170.00
जीवन-पथ में ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
देश हम जलने न देंगे ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
झरनों का तराना है ● **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
अहसासों के ताने-बाने ● **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
समय के भूगोल में ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
असाबिया ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
आठवाँ राग ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
हवाएँ ख़ामोश हैं ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
सदियाँ गुज़र रही हैं ● **राजेंद्र मिश्र**	300.00
शब्द ही नहीं हैं ● **राजेंद्र मिश्र**	300.00

सप्त स्वर ● **राजेंद्र मिश्र**	400.00
आपातकालीन कविताएँ ● **राजेंद्र मिश्र**	300.00
आजकालीन कविताएँ ● **राजेंद्र मिश्र**	450.00
आजकालीन लंबी कविताएँ ● **राजेंद्र मिश्र**	400.00
अनंग (लंबी कविता) ● **राजेंद्र मिश्र**	250.00
आतंक के खिलाफ (कश्मीर पर कविताएँ) ● **राजेंद्र मिश्र**	400.00
कोरोना से जंग ● **राजेंद्र मिश्र**	300.00
शमा हर रंग में जलती है ● **रामेश्वरप्रसाद**	150.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
संकल्पों के शंख (दोहा) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी ● **गीतिका गोयल**	150.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) ● **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) ● **रमेश कौशिक**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) ● **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) ● **डॉ॰ आकुल**	120.00
असितचंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) ● **डॉ॰ आकुल**	120.00
अग्निसुता ● **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी ● **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से ● **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) ● **शचींद्र भटनागर**	250.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) ● **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) ● **शचींद्र भटनागर**	200.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) ● **शचींद्र भटनागर**	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) ● **शचींद्र भटनागर**	200.00
युवाओं के गीत ● **शचींद्र भटनागर**	400.00
तारा प्रकाश समग्र ● **तारा प्रकाश**	600.00
उजियारा आशाओं का ● **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की ● **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है ● **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष ● **तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग ● **तारा प्रकाश**	200.00
सुरों के ख़त ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00

सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00
धूप अपनेपन की (मुक्तक-संग्रह) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00
एक मुट्ठी धूप ● **नीरजा सिंह** 100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर ● **डॉ॰ कमल मुसद्दी** 150.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
मानव तू जग में सुंदरतम ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 150.00
भीतर का संगीत (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहे) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहे) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
युगस्रष्टा स्वामी रामानंद (महाकाव्य) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 200.00
ईश्वर में विश्वास ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 200.00
अनजाने आकाश में ● **महेशचंद्र द्विवेदी** 170.00
बातें कुछ अनकही ● **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
मैंने देखा है ● **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
हौसला तो है ● **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
जिंदगी रुकती नहीं ● **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ ● **नवलकिशोर शर्मा** 180.00
जब चाँद डूब रहा था ● **नवलकिशोर शर्मा** 200.00
एड्स शतक ● **पूरणसिंह सैनी** 150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) ● **पूरणसिंह सैनी** 300.00
श्रीकृष्णचरित (महाकाव्य) ● **पूरणसिंह सैनी** 800.00
राष्ट्र-शक्ति ● **सलेकचंद संगल** 150.00
माँ तुझे प्रणाम ● **सलेकचंद संगल** 150.00
लहरों के विरुद्ध ● **डॉ॰ रामप्रकाश** 200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता ● **महेंद्र कुमार** 200.00
पीड़ा का राजमहल ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल** 200.00

मैं एक समुद्र ●	**डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**	200.00
उड़ान जारी है ●	**विनोद भृंग**	200.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) ●	**हरिराम पथिक**	200.00
जो जिया वो रचा (मुक्तक-संग्रह) ●	**हरिराम पथिक**	200.00
धनुषभंजक राम ●	**चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
आवाज सुनो (हाइकु) ●	**चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
दरिया मोहब्बत का ●	**चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
गीत मैं बन गया ●	**चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
एक कुल्हड़ चाय ●	**स्वर्ण ज्योति**	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी ●	**रामेश्वर वैष्णव**	150.00
रात ●	**दामोदर खड़से**	200.00
स्मृतियाँ ●	**सुषमा अग्रवाल**	200.00
कविताएँ फेसबुक से ●	**लालित्य ललित**	200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं ●	**लालित्य ललित**	200.00
बचे रहेंगे केवल शब्द ●	**लालित्य ललित**	200.00
मेरे लिए तुम्हारा होना ●	**लालित्य ललित**	250.00
सब पता है ●	**लालित्य ललित**	250.00
आँगन घर में टहलेगा ●	**लालित्य ललित**	250.00
घर उदास है ●	**लालित्य ललित**	300.00
अपने में से तुम्हें देखना ●	**लालित्य ललित**	200.00
आदत सी तुम्हारी ●	**लालित्य ललित**	250.00
चुप्पी में से उद्घोष ●	**लालित्य ललित**	300.00
चुप हैं शब्द और उनके अर्थ ●	**लालित्य ललित**	200.00
कभी सोचता हूँ कि ●	**लालित्य ललित**	250.00
इतना होने के बाद भी●	**लालित्य ललित**	250.00
विरमाल गीत समग्र ●	**सं॰ डॉ॰ पंकज विरमाल**	500.00
विस्थापित मन ●	**आस्था नवल**	200.00
रंगारंग कविताएँ ●	**बलवंत रंगीला**	300.00
सिद्धांत सतसई ●	**डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया/संपादन डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	300.00
क़तरा-क़तरा सागर ●	**प्रेमसागर कालिया**	300.00
श्रीमद्भगवद्गीता (पंजाबी कविता अनुवाद) ●	**अनुवादक प्रेमसागर कालिया**	200.00
कविताओं के मन से ●	**विजयकुमार**	495.00
सोच की चिंगारियाँ ●	**चमनलाल**	200.00
मेरी समग्र कविताएँ ●	**प्रहलाद तिवारी**	950.00
शब्द-यात्रा ●	**प्रहलाद तिवारी**	200.00
कवि नहीं हूँ, फिर भी ●	**डॉ॰ सुरेंद्र यादव**	400.00

ISSN 0975-735X

अनुनर्तन : बिन तुम्हारे ● **डॉ॰ सुरेंद्र यादव**		350.00
माट्टी की आवाज ● **रामकुमार आत्रेय**		250.00
परस चिन्मयी ● **महेंद्र शर्मा**		200.00
मेघ संचार ● **पवित्र मोहन दाश**		250.00
शब्द-यात्रा ● **प्रहलाद तिवारी**		200.00
तुमसे उजियारा है (माहिया-संग्रह) ● **डॉ॰ ज्योत्स्ना शर्मा**		240.00
संस्तवन ● **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**		200.00
कितने रूप कितने रंग ● **आदित्य प्रचण्डिया**		300.00
स्पंदन मन का ● **योगेंद्र सोनगरिया**		300.00
मेरी लेखनी की ज़ुबानी ● **प्रमोद जोशी**		250.00
बंद कर लो द्वार ● **रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'**		250.00

ग़ज़ल-संग्रह

ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
ख़ुशबू सा बिखर जाऊँगा (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) ● **रामगोपाल भारतीय**	100.00
ज़िंदगी गाती तो है/ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) ● **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल ख़ुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) ● **कर्नल तिलकराज**	200.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) ● **कर्नल तिलकराज**	200.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) ● **शचींद्र भटनागर**	250.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) ● **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **मनोज अबोध**	150.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00

मुहब्बत भी बगावत है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ रामबहादुर चौधरी चंदन**	200.00
समकालीन महिला ग़ज़लकार ● **हरेराम 'समीप'**	300.00
अब मोहब्बत हम करें ● **डॉ॰ राजेंद्र सिंह**	300.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन ● **काका हाथरसी**	300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक ● **धर्मेन्द्र उपाध्याय**	250.00
आत्मसरोवर ● **ओम्प्रकाश अग्रवाल**	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
स्विट्जरलैंड के वे 21 दिन ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कुछ अपनी कुछ जगबीती ● **नीरजा द्विवेदी**	250.00
विलक्षण अनुभूतियाँ ● **नीरजा द्विवेदी**	300.00
अतीत की परछाइयाँ ● **नीरजा द्विवेदी**	240.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	280.00
फ्राडियर और नीम हकीम ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	230.00
सफ़र साठ साल का ● **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)**	400.00
यादों की गुल्लक ● **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)**	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
मेरे साक्षात्कार ● **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
संवाद : साहित्यकारों से ● **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'**	200.00
उत्तरोत्तर ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
श्रद्धांजलि ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
सवालों के सामने ● **राजेन्द्र मिश्र**	400.00

बाल-साहित्य

गधा बत्तीसी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
चिड़ियों की दुनिया रंगीन ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
कविताओं में पंचतंत्र ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
मैं भी स्कूल जाऊँगी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्ही-मुन्नी बाल ग़ज़लें ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
दादी-नानी कहें कहानी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	120.00
अस्सी-नब्बे पूरे सौ ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	120.00
ऐसा कैसे हुआ ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	120.00
Tiny -Tots in Forest ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
Adventures of the Laughing Donkey ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00

चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल** 200.00
बातूनी कहानियाँ • **गीतिका गोयल** 200.00
धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी** 200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग** 200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग** 200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत • **बालकृष्ण गर्ग** 500.00
किशोर मन की कहानियाँ • **डॉ॰ सरला अग्रवाल** 200.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध** 200.00
मानव-विकास की कहानी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
पार्टी गेम्स • **चाँदनी कक्कड़** 125.00
कागज की नाव • **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ** 200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ • **डॉ॰ अशोक कुमार** 200.00
भारतीय लोकजीवन की कहानियाँ • **डॉ॰ तारा प्रकाश** 200.00
अक्ल की दुकान • **आदित्य प्रचण्डिया** 300.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन • **डॉ॰ सरिता शाह** 200.00
• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
आधी आबादी का सच 300.00
• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे 300.00
दंगे : क्यों और कैसे 300.00
• **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • **डॉ॰ गिरिराज शाह** 200.00
गुरु नानकदेव • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
हिंसा तेरे रूप अनेक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 400.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 250.00
वेद-वेदांत दर्शन • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ** 300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ** 300.00
कन्हैया गीता • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ** 900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर** 450.00

सिद्धाश्रम का संन्यासी ●	**मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी ●	**डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
डगर पनघट की ●	**सुधीर गुप्ता**	200.00
थाह सुंदरतम की ●	**महेंद्र शर्मा**	200.00
Ecosystem in The Central Himalyas ●	**Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 09557746346, 07838090732

गुड़गाँव कार्यालय

बी-203, पार्क व्यू सिटी 2, सोहना रोड, गुड़गाँव 122018

0124-4076565